Macroeconomic Theory

DECO402

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत
MACROECONOMIC THEORY

Copyright © 2012 Laxmi Publications (P) Ltd.
All rights reserved

Produced & Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम
(SYLLABUS)
समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत
(Macroeconomic Theory)

उद्देश्य

- समसामायिक समष्टि अर्थशास्त्र के सिद्धांत को समझने की सूक्ष्म दृष्टि प्रदान करना, छात्रों में समष्टि अर्थशास्त्र के विभिन्न चरों जैसे – राष्ट्रीय आय, रोजगार, उपभोग, मुद्रास्फीति और मुद्रा की मात्रा के बीच आपसी संबंधों का विश्लेषण करने की समझ पैदा करना। अर्थव्यवस्था में सरकारी व्यय, कराधान, मौद्रिक नीतियां आदि समझने में विद्यार्थी योग्य होंगे।

Objectives

- To give the students an overview of contemporary macroeconomic theory and to make the students understand and analyze relationships among different macroeconomic variables such as national income, employment, consumption, inflation and the quantity of money. Student will be able to understand the role of government expenditure, taxation and monetary policy in an economy.

Sr. No.	Content
1	Introduction to Macroeconomics; National Income : Concepts of National Income GNP and Welfare
2	Inter-Temporal and International Comparisons of National Income; Classical Theory of Income, Output and Employment; Keynesian Theory of Income, Output and Employment
3	Consumption Function: Absolute Income Hypothesis; Relative Income Hypothesis Permanent Income and Life Cycle Hypothesis; Investment Function: Keynesian Approach; Accelerator Theory
4	Demand for Money : Quantity Theory of Money; Keynesian Approach
5	Boumol's and Tobin's Contribution; Friedman's Restatement of Quantity Theory of Money; Supply of Money: Definition of Money and its Importance in Macro Economics
6	Money Multiplier and Credit Creation by Commercial Banks; Derivation, Properties and Shift in IS and LM Curves; Simultaneous Equilibrium in Money and Product Markets
7	Effects of Monetary Policies Under Different Cases in IS-LM Framework; Effects of Fiscal Policies Under Different Cases in IS-LM Framework
8	Inflation: Types and its Effects; Philips Curve Analysis; Trade Cycles : Meaning and Types; Accelerator-Multiplier Interaction Model
9	Kaldor's Model of Trade Cycles; Monetary and Fiscal Policy–Objective, Conflicts; Mudell Model; Swan Model
10	Rational Expectations and Economic Theory, New Keynesian Macro Economics

विषय-सूची

इकाई (Units)	(CONTENTS)	पृष्ठ संख्या (Page No.)
1.	समष्टि–अर्थशास्त्र का परिचय (Introduction to Macroeconomics)	1
2.	राष्ट्रीय आय : राष्ट्रीय आय की धारणा (National Income : Concept of National Income)	14
3.	आर्थिक कल्याण और राष्ट्रीय आय (Economic Welfare and National Income)	34
4.	क्षेत्रवार लेखांकन (Sectorial Accounting)	42
5.	रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत (Classical Theory of Employment)	52
6.	कीन्स का रोजगार सिद्धांत (Keynesian Theory of Employment)	63
7.	उपभोग फलन के सिद्धांत (Theory of Consumption Function)	72
8.	सापेक्ष आय की परिकल्पना (Relative Income Hypothesis)	77
9.	स्थायी आय और जीवन-चक्र परिकल्पना (Permanent Income and Life Cycle Hypothesis)	83
10.	निवेश फलन (Investment Function)	92
11.	त्वरण सिद्धांत (The Theory of Acceleration)	105
12.	मुद्रा की माँग : मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Demand of Money : Quantity Theory of Money)	113
13.	केन्ज़ियन दृष्टिकोण (Keynesian Approach)	129
14.	बोमल एवं टोबिन का योगदान (Contribution of Boumal and Tobin)	138
15.	फ्रीडमैन का मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का पुनः प्रतिपादन (Restatement of Friedman's Quantity Theory of Money)	148
16.	मुद्रा पूर्ति : मुद्रा की परिभाषा और समष्टि अर्थशास्त्र में इसका महत्त्व (Money Supply: Definition of Money and its Importance)	157
17.	मुद्रा गुणक और वाणिज्य बैंकों द्वारा साख निर्माण (Money Multiplier and Credit Creation by Commercial Banks)	166
18.	आई एस–एल एम विश्लेषण (IS-LM Analysis)	186
19.	वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन (Simultaneous Equilibrium in Product and Money Market)	199
20.	IS-LM फ्रेमवर्क में विभिन्न कारकों के तहत मौद्रिक नीतियों का प्रभाव (Effects of Monetary Policies under Different Cases in IS-LM Framework)	205
21.	IS-LM फ्रेमवर्क में विभिन्न कारकों के तहत वित्तीय नीतियों का प्रभाव (Effects of Fiscal Policies under Different Cases in IS-LM Framework)	210
22.	स्फीति (Inflation)	216
23.	फिलिप्स वक्र विश्लेषण (Phillips Curve Analysis)	232
24.	व्यापार चक्र : परिभाषा एवं प्रकार (Trade Cycles : Meaning and Types)	242
25.	अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया (The Super-Multiplier of the Multiplier Accelerator Interaction)	254
26.	कालडर का व्यापार–चक्र सिद्धांत (Kaldor's Theory of Trade Cycle)	260
27.	मौद्रिक नीति (Monetary Policy)	268
28.	मण्डल मॉडल (Mondel Model)	284
29.	स्वान मॉडल (Swan Model)	290
30.	विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की परिकल्पना (The Rational Expectations Hypothesis)	296

इकाई–1: समष्टि-अर्थशास्त्र का परिचय (Introduction of Macroeconomics)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 समष्टि-अर्थशास्त्र क्या है? (What is Macroeconomics?)

1.2 समष्टि-अर्थशास्त्र में हम क्या अध्ययन करते हैं? (What do we study in Macroeconomics?)

1.3 समष्टि-अर्थशास्त्र की मुख्य समस्याएँ (Major Macroeconomics Issues)

1.4 समष्टि-अर्थशास्त्र लक्ष्य तथा उपकरण (Macroeconomics Targets and Instruments)

1.5 सारांश (Summary)

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- समष्टि अर्थशास्त्र को जानने हेतु।
- समष्टि अर्थशास्त्र की समस्याओं का अध्ययन करने हेतु।
- समष्टि अर्थशास्त्र का लक्ष्य एवं उपकरण जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

समष्टि शब्द के मूल (Origin) को जान लेने से ही हम इसके अर्थ को जान सकते हैं। यह शब्द ग्रीक के मैक्रोस (Macros) शब्द से लिया गया है जिसका उस भाषा में अर्थ "बड़ा" (Large) है। अतः समष्टि-अर्थशास्त्र से अभिप्राय व्यापक स्तर पर संपूर्ण अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करना है।

1.1 समष्टि-अर्थशास्त्र क्या है? (What is Macroeconomics?)

विद्यार्थियों के लिए समष्टि-अर्थशास्त्र कोई नया शब्द नहीं है। वास्तव में, आप अपने वरिष्ठ माध्यमिक स्तर (Senior Secondary Level) पर 'व्यष्टि' तथा 'समष्टि' शब्दों के अंतर को भली प्रकार से समझ चुके हैं। इस अंतर को फिर से दोहराते हुए यह कहा जा सकता है कि व्यष्टि-अर्थशास्त्र में आर्थिक समस्याओं का अध्ययन व्यक्तिगत स्तर पर किया जाता है (जैसे-एक व्यक्तिगत परिवार, एक व्यक्तिगत फर्म, एक व्यक्तिगत उद्योग अथवा एक व्यक्तिगत

नोट

बाजार) जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र में संपूर्ण अर्थव्यवस्था (Economy as a Whole) के स्तर पर आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

- **शेपिरो** के अनुसार, **"समष्टि-अर्थशास्त्र संपूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्यकरण से संबंधित है।"** (*Macro-economics deals with the functioning of the economy as a whole.*–Shapiro)
- **एक्ले गार्डनर** के शब्दों में, **"समष्टि-अर्थव्यवस्था का संबंध ऐसे चरों के साथ है जैसे अर्थव्यवस्था में उत्पाद की कुल मात्रा, इसके संसाधनों का किस सीमा तक उपयोग किया जाता है, राष्ट्रीय आय का आकार तथा सामान्य कीमत स्तर।"** (*"Macroeconomics concerns with such variables as the aggregate volume of the output of an economy, with the extent to which its resources are employed, with the size of national income and with the general price level."*–**Ackley Gardner**)
- **एम०एच० स्पेन्सर के शब्दों में, "समष्टि-अर्थशास्त्र का संबंध समस्त अर्थव्यवस्था अथवा उसके बड़े-बड़े क्षेत्रों से है। इसके अंतर्गत ऐसी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जैसे बेरोजगारी का स्तर, मुद्रा स्फीति की दर, राष्ट्र का कुल उत्पाद तथा अन्य विषय, जिनका संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिये महत्त्व होता है।"** (*"Macroeconomics is concerned with the economy as a whole or large segments of it. In macroeconomics attention is focussed on such problems as the level of unemployment, the rate of inflation, the nation's total output and other matters of economy-wide significance."*–**M.H. Spencer**)

एक आवश्यक सावधानी (A Necessary Caution)

प्राय: यह कहा जाता है कि समष्टि-अर्थशास्त्र समुच्चयों (Aggregates) का अध्ययन है न कि "व्यक्तिगत इकाइयों" (Individual units) का, जिनका अध्ययन केवल व्यष्टि-अर्थशास्त्र में किया जाता है। किंतु यह अंतर अस्पष्ट है। इस अंतर को समझने के लिए सावधानी की आवश्यकता है। इस संबंध में निम्नलिखित दो महत्त्वपूर्ण बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

(*i*) समष्टि-अर्थशास्त्र समुच्चयों का अध्ययन है और वह भी केवल समूची अर्थव्यवस्था के स्तर पर। अत: जब हम समष्टि-अर्थव्यवस्था में माँग का उल्लेख करते हैं तब हमारा अभिप्राय समग्र माँग (Aggregate Demand) से होता है। जिसका निहित अर्थ समस्त वस्तुओं तथा सेवाओं की समूची अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों द्वारा की गई माँग से है, (जैसे, सभी परिवारों, सभी फर्मों तथा सरकार की माँग)।

(*ii*) इसमें कोई संदेह नहीं कि व्यष्टि-अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन किया जाता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इसमें व्यक्तिगत इकाई से संबंधित समुच्चयों का अध्ययन नहीं किया जाता।

> *नोट्स* व्यष्टि तथा समष्टि दोनों अर्थशास्त्रों में माँग/पूर्ति का जोड़ किया जाता है। किंतु व्यष्टि-अर्थशास्त्र में वह समुच्चय किसी एक वस्तु या एक बाजार (जैसे, क्रिकेट की गेंदों का बाजार) तक ही सीमित होता, जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र में उन सभी वस्तुओं तथा सेवाओं का जोड़ किया जाता है जिन्हें एक अर्थव्यवस्था उत्पादित करती है, चाहे ये क्रिकेट की गेंद हो या मुर्गियां या चूजे।

व्यष्टि-अर्थशास्त्र में जब हम अर्थशास्त्र की पाठ्य पुस्तकों (Text Books) की माँग तथा पूर्ति के संबंध में बात करते हैं तब हमारा तात्पर्य केवल अर्थशास्त्र के पाठ्य के बाजार से ही होता है, फिर भी इसमें कुल माँग तथा कुल पूर्ति सम्मिलित होती है भले ही यह कुल माँग उन सभी विद्यार्थियों की होती है जो केवल अर्थशास्त्र की पाठ्य पुस्तकें खरीदते हैं तथा कुल पूर्ति भी उन सभी फर्मों की होती है जो केवल अर्थशास्त्र की पाठ्य पुस्तकें बेचते हैं।

व्यष्टि-अर्थशास्त्र तथा समष्टि-अर्थशास्त्र में अंतर के मुख्य बिंदु

नोट

(Salient Points on the Difference between Microeconomics and Macroeconomics)

1. **समुच्चय की मात्रा (Degree of Aggregation)**—व्यष्टि-अर्थशास्त्र तथा समष्टि-अर्थशास्त्र के आर्थिक तत्त्वों के समुच्चय की मात्रा में अंतर पाया जाता है। व्यष्टि-अर्थशास्त्र उन आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करता है जो एकल आर्थिक इकाई (Single Economic Unit) जैसे एक फर्म या आर्थिक इकाइयों के एक छोटे समूह, जैसे एक उद्योग, से संबंधित होती है। समष्टि-अर्थशास्त्र एक अर्थव्यवस्था की सभी फर्मों की आर्थिक समस्याओं का अध्ययन करता है। व्यष्टि-अर्थशास्त्र में आर्थिक तत्त्वों के छोटे भाग का अध्ययन किया जाता है जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र में आर्थिक चरों के महत्त्वपूर्ण समुच्चयों का अध्ययन किया जाता है।

2. **अध्ययन का केंद्र (Focus of Study)**—व्यष्टि-अर्थशास्त्र के अध्ययन का केंद्र साधनों के अनुकूलतम बंटवारे से संबंधित सिद्धांतों, समस्याओं और नीतियों का अध्ययन है। इसके विपरीत, समष्टि-अर्थशास्त्र के अध्ययन का केंद्र अर्थव्यवस्था में पाई जाने वाली संसाधनों के रोजगार की स्थिति (Employment Status) तथा संसाधनों के विकास से संबंधित सिद्धांतों, समस्याओं और नीतियों का अध्ययन है।

3. **विषय वस्तु का मूल अंतर (Basic parameter of Subject-matter Difference)**—व्यष्टि-अर्थशास्त्र तथा समष्टि-अर्थशास्त्र में मूल अंतर बताते हुए प्रो० जी थिम्मैया (Prof. G. Thimmah) ने कहा है कि व्यष्टि-अर्थशास्त्र समस्याओं का मुख्य निर्धारक कीमत (Price) है जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र की समस्याओं का मुख्य निर्धारक आय (Income) है। व्यष्टि-अर्थशास्त्र में उपभोक्ता, उत्पादक, उत्पादन के साधन आदि आर्थिक इकाइयाँ अपने विभिन्न बाजारों में कीमतों (Prices in Different-Markets) के आधार पर लेते हैं। इसके विपरीत, समष्टि-अर्थशास्त्र में कुल निवेश, कुल बचत आदि संबंधी निर्णय मुख्यत: आय अर्थात् राष्ट्रीय आय (National Income) के आधार पर लिए जाते हैं।

4. **अध्ययन की विधियाँ (Methods of Study)**—व्यष्टि-अर्थशास्त्र के सिद्धांतों का निर्माण करते समय हम यह मान लेते हैं कि "अन्य बातें समान रहती हैं" (Other things being equal)। उदाहरण के लिए, माँग के नियम में हम कीमत और माँग की मात्रा के बीच संबंध का अध्ययन करते हैं। माँग पर पड़ने वाले अन्य तत्त्वों, जैसे उपभोक्ता की आय, उसकी आदत, उसकी रुचि, संबंधित वस्तुओं की कीमतों आदि के प्रभाव को स्थिर मान लेते हैं। अध्ययन की इस विधि को आंशिक संतुलन विश्लेषण (partial Equilibrium Analysis) कहा जाता है। इसके विपरीत, समष्टि-अर्थशास्त्र में आर्थिक तत्त्वों को महत्त्वपूर्ण समुच्चयों में वर्गीकृत किया जाता है, जैसे, कुल माँग, कुल पूर्ति, कुल निवेश आदि इन तत्त्वों की परस्पर निर्भरता ही समष्टि-अर्थशास्त्र के अध्ययन का केंद्र बिंदु है। अध्ययन की इस विधि का **अर्थ-सामान्य संतुलन विश्लेषण** (Quasi General Equilibrium Analysis) कहा जाता है।

5. **मान्यताओं का समूह (Set of Assumptions)**—व्यष्टि-अर्थशास्त्र तथा समष्टि-अर्थशास्त्र विभिन्न मान्यताओं के समूह पर आधारित हैं। व्यष्टि-अर्थशास्त्र में प्राय: यह मान लिया जाता है कि देश में पूर्ण रोजगार की स्थिति पाई जाती है। कुल उत्पादन तथा कुल व्यय को भी स्थिर मान लिया जाता है। इन मान्यताओं के आधार पर यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि संसाधनों का अनुकूलतम बंटवारा (Optimum Allocatiion) कैसे होता है और कैसे विभिन्न आर्थिक इकाइयाँ संतुलन की स्थिति को प्राप्त करती हैं। इसके विपरीत, समष्टि-अर्थशास्त्र की यह सामान्य मान्यता है कि संसाधनों का बंटवारा अनुकूलतम होता है। इस मान्यता के आधार पर यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि कैसे राष्ट्रीय संसाधनों को पूर्ण रोजगार प्राप्त हो सकता है।

☞ **व्यष्टि-समष्टि विरोधाभास (Micro-Macro Parabox)**

जो बात व्यक्तिगत स्तर पर सही है, शायद वह समूची अर्थव्यवस्था के लिए सही न हो:

नोट

उदाहरण के लिए (1) यदि एक व्यक्ति अपने आय का बड़ा भाग बचाता है, तो ऐसा उसके लिए लाभकारी हो सकता है, किंतु यदि समूचा समाज पहले से अधिक बचत करने लगे तो इसका परिणाम होगा: कुल उपभोग में कमी, कुल माँग में कमी, कुल पूर्ति में कमी तथा राष्ट्रीय आय में कमी। इस प्रकार, अधिक बचत समूचे समाज के लिए विनाशकारी हो सकती है। (2) यदि एक व्यक्ति बैंक में पड़े अपने समस्त धन को निकलवा लेता है, तो इससे बैंक को कोई हानि नहीं होगी; किंतु यदि सभी जमाकर्ता अपना-अपना पूरा धन बैंक से निकलवा लेते हैं, तो बैंक फेल हो जाएगा। (3) यदि एक श्रमिक कम मजदूरी पर काम करने के लिए मान जाए तो उसे रोजगार प्राप्त हो जाएगा, किंतु यदि सभी श्रमिक अपनी मजदूरी-दर घटा दें तो उनकी आय घट जाएगी, उनकी कुल माँग घट जाएगी जिससे कुल उत्पादन भी घट जाएगा। परिणामस्वरूप रोजगार का स्तर बढ़ने की अपेक्षा घटने लगेगा। ऐसे विरोधाभास ही, व्यष्टि-अर्थशास्त्र तथा समष्टि-अर्थशास्त्र के अंतर को रेखांकित करते हैं। यही व्यष्टि तथा समष्टि-अर्थशास्त्र के विरोधाभास हैं।

प्रो० बोल्डिंग (Prof. Boulding) ने व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर को एक वृक्ष तथा एक जंगल के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। इसके अनुसार जिस प्रकार एक जंगल अनेक वृक्षों का समूह होता है ठीक उसी प्रकार एक अर्थव्यवस्था असंख्य व्यक्तियों का जोड़ होती है। एक वृक्ष तथा एक जंगल में पाए जाने वाले अंतर इस प्रकार हैं-(क) एक व्यक्तिगत वृक्ष मर सकता है किन्तु जंगल सदा कायम रहता है। (ख) एक वृक्ष में आग लगने की कोई प्रवृत्ति नहीं पायी जाती किंतु जंगलों में आग का लगना एक साधारण बात है। (ग) एक व्यक्तिगत वृक्ष का आसपास की जलवायु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता किंतु एक जंगल जलवायु को प्रभावित करता है। ऐसे ही अंतर व्यष्टि तथा समष्टि-अर्थशास्त्र में भी पाए जाते हैं। अत: कई बार ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि एक आर्थिक क्रिया में व्यक्तिगत दृष्टिकोण से परिवर्तन हो रहा है किंतु एक समुच्चय (Aggregate) के दृष्टिकोण से उसमें स्थिरता पाई जाती है।

व्यष्टि-अर्थशास्त्र तथा समष्टि-अर्थशास्त्र के अंतर का अध्ययन करने से हमें यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि यह दोनों अर्थशास्त्र की परस्पर पृथक शाखाएँ हैं। निश्चित रूप से नहीं। वास्तव में एक के अध्ययन से दूसरे के अध्ययन का परिज्ञान प्राप्त होता है। यह तो यथार्थ में विभिन्न आर्थिक समस्याओं तथा मुद्दों के अध्ययन की विभिन्न विधियाँ हैं। अनेक बार ये एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं। प्राय: समष्टि-अर्थशास्त्र की पृष्ठभूमि में (जैसे, आय, रोजगार तथा कुल माँग का स्तर) व्यक्तिगत उत्पादक यह निर्णय लेते हैं कि उन्हें क्या तथा कितना उत्पादन करना है। इसी प्रकार प्राय: संसाधनों के वर्तमान बंटवारे की व्यष्टि स्तर पर पृष्ठभूमि में समष्टि स्तर पर अर्थव्यवस्था के भावी विकास संबंधी योजनाएँ तथा कार्यक्रम बनाए जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. समष्टि अर्थशास्त्र संपूर्ण .... के कार्यकरण से संबंधित है।
2. समष्टि अर्थशास्त्र से अभिप्राय व्यापक स्तर पर संपूर्ण अर्थव्यवस्था का .... करना है।
3. समष्टि अर्थशास्त्र का संबंध समस्त अर्थव्यवस्था अथवा उसके बड़े-बड़े .... से है।

नोट्स समष्टि अर्थशास्त्र में संपूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर पर आर्थिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

1.2 समष्टि-अर्थशास्त्र में हम क्या अध्ययन करते हैं? (What do we study in Macroeconomics?)

इस प्रश्न का संबंध समष्टि-अर्थशास्त्र के क्षेत्र (Scope) से है। क्षेत्र का अर्थ है–विस्तार (Dimensions)। अर्थात् कौन-कौन सी आर्थिक समस्याएँ तथा मुद्दे समष्टि-अर्थशास्त्र में सम्मिलित किए जाते हैं। इनके ज्ञान विषय-सामग्री को जानने के लिए जरूरी है। विस्तृत रूप में समष्टि-अर्थशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है–

1. **राष्ट्रीय आय का सिद्धांत (Theory of National Income)**–समष्टि-अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं, इसके विभिन्न तत्त्वों, इसे मापने की विधियों तथा सामाजिक लेखे का अध्ययन किया जाता है।

2. **रोजगार का सिद्धांत (Theory of Employment)**–समष्टि-अर्थशास्त्र में रोजगार तथा बेरोज़गारी से संबंधित समस्याओं का भी अध्ययन किया जाता है। इसमें रोजगार के स्तर को निर्धारित करने वाले विभिन्न तत्त्वों, जैसे-प्रभावपूर्ण माँग, कुल पूर्ति, कुल उपभोग, कुल निवेश, कुल बचत आदि का अध्ययन किया जाता है।

3. **मुद्रा का सिद्धांत (Theory of Money)**–मुद्रा की माँग तथा पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों का रोजगार के स्तर पर काफी प्रभाव पड़ता है। समष्टि-अर्थशास्त्र में मुद्रा के कार्यों तथा उससे संबंधित सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है। बैंकिंग प्रणाली तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का भी इस संदर्भ में अध्ययन किया जाता है।

4. **सामान्य कीमत स्तर का सिद्धांत (Theory of General Price level)**–सामान्य कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन समष्टि-अर्थशास्त्र की मुख्य समस्या है। इस संदर्भ में मुद्रा स्फीति (अथवा कीमतों में होने वाली सामान्य वृद्धि) तथा मुद्रा विस्फीति (अथवा कीमतों में होने वाली सामान्य कमी) की समस्याएँ प्रमुख हैं।

5. **आर्थिक संवृद्धि का सिद्धांत (Theory of Economic Growth)**–समष्टि अर्थशास्त्र में आर्थिक संवृद्धि अर्थात् प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में होने वाली वृद्धि से संबंधित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की संवृद्धि संबंधी समस्या का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है। सरकार की मौद्रिक तथा वित्तीय नीतियों का भी इसमें अध्ययन किया जाता है।

6. **अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत (Theory of International Trade)**–समष्टि-अर्थशास्त्र में विभिन्न देशों के बीच होने वाले व्यापार का भी अध्ययन किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत, तटकर (Tariff), संरक्षण (Protection) आदि समष्टि-अर्थशास्त्र के अति महत्त्वपूर्ण विषय हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. समष्टि शब्द ग्रीक के .... शब्द से लिया गया है।

   (अ) मैक्रोस (Macros) (ब) Micros
   (स) Origin (द) इनमें से कोई नहीं।

5. व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्रों में जोड़ किया जाता है–

   (अ) माँग का (ब) माँग/पूर्ति का
   (स) पूर्ति का (द) इनमें से कोई नहीं।

6. व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र के आर्थिक तत्त्वों के .... की मात्रा में अंतर पाया जाता है।

   (अ) समुच्चय (ब) लागत
   (स) वक्र (द) इनमें से कोई नहीं।

नोट

1.3 समष्टि-अर्थशास्त्र की मुख्य समस्याएँ (Major Macroeconomic Issues)

हमें समष्टि-अर्थशास्त्र की आवश्यकता क्यों है? क्या व्यष्टि-अर्थशास्त्र आर्थिक समस्याओं को समझने, उनका विश्लेषण तथा समाधान करने के लिए काफी नहीं है? निश्चित रूप से नहीं। व्यष्टि-अर्थशास्त्र में हम आर्थिक समस्याओं का अध्ययन व्यक्तिगत आर्थिक इकाई के रूप में करते हैं, जैसे खाद्य उद्योग, फलों का उत्पादन या कपड़े का उत्पादन। किंतु कुछ समस्याएँ ऐसी भी हो सकती हैं जो समस्त उद्योगों या सामान्य रूप से सभी उत्पादन इकाइयों से संबंधित हों, जैसे आधारिक संरचनात्मक सुविधाएँ (Infrastructural Facilities) जिनमें प्रचुर मात्रा में बिजली (अथवा ऊर्जा के अन्य साधनों) का प्रावधान होता है, साख तथा अन्य बैंकिंग सुविधाओं के अतिरिक्त कार्यकुशल संचार तथा यातयात की सुविधाओं का भी प्रावधान होता है। इन सुविधाओं की आवश्यकता प्रत्येक उद्योग को होती है। वास्तव में यह उत्पादन क्रिया की सामान्यतः मूल आवश्यकताएँ हैं। इन समस्याओं का हल संपूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर पर ढूंढा जाता है। इसका निहितार्थ समष्टि-अर्थशास्त्र के अध्ययन की अनिवार्यता है। कुछ समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी समस्याओं का आगे उल्लेख किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि समष्टि-अर्थशास्त्र का अध्ययन एक विशिष्ट शाखा के रूप में आवश्यक होता है।

(1) संवृद्धि तथा विकास (Growth and Development)

संवृद्धि तथा विकास समष्टि-अर्थशास्त्र के अथवा समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी नीतियों के मुख्य कारक हैं। विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्थाओं के भूमण्डलीय एकीकरण के इस युग में, "संवृद्धि तथा विकास" समष्टि-अर्थशास्त्र के अध्ययन का केंद्र बन गए हैं। अर्थव्यवस्थाओं की निरंतर संवृद्धि आवश्यक है और यह संवृद्धि (वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रावाह के रूप में) आम जनता के बढ़ रहे जीवन-स्तर के रूप में दृष्टिगोचर होनी चाहिए अथवा जीवन की गुणवत्ता में समूचा सुधार होना चाहिए। संवृद्धि को विकास में रूपान्तरित किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि धनी तथा निर्धन के बीच पाई जाने वाली खाई का अंतर समय के साथ-साथ कम होना चाहिए। वास्तव में, सवृद्धि तथा विकास की समस्या, का निकट भूतकाल में, महत्त्व बहुत बढ़ गया है। आर्थिक संवृद्धि की प्राप्ति (*i*) पर्यावरण के पतन तथा (*ii*) प्राकृतिक संसाधनों (विशेषकर गैर-नवीनीकरण संसाधनों) के अत्यधिक शोषण द्वारा नहीं होनी चाहिए क्योंकि इसमें भावी पीढ़ियों की उत्पादन क्षमता के कम हो जाने का भय है। इस संदर्भ में ही अर्थशास्त्री "धारणीय विकास" (Sustainable Development) की बात करते हैं और यही आज की समष्टि-अर्थशास्त्र की उभरती हुई समस्या है। वास्तव में, नियोजनों तथा राजनीतिज्ञों को सचेत किया जाता है कि वो इस प्रकार की समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी नीतियों का निर्माण करें जिनसे सुसंगत आर्थिक संवृद्धि (वस्तुओं तथा सेवाओं की बढ़ रही उपलब्धता के रूप में) तथा सामाजिक न्याय (अर्थात् धन तथा आय के समान बंटवारे के रूप में) सुनिश्चित हो तथा न तो पर्यावरण का पतन हो और न भावी-पीढ़ियों की उत्पादान क्षमता में किसी प्रकार की कमी हो।

(2) रोज़गार (Employment)

सन् 1930 के दशक में विश्वभर में महामंदी (Great Depression) पाई गई थी। आर्थिक गतिविधियाँ बहुत मंद पड़ गई थीं। वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग कम हो गई थी। परिणामस्वरूप, व्यापारिक लाभों में भारी गिरावट आई तथा बड़े पैमाने पर निवेश की मात्रा में कटौती हुई तथा बेरोजगारी फैल गई। यदि उत्पादन के क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या के बहुत बड़े प्रतिशत को बेरोज़गारी का सामना करना पड़े तो यह एक ऐसी समस्या बन जाती है जिसका समाधान समूची अर्थव्यवस्था के स्तर पर करना आवश्यक हो जाता है। यह समष्टि-अर्थशास्त्र की एक प्रमुख समस्या है। भारत में बेरोज़गारी एक निरंतर डरावनी समस्या बनी हुई है। अकुशल श्रमिक बड़े पैमाने पर ग्रामीण बेरोज़गारी से पीड़ित हैं। शहरी क्षेत्रों में भी कुशल कारीगरों में आश्चर्यजनक बेरोजगारी तथा अल्परोजागारी पाई जाती है। हमारे देश में बेरोजगारी की समस्या इतनी विशाल तथा दीर्घकालिक है कि सरकार को सरकारी नौकरियों में आरक्षण (Reservation) के लिए विवश होना पड़ा है। इस आरक्षण को निजी क्षेत्र में भी लागू करने के प्रयास किए जा रहे हैं। भला, आरक्षण की आवश्यकता क्यों पड़ेगी यदि उन सबको, जो प्रचलित मजदूरी दर पर काम करने के लिए

तैयार तथा इच्छुक हैं, पर्याप्त संख्या में नौकरियों का सृजन किया जाए? यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि हमारी अर्थव्यवस्था का विकास उस दर पर नहीं हो रहा है जिस पर देश की समस्त मानव शक्ति को काम पर लगाया जा सके।

बेरोजगारी केवल भारत जैसे अल्पविकसित देशों की ही एक विशेषता नहीं है। यह समस्या यू.के. तथा यू. एस.ए. जैसे विकसित देशों के लिए भी गंभीर बनी हुई है। विकसित तथा अल्पविकसित देशों में केवल बेरोजगारी की प्रकृति में ही अंतर पाया जाता है। अल्पविकसित देशों में इनकी प्रकृति दीर्घकालिक (Chronic) होती है और इसका कारण उत्पादन क्षमता में कमी का होना है। इसके विपरीत, विकसित देशों में इसकी प्रकृति चक्रीय (Cyclical) होती है जिसका कारण वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग में होने वाली कमी है। फिर भी, समष्टि-अर्थशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण समस्या बेरोजगारी है और इसका संबंध संसार की सभी अर्थव्यवस्थाओं से है।

(3) व्यावसायिक चक्र (Business Cycle)

आर्थिक क्रिया में सदैव उतार-चढ़ाव पाया जाता है, इसमें होने वाले परिवर्तन की आकृति भी सदैव स्थिर (steady) नहीं रहती। जब आर्थिक क्रिया मंद पड़ जाती है तब इसे मंदी (Recession) की स्थिति कहा जाता है। जब यह निम्नतम स्थिति को पहुँच जाती है तब इसे अत्यधिक मंदी (Depression) की स्थिति कहा जाता है। जब इसमें सुधार होने लगता है तब इसे पुनरुत्थान (Recovery) की स्थिति कहा जाता है और जब यह अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाती है, तब इसे तेजी (Boom) की स्थिति कहा जाता है। मंदी अथवा अत्यधिक मंदी निम्न लाभ की स्थिति होती है। इस स्थिति में सीमान्त फर्में (Marginal Firms) बंद होने लगती हैं, निवेश की मात्रा में भारी कमी हो जाती है तथा बेरोज़गारी भयंकर रूप धारण कर लेती है। इसके विपरीत, तेजी की स्थिति बढ़ रहे लाभों की स्थिति होती है जिसमें निवेश की मात्रा तथा उत्पादन के साधनों की माँग निरंतर बढ़ती जाती है।

व्यावसायिक चक्र किसी एक विशेष फर्म अथवा एक विशेष व्यावसायिक क्रिया तक ही सीमित नहीं रहते। यह एक समष्टि घटना है जो देश की सभी उत्पादन इकाइयों को अपने घेरे में ले लेती है। वास्तव में, कभी-कभी यह एक भूमण्डलीय घटना (Global Phenomenon) बन जाती है, जैसी 1930 के दशक की महामंदी। यह ध्यान देने योग्य बात है कि समष्टि-अर्थशास्त्र की एक पृथक अध्ययन की शाखा के रूप में उत्पत्ति का श्रेय 1930 के दशक की अत्यधिक मंदी (Depression of 1930's) को जाता है। इस अवधि के दौरान, विश्व की पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं, विशेषकर यू.के., में घोर बेरोजगारी पाई गई थी। यू.के. की अर्थव्यवस्था में बेरोज़गारी की दर 25% पहुँच गई थी। ऐसे समय में ही विश्व के महान अर्थशास्त्री लॉर्ड केन्ज़ ने आय तथा रोजगार सिद्धांत (Theory of Income and Employment) तथा समग्र माँग में कमी (Deficiency of Aggregate Demand) के कारण उत्पन्न बेरोज़गारी की समस्या के भूमण्डलीय उपचार का प्रतिपादन किया था।

वास्तव में, एक अर्थव्यवस्था का चक्रीय चलन स्वयं में एक बड़ी समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी समस्या है, जिसका समाधान न केवल उत्पादकों अपितु सरकार को भी ढूंढना होता है। उत्पादकों को एक ऐसी रणनीति अपनानी होती है जिसके द्वारा मंदी तथा तेजी की स्थितियों का सामना किया जा सके। सरकार को ऐसी नीतियों का निर्माण करना होता है जिनसे व्यावसायिक चक्रों के प्रभाव को न्यूनतम किया जा सके तथा आर्थिक संवृद्धि के स्थिर मार्ग को सुनिश्चित बनाया जा सके।

(4) मुद्रा स्फीति (Inflation)

मुद्रा स्फीति उस स्थिति को कहते हैं जिसमें सामान्य कीमत स्तर (अर्थव्यवस्था की सभी वस्तुओं तथा सेवाओं की औसत कीमत) में एक निश्चित समय अवधि में निरंतर बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है। फलस्वरूप मुद्रा का मूल्य घटता है और लोगों की वास्तविक क्रय-शक्ति कम हो जाती है। यह भी एक अन्य समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी समस्या है जिसे समझना तथा जिसका समाधान करना बहुत आवश्यक है।

नोट

कीमतों में मामूली वृद्धि आर्थिक संवृद्धि में सहायक होती है। इससे निवेश को बढ़ावा मिलता है तथा आर्थिक क्रिया का समूचा स्तर प्रेरित होता है। किंतु मुद्रा स्फीति कभी-कभी दौड़ती मुद्रा स्फीति (Galloping Inflation) अथवा अति मुद्रा स्फीति (Hyper Inflation) का रूप धारण कर लेती है। अति मुद्रा स्फीति की स्थिति में, उत्पादन के साधन महंगे हो जाते हैं। निवेश की ब्याज-लागत में विशेषकर भारी वृद्धि की प्रवृत्ति पायी जाती है। फलस्वरूप उत्पादन की लागत में बहुत वृद्धि हो जाती है तथा व्यावसायिक प्रतियोगितात्मक (Business Competitiveness) कमी होने लगती है, विशेषकर विश्व के बाजारों में। जब माँग में घटने तथा उत्पादन-लागत में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है तब उत्पादन की क्रिया में स्पष्ट रुकावट उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था तेजी से मंदी तथा महामंदी की ओर बढ़ती है।

आम आदमी मुद्रा स्फीति के कारण गंभीर रूप से पीड़ित होता है। उसकी क्रय-शक्ति घटती है और सरकार के प्रति उसका असंतोष बढ़ता है। सामान्य असंतोष अंततः सामाजिक अशांति का रूप धारण कर लेता है जिसके कारण सरकार की स्थिरता को खतरा पड़ जाता है। वास्तव में, कीमत-नियंत्रण द्वारा परोपकार करना भारत जैसे देशों के निर्वाचन घोषणा-पत्रों का एक भाग बन गया है। परिणामस्वरूप, अधिकांश कल्याणकारी राज्यों में मुद्रा स्फीति पर काबू पाने वाली रणनीतियों को उच्च प्राभमिकता दी जाती है। इस समय सरकारों के लिए उभर रही प्रमुख नीति समस्या (Major Policy Problem) मुद्रा-स्फीति रहित संवृद्धि (Growth without Inflation) है।

(5) बजट संबंधी घाटा तथा राजकोषीय नीति (Budgetary Deficit and Fiscal Policy)

विश्व की अर्थव्यवस्थाओं के निजीकरण तथा भूमण्डलीयकरण के पश्चात् विकास प्रक्रिया में सरकार की प्रत्यक्ष भागीदारी (Direct participation) (निवेशक के रूप में) धीरे-धीरे कम होती जा रही है। फिर भी, कल्याण संबंधी क्रियाओं के विस्तार के कारण सरकार के बजट संबंधी खर्चों में वृद्धि होती जा रही है। विशेषकर प्रतिरक्षा, आतंकवाद का सामना करने तथा न्याय एवं व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सरकारी खर्चे में वृद्धि जारी है। सरकारी खर्चे में वृद्धि का एक अन्य कारण किसानों को दी जाने वाली आर्थिक सहायता (Subsidy) है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत जैसे देशों में सरकारी खर्चे का बहुत बड़ा भाग गैर-विकास क्रियाओं (Non-development Activities) में खर्च हो रहा है। इसका अर्थ यह निकलता है कि सरकारी खर्चा वस्तुओं तथा सेवाओं के उपभोग पर अधिक तथा उनके उत्पादान पर कम हो रहा है। भारत जैसे देशों में अधिकांश सरकारें आय के साधन के रूप में ऋणों (Borrowing) पर अधिक निर्भर करती हैं। परिणामस्वरूप राजकोषीय घाटा (सरकार द्वारा ऋण लेना) भारी मात्रा में निरंतर बढ़ रहा है। सरकार द्वारा लिए गए ऋणों में जितनी अधिक वृद्धि होती है देश के केंद्रीय बैंक (रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया) की नोट छापने की विवशता उतनी ही अधिक बढ़ जाती है। इसके फलस्वरूप मुद्रा स्फीति रूपी आग पर तेल छिड़कने का काम पूरा होता है जिसका कुप्रभाव देश की संवृद्धि तथा उसके विकास पर पड़ता है। विकल्प के रूप में, सरकार आय के साधन बढ़ाने के लिए अधिक कर लगाने का प्रयास कर सकती है। किंतु यदि सरकार द्वारा करदाताओं द्वारा दी गई मुद्रा को उत्पादन की अपेक्षा उपभोग संबंधी क्रियाओं पर खर्च किया जाता है (वह भी साधारण जनता को खुश करने की नीतियों को बढ़ावा देने हेतु) तो इससे सामाजिक अशांति फैलती है जिससे राजनैतिक अस्थिरता उत्पन्न होती है तथा देश की समूची आर्थिक क्रिया के लिए खतरा बढ़ता है।

बजट संबंधी घाटा तथा उससे संबंधित राजकोषीय नीति समष्टि-अर्थशास्त्र की एक केंद्रीय समस्या है जिस पर कड़ी दृष्टि रखना जरूरी है ताकि अर्थव्यवस्था में निवेश के लिए अनुकूल वातावरण बनाया जा सके।

(6) ब्याज दरें तथा मौद्रिक नीति (Interest Rates and Monetary Policy)

मौद्रिक नीति का संबंध उन मौद्रिक उपायों से है जिनके द्वारा सरकार अर्थव्यवस्था में (*i*) ब्याज की दर तथा (*ii*) मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन लाती है जिससे स्थिरता के साथ विकास (Growth with Stability) को प्रोत्साहित किया जा सके। ब्याज की ऊँची दर का अर्थ है निवेश की ऊँची लागत जो कि विकास प्रक्रिया के लिए हानिकारक है। भारत जैसे अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं के लिये ब्याज की ऊँची दरें अति संवेदनशील होती हैं, क्योंकि

इनके कारण समस्त उत्पादन की लागत बढ़ जाती है तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में उनकी प्रतियोगितात्मकता (Competitiveness) कम हो जाती है। फलस्वरूप इन देशों के निर्यातों को धक्का पहुँचता है तथा इनकी आयात क्षमता घटती है; जबकि वास्तविकता यह है कि इन देशों की आर्थिक विकास की गति को तीव्र बनाने के लिए पूँजीगत वस्तुओं के आयात की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर ऊँची ब्याज की दर इन अर्थव्यवस्थाओं के लिए बहुत बड़ी चुनौती होती है, क्योंकि इससे मुद्रा स्फीति को और अधिक बढ़ावा मिलता है। ये अर्थव्यवस्थाएँ अधिकतर कृषि प्रधान होती हैं तथा इन पर मौसम का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, वर्षा न होने के कारण इन अर्थव्यवस्थाओं में खाद्यान्न की माँग तथा पूर्ति के बीच बहुत अधिक असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। यह असंतुलन मुद्रा स्फीति को जन्म देता है। मुद्रा स्फीति धीरे-धीरे संपूर्ण आर्थिक क्रिया को अपनी लपेट में ले लेती है। जब सामान्य कीमत स्तर बढ़ता है, तब ब्याज की दरों का बढ़ना तथा उनके घातक परिणाम निकलना, अनिवार्य बन जाता है।

उपरोक्त खंड में इस बात की चर्चा की गई है कि सरकार का घाटे का बजट तथा इसके परिणामस्वरूप सरकार द्वारा ऋण का सहारा लेना समष्टि-अर्थशास्त्र की एक केंद्रीय समस्या बन गयी है। ऋण के कारण प्राय: अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है जो उन अर्थव्यवस्थाओं के लिए मुद्रा स्फीति का तुरंत कारण बनती है जिनकी उत्पादन क्षमता बहुत कम होती है।

मुद्रा की पूर्ति तथा ब्याज की दरों को नियंत्रण में रखना अल्पविकसित देशों के लिए समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि ये देश अतिशीघ्र स्फीति कारक दबावों के शिकार बन जाते हैं। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि मौद्रिक नीति को विकसित देशों में कोई प्रासंगिकता नहीं है। यदि अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएँ कम उत्पादन क्षमता तथा उच्च समग्र माँग के कारण स्फीति कारक दबावों के प्रति संवदेनशील हैं, तो विकसित अर्थव्यवस्थाएँ भी वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल पूर्ति की तुलना में कुल माँग की आवर्ती कमी (Recurring deficiency of aggregate demand) के कारण विस्फीति कारक दबावों के प्रति उतनी ही संवेदनशील हैं।

विस्फीति की स्थिति में निवेश प्रेरणा बहुत कम हो जाती है, भले ही ब्याज की दरें कम होती हैं। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति का उद्देश्य मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि करना होता है ताकि वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग पर किए जाने वाले खर्च को बढ़ाया जा सके और इस प्रकार माँग में कमी को दूर किया जा सके।

विनिमय दर (अंतर्राष्ट्रीय बाजार में एक देश की करेन्सी का दूसरे देश की करेन्सी में मूल्य) मौद्रिक नीति का एक और प्रांचल (Parameter) है जिसके द्वारा आर्थिक क्रिया का समस्त स्तर प्रभावित होता है। अनुकूल विनिमय दर, दूसरे देश की तुलना में अपने देश की करेन्सी के मूल्य में वृद्धि, एक शुभ संकेत नहीं है। उन अर्थव्यवस्थाओं के लिए जो निर्यात प्रोत्साहन (Export Promotion) द्वारा अपने विकास की प्रक्रिया को तीव्र बनाना चाहती हैं, यह निश्चित रूप से ठीक नहीं है। अमेरिकी करेन्सी की तुलना में भारतीय करेन्सी (भारतीय रुपया) के मूल्य में वृद्धि का अर्थ यह होता है कि अमेरिकी एक डॉलर से भारतीय बाजार में पहले से कम वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदी जा सकेंगी। अन्य शब्दों में, अब भारतीय वस्तुओं की अंतर्राष्ट्रीय बाजार में माँग अनिवार्य रूप से कम हो जाएगी।

क्या आप जानते हैं समष्टि-अर्थशास्त्र में मुद्रा के कार्यों तथा उससे संबंधित सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. समष्टि अर्थशास्त्र में विभिन्न देशों के बीच होने वाले व्यापार का भी अध्ययन किया जाता है।
8. मुद्रा की माँग तथा पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों का रोजगार के स्तर पर काफी प्रभाव पड़ता है।

नोट

9. समष्टि अर्थशास्त्र में रोजगार तथा बेरोज़गारी से संबंधित समस्याओं का भी अध्ययन किया जाता है।
10. संवृद्धि तथा विकास समष्टि अर्थशास्त्र के अथवा समष्टि अर्थशास्त्र संबंधी नीतियों के मुख्य कारक नहीं हैं।

1.4 समष्टि-अर्थशास्त्र लक्ष्य तथा उपकरण (Macroeconomic Targets and Instruments)

उपरोक्त चर्चित समष्टि-अर्थशास्त्र की समस्याओं को मोटे तौर पर (*i*) समष्टि-अर्थशास्त्र के लक्ष्यों (Targets) तथा (*ii*) समष्टि-अर्थशास्त्र की नीतियों में बाँटा जा सकता है। संवृद्धि तथा विकास (Growth and Development), रोजगार तथा आर्थिक स्थिरता (Employment and Economic Stability) आदि समस्याएँ समष्टि-अर्थशास्त्र के लक्ष्य होते हैं।

अपने देशवासियों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु प्रत्येक राष्ट्र का लक्ष्य संवृद्धि तथा विकास की उच्च कर को प्राप्त करना होता है। एक राष्ट्र संवृद्धि-प्रक्रिया को विकास-प्रक्रिया में बदलने का प्रयत्न करता है जिससे कि संवृद्धि में लाभों का न्यायोचित रूप में बंटवारा किया जा सके। इसका यह भी प्रयत्न होता है कि विकास-प्रक्रिया को एक धारणीय प्रक्रिया (Sustainable Process) बनाया जाए ताकि भावी पीढ़ियों की विकास क्षमता किसी प्रकार कम न हो। एक देश का लक्ष्य भागीदारी की दर (Rate of Participation) को अधिकतम करना भी होता है ताकि बेरोज़गारी की दर को न्यूनतम किया जा सके। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राष्ट्र का लक्ष्य विकास प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाना भी होता है अर्थात् अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारक तथा विस्फीतिकारक दबावों को न्यूनतम बनाए रखना।

लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नीति संबंधी उपकरणों (Policy Instruments) की आवश्यकता होती है। यह महत्त्वपूर्ण नीति उपकरण राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के रूप में होते हैं। इन नीतियों का निर्माण सरकार करती है, भले ही राजनीतिक प्रणाली किसी भी प्रकार की हो। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी नीतियाँ एक-दूसरे के स्थानापन्न नहीं अपितु पूरक होती हैं। राजकोषीय तथा मौद्रिक दोनों उपकरणों को एक-साथ प्रयोग में लाया जाता है। समष्टि-अर्थशास्त्र के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार राजकोषीय तथा मौद्रिक उपकरणों के समुचित महत्त्वों को निश्चित करती है।

☞ **लिप्सी तथा क्रिस्टल** के अनुसार, **"नीति उपकरणों के उचित मूल्यों का चुनाव करना समष्टि-अर्थशास्त्र संबंधी नीति की समस्या है ताकि परिणामों के श्रेष्ठतम संभव संयोगों को प्राप्त किया जा सके। यह निरंतर परिवर्तनशील समस्या है क्योंकि विश्व अर्थव्यवस्था के विभिन्न भागों के आघातों के कारण लक्ष्य निरंतर प्रभावित होते रहते हैं।"** (The macroeconomics policy problem is to choose appropriate values of the policy instruments in order to achieve the best possible combination of the outcomes of the targets. This is a continually changing problem because the targets are perpetually being affected by shocks from various parts of the world economy."**–Lipsey and Chrystal**)

टास्क समष्टि अर्थशास्त्र की मुख्य समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

सीमाएँ (Limitations)

किसी भी अन्य विषय की भाँति समष्टि-अर्थशास्त्र की भी सीमाएँ होती हैं। इस संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी ध्यान देने योग्य हैं–

1. **रचना का तर्क दोष (The Fallacy of Composition)**–समष्टि-अर्थशास्त्र के अनेक निष्कर्ष व्यक्तिगत इकाइयों के सरल सम्मिश्रण पर आधारित हैं। किंतु जो तथ्य व्यक्ति के लिए तर्कपूर्ण एवं ठीक होते हैं, यह जरूरी नहीं कि वो संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए भी तर्कपूर्ण एवं ठीक हो। नि:संदेह, बचन करना एक व्यक्ति के लिए

सद्गुण (Virtue) है किंतु यदि प्रत्येक व्यक्ति बचत करने लगेगा तो कुल माँग कम हो जाएगी जिससे निवेश के लिए कोई प्रेरणा नहीं होगी तथा राष्ट्रीय आय में कमी हो जाएगी। अंततः इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय बचत भी घटेगी, न कि बढ़ेगी। प्रो० सैम्युलसन ने इसे "रचना का तर्क दोष" कहा है। उसके अनुसार, समष्टि अर्थशास्त्र की अत्यधिक सामान्यीकरण (Excessive generalization) की प्रवृत्ति जिसके कारण व्यक्तिगत अनुभवों को संपूर्ण अर्थव्यवस्था पर लागू किया जाता है, उचित नहीं है।

2. **विजातीय इकाइयां (Heterogeneous Units)**–समुच्चयों के अध्ययन क्षेत्र में अनेक विजातीय इकाइयाँ सम्मिलित होती हैं। इन इकाइयों को विभिन्न प्रकार से मापा जाता है। इन इकाइयों को समरूप संख्याओं अथवा समजातीय माप के रूप में व्यक्त करना संभव नहीं होता है। **प्रो. बोल्डिंग** ने इसे निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समझाया है–

6 सेब + 7 सेब = 13 सेब (यह एक अर्थपूर्ण समुच्चय है)

6 सेब + 7 संतरे = 13 फल (यह भी एक अर्थपूर्ण समुच्चय है)

6 सेब + 7 मकान = (यह एक अर्थहीन समुच्चय है)

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि विजातीय इकाइयों का समुच्चय प्रायः अस्पष्ट होता है। विजातीय इकाइयों के लिए भले ही हम मुद्रा का उपयोग एक सांझे भाजक (Common denominator) के रूप में करें, किंतु मौद्रिक मूल्य (Money Value) इनके उपयोग मूल्य (Value in use) का सही माप नहीं है।

3. **स्वयं समुच्चय की अपेक्षा समुच्चय की रचना अथवा ढांचा अधिक महत्त्वपूर्ण है (The Composition or Structure of the Aggregate is more important than Aggregate itself)**– समष्टि-अर्थशास्त्र में समुच्चय का अध्ययन किया जाता है किंतु वास्तव में किसी प्रणाली को स्वयं समुच्चय की अपेक्षा समुच्चय की रचना या उसका ढाँचा अधिक प्रभावित करता है। मान लीजिए, सन् 2006 तथा सन् 2007 में कीमत स्तर स्थिर रहता है, किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सन् 2007 में कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संभव है कि सन् 2007 में कीमतों में कोई कमी हुई हो तथा औद्योगिक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि। फलस्वरूप, सामान्य कीमत-स्तर स्थिर बना रहा हो। अतः समस्याओं को ठीक ढंग से समझने के लिए, समुच्चय के ढाँचे का अध्ययन उतना ही जरूरी है जितना स्वयं समुच्चय का। किंतु समष्टि-अर्थशास्त्र में प्रांचलों (Parameters) के संरचनात्मक विश्लेषण (Structural Analysis) को कभी-कभार (Seldom) ही बराबर का महत्त्व दिया जाता है।

4. **समुच्चयों के विभिन्न प्रभाव (Diverse Effects of Aggregates)**–समष्टि-अर्थशास्त्र की एक अन्य सीमा यह है कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर एक समुच्चय के विभिन्न प्रभावों का अध्ययन नहीं किया जाता। समष्टि प्रांचलों (Parameters) अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर एक समान (Uniform) प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए, कीमत स्तर में होने वाली वृद्धि का व्यापारियों तथा उद्योगपतियों पर लाभदायक प्रभाव पड़ता है किंतु वेतन भोगियों (Wage-earners) को हानि उठानी पड़ती है। समष्टि अर्थशास्त्र में ऐसे प्रतिनिधिक समूह (Cross Section) के अध्ययन का अति संक्षिप्त उल्लेख ही पाया जाता है

संक्षेप में, सामूहिक विश्लेषण पर ध्यान केंद्रित करते हुए समष्टि-अर्थशास्त्र प्रायः ऐसे व्यष्टि प्रांचलों के महत्त्व की अवहेलना करता है जो कि विषय-वस्तु के मूलभूत तत्त्व होते हैं।

अतः लोगों की निर्धनता अथवा जीवन की गुणवत्ता का मूल्यांकन करते समय हम प्रायः उनकी प्रति व्यक्ति आय तथा उपभोग को प्रांचल (Parameter) मान लेते हैं और इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि भले ही समय के साथ औसत प्रांचल (Average Parameter) में निरंतर वृद्धि हो रही हो, फिर भी उन लोगों की कुल संख्या में भी वृद्धि हो गई हो जो निर्धनता रेखा से नीचे रहते हैं। क्या समष्टि-अर्थशास्त्री जो भारत में प्रति व्यक्ति आय में हुई वृद्धि का शोर मचाते हैं, आय के वितरण पर भी ध्यान देंगे? क्या वो देश में भुखमरी के कारण मरने वालों के बारे में भी सोचेंगे, विशेषकर जब खाद्यान्न की पूर्ति उसकी माँग से कहीं अधिक है? हाँ, किंतु केवल कुछ ही।

नोट

मुख्य बिंदु (Key Points)

- **समष्टि-अर्थशास्त्र (Macroeconomics)**–यह संपूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर पर आर्थिक समस्याओं अथवा मुद्दों का अध्ययन करता है, जैसे बेरोजगारी, मुद्रा स्फीति दर, व्यापार चक्र आदि।
- **व्यष्टि तथा समष्टि अर्थशास्त्र में अंतर के मुख्य बिंदु (Principal Points of Difference between Micro and Macro Economics)**–(*i*) व्यष्टि-अर्थशास्त्र एक व्यक्तिगत आर्थिक इकाई जैसे एक परिवार अथवा एक फर्म से संबंधित आर्थिक समस्याओं/मुद्दों का अध्ययन करता है। समष्टि-अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था से संबंधित आर्थिक समस्याओं/मुद्दों का अध्ययन करता है। (*ii*) व्यष्टि-अर्थशास्त्र संसाधनों के श्रेष्ठतम बंटवारे (Optimum allocation of resources) पर केंद्रित है जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र अर्थव्यवस्था के उत्पादन एवं रोजगार स्तर पर केंद्रित है। (*iii*) व्यष्टि-अर्थशास्त्र की विषय सामग्री में "कीमत" मुख्य प्रांचल है जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र में यह "राष्ट्रीय आय" है। (*iv*) व्यष्टि-अर्थशास्त्र "आंशिक संतुलन" विश्लेषण पर आधारित है जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र अर्ध-सामान्य संतुलन" (Quasi general equilibrium) विश्लेषण पर।
- **समष्टि-अर्थशास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र (Areas of Macroeconomic Study)**–(*i*) राष्ट्रीय आय का सिद्धांत, (*ii*) रोजगार का सिद्धांत, (*iii*) मुद्रा का सिद्धांत, (*iv*) सामान्य कीमत स्तर का सिद्धांत, (*v*) आर्थिक संवृद्धि का सिद्धांत, (*vi*) अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धांत।
- **समष्टि-अर्थशास्त्र के मुख्य मुद्दे (Major Macroeconomic Issues)**–(*i*) संवृद्धि तथा विकास (*ii*) रोजगार (*iii*) व्यावसायिक चक्र (*iv*) मुद्रा स्फीति, (*v*) बजट संबंधी घाटा तथा राजकोषीय नीति (*vi*) ब्याज दरें तथा मौद्रिक नीति। संवृद्धि तथा विकास, रोजगार तथा व्यावसायिक चक्रों के मुद्दों को समष्टि-अर्थशास्त्र का लक्ष्य माना जाता है। मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों के मुद्दों को समष्टि-अर्थशास्त्र की नीतियाँ अथवा उपकरण माना जाता है।
- **समष्टि-अर्थशास्त्र की सीमाएँ (Limitations of Macroeconomics)**–(*i*) रचना का तर्क दोष: समष्टि अर्थशास्त्र के अनेक निष्कर्ष सरल रूप से व्यक्तिगत इकाइयों की सरल संरचना पर आधारित हैं। (*ii*) विजातीय इकाइयाँ: विजातीय इकाइयों का समुच्चय प्राय: गलत निष्कर्ष देता है। (*iii*) स्वयं समुच्चय की अपेक्षा समुच्चय का ढाँचा अधिक महत्त्वपूर्ण है जबकि समष्टि-अर्थशास्त्र का अध्ययन प्राय: इसकी अवहेलना करता है। (*iv*) जनसंख्या के भिन्न-भिन्न वर्गों पर समुच्चयों के विभिन्न प्रभावों को प्राय: कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है।

1.5 सारांश (Summary)

- समष्टि-अर्थशास्त्र में समुच्चय का अध्ययन किया जाता है किंतु वास्तव में किसी प्रणाली को स्वयं समुच्चय की अपेक्षा समुच्चय की रचना या उसका ढाँचा अधिक प्रभावित करता है। मान लीजिए, सन् 2006 तथा सन् 2007 में कीमत स्तर स्थिर रहता है, किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सन् 2007 में कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संभव है कि सन् 2007 में कीमतों में कोई कमी हुई हो तथा औद्योगिक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि। फलस्वरूप, सामान्य कीमत-स्तर स्थिर बना रहा हो। अत: समस्याओं को ठीक ढंग से समझने के लिए, समुच्चय के ढाँचे का अध्ययन उतना ही जरूरी है जितना स्वयं समुच्चय का। किंतु समष्टि-अर्थशास्त्र में प्रांचलों (Parameters) के संरचनात्मक विश्लेषण (Structural Analysis) को कभी-कभार (Seldom) ही बराबर का महत्त्व दिया जाता है।

1.6 शब्दकोश (Keywords)

नोट

- समष्टि (Macro) – बड़ा
- व्यष्टि (Micro) – छोटा
- समग्र माँग (Aggregate Demand) – सभी क्षेत्रों द्वारा की गई माँग
- राष्ट्रीय आय (National Income) – राष्ट्र की आय।

1.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. समष्टि-अर्थशास्त्र क्या है? समझाइए।
2. समष्टि-अर्थशास्त्र की मुख्य समस्याएँ बताइए।
3. समष्टि-अर्थशास्त्र के मुख्य बिंदु लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. अर्थव्यवस्था	2. विश्लेषण	3. क्षेत्रों	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. सही	10. गलत।		

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–2: राष्ट्रीय आय : राष्ट्रीय आय की धारणा (National Income : Concept of National Income)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 राष्ट्रीय आय की धारणा (Concept of National Income)

2.2 राष्ट्रीय आय का माप (Measurement of National Income)

2.3 कुल संबंधित समुच्चय (Some Related Aggregates)

2.4 राष्ट्रीय प्रयोज्य आय के अंग (Components of National Disposable Income)

2.5 सारांश (Summary)

2.6 शब्दकोश (Keywords)

2.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

2.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- राष्ट्रीय आय की धारणा जानने हेतु।
- राष्ट्रीय आय का माप जानने हेतु।
- कुल संबंधित समुच्चय समझने हेतु।
- राष्ट्रीय प्रयोज्य आय के अंग जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

एक व्यक्ति देश में सामान्यतया रहता हुआ तब माना जाएगा जब वह एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए देश से बाहर, नहीं रहता। किंतु विद्यार्थी जो विदेशों में अध्ययन हेतु जाते हैं या रोगी जो चिकित्सा के लिए जाते हैं, उन पर यह शर्त लागू नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति, मान लीजिए कोई भारतीय एक वर्ष से अधिक समय के लिए विदेश में रहता है तो वह भारत का सामान्य निवासी नहीं माना जाएगा, बल्कि उसे गैर-निवासी भारतीय (NRI - Non-Resident Indian) माना जाएगा।

2.1 राष्ट्रीय आय की धारणा (Concept of National Income)

घरेलू आय तथा राष्ट्रीय आय में सामान्य (Common) बात यह है कि दोनों धारणाओं के घेरे में केवल उत्पादन

के साधनों की आय सम्मिलित होती है, अर्थात् लगान (भूमि को), ब्याज (पूँजी को), लाभ (उद्यमशीलता को) तथा कर्मचारियों का पारिश्रमिक (श्रम को)। दोनों धारणाओं में जो बातें सामान्य नहीं हैं, वे इस प्रकार हैं–

(*i*) जबकि घरेलू आय अनिवार्य रूप में देश की घरेलू सीमा के अंदर सृजित की जाती है, किंतु राष्ट्रीय आय का सृजन विश्व के किसी भी भाग में किया जा सकता है।

(*ii*) जबकि घरेलू आय का सृजन एक देश के निवासियों तथा गैर-निवासियों दोनों द्वारा किया जाता है, राष्ट्रीय आय का सृजन केवल देश के निवासियों द्वारा किया जाता है, जिन्हें देश के **"सामान्य निवासी"** (Normal Residents of a Country) कहा जाता है।

सामान्य निवासी कौन होते हैं? (Who are Normal Residents?)

एक देश के सामान्य निवासी वो होते हैं जो

(*i*) उस देश में सामान्यत: रहते हैं, और

(*ii*) जिनकी आर्थिक रुचि उस देश में केंद्रित होती है।

सीमा पर रहने वाला एक व्यक्ति अपने देश की सीमा पार करके प्रतिदिन दूसरे देश में रोजी कमाने के लिए जाता है, किंतु उसकी रुचि का केंद्र उसका अपना देश ही बना रहता है क्योंकि प्रतिदिन वह लौट कर अपने परिवार में आ जाता है। ऐसे व्यक्ति को अपने देश का सामान्य व्यक्ति ही माना जाएगा।

यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि जो लोग एक देश के नागरिक होते हैं, जरूरी नहीं कि वो उस देश के सामान्य निवासी हों। उदाहरण के लिए, एक भारतीय नागरिक यदि एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए यू.एस.ए. में रहता है तो उसे यू.एस.ए. का सामान्य निवासी माना जाएगा भारत का नहीं, भले ही वह जन्म से भारतीय है। इसी प्रकार श्रीमती सोनिया गाँधी जैसे व्यक्ति, भले ही वह जन्म से एक इटली की नागरिक हैं, फिर भी उसे भारत का एक सामान्य निवासी माना जाएगा क्योंकि वह सामान्यतया भारत में निवास करती हैं तथा उनकी रुचि का केंद्र भी भारत है।

यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि "सामान्य निवासी" शब्द में व्यक्ति तथा संस्कार दोनों सम्मिलित होते हैं। स्टेट बैंक ऑफ इंडिया जैसी वित्तीय संस्थान की शाखा लंदन में स्थित हो सकती है। उस शाखा का आर्थिक हित (Economic Interest) भारत में होगा। जितना भी लाभ वह शाखा अर्जित करेगी वह स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के समूचे लाभ का एक भाग माना जाएगा।

राष्ट्रीय आय केवल सामान्य निवासी की विशेषता

(National Income is attrituted to Normal Resident Only)

एक देश की राष्ट्रीय आय का संबंध केवल उसी देश के सामान्य निवासियों के साथ होता है। इसका निहितार्थ यह है कि भारत में स्थित सभी विदेशी व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा अर्जित साधन आय को भारत की राष्ट्रीय आय का एक भाग नहीं माना जाएगा, यदि वो व्यक्ति तथा संस्थाएँ भारत के सामान्य निवासी नहीं हैं। इसी बात को दोहराते हुए, भारत में गैर-निवासियों (Non-residents) द्वारा अर्जित आय, भले ही भारत की घरेलू आय का एक भाग होता है, फिर भी इसे भारत की राष्ट्रीय आय का एक भाग नहीं माना जाता है। इसी प्रकार, विदेशों में रहने वाले भारत के सामान्य निवासियों द्वारा अर्जित आय, भले ही भारत की घरेलू आय का एक भाग नहीं होती फिर भी उसे भारत की राष्ट्रीय आय का एक भाग माना जाता है। अत: यदि शेष विश्व में हमारे सामान्य निवासियों द्वारा अर्जित साधन आय को घरेलू आय में जोड़ा जाए तथा भारत में स्थित गैर-निवासियों द्वारा अर्जित साधन आय को इसमें से घटाया जाए तो घरेलू आय राष्ट्रीय आय में बदल जाएगी। घरेलू आय तथा राष्ट्रीय आय के इस संबंध को निम्नलिखित समीकरण द्वारा समझाया जाता है।

नोट

घरेलू आय (साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद) [Domesitc Income (NDP_{FC})]

+(*i*) शेष विश्व से हमारे निवासियों द्वारा अर्जित साधन आय

(Factor income earned by our residents from rest of the world)

–(*ii*) हमारे देश में शेष विश्व के निवासियों द्वारा अर्जित साधन आय

(Factor income earned by residents of rest of the world in our country)

= राष्ट्रीय आय (साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद)

[National Income (NNP_{FC})]

(*i*)–(*ii*) को **विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय** कहा जाता है

तदनुसार, उपरोक्त समीकरण को इस प्रकार भी लिखा जा सकता है–

घरेलू आय (साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पादन) + विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय

= राष्ट्रीय आय (साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद)

अथवा

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद–विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय = घरेलू आय

> *नोट्स* एक देश की राष्ट्रीय आय का संबंध केवल उसी देश के सामान्य निवासियों के साथ होता है।

अब हम राष्ट्रीय आय को निम्नलिखित शब्दों द्वारा परिभाषित करते हैं–

राष्ट्रीय आय एक लेखा वर्ष की अवधि में एक देश के सामान्य निवासियों द्वारा अर्जित साधन आय का कुल जोड़ होता है। यह आय हमें अपनी साधन सेवाओं के बदले पारिश्रमिक के रूप में (जैसे लगान, ब्याज, लाभ, तथा कर्मचारियों का परिश्रमिक) प्राप्त होती है।

मूल्य वृद्धि धारणा का प्रयोग करते हुए इसे निम्न ढंग से परिभाषित किया जा सकता है–

एक लेखा वर्ष की अवधि के दौरान एक देश के सामान्य निवासियों द्वारा साधन सेवाओं के फलस्वरूप की गई मूल्य वृद्धि के कुल जोड़ को राष्ट्रीय आय कहते हैं। स्मरण रहे कि मूल्य वृद्धि (Value Added) तथा सृजित आय (Income Generated) समरूप (Identical) होते हैं।

> ☞ **डर्नबर्ग** *के शब्दों में, "एक वर्ष के दौरान देश के निवासियों द्वारा प्राप्त साधन आय ही राष्ट्रीय आय है। यह घरेलू साधन आय तथा विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय का जोड़ होती है।"* (National income is the factor income accruing to the residents of the country during a year. It is the sum of domestic factor income and net factor income from abroad.–**Dernberg**)

राष्ट्रीय आय की सकल तथा शुद्ध अवधारणाएँ

(Gross and Net Concepts of National Income)

राष्ट्रीय आय की सकल तथा शुद्ध धारणाएँ होती हैं। "राष्ट्रीय आय" शब्द एक शुद्ध धारणा है। अनिवार्य रूप से यह साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) है। फिर भी, साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC}) को साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पादन में बदलने के लिए इसमें मूल्य ह्रास अथवा स्थायी पूँजी के उपभोग को जोड़ दिया जाता है। अत:

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद + मूल्यह्रास = साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद

NNP_{FC} + Depreciation = GNP_{FC}

अथवा

साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद-मूल्यह्रास = साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद।

GNP_{FC} – Depreciation = NNP_{FC}

मूल कीमत (साधन लागत) पर राष्ट्रीय आय तथा बाजार कीमत पर राष्ट्रीय आय

(National Income at Basic Price (or Factor Cost) and National Income at Market Price)

राष्ट्रीय आय की धारणा का वास्तविक अर्थ साधन लागत पर राष्ट्रीय आय है। किंतु यदि इसमें शुद्ध अप्रत्यक्ष कर (अप्रत्यक्ष कर–आर्थिक सहायता) के मूल्य को जोड़ दिया जाए तो यह बाजार कीमत पर राष्ट्रीय आय बन जाएगी।

निम्नलिखित समीकरण द्वारा इस संबंध को व्यक्त किया जाता है–

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर (अप्रत्यक्ष कर–आर्थिक सहायता)

= बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद।

अथवा

बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर = साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद।

राष्ट्रीय आय को उत्पादन क्रिया के स्तर से जोड़ा जाता है

(National Income is Linked with the Level of Production Activity)

उपरोक्त व्याख्या से यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि एक देश की राष्ट्रीय आय उस देश की उत्पादन क्रिया के स्तर से जुड़ी होती है। राष्ट्रीय आय का उच्च स्तर देश की उत्पादन क्रिया के उच्च स्तर को प्रकट करता है, तथा इसका विलोम। उत्पादन का अर्थ है "मूल्य वृद्धि" और मूल्य वृद्धि का अर्थ है "आय का सृजन"। एक अर्थव्यवस्था में मूल्य वृद्धि के कारण उत्पन्न आय के कुल जोड़ को ही साधारणतया राष्ट्रीय आय कहा जाता है। विकसित देशों में उत्पादन का स्तर ऊँचा होता है, तदनुसार उनकी राष्ट्रीय आय का स्तर भी ऊँचा होता है। इसके विपरीत, अल्पविकसित देशों में उत्पादन का स्तर निम्न होता है, तदनुसार उनकी राष्ट्रीय आय का स्तर भी निम्न होता है। आर्थिक संक्रमण (Economic Transition) के रूप में विकास प्रक्रिया का "अल्पविकसितता" से "विकसितता" की ओर बढ़ने का निहितार्थ है। राष्ट्रीय आय के स्तर में सतत वृद्धि (Sustained rise) का होना अथवा समय की लंबी अवधि तक अर्थव्यवस्था के उत्पादन के स्तर में सतत वृद्धि का पाया जाना।

एक देश की राष्ट्रीय आय के विभिन्न समय संबंधी आंकड़े उसकी संवृद्धि के सूचक होते हैं। विभिन्न देशों के ऐसे आंकड़ों का समूह, आर्थिक संवृद्धि की अंतर्राष्ट्रीय तुलना में सहायक होता है।

☞ **मूल्य ह्रास की गणना करना क्यों महत्त्वपूर्ण है?** (Why is it important to compute Depreciation?) उपयोग के कारण स्थायी पूँजी के मूल्य में होने वाली हानि को मूल्य ह्रास कहते हैं। इसे स्थिर पूँजी का उपभोग भी कहते हैं। समस्त अर्थव्यवस्था के स्तर पर इसे चालू प्रतिस्थापन लागत (Current Replacement Cost) भी कहा जाता है।

मूल्य ह्रास में निम्नलिखित तीन प्रकार के खर्चे सम्मिलित हैं–

(*i*) **सामान्य टूट-फूट** (Normal Wear and Tear) इससे अभिप्राय उन खर्चों से है जो कि स्थायी पूँजी (जैसे मशीनों) के निरंतर प्रयोग के कारण करने पड़ते हैं।

नोट

(*ii*) **अप्रचलन** (Obsolescence) इससे अभिप्राय उन खर्चों से है जो उत्पादकों को पूँजीगत मशीनों के पुराने पड़ने (तकनीकी में परिवर्तन या माँग में परिवर्तन के कारण) पर करने पड़ते हैं। तकनीकी या माँग में परिवर्तन के कारण अप्रचलन को प्रत्याशित अप्रचलन (Expected Obsolescence) कहते हैं। यह अप्रत्याशित अप्रचलन प्राकृतिक विपत्ति जैसे बाढ़, आग, इत्यादि से भिन्न होता है। स्मरण रहे कि केवल प्रत्याशित अप्रचलन को ही मूल्य ह्रास की गणना में सम्मिलित किया जाता है।

(*iii*) **आकस्मिक हानि** (Sudden Damage) इससे अभिप्राय है मशीनरी तथा प्लांट का आकस्मिक बिगड़ जाना।

इन तीनों प्रकार के मूल्य ह्रास से निपटने के लिए एक उत्पादक को **मूल्य ह्रास आरक्षित फंड** (Depreciation Reserve Fund) की स्थापना करनी पड़ती है। यह घिसी पूँजी के प्रतिस्थापन के लिए जरूरी है। अन्यथा उसकी उत्पादन क्षमता (उसकी स्थायी पूँजी के रूप में) में घटने की प्रवृत्ति पायी जाएगी। राष्ट्रीय स्तर पर, यदि चालू प्रतिस्थापन पर ध्यान नहीं दिया जाता तो राष्ट्र की उत्पादन क्षमता घट जाएगी इसका निहितार्थ वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह का गिरना है। चालू पुन: स्थापना लागत की गणना करते समय हम केवल अपनी विद्यमान उत्पादन क्षमता (अथवा पूँजी स्टॉक) को ही ध्यान में रखते हैं। घिसे-पिटे पूँजीगत स्टॉक के पुन: स्थापन संबंधी खर्चों को निवेश-व्यय अथवा पुन: स्थापन निवेश कहा जाता है।

पुन: स्थापन निवेश केवल मूल्य ह्रास संबंधी हानियों के लिए किया जाता है, इससे राष्ट्र के पूँजीगत स्टॉक में कोई वृद्धि निहितार्थ नहीं होती। जब पुन: स्थापन निवेश के अतिक्ति निवेश व्यय किया जाता है तब राष्ट्र के पूँजीगत स्टॉक (अथवा उत्पादन क्षमता) में वृद्धि होती है, तथा इसे शुद्ध निवेश (शुद्ध निवेश = सकल निवेश – मूल्य ह्रास कहा जाता है।

मूल्य ह्रास के आकलन द्वारा हम निम्नलिखित पर प्रकाश डालते हैं–

(*i*) पुन: स्थापन लागत का महत्त्व

(*ii*) सकल निवेश तथा शुद्ध निवेश में अंतर

(*iii*) शुद्ध निवेश (पुन: स्थापन लागत के अतिरिक्त निवेश) के पूँजीगत स्टॉक (अथवा राष्ट्र की उत्पादन क्षमता) में वृद्धि करने संबंधी महत्त्व।

मुख्य बिंदु (Key Points)

- **सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product)–**एक अर्थव्यवस्था की घरेलू सीमा के अंदर उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं के प्रवाह के माप को सकल घरेलू उत्पाद कहते हैं। इसमें मूल्य ह्रास सम्मिलित होता है।
- **मूल्य वृद्धि (Value Addition)–**आगतों को उत्पादन में परिवर्तित करने को मूल्य वृद्धि कहते हैं।
- **अंतिम वस्तुएँ (Final Goods)–**अंतिम वस्तुएँ उन वस्तुओं को कहते हैं जो उत्पादन की सीमा रेखा को पार कर चुकी हैं तथा अपने अंतिम उपभोगकर्त्ता के लिए तैयार हैं।
- **मध्यवर्ती वस्तुएँ** (Intermediate Goods)–मध्यवर्ती वस्तुएँ वे वस्तुएँ होती हैं जो उत्पादन की सीमा रेखा के अंदर होती हैं जिनमें मूल्य वृद्धि की जानी है। ये वस्तुएँ फर्मों द्वारा इसलिए खरीदी जाती हैं ताकि उनका कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जा सके या इनकी आगे बिक्री की जा सके।
- **घरेलू सीमा (Domestic Territory)–**इसके अंतर्गत राजनीतिक सीमा के अतिरिक्त देश के सीमांतर्गत जल क्षेत्र तथा देश के निवासियों द्वार विभिन्न देशों में आय प्राप्ति हेतु चलाए जाने वाले हवाई जहाज तथा समुद्री जहाज सम्मिलित होते हैं।

- **प्राथमिक आगतें** (Primary Inputs)–इनमें सम्मिलित की जाने वाली साधन आगतें हैं–भूमि, श्रम, पूँजी तथा उद्यम।
- **द्वितीयक आगतें** (Secondary Inputs)–प्राथमिक आगतों के अतिरिक्त उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग की जाने वाली आगतें जैसे, कच्चा माल, ईंधन इत्यादि।
- **सामान्य निवासी** (Normal Residents)–एक देश के सामान्य निवासी वे लोग होते हैं जो सामान्यत: जिस देश में रहते हैं उनकी आर्थिक रुचि उसी देश में केंद्रित होती है।
- **बाजार कीमत तथा मूल कीमत** (Market Price and Basic Price)–बाजार कीमत वह कीमत होती है जिस पर अंतिम वस्तुएँ उनके उपभोक्ता के द्वारा खरीदी जाती हैं। मूल कीमत उस कीमत को कहा जाता है जिसे उत्पादक वास्तव में प्राप्त करते हैं। मूल कीमत = बाजार कीमत – अप्रत्यक्ष कर + आर्थिक सहायता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. एक देश की राष्ट्रीय आय का संबंध केवल उसी देश के .... निवासियों के साथ होता है।
2. .... आय का सृजन केवल देश के निवासियों द्वारा किया जाता है।
3. एक देश के सामान्य निवासी वे होते हैं जिनकी आर्थिक रुचि उस .... केंद्रित होती है।

2.2 राष्ट्रीय आय का माप (Measurement of National Income)

एक देश की राष्ट्रीय आय अथवा राष्ट्रीय उत्पाद को तीन विभिन्न स्तरों पर मापा जाता है। (1) उत्पादन स्तर (production Level), (2) आय अथवा वितरण स्तर (Income or Distribution Level) तथा (3) व्यय स्तर (Expenditure Level)। ऐसा आय के चक्रीय प्रवाह के तीन पहलुओं के कारण होता है, जैसे, वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन, उत्पादन के साधनों के स्वामियों में आय का वितरण तथा अंतिम वस्तुओं एवं सेवाओं की खरीद पर किया जाने वाला आय का खर्च।

आय के चक्रीय प्रवाह के तीन पहलुओं के अनुरूप राष्ट्रीय आय को मापने की तकनीक को सामान्यत: राष्ट्रीय आय को मापने की विधियाँ कहा जाता है। जो कि इस प्रकार हैं–

(1) उत्पाद अथवा मूल्य वृद्धि विधि (Product ro Value Added Method)

(2) आय विधि (Income Method)

(3) व्यय विधि (Expenditure Method)

(1) उत्पाद विधि अथवा मूल्य-वृद्धि विधि (Product Method or Value Added Method)

उत्पाद विधि (Proudct Method)–इसे मूल्य वृद्धि विधि, (Value Added Method), औद्योगिक उद्गम विधि (Industrial Origin Method) अथवा शुद्ध उत्पाद विधि (Net Output Method) भी कहा जाता है।

इस विधि के अनुसार, एक अर्थव्यवस्था में एक लेखा वर्ष में उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं के बाजार मूल्य को जोड़कर राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाया जाता है। जहाँ तक एक उद्यम का संबंध है, वह अपनी बिक्री को अंतिम बिक्री मानता है। उदाहरण के लिये, एक किसान एक टन गेहूँ का उत्पादन करता है और इसे 400 रु. में बाजार में आटा मिल को बेचता है। जहाँ तक किसान का संबंध है उसके लिए गेहूँ की बिक्री अंतिम बिक्री है और वह उसके बदले में 400 रु. प्राप्त करता है। किंतु आटा मिल के लिए खरीदा गया गेहूँ एक मध्यवर्ती वस्तु है। मिल इसे मैदा में परिवर्तित करके बेकरी वाले को 600 रु. में बेच देती है। आटा मिल के लिए मैदा एक अंतिम उत्पादन

नोट

है परंतु बेकरी वाला उसे मध्यवर्ती वस्तु मानेगा तथा उसका प्रयोग डबलरोटी बनाने के लिए करेगा। बेकरी वाला डबलरोटी दुकानदार को 800 रु. में बेचता है। बेकरी वाले के लिए डबलरोटी अंतिम वस्तु है परंतु दुकानदार के लिए यह मध्यवर्ती वस्तु है। दुकानदार डबलरोटी को 900 रु. में अंतिम अपभोक्ताओं को बेच देता है। जहाँ तक किसान, आटा मिल, बेकरी वाला तथा दुकानदार का प्रश्न है, कोई व्यक्ति अंतिम उत्पाद का अनुमान लगाने के लिए 400 रु. 600 रु. 800 रु. तथा 900 रु. का जोड़ करेगा। जो 2700 रु. आएगा। किंतु अर्थव्यवस्था में इस ढंग से GDP अथवा कुल उत्पादन का अनुमान नहीं लगाया जाता। उत्पादन के उपरोक्त अनुमान में, एक उत्पादक/फर्म के उत्पादन का मूल्य दूसरे उत्पादक के उत्पाद मूल्य में प्रतिबिम्बित (Reflected) होता है, क्योंकि एक का उत्पाद दूसरे के आगत (Input) के रूप में प्रयोग होता है। अत: मैदा के मूल्य में गेहूँ का मूल्य सम्मिलित होता है तथा डबलरोटी के मूल्य में मैदा का। 2700 रु. को कुल उत्पादन मूल्य में 1800 रु. मूल्य की वस्तुओं का प्रयोग मध्यवर्ती वस्तुओं अथवा मध्यवर्ती उपभोग के रूप में होता है। अंतिम वस्तु का मूल्य केवल 900 रु. है जिसे डबलरोटी के मूल्य के रूप में अंतिम उपभोक्ता को बेचा गया है। मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्य को अंतिम उत्पादन के मूल्य में फिर से शामिल करने से हम दोहरी गणना (Double Counting) की गलती करते हैं, इससे बचना जरूरी है।

दोहरी गणना की समस्या (Problem of Double Counting)

राष्ट्रीय उत्पाद के अनुमान में जब एक वस्तु के मूल्य की गणना एक से अधिक बार होती है तो इसे दोहरी गणना (Double Counting) की गलती कहा जाता है। स्पष्टत: इसके कारण देश के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में अनावश्यक रूप से वृद्धि हो जाती है। उपरोक्त उदाहरण में, GDP के अनुमान में गेहूँ का मूल्य चार बार जोड़ा गया है। प्रथम बार, जब इसका उत्पादन किसान द्वारा किया जाता है, दूसरी बार जब इसे मैदा में परिवर्तित किया जाता है, तीसरी बार जब इसे डबलरोटी में परिवर्तित किया जाता है, और चौथी बार जब इसे अंतिम उपभोक्ताओं को बेचा जाता है। केवल उस समय ही जब डबलरोटी को अंतिम उपभोक्ताओं के पास बेचा जाता है तब डबलरोटी के रूप में गेहूँ एक अंतिम वस्तु बनती है। इसके पूर्व यह एक उत्पादक से दूसरे उत्पादक तक मध्यवर्ती वस्तु के रूप में घूमती है जिसका मनोरथ उत्पादन प्रक्रिया में मध्यवर्ती उपभोग (Intermediate Consumption) होता है। दोहरी गणना तब होती है जब उन वस्तुओं को, जो अभी मध्यवर्ती वस्तुओं के रूप में प्रयोग में लायी जा रही हैं, GDP के अनुमान में सम्मिलित कर लिया जाता है।

दोहरी गणना की समस्या के समाधान के दो उपाय

(Two Ways of Solving the Problem of Double Counting)

निम्नलिखित दो उपायों द्वारा दोहरी गणना की समस्या का समाधान हो सकता है। प्रथम: GDP का अनुमान लगाते समय हम केवल अंतिम वस्तुओं, न कि मध्यवर्ती वस्तुओं, के मूल्य को जोड़ते हैं। अध्याय 2 में हमने पहले ही अंतिम वस्तुओं तथा मध्यवर्ती वस्तुओं के अंतर का विवरण दे दिया है। उसको फिर दोहराते हैं कि–

(*i*) मध्यवर्ती वस्तुओं का प्रयोग अन्य वस्तुओं के उत्पादन में कच्चे माल के रूप में होता है अथवा फर्मे या उत्पादन द्वारा इनकी पुन: बिक्री भी हो सकती है। इसके विपरीत अंतिम वस्तुओं का प्रयोग अन्य वस्तुओं के उत्पादन में कच्चे माल के रूप में नहीं होता और उत्पादकों एवं फर्मों द्वारा इनकी पुन: बिक्री भी नहीं होती है।

(*ii*) मध्यवर्ती वस्तुएँ उत्पादन की सीमा रेखा के अंदर रहती हैं। इन वस्तुओं में मूल्य जोड़ना अभी बाकी होता है। इसके विपरीत अंतिम वस्तुएँ उत्पादन की सीमा रेखा से बाहर होती हैं और इनमें कोई मूल्य नहीं जोड़ा जाता।

केवल अंतिम वस्तुओं के मूल्य को ध्यान में रखते हुए हम दोहरी गणना की समस्या से बच सकते हैं। GDP का अनुमान लगाते समय किसी वस्तु के मूल्य की दो बार गिनती नहीं होती है।

नोट

द्वितीय: अर्थव्यवस्था की विभिन्न उत्पादक इकाइयों के उत्पाद मूल्य (Value of Output) पर ध्यान न देकर हम उनकी मूल्य वृद्धि (Value Addition) पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

मूल्य वृद्धि क्या है? (What is Value Addition?)

उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने वाली मध्यवर्ती वस्तुओं की लागत से उत्पादन का मूल्य जितना अधिक होता है उसे मूल्य वृद्धि कहा जाता है।

बेकरमैन के शब्दों में, "मूल्य वृद्धि से अभिप्राय उत्पादन शृंखला में वृद्धि की उस क्रिया से है जिसके द्वारा कोई उद्योग अन्य उद्योगों से कच्चा माल अथवा वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदकर उसे आगे अन्य उद्योगों को बेचते समय उसके मूल्य में जोड़ देता है।" (The term value added implies, it is value added by each industry to the raw material or other goods and services that it bought from other industries before passing on the product to the next link in the whole chain of production.–**Beckerman**) अत: पीछे दिए गए उदाहरण में किसान ने 400 रु. मूल्य वृद्धि की (इस मान्यता पर कि उसका मध्यवर्ती उपभोग शून्य है), आटा मिल ने 600 रु.–400 रु. = 200 रु. की मूल्य वृद्धि की, और बेकरी वाले ने डबलरोटी बनाकर 800 रु.–600 रु. = 200 रु. की मूल्य वृद्धि की। दुकानदार ने डबलरोटी बेचकर, 900 रु.–800 रु. = 100 रु. की मूल्य वृद्धि की। कुल मूल्य वृद्धि 400 रु. + 200 रु. + 200 रु. + 100 रु. = 900 रु. हुई। यह डबलरोटी की बाजार कीमत के बराबर है, जो अंतिम पदार्थ है या उत्पादन के विभिन्न चरणों में मूल्य वृद्धि का जोड़ है। मूल्य वृद्धि के प्रयोग से दोहरी गणना की समस्या से बचा जा सकता है। मूल्य वृद्धि तकनीक के इस गुण के कारण, राष्ट्रीय आय के आंकड़ों में इसका विस्तृत रूप में प्रयोग होता है। एक फर्म द्वारा की गई मूल्य वृद्धि को ज्ञात करने के लिए उस फर्म के कुल उत्पादन के मूल्य से मध्यवर्ती वस्तुओं की लागत को घटा दिया जाता है। अर्थात्

मूल्य वृद्धि = उत्पादन का मूल्य – मध्यवर्ती वस्तुओं की लागत

तालिका 2. मूल्यवृद्धि की धारणा को स्पष्ट करती है।

मूल्य वृद्धि दृष्टिकोण (Value Added Approach)

उत्पादन के चरण (Stages of Production) रुपए	उत्पादन का मूल्य (Value of Output) रुपए	मध्यवर्ती वस्तुओं की लागत (Cost of Intermediate Goods) रुपए	मूल्य वृद्धि (Value Added) रुपए
1. गेहूँ	400	–	400
2. मैदा	600	400	200
3. डबलरोटी	800	600	200
4. डबलरोटी की बिक्री	900	800	100
कुल	**2,700**	**1,800**	**900**

उपरोक्त तालिका में ऐसा मान लिया गया है कि गेहूँ का उत्पादन करते समय मध्यवर्ती वस्तुओं की कोई लागत नहीं है। अत: किसान द्वारा मूल्य वृद्धि उसके उत्पाद के मूल्य अर्थात् 400 रु. के बराबर है। आटा मिल वाला गेहूँ को 400 रु. में खरीदता है और मैदा बनाकर 600 रुपए में बेच देता है। आटा मिल वाले ने 600 रु.–400 रु. = 200 रु. की मूल्य वृद्धि की है। बेकरी वाले ने 600 रु. में मैदा खरीदा और इसकी डबलरोटी बनाकर दुकानकार को

नोट

800 रु. में बेच दी। बेकरी वाले ने 800 रु.–600 रु. = 200 रु. मूल्य वृद्धि की तथा डबलरोटी 800 रु. में दुकानदार को बेच दी। दुकानदार ने डबलरोटी को आगे उपभोक्ताओं को 900 रु. में बेच दिया। इस प्रकार दुकानदार द्वारा मूल्य वृद्धि 900 रु.–800 रु. = 100 रु. की हुई। अत: कुल मूल्य वृद्धि 400 रु. + 200 रु. + 200 रु. + 100 रु. = 900 रु. हुई। यदि इसमें उत्पादन के प्रत्येक चरण में उत्पादन के मूल्य को जोड़ा जाए तब यह 400 रु. + 600 रु. + 800 रु. + 900 रु. = 2,700 रु. होगी। गेहूँ तथा मैदा के मूल्य की दोहरी गिनती हो जाएगी। इस दोहरी गिनती से बचने के लिए मूल्य वृद्धि विधि को अपनाया जाता है।

अर्थव्यवस्था की सभी उत्पादक इकाइयों द्वारा मूल्य वृद्धि का जोड़ लगाकर GDP_{MP} की गणना की जाती है, अत:

(GDP_{MP} is estimated by adding up Value Addition by all the producing units in the economy. Thus)

$GDP_{MP} = \Sigma\ GVA_{MP}$

सामान्यत: अर्थव्यवस्था के प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों द्वारा की गई मूल्य वृद्धि का हम अलग-अलग अनुमान लगाते हैं। ऐसा इसलिए कि अर्थव्यवस्था के संपूर्ण संदर्भ में इन क्षेत्रों का सापेक्षिक महत्त्व ज्ञात किया जा सके।

GDP_{MP} की गणना कर लेने के पश्चात् हम निम्नलिखित समायोजन द्वारा NNP_{FC} (राष्ट्रीय आय) ज्ञात करते हैं–GDP_{MP}

–Net Indirect Taxes

= GDP_{FC}

–Depreciation

=NDP_{FC}

+Net Factor Income from Abroad

= NNP_{FC} अथवा National Income

(2) आय विधि (Income Method)

आय विधि द्वारा राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन के साधनों को उनकी उत्पादक सेवाओं के बदले प्राप्त पारिश्रमिक अथवा आय का कुल जोड़ किया जाता है। विस्तृत रूप में इसमें श्रम का पारिश्रमिक मजूदरी के रूप में, भूमि का पारिश्रमिक लगान के रूप में, पूँजी का पारिश्रमिक ब्याज के रूप में तथा उद्यमवृत्ति का पारिश्रमिक लाभ के रूप में सम्मिलित किया जाता है। यदि साधन आय की अलग से पहचान न हो सके तो **मिश्रित आय** (अर्थात् लगान, ब्याज, लाभ तथा मजदूरी का मिश्रण) द्वारा राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है। ऐसा अर्थव्यवस्था के गैर-संगठित क्षेत्र (अथवा गैर-निगम क्षेत्र) में होता है जहाँ उत्पादन के साधन स्वयं-स्वामी (Self-owned) होते हैं। इनकी सेवाएँ बाजार से किराए पर प्राप्त नहीं की जाती हैं। आय विधि को **वर्गीकृत कार्यों के अनुसार विधि** (Distributed Share Method) या **साधन भुगतान विधि** (Factor Payment Method) भी कहा जाता है।

साधन आय के संघटक (Components of Factor Income)

साधन आय के संघटक इस प्रकार हैं–

(1) मजूदरी तथा वेतन या कर्मचारियों का पारिश्रमिक (Wages and Salaries or Compensation of Employees)–काम से प्राप्त आय को कर्मचारियों का पारिश्रमिक भी कहा जाता है। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन (Central Statistical Organisation) के अनुसार, **"कर्मचारियों के पारिश्रमिक से अभिप्राय उत्पादकों द्वारा किए गए वे सभी भुगतान हैं जो उनके द्वारा अपने कर्मचारियों को मजूदरी तथा वेतन के रूप में, नकद तथा**

किस्म में और कर्मचारियों की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं तथा निजी पेन्शन, पारिवारिक भत्ता, आकस्मिक बीमा, जीवन बीमा तथा ऐसी अन्य योजनाओं में मालिकों के योगदान के रूप में अथवा आरोपित मूल्य के रूप में दिए जाते हैं।" (Compensation of Employees means all payments by producers, of wages and salaries to their emplyoees in cash and in kind and of contribution paid or imputed in respect of their empolyees to social security schemes and private pension, family allowance, casual insurance, life insurance and similar schemes.–**Central Statistical Organisation**)। इस प्रकार, कर्मचारियों के पारिश्रमिक में (*i*) मजदूरी तथा वेतन, बोनस, कमीशन तथा महँगाई भत्ता (*ii*) किस्म के रूप में भुगतान का आरोपण, जैसे निःशुल्क आवास, वर्दी तथा चिकित्सा सुविधाएँ, (*iii*) सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में मालिकों का योगदान तथा (*iv*) सेवा निवृत्त कर्मचारियों की पेन्शन आदि शामिल हैं।

(2) किराए से प्राप्त आय (Rental Income)–किराए से प्राप्त आय वह आय है जो मुख्यतः भूमि या इमारतों के स्वामित्व से प्राप्त होती है। अतः भूमि और इमारतों के स्वामियों को एक निश्चित समय अवधि के लिए अपनी संपत्ति (Property) की सेवाओं का उपयोग करने का अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति को देने के बदले किराए के रूप में आय प्राप्त होती है। बसों, ट्रैक्टरों, मशीनों आदि टिकाऊ वस्तुओं के उपयोग की सुविधाओं को एक सुनिश्चित समय के लिए अन्य व्यक्तियों को किराए पर भी दिया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त आय को किराए से प्राप्त आय समझा जाएगा अर्थात् जिन मकानों में उनके स्वामी स्वयं रहते हैं उनका आरोपित किराया (imputed Rent) भी किराए की आय का एक भाग होता है, और इसलिए उसे राष्ट्रीय आय में सम्मिलित किया जाता है। किराए से प्राप्त आय में रॉयल्टी (Royalty) को भी शामिल किया जाता है। रॉयल्टी लोगों को कॉपीराइट (Copy Right), पेटेन्ट राइट (Patent Right) तथा प्राकृतिक साधनों जैसे खानों (Mines) के राइट से प्राप्त होती है।

(3) ब्याज (Interest)–ब्याज वह आय है जो बैंक जमाओं तथा फर्मों को दिए गए ऋणों से प्राप्त होती है। उल्लेखनीय बात यह है कि सरकार तथा उपभोक्ताओं द्वारा दिए जाने वाले ब्याज को राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं किया जाता क्योंकि इन्हें चालू आर्थिक उत्पादन (Current Economic Production) के लिए किया गया भुगतान नहीं माना जाता।

(4) लाभ (Profit)–उद्यमवृत्ति के फलस्वरूप प्राप्त होने वाली आय को लाभ कहा जाता है। यहाँ उद्यमी से अभिप्राय निगम (Corporation) है। एक उद्यमी या निगम अपने संपूर्ण लाभ को अपने हिस्सेदारों (Shareholders) में नहीं बाँटते। वह अपने लाभ का कुछ भाग बाँट देते हैं। लाभ के इस बाँटे गए भाग को लाभांश (Dividend) कहते हैं। अवितरित लाभ को कम्पनियाँ निगम बचतों (Corporate Saving) के रूप में अपने पास रख लेती हैं। लाभ का कुछ भाग सरकार को निगम कर (Corporate Profit tax) के रूप में चला जाता है। अतः निगम लाभ तीन भागों में बाँटा जाता है अर्थात् इसके तीन निम्नलिखित घटक होते हैं–

(*i*) **लाभांश (Dividend)**–यह लाभ का वह भाग है जो हिस्सेदारों में बाँटा जाता है। हिस्सेदारों को लाभांश के रूप में प्राप्त होने वाली आय फर्मों या निगमों के कुल लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। केवल वितरित लाभ ही लाभांश कहलाता है।

(*ii*) **निगम बचत (Corporate Saving)**–यह फर्मों का वह अवितरित लाभ है जिसे वे अपने पास "निगम बचत" के रूप में रखती हैं।

(*iii*) **निगम लाभ कर (Corporate Profit Tax)**–यह कर निगम या फर्म द्वारा अपने लाभ पर सरकार को दिया जाता है।

(5) मिश्रित आय या गैर-निगम क्षेत्र की आय (Mixed Income or Income of Non-Corporate Sector)–स्व-रोजगार जैसे डॉक्टरों, इन्जीनियरों, फुटकर विक्रेताओं आदि की मिश्रित आय से अभिप्राय स्वलेखा व्यक्तियों की कुल आय तथा अनिगमित उद्यमों के सृजित लाभ से है। (Mixed Income of the self-employed like that of doctors, engineers, retailers is the total income of own account workers as well as profit

नोट

generated in the unincorporated enterprises.) मिश्रित आय में काम से प्राप्त आय तथा संपत्ति और उद्यमवृत्ति से प्राप्त आय शामिल होती है। मिश्रित आय उन व्यक्तियों को प्राप्त होती है जो गृहस्थों (Households) के रूप में साधन सेवाएँ प्रदान करते हैं तथा उत्पादकों के रूप में वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के लिए अपनी साधन सेवाओं का प्रयोग करते हैं। ये सभी-स्व-रोजगार (Self-employed) प्राप्त व्यक्ति हैं तथा स्व-रोजगार आय अर्जित करते हैं, जिसमें मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ सम्मिलित होते हैं। वे उद्यम जिनमें स्व-रोजगार व्यक्तियों की मिश्रित आय की धारणा का प्रयोग होता है, वहाँ साधन लागत पर शुद्ध मूल्य वृद्धि (Net Value added at Factor Cost) स्व-रोजगार व्यक्तियों की मिश्रित आय के बराबर होती है।

☞ **लगान, ब्याज, लाभ, कर्मचारियों का पारिश्रमिक तथा स्व-रोजगार व्यक्तियों की मिश्रित आय के कुल जोड़ से हमें घरेलू आय प्राप्त होती है। अतः घरेलू आय = कर्मचारियों का पारिश्रमिक + लगान + ब्याज + लाभ + स्वरोजगार व्यक्तियों की मिश्रित आय। घरेलू आय को राष्ट्रीय आय में परिवर्तित करने के लिए विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय को इसमें जोड़ा जाता है।**

राष्ट्रीय आय को मापने के लिए आय के निम्नलिखित साधन को भी ध्यान में रखा जाता है–

(6) **विदेशों से शुद्ध साधन आय (Net Factor Income from Abroad)**–विदेशों में प्रदान की गई साधन सेवाओं के बदले में प्राप्त आय तथा एक देश की घरेलू सीमा में गैर-निवासियों द्वारा प्रदान की गई साधन सेवाओं के बदले में भुगतान की गई आय के अंतर को **विदेशों से शुद्ध साधन आय** कहा जाता है।

शुद्ध राष्ट्रीय आय = कर्मचारियों का पारिश्रमिक + प्रचालन अधिशेष (लगान + ब्याज + लाभ) + मिश्रित आय + विदेशों से शुद्ध साधन आय

[**नोटः** लगान, ब्याज तथा लाभ के कुल जोड़ को प्रचालन अधिशेष कहा जाता है।]

(3) व्यय विधि (Expenditure Method)

व्यय विधि वह विधि है जिसके द्वारा एक लेखा वर्ष में बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद पर किए गए अंतिम व्यय को मापा जाता है। इस विधि को **आय विन्यास विधि** (Income Disposable Method) या **उपभोग निवेश विधि** (Consumption Investment Method) भी कहा जाता है। यह विधि अंतिम व्यय अथवा सकल घरेलू उत्पाद पर व्यय की गणना करती है।

अंतिम व्यय के घटक (Components of Final Expenditure)

(1) **अंतिम उपभोग व्यय :** इसके दो मुख्य अंग इस प्रकार हैं–

(*i*) **निजी अंतिम उपभोग व्यय (private Final Consumption Expenditure)**–घरेलू बाजार में निजी अंतिम उपभोग व्यय की गणना करने के लिए उपभोक्ता परिवारों तथा निजी गैर-लाभकारी संस्थाओं को टिकाऊ उपभोग वस्तुओं, अर्ध-टिकाऊ उपभोग वस्तुओं तथा नाशवान वस्तुओं और सेवाओं की जो अंतिम बिक्री की जाती है, उसकी कुल मात्रा को फुटकर कीमतों से गुणा कर दिया जाता है। इसमें से गैर-निवासियों द्वारा घरेलू बाजार में की गई प्रत्यक्ष खरीद को घटा दिया जाता है और निवासी परिवारों द्वारा विदेशों में की गई प्रत्यक्ष खरीद को जोड़ दिया जाता है। परिणामी आंकड़े निजी अंतिम उपभोग व्यय के बराबर होंगे।

स्व-उपभोग के लिए किया गया उत्पादन भी निजी उपभोग व्यय का एक भाग होता है। स्व-उपभोग के लिए उत्पादन की मात्रा को उत्पादक के पड़ोसी बाजार में प्रचलित कीमतों से गुणा करना जरूरी है। इसी प्रकार मालिकों द्वारा काबिज़ मकानों (Owner Occupied Houses) का आरोपित किराया भी घरेलू बाजार के अंतिम उपभोग व्यय में शामिल किया जाता है।

(*ii*) **सरकारी अंतिम उपभोग व्यय (Government Final Consumption Expenditure)**–सरकारी अंतिम उपभोग व्यय की गणना करने के लिए उद्यमों द्वारा सरकार को बेची गई कुल बिक्री की मात्रा को फुटकर कीमतों से गुणा कर दिया जाता है। विदेशों से की गई खरीद को भी जोड़ा जाता है।

(2) सकल घरेलू पूँजी निर्माण (Gross Domestic Capital Formation)–इसमें निम्न प्रकार के निवेश को शामिल किया जाता है–

(A) सकल घरेलू स्थाई पूँजी निर्माण (Gross Domestic Fixed Capital Formation)–इसमें पूँजी निर्माण के निम्न दो प्रकारों को शामिल किया जाता है–

(*a*) **निर्माण पर व्यय (expenditure on Construction)**–निर्माण पर किए जाने वाले व्यय की गणना करने के लिए निर्माण सामग्री, जैसे–सीमेन्ट, स्टील, ईंट, श्रम व पूँजी साधनों की मात्रा को उनकी कीमतों से गुणा कर दिया जाता है। इस प्रकार की, की गई व्यय गणना को वस्तु प्रवाह विधि (Commodity Flow Approach) कहते हैं। निर्माण पर व्यय में निम्नलिखित मदें शामिल की जाती हैं–(*i*) स्वलेखा के लिए अचल संपत्ति का उत्पादन, (*ii*) उपभोक्ता परिवारों द्वारा नए मकानों की खरीद, (*iii*) निर्माण स्थल पर चालू कार्य, और (*iv*) पूँजीगत मरम्मतें जैसे–पुरानी इमारतों में किए गए मुख्य परिवर्तन।

(*b*) **मशीनरी तथा उपकरण पर अंतिम व्यय (The Final Expenditure on Machinery and Equipment)**–मशीनरी तथा उपकरण पर किए गए व्यय का अनुमान दो तरीकों से लगाया जा सकता है–(*i*) इनकी अंतिम बिक्री की मात्रा को बाजार में प्रचलित कीमतों से गुणा कर दिया जाता, है, (*ii*) वस्तु प्रवाह विधि (Commodity Flow Approach) के अनुसार प्रचलित वर्ष में उत्पादित मशीनरी तथा उपकरण की कुल मात्रा ज्ञात करके उसे क्रेताओं द्वारा दी गई कीमतों से गुणा किया जाता है। इन दोनों विधियों द्वारा एक समान जोड़ प्राप्त होता है। उसमें स्व-लेखा उत्पादन के लिए उत्पादित की गई मशीनों तथा उपकरणों की कीमतों को भी जोड़ लिया जाता है।

(B) स्टॉक में परिवर्तन पर व्यय (The Expenditure on Change in Stock or Inventories)–स्टॉक में होने वाले भौतिक परिवर्तनों पर किए जाने वाले व्यय की गणना करने के लिए भौतिक परिवर्तन की मात्रा को बाजार कीमतों से गुणा कर दिया जाता है। हम सकल राष्ट्रीय उत्पाद में उन वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के मूल्य को भी जोड़ते हैं जिनका एक लेखा वर्ष में उत्पादन तो होता है, परंतु बिक्री नहीं होती।

(3) शुद्ध निर्यात (Net Exports)–अंत में विदेशों से शुद्ध निर्यात (निर्यात-आयात) के मूल्य की गणना की जाती है। निर्यात व आयात की गई वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य में अंतर को शुद्ध निर्यात कहा जाता है। निर्यातों का उत्पादन किसी देश के उत्पादन के साधनों द्वारा किया जाता है। निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की बिक्री का घरेलू अर्थव्यवस्था में उत्पादन साधनों की आय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी कारण से निर्यात के मूल्यों को राष्ट्रीय आय का भाग माना जाता है। आयातों पर किए जाने वाले खर्चों को राष्ट्रीय आय में घटा दिया जाता है क्योंकि यह व्यय घरेलू उत्पादित वस्तुओं पर नहीं किया जाता।

बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद = निजी अंतिम उपभोग व्यय + सरकारी अंतिम उपभोग व्यय + सकल घरेलू पूँजी निर्माण (सकल घरेलू स्थायी पूँजी निर्माण + स्टॉक में परिवर्तन) + शुद्ध निर्यात (निर्यात – आयात)

साधन लागत पर राष्ट्रीय उत्पादन या राष्ट्रीय आय ज्ञात करने के लिए बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद में से शुद्ध अप्रत्यक्ष कर तथा घिसावट व्यय को घटा दिया जाता है तथा विदेशों से शुद्ध साधन आय को जोड़ा जाता है।

नोट

क्या आप जानते हैं स्व-उपभोग के लिए किया गया उत्पादन भी निजी उपभोग व्यय का एक भाग होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. राष्ट्रीय आय का सृजन किया जा सकता है–
   (अ) विश्व के किसी भी भाग में (ब) केवल स्वदेश में कहीं भी
   (स) केवल विदेश में (द) इनमें से कोई नहीं।
5. यदि कोई भारतीय एक वर्ष से अधिक समय के लिए विदेश में रहता है तो वह माना जाएगा–
   (अ) विदेशी (ब) गैर-निवासी भारतीय (NRI)
   (स) स्वदेशी (द) इनमें से कोई नहीं।
6. 'सामान्य निवासी' शब्द में व्यक्ति तथा संस्कार दोनों होते हैं–
   (अ) अग्रणी (ब) सम्मिलित
   (स) पृथक (द) इनमें से कोई नहीं।

2.3 कुल संबंधित समुच्चय (Some Related Aggregates)

अध्याय 2 में हम पहले ही घरेलू उत्पाद तथा राष्ट्रीय आय का अध्ययन कर चुके हैं। हम घरेलू उत्पाद की सकल तथा शुद्ध अवधारणाओं को भी जान चुके हैं। इसके अतिरिक्त, बाजार कीमत तथा साधन लागत/मूल कीमत पर घरेलू उत्पाद तथा राष्ट्रीय आय की अवधारणाओं का भी संक्षिप्त वर्णन कर चुके हैं। इस अध्याय में हम अवधारणाओं तथा अन्य संबंधित समुच्चयों के मापन को फिर से दोहराएँगे।

(*i*) बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}) (Gross Domestic Product at Market Price)

मूल्य वृद्धि विधि का प्रयोग करते हुए इसे निम्नलिखित ढंग से मापा जाता है–

बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}) = एक लेखा वर्ष अवधि में एक देश की घरेलू सीमा के अंदर सभी उत्पादन इकाइयों द्वारा की गई मूल्य वृद्धि (बाजार कीमत पर) का कुल जोड़ = एक लेखा वर्ष की अवधि में एक देश की घरेलू सीमा के अंदर उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य

आय विधि का प्रयोग करते हुए GDP_{MP} को निम्नलिखित ढंग से मापा जाता है–

बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}) = कर्मचारियों का पारिश्रमिक + लगान + ब्याज + लाभ + स्व-रोजगार की मिश्रित आय + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर + मूल्यह्रास अथवा स्थायी पूँजी का उपभोग।

व्यय विधि का प्रयोग करते हुए बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद को निम्नलिखित ढंग से मापा जाता है–

बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}) = निजी अंतिम उपभोग व्यय + सरकारी अंतिम उपभोग व्यय + सकल घरेलू स्थाली पूँजी निर्माण + उत्पादकों के स्टॉक में परिवर्तन (अंतिम स्टॉक –प्रारंभिक स्टॉक) + शुद्ध निर्यात (निर्यात – आयात)।

(*ii*) साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{FC})

साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद प्राप्त करने के लिए बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद में से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों (अप्रत्यक्ष कर – आर्थिक सहायता) को घटा दिया जाता है।

साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद = बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद – शुद्ध अप्रत्यक्ष (अप्रत्यक्ष कर -आर्थिक सहायता)

$GDP_{FC} = GDP_{MP}$ – Net Indirect Taxes (Indirect Taxes – Subsidies)

(*iii*) बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP})

बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}) से मूल्यह्रास को घटाने पर बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP}) प्राप्त हो जाता है। अतएव

बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद = बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद-मूल्यह्रास (स्थिर पूँजी का उपभोग)

$NDP_{MP} = GDP_{MP}$ – Depreciation (Consumption of fixed capital)

(*iv*) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC})

यदि बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को घटा दिया जाए तो हमें साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद प्राप्त हो जाएगा। अतएव

साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद = बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

$NDP_{FC} = NDP_{MP}$ – Net Indirect Taxes

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. राष्ट्रीय आय की धारणा का वास्तविक अर्थ साधन लागत पर राष्ट्रीय आय है।
8. राष्ट्रीय आय का उच्च स्तर देश की उत्पादन क्रिया के निम्न स्तर को प्रकट करता है।
9. 'राष्ट्रीय आय' शब्द एक शुद्ध धारणा है।
10. एक लेखा वर्ष की अवधि के दौरान एक देश के सामान्य निवासियों द्वारा साधन सेवाओं के फलस्वरूप की गई मूल्य वृद्धि के कुल जोड़ को राष्ट्रीय आय कहते हैं।

साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC})

= कर्मचारियों का परिश्रमिक
+ लगान
+ ब्याज
+ लाभ
(लगान + ब्याज + लाभ = प्रचालन अधिशेष)
+ स्व-रोजगार की मिश्रित आय

इसमें शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को **जमा** करने से, हम बाजार कीमत पर शुद्ध उत्पाद (NDP_{MP}) प्राप्त करेंगे अर्थात्

$NDP_{MP} = NDP_{FC}$ + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर (Net Indirect Taxes)

इसमें (NDP_{MP}) मूल्यह्रास को **जमा** करने से, हम प्राप्त करेंगे बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पादन(GDP_{MP}) अर्थात्

$GDP_{MP} = NDP_{MP}$ + Depreciation

नोट

(*v*) बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP_{MP})

मूल्य वृद्धि विधि का प्रयोग करते हुए: यह एक लेखा वर्ष में देश की घरेलू सीमा के अंदर उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का बाजार मूल्य है जिसमें विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय सम्मिलित होती है, अतएव

बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद = बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय

$GNP_{MP} = GDP_{MP}$ + Net factor income from abroad

(*vi*) साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP_{FC})

जब बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को घटाया जाता है तब हमें साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद = बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

$GNP_{FC} = GNP_{MP}$ – Net Indirect Taxes

(*vii*) बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{MP})

जब बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद से मूल्य ह्रास को घटाया जाता है तब हमें बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद – मूल्य ह्रास

$NNP_{MP} = GNP_{MP}$ – Depreciation

(*viii*) साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{FC})

जब बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद से शुद्ध अप्रत्यक्ष करों को घटाया जाता है तब हमें साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है–

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद – शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

$NNP_{FC} = NNP_{MP}$ – Net Indirect Taxes

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = राष्ट्रीय आय

= कर्मचारियों का पारिश्रमिक

+ लगान

+ ब्याज] प्रचालन अधिशेष

+ लाभ

+ स्वनियोजितों की मिश्रित आय

(कर्मचारियों का पारिश्रमिक से स्वनियोजितों की मिश्रित आय तक) = घरेलू आय = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद

+ विदेशों से शुद्ध साधन आय

संक्षेप में,

साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद + विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय

$NNP_{FC} = NDP_{FC}$ = Net Factor Income from Abrod

(*ix*) निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय

(Income from Net Domestic Product Accruing to Private Sector)

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र पाए जाते है–

(*i*) **निजी क्षेत्र (Private Sector)**–इसमें वो सभी निगम तथा गैर-निगम उद्यम पाए जाते हैं जिनका स्वामित्व तथा नियंत्रण निजी व्यक्तियों के हाथ में होता है। इस क्षेत्र की आय को निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय कहा जाता है।

(*ii*) **सरकारी अथवा सार्वजनिक क्षेत्र (Government or Public Sector)**–इसमें प्रशासनिक विभाग, (Administrative Departments), विभागीय (Departmental) उद्यम (जैसे रेलवे तथा डाक-तार विभाग) तथा गैर-विभागीय (Non-departmental) उद्यम (जैसे एयर इंडियन तथा इंडिया एयरलाइन्स) शामिल होते हैं। **सरकारी (या सार्वजनिक) क्षेत्र को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय में सम्मिलित होती है (1) प्रशासनिक विभागों को संपत्ति तथा उद्यमवृत्ति से प्राप्त आय तथा (2) गैर-विभागीय उपक्रमों की बचत।**

अतएव निजी क्षेत्र को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय वह आय होती है जो केवल निजी क्षेत्र को ही प्राप्त होती है।

डर्नबर्ग के शब्दों में, **"निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय का अर्थ है श्रमिकों के पारिश्रमिक, प्रचालन अधिशेष तथा मिश्रित आय के रूप में अर्जित शुद्ध घरेलू उत्पाद की साधन लागत का वह भाग जो निजी क्षेत्र को प्राप्त होता है।** (Factor income from net domestic product accruing to private sector is that part of factor cost of net domestic product generated in the form of compensation of employees, operating surplus and mixed income which is accrued to the private sector.**–dernburg)**

निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त होने वाली साधन आय का अनुमान लगाने के लिए साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद से (*i*) सरकार को विभागीय उद्यमों की संपत्ति तथा उद्यमवृत्ति से प्राप्त आय तथा (*ii*) गैर-विभागीय उद्यमों की बचत को घटा दिया जाता है।

निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त साधन आय = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद – विभागीय उद्यमों की संपत्ति तथा उद्यमवृत्ति से प्राप्त आय – गैर विभागीय उद्यमों की बचत

(*x*) निजी आय (Private Income)

निजी आय से अभिप्राय उस आय से है जो निजी क्षेत्र को एक लेखा वर्ष में सभी स्रोतों, उत्पादकीय अथवा अन्य, से प्राप्त होती है। इसमें निजी क्षेत्र की साधन आय तथा हस्तांतरण भुगतान दोनों सम्मिलित होते हैं।

केंद्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुसार, **"निजी आय वह आय है जो निजी क्षेत्र को सभी स्रोतों से प्राप्त होने वाली साधन आय तथा सरकार से प्राप्त वर्तमान हस्तांतरण और शेष विश्व से प्राप्त वर्तमान हस्तांतरण का जोड़ है।"** (Private income is the total of factor income from all sources and current transfers from the government and rest of the world accruing to private sector.**–Central Statistical Organisation)**

निजी आय में, निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त होने वाली साधन आय, विदेशों से शुद्ध साधन आय तथा हस्तांतरण भुगतान सम्मिलित होते हैं। तदनुसार, निजी आय में **साधन आय तथा हस्तांतरण भुगतान दोनों ही सम्मिलित होते हैं।**

निजी आय = निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त साधन आय + राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज + विदेशों से शुद्ध साधन आय + सरकार से वर्तमान हस्तांतरण + शेष विश्व से वर्तमान हस्तांतरण

नोट

अथवा

निजी आय = राष्ट्रीय आय + सरकार से हस्तांतरण भुगतान + विदेशों से चालू हस्तांतरण + राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज – सरकार को संपत्ति तथा उद्यमवृत्ति से प्राप्त आय – गैर-विभागीय उपक्रमों की बचत

(*xi*) वैयक्तिक आय (Personal Income)

वैयक्तिक आय किसी देश के व्यक्तियों व परिवारों को एक लेखा वर्ष में सभी स्रोतों से वास्तव में प्राप्त साधन आय तथा वर्तमान हस्तांतरण भुगतान का जोड़ है।

पीटरसन के शब्दों में, "वैयक्तिक आय व्यक्तियों द्वारा सभी स्रोतों से वास्तव में प्राप्त साधन आय तथा वर्तमान हस्तांतरण भुगतान का जोड़ है।" (Personal income is the income actually received by persons from all sources in the form of current transfer payments and factor income.–**Peterson**)

वैयक्तिक आय के अंतर्गत व्यक्तियों को सभी स्रोतों से वास्तव में प्राप्त होने वाली आय को शामिल किया जाता है। उदाहरण के लिए, फर्मों या निगमों को जो लाभ प्राप्त होते हैं उसमें से कुछ भाग व्यक्तियों में नहीं बाँटा जाता। वह अवितरित लाभ (Undistributed Profit), जिसे उद्यमों की बचत (Corporate Svaing) भी कहा जाता है के रूप में फर्मों के पास रह जाता है।

इसका प्रयोग (क) निगम कर चुकाने तथा (ख) निगम बचत (आरक्षित कोष) करने के लिए किया जाता है। अत: इन्हें वैयक्तिक आय में सम्मिलित नहीं किया जाता है।

वैयक्तिक आय = निजी आय – निगम कर – निगमों की बचतें (विदेशी कंपनियों की प्रतिधारित आय घटा कर)

(*xii*) वैयक्तिक प्रयोज्य आय (Personal Disposable Income)

वैयक्तिक प्रयोज्य आय को ज्ञात करने के लिए वैयक्तिक आय में से प्रत्यक्ष करों तथा सरकारी प्रशासनिक विभागों की विविध प्राप्तियों अर्थात् शुल्कों, जुर्माने आदि को घटा दिया जाता है। इस आय को ही गृहस्थ अपनी इच्छानुसार खर्च करने तथा बचत करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। वैयक्तिक प्रयोज्य आय गृहस्थों की क्रय शक्ति का सूचक होती है।

वैयक्तिक प्रयोज्य आय = परिवार क्षेत्र का उपभोग + परिवार क्षेत्र की बचत

पीटरसन के अनुसार, "प्रयोज्य आय वह आय है जो परिवारों को सभी स्रोतों से प्राप्त होती है तथा उनके पास सरकार द्वारा उनकी आय तथा संपत्तियों पर लगाए गए सभी प्रकार के करों का भुगतान करने के बाद बचती है।" (Disposable income is the income available to persons from all sources and remaining with them after deduction of all taxes levied against their income and their property by the government.–**Peterson**)

प्रयोज्य आय = वैयक्तिक आय – प्रत्यक्ष कर (आय कर तथा संपत्ति कर)–सरकार के प्रशासनिक विभागों की विविध प्राप्तियाँ (व्यक्तियों द्वारा सरकार को दी गयी फीसें तथा जुर्माने)

नोट

(*xii*) राष्ट्रीय प्रयोज्य आय – सकल तथा शुद्ध अवधारणाएँ

(National Disposable Income–Gross and Net Concepts)

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय सभी स्रोतों से प्राप्त आय होती है (अर्जित आय तथा विदेशों से प्राप्त हस्तांतरण भुगतान) जो कि एक देश के निवासियों को एक वर्ष की अवधि में उपभोग व्यय या बचत के लिए उपलब्ध होती है।

सकल राष्ट्रीय प्रयोज्य आय में चालू पुनर्स्थापन लागत (Current Replacement Cost) शामिल होती है जबकि शुद्ध प्रयोज्य आय (संक्षेप में प्रयोज्य आय) में यह शामिल नहीं होती।

☞ **चालू पुनर्स्थापन लागत क्या है? (What is Current Replancement Cost?)**

यह किसी राष्ट्र द्वारा एक वर्ष में उपयोग की जाने वाल संपत्ति के बेकार हो जाने के कारण उसके पुनर्स्थापन की लागत है। यह संपूर्ण अर्थव्यवस्था की घिसावट लागत (या स्थायी पूँजी का उपभोग) है।

शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय (संक्षेप में, प्रयोज्य आय) = सकल राष्ट्रीय प्रयोज्य आय - चालू पुनर्स्थापन लागत (जो संपूर्ण अर्थव्यवस्था के स्तर पर मूल्य ह्रास होती है।)

टास्क कुल संबंधित समुच्चय पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

2.4 राष्ट्रीय प्रयोज्य आय के अंग (Components of National Disposable Income)

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय का अनुमान निम्नलिखित ढंग से लगाया जाता है–

राष्ट्रीय प्रयोज्य आय = साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पादन (या घरेलू आय)

+ शुद्ध अप्रत्यक्ष कर

+ विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय

+ शेष विश्व से प्राप्त शुद्ध चालू हस्तांतरण

☞ **वैयक्तिक प्रयोज्य आय तथा राष्ट्रीय प्रयोज्य आय में अंतर**

(Difference between Personal Disposable Income and National Disposable Income)

(*i*) वैयक्तिक प्रयोज्य आय का संबंध एक देश के केवल व्यक्तियों तथा गृहस्थों की प्रयोज्य आय से होता है, जबकि राष्ट्रीय प्रयोज्य आय का संबंध संपूर्ण देश की प्रयोज्य आय से होता है।

(*ii*) राष्ट्रीय प्रयोज्य आय का अनुमान लगाने के लिए, साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद, शुद्ध अप्रत्यक्ष कर, विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय तथा शेष विश्व से प्राप्त शुद्ध चालू हस्तांतरण को जोड़ा जाता है। दूसरी ओर वैयक्तिक प्रयोज्य आय में एक देश के घरेलू उपभोग एवं घरेलू बचत को जोड़ा जाता है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा यह दर्शाया गया है कि कैसे राष्ट्रीय आय तथा अन्य समुच्चय एक-दूसरे से संबंधित हैं।

नोट

राष्ट्रीय आय तथा संबंधित समुच्चय – एक दृष्टि
(National Income and Related Aggregates – A Glance)

1. बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP})	= एक लेखा वर्ष में देश की घरेलू सीमा में सभी उत्पादकों द्वारा उत्पादित अंतिम वस्तुओं तथा सेवाओं का बाजार मूल्य
2. बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP_{MP})	= DP_{MP} + विदेशों से शुद्ध साधन आय
3. बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (NNP_{MP})	= GNP_{MP} – स्थायी पूँजी का उपभोग या मूल्य ह्रास
4. बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP})	= NNP_{MP} – विदेशों से शुद्ध साधन आय
5. साधन लागत पर निवल घरेलू उत्पाद (NDP_{FC})	= NDP_{MP} – अप्रत्यक्ष कर + आर्थिक सहायता या निबल घरेलू आय
6. साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{FC})	= NDP_{FC} + मूल्य ह्रास
7. साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP_{FC})	= GDP_{FC} + विदेशों से शुद्ध साधन आय
8. साधन लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद या राष्ट्रीय आय (NNP_{FC})	= GNP_{FC} – मूल्य ह्रास
9. शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय	= शुद्ध घरेलू आय + विदेशों से शुद्ध साधन आय + शुद्ध अप्रत्यक्ष कर + शेष विश्व से शुद्ध चालू हस्तांतरण
10. सकल राष्ट्रीय प्रयोज्य आय	= शुद्ध राष्ट्रीय प्रयोज्य आय + चालू पुनर्स्थापन लागत
11. निजी क्षेत्र को शुद्ध घरेलू उत्पाद से प्राप्त साधन आय	= साधन लगत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद-विभागीय उद्यमों की सम्पत्ति तथा उद्यमवृत्ति से प्राप्त आय-गैर विभागीय उद्यमों की बचत
12. निजी आय	= निजी क्षेत्र को घरेलू उत्पाद से प्राप्त आय + विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय + सरकार से वर्तमान हस्तांतरण + शेष विश्व से वर्तमान हस्तांतरण + राष्ट्रीय ऋण पर ब्याज।
13. वैयक्तिक आय	= निजी आय – निगम लाभ कर – उद्यमों की बचतें
14. वैयक्तिक प्रयोज्य आय	= वैयक्तिक आय - प्रत्यक्ष वैयक्तिक कर - परिवारों द्वारा दिए गए विविध फीस और जुर्माने।

2.5 सारांश (Summary)

- एक देश की राष्ट्रीय आय का संबंध केवल उसी देश के सामान्य निवासियों के साथ होता है। इसका निहितार्थ यह है कि भारत में स्थित सभी विदेशी व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा अर्जित साधन आय को भारत की राष्ट्रीय

नोट

आय का एक भाग नहीं माना जाएगा, यदि वो व्यक्ति तथा संस्थाएँ भारत के सामान्य निवासी नहीं हैं। इसी बात को दोहराते हुए, भारत में गैर-निवासियों (Non-residents) द्वारा अर्जित आय, भले ही भारत की घरेलू आय का एक भाग होता है, फिर भी इसे भारत की राष्ट्रीय आय का एक भाग नहीं माना जाता है।

2.6 शब्दकोश (Keywords)

- आर्थिक हित (Economic Interest) – धन से संबंधित हित
- अप्रचलन (Obsolescence) – प्रचलन से बाहर
- व्यय विधि (Expenditure Method) – खर्च की विधि।

2.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. राष्ट्रीय आय की सकल तथा शुद्ध अवधारणाएँ क्या हैं?
2. 'राष्ट्रीय आय का माप' से क्या तात्पर्य है?
3. 'कुल संबंधित समुच्चय' से आप क्या समझते हैं?
4. राष्ट्रीय प्रयोज्य आय के अंग बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. सामान्य	2. राष्ट्रीय	3. देश में	4. (अ)
5. (ब)	6. (ब)	7. सही	8. गलत
9. सही	10. सही।		

2.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2010

नोट

इकाई–3: आर्थिक कल्याण और राष्ट्रीय आय (Economic Welfare and National Income)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
3.1 आर्थिक कल्याण क्या है? (What is Economic welfare?)
3.2 आर्थिक कल्याण व राष्ट्रीय आय में संबंध
(Relation between economic welfare and national income)
3.3 राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण के माप के रूप में
(National income as a measure of economic welfare)
3.4 सारांश (Summary)
3.5 शब्दकोश (Keywords)
3.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- आर्थिक कल्याण को जानने हेतु।
- राष्ट्रीय आय का अध्ययन करने हेतु।
- समाज कल्याण को प्रभावित करने वाले तत्त्व जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक व आर्थिकेतर कल्याण में मुद्रा के आधार पर भेद करना ठीक नहीं। पीगू भी इस बात को स्वीकार करता है। इसके अनुसार आर्थिकेतर कल्याण को दो प्रकार से संशोधित किया जा सकता है। प्रथम, आय के अर्जित करने के तरीके से। काम करने के अधिक घण्टे व खराब हालात आर्थिकेतर कल्याण को कम कर देंगे। दूसरे, आय के व्यय करने के ढंग से। आर्थिक कल्याण में यह मान लिया जाता है कि भिन्न-भिन्न उपभोग वस्तुओं पर किए गए खर्चे समान संतुष्टि प्रदान करते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता क्योंकि जब खरीदी गई वस्तुओं से संतुष्टि कम होती है तो आर्थिकेतर कल्याण कम होता है जिससे कुल कल्याण में भी कमी आती है।

3.1 आर्थिक कल्याण क्या है? (What is economic welfare?)

आर्थिक कल्याण तथा राष्ट्रीय आय में संबंध जानने से पहले आर्थिक कल्याण को परिभाषित करना आवश्यक है।

'कल्याण' एक मानसिक स्थिति है जो मानवीय प्रसन्नता एवं संतुष्टि की द्योतक है। वास्तव में, कल्याण मानवीय मानसिक स्थिति की एक प्रसन्न अवस्था है। पीगू व्यक्तिगत कल्याण को व्यक्ति द्वारा अनुभव की गई सभी संतुष्टियों का कुल जोड़ मानता है और सामाजिक कल्याण को व्यक्तिगत कल्याणों का कुल जोड़। वह कल्याण को **आर्थिक कल्याण** और **आर्थिकेतर कल्याण** (non-economic welfare) में बांटता है। आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा में मापा जा सकता है। क्योंकि कल्याण शब्द बहुत विस्तृत है, इसलिए पीगू आर्थिक कल्याण को ही महत्त्व प्रदान करता है। उसके शब्दों में, ''हमारी जांच की सीमा सामाजिक (सामान्य) कल्याण के उस भाग तक सीमित हो जाती है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर से मुद्रा के माप-दण्ड के साथ लाया जा सकता है।'' इसके विपरीत, आर्थिकेतर कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा में मापा नहीं जा सकता है, जैसे नैतिक कल्याण।

परंतु **पीगू** का यह विचार है कि ऐसे प्रभावों की गणना करना सम्भव नहीं होता। क्योंकि आर्थिकेतर कल्याण को मुद्रा द्वारा मापा नहीं जा सकता, इसलिए अर्थशास्त्री को इस मान्यता पर चलना चाहिए कि आर्थिक कारणों का प्रभाव जो आर्थिक कल्याण पर पड़ता है वह कुल कल्याण पर भी लागू होगा। अतः पीगू इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आर्थिक कल्याण बढ़ने से कुल कल्याण में भी वृद्धि होती है और उसकी कमी से कुल कल्याण में कमी होती है।

परंतु ऐसा सदैव संभव नहीं क्योंकि जो कारण आर्थिक कल्याण में वृद्धि करते हैं वे आर्थिकेतर कल्याण को कम भी कर सकते हैं। इसलिए कुल कल्याण में वृद्धि अनुमान से कम हो सकती है। जैसे, आय के बढ़ने से आर्थिक कल्याण एवं कुल कल्याण दोनों बढ़ते हैं और आय के कम होने से वे कम होते हैं। परन्तु आर्थिक कल्याण केवल आय की मात्रा पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि आय के अर्जित करने और उसके व्यय करने के ढंगों पर भी निर्भर करता है। जब श्रमिक कारखानों में काम करके अधिक आय कमाते हैं, पर गंदी बस्तियों और दूषित वातावरण में रहते हैं तो उनका आर्थिक कल्याण चाहे बढ़ा हो लेकिन कुल कल्याण में वृद्धि नहीं मानी जा सकती। इसी प्रकार उनका व्यय भी आय के अनुरूप बढ़ने से कुल कल्याण में वृद्धि नहीं मानी जा सकती, यदि वे शराब, सिगरेट आदि हानिकारक वस्तुओं पर बढ़ी हुई आय व्यय करते हैं। अतः आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का निर्देशक नहीं हो सकता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. 'कल्याण' एक मानसिक स्थिति है जो मानवीय प्रसन्नता एवं .... की द्योतक है।
2. कल्याण मानवीय मानसिक स्थिति की एक .... अवस्था है।
3. पीगू व्यक्तिगत कल्याण को व्यक्ति द्वारा अनुभव की गई सभी संतुष्टियों का .... मानता है।

3.2 आर्थिक कल्याण व राष्ट्रीय आय में संबंध (Relation between economic welfare and national income)

आर्थिक कल्याण तथा राष्ट्रीय आय दोनों मुद्रा में मापे जाने के कारण पीगू इनमें घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है। जब राष्ट्रीय आय बढ़ती है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है और राष्ट्रीय आय में कमी होने से आर्थिक कल्याण में भी कमी होती है। आर्थिक कल्याण पर राष्ट्रीय आय के प्रभाव का दो प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है: एक, राष्ट्रीय आय के आकार में परिवर्तन होने से; दो, राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन होने से।

1. *राष्ट्रीय आय के आकार में परिवर्तन* धनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है। राष्ट्रीय आय में धनात्मक परिवर्तन होने से आकार में वृद्धि होती है जिससे लोग अधिक वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग करते हैं। इससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। जबकि राष्ट्रीय आय में ऋणात्मक परिवर्तन होने से इसका आकार जब कम होता है तो लोगों को

नोट

कम वस्तुएं व सेवाएं उपभोग के लिए प्राप्त होती हैं जिससे आर्थिक कल्याण कम हो जाता है। परंतु यह संबंध कई एक बातों पर निर्भर करता है।

क्या राष्ट्रीय आय में परिवर्तन वास्तविक है या मौद्रिक? यदि राष्ट्रीय आय में परिवर्तन कीमतों में परिवर्तन के कारण होता है तो आर्थिक कल्याण में वास्तविक परिवर्तन को मापना कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, कीमतों में वृद्धि से जब राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि संभव नहीं, क्योंकि संभव है कि अर्थ-व्यवस्था में वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में वृद्धि न हुई हो। कीमतें बढ़ने से आर्थिक कल्याण में कमी होने की संभावना अधिक पाई जा सकती है। राष्ट्रीय आय में वास्तविक वृद्धि होने पर ही आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है।

दूसरे, राष्ट्रीय आय में वृद्धि किस प्रकार हुई है। यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि श्रमिकों का शोषण करके हुई हो तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं कही जा सकती। जैसे, मजदूरों द्वारा अधिक घण्टे काम करके उत्पादन बढ़ाना, उन्हें न्यूनतम मजदूरी से कम वेतन देना, जिससे उन्हें अपने बच्चों तथा स्त्रियों को भी काम करने पर विवश करना पड़े, उन्हें कारखाने तक आने-जाने व रहने की सुविधाएँ न देना तथा उनका गंदी बस्तियों में रहना आदि। यदि ऐसी परिस्थितियों में राष्ट्रीय आय बढ़ती है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी।

तीसरे, यदि प्रति व्यक्ति आय को भी दृष्टिगोचर न रखा जाए तो राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण का विश्वसनीय सूचकांक नहीं हो सकता। संभव है कि राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ जनसंख्या भी उसी गति से बढ़े और प्रतिव्यक्ति आय में कोई वृद्धि न हो। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय आय में वृद्धि से आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी। परंतु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से आर्थिक कल्याण बढ़ता है और प्रति व्यक्ति आय कम होने से आर्थिक कल्याण कम होता है।

संभव है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने से प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई हो परंतु यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि पूंजीगत पदार्थों के उत्पादन के कारण हुई हो तथा देश में उपभोग वस्तुओं का उत्पादन कम होने से उनकी कमी पाई जाती है तो राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होने पर भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होगी क्योंकि लोगों का आर्थिक कल्याण उनके द्वारा प्रयोग की गई उपभोग की वस्तुओं पर निर्भर करता है, न कि पूंजीगत पदार्थों पर। इसी प्रकार युद्धकाल में जब राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय में अत्यधिक वृद्धि होती है तो भी आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं होती क्योंकि युद्ध के दिनों में देश की सारी उत्पादन क्षमता युद्ध-सामग्री बनाने में व्यक्त होती है तथा उपभोग वस्तुओं की कमी पाई जाती है जिससे लोगों का रहन-सहन का स्तर गिर जाता है और आर्थिक कल्याण कम हो जाता है।

प्राय: राष्ट्रीय आय एवं प्रतिव्यक्ति आय बढ़ने पर भी आर्थिक कल्याण पहले से कम हो जाता है। ऐसा तब होता है जब राष्ट्रीय आय की वृद्धि से धनी वर्गों की आय में वृद्धि होती है और गरीबों को उसका कोई लाभ प्राप्त नहीं होता। अर्थात् राष्ट्रीय आय बढ़ने से अमीर अधिक अमीर होते हैं तथा गरीब और गरीब। इस प्रकार जब धनिकों का कल्याण बढ़ता है तो गरीब का कल्याण कम होता है क्योंकि अमीरो की अपेक्षा गरीबों की संख्या अधिक होती है, इसलिए कुल आर्थिक कल्याण में कमी होती है।

अंतिम, राष्ट्रीय आय के बढ़ने से आर्थिक कल्याण पर जो प्रभाव पड़ता है वह इस बात पर भी निर्भर करता है कि लोगों का व्यय करने का ढंग कैसा है? यदि आय बढ़ने पर लोग कार्यकुशलता बढ़ाने वाली आवश्यकताओं एवं सुविधाओं जैसे दूध, घी, अण्डे, पंखे आदि पर व्यय करते हैं तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होगी। परंतु इसके विपरीत शराब, जुए आदि हानिकारक वस्तुओं पर व्यय करने में आर्थिक कल्याण में कमी होती है। वास्तव में, राष्ट्रीय आय में वृद्धि से आर्थिक कल्याण में होने वाली वृद्धि या कमी लोगों की रुचियों में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर करती है। यदि फैशन व रुचियों में परिवर्तन अच्छी वस्तुओं के उपभोग की ओर होता है तो आर्थिक कल्याण बढ़ता है अन्यथा बुरी वस्तुओं के उपभोग से कम होता है।

ऊपर के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि राष्ट्रीय आय तथा आर्थिक कल्याण में घनिष्ठ संबंध है फिर

भी यह निश्चयात्मक तौर से नहीं कहा जा सकता कि राष्ट्रीय आय अथवा प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने से आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होगी। राष्ट्रीय आय की वृद्धि से आर्थिक कल्याण में वृद्धि या कमी होना कई एक तत्वों पर निर्भर करता है जैसे जनसंख्या की वृद्धि की दर, आय के अर्जित करने के ढंग, काम की अवस्थाएं, व्यय करने का तरीका, फैशन व रुचियां आदि।

2. राष्ट्रीय आय के वितरण *में परिवर्तन* दो प्रकार से होता है। **प्रथम,** धन का हस्तांतरण गरीबों से अमीरों की ओर। **दूसरा,** अमीरों से गरीबों की ओर। जब राष्ट्रीय आय बढ़ने से धन का हस्तांतरण पहली किस्म से होता है तो आर्थिक कल्याण में कमी होती है। ऐसा जब होता है तब सरकार धनी वर्गों को अधिक लाभ पहुंचाती है और गरीबों पर अवरोही (regressive) कर लगाए जाते हैं।

राष्ट्रीय आय के वितरण तथा आर्थिक कल्याण का वास्तविक संबंध दूसरे प्रकार के हस्तांतरण से है, जब धन अमीरों से गरीबों की ओर जाता है। राष्ट्रीय आय का गरीबों के पक्ष में पुनर्वितरण अमीरों के धन को कम करके और गरीबों की आय को बढ़ाकर किया जा सकता है। धनी वर्गों की आय को कई प्रकार के तरीके अपनाकर कम किया जा सकता है जैसे, आय, संपत्ति आदि पर आरोही (progressive) कर लगाना, एकाधिकार का नियंत्रण करना, सामाजिक सेवाओं का राष्ट्रीयकरण करना तथा अमीरों द्वारा प्रयोग की जाने वाली महंगी और विलासिता की वस्तुओं पर कर लगाना इत्यादि। इसके विपरीत गरीबों की आय को भी कई प्रकार से बढ़ाया जा सकता है जैसे, न्यूनतम मजदूरी दर निश्चित करके, गरीबों द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाकर, ऐसी वस्तुओं की कीमतें निश्चित करके, वस्तुओं के उत्पादकों को वित्तीय सहायता देकर, वस्तुओं का वितरण सहकारी स्टोरों द्वारा करके तथा गरीबों को निःशुल्क शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा व कम किराये पर मकान प्रदान करके। उपर्युक्त उपायों से जब राष्ट्रीय आय का वितरण गरीबों के पक्ष में होता है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। पीगू ने इस विचार को इन शब्दों में व्यक्त किया है, "कोई भी कारण, जो वास्तविक आय के बहुत अधिक भाग की गरीबों के हक में वृद्धि करता है यदि वह किसी भी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय लाभांश के आकार में कमी नहीं लाता तो सामान्यतः आर्थिक कल्याण को बढ़ाएगा।"

परंतु यह आवश्यक नहीं कि राष्ट्रीय आय के समान वितरण से आर्थिक कल्याण में वृद्धि हो। इसके विपरीत यदि अमीरों के प्रति अपनाई जाने वाली नीति विवेकपूर्ण न हो तो आर्थिक कल्याण में कमी की अधिक संभावना पाई जाती है। बहुत अधिक ऊंची दर पर लगाए गए आरोही कर उत्पादन क्षमता तथा पूंजी निवेश व निर्माण पर बुरा प्रभाव डालते हैं जिससे राष्ट्रीय आय कम हो जाती है। इसी प्रकार सरकारी प्रयत्नों द्वारा जब गरीबों की आय में वृद्धि होने पर यदि वे उसका प्रयोग शराब, जुए आदि बुरी वस्तुओं पर व्यय करते हैं, या उनकी जनसंख्या में वृद्धि हो जाती है तो आर्थिक कल्याण में कमी होती है परंतु ये दोनों बातें वास्तविक नहीं, केवल भय मात्र हैं क्योंकि जब सरकार अमीरों पर कई पकार के आरोही कर लगाती है तो इस बात का विशेष ध्यान रखती है कि उनका उत्पादन तथा निवेश पर बुरा प्रभाव न पड़े। दूसरी ओर जब किसी गरीब व्यक्ति की आय बढ़ती है तो उसका यह प्रयत्न होता है कि वह अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे और अपना रहन-सहन का स्तर ऊँचा करे। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि से आर्थिक कल्याण में भी वृद्धि होती है बशर्ते कि गरीबों की आय कम न होकर बढ़े और वे अपने रहन-सहन के स्तर को सुधारें तथा अमीरों की आय इस प्रकार कम हो कि उत्पादन क्षमता, निवेश व पूंजी-संचय में कमी न आने पाए।

नोट्स आर्थिकेतर कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा में मापा नहीं जा सकता, जैसे नैतिक कल्याण।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मापा जा सकता है–

   (अ) मुद्रा में (ब) वस्तु में

   (स) व्यक्ति में (द) समाज में।

5. काम करने के अधिक घंटे व खराब हालात .... कल्याण को कम कर देंगे।

   (अ) आर्थिक (ब) आर्थिकेतर

   (स) सामाजिक (द) इनमें से कोई नहीं

6. आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का नहीं हो सकता–

   (अ) निर्देशक (ब) आदेशक

   (स) निवेशक (द) इनमें से कोई नहीं।

3.3 राष्ट्रीय आय आर्थिक कल्याण के माप के रूप में (National income as a measure of economic welfare)

GNP आर्थिक कल्याण का संतोषजनक माप नहीं है क्योंकि राष्ट्रीय आय के अनुमानों में कुछ सेवाएं तथा उत्पादन क्रियाएं सम्मिलित नहीं होती हैं जो कल्याण को प्रभावित करती हैं। नीचे कुछ ऐसे घटकों की व्याख्या की जा रही है जो मानव कल्याण को प्रभावित करते हैं लेकिन GNP अनुमानों में शामिल नहीं किए जाते हैं।

विश्राम (Leisure)–समाज के कल्याण को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व विश्राम है परंतु इसे GNP में सम्मिलित नहीं किया जाता है। उदाहरणार्थ, काम करने के अधिक घण्टे लोगों की प्रसन्नता को कम कर सकते हैं क्योंकि उनका विश्राम कम हो जाता है। इसके विपरीत, प्रति सप्ताह काम करने के कम घण्टे विश्राम को बढ़ा देते हैं और लोगों को प्रसन्न रखते हैं। समाज द्वारा अधिक या कम विश्राम लेने से अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन प्रभावित होता है। परंतु राष्ट्रीय आय के अनुमानों में विश्राम का मूल्य नहीं लिया जाता है।

जीवन की गुणवत्ता (Quality of life)–GNP के अनुमानों में जीवन की गुणवत्ता सम्मिलित नहीं होती है जो समाज के कल्याण को प्रतिबिम्बित करती है। अति भीड़ वाले शहरों में जीवन तनावों से भरा होता है। सड़कों पर बहुत भीड़ होती है जिससे समय का नाश होता है। रोज दुर्घटनाएं होती हैं जो लोगों को अपंग कर देती हैं या मार देती हैं। वातावरण दूषित हो जाता है। परिवहन, निवास, विद्युत, जल आदि की समस्याएं उत्पन्न होती हैं। अपराध बढ़ते हैं। जीवन जटिल बन जाता है और जीवन की कोटि में गिरावट आती है। परिणामतः, सामाजिक कल्याण कम होता है। परंतु शहरी जीवन के ये सभी तनाव राष्ट्रीय आय के अनुमानों में शामिल नहीं किए जाते हैं। दूसरी ओर, ऐसे स्थानों पर जहाँ भीड़ नहीं होती और लोग स्वच्छ वायु तथा प्रकृति की सुंदरता का सेवन करते हैं वहाँ जीवन की कोटि में वृद्धि होती है। परंतु यह भी GNP में प्रतिबिम्बित नहीं होती है।

गैर मार्किट लेनदेन (Non-market Transactions)–कुछ गैर-मार्किट लेनदेन कल्याण में वृद्धि करते हैं परंतु वे राष्ट्रीय आय के अनुमानों में शामिल नहीं किए जाते हैं। गृहिणी की घर में सेवाएं और सामाजिक क्रियाएं जैसे धार्मिक उत्सव लोगों के कल्याण को प्रभावित करते हैं परंतु वे GNP के अनुमानों में सम्मिलित नहीं की जाती क्योंकि ऐसी सेवाएँ प्रदान करने में कोई मार्किट लेनदेन नहीं आते हैं।

नोट

क्या आप जानते हैं यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि श्रमिकों का शोषण करके हुई हो तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि नहीं कही जा सकती।

बहिर्भाव (Externalities)–इस प्रकार, बहिर्भाव भी कल्याण को बढ़ाने या कम करने की प्रवृत्ति रखते हैं परंतु वे भी GNP अनुमानों में सम्मिलित नहीं किए जाते हैं। एक बहिर्भाव व्यक्तिगत उत्पादन तथा उपभोग के परिणामस्वरूप किन्हीं अन्य व्यक्तियों पर लागत या लाभ होता है। परंतु एक बहिर्भाव की लागत या लाभ मुद्रा द्वारा नहीं मापी जा सकती क्योंकि यह मार्किट क्रियाओं में शामिल नहीं होती है। बाह्य लाभ का एक उदाहरण एक व्यक्ति को अपने पड़ोसी के उत्तम बगीचे को देखने से प्राप्त प्रसन्नता है। बाह्य लागत का एक उदाहरण औद्योगिक प्लांटों द्वारा दूषित वातावरण है। पहला कल्याण में वृद्धि करने की और दूसरा कल्याण को कम करने की प्रवृत्ति रखता है। क्योंकि बहिर्भाव बिना लेन-देन की परस्पर निर्भरता होती है इसलिए वे राष्ट्रीय आय के अनुमानों में सम्मिलित नहीं की जाती हैं।

उत्पादन की प्रकृत्ति (Nature of Production)–GNP के अनुमानों में विभिन्न वस्तुओं द्वारा समाज को भिन्न-भिन्न संतुष्टि का स्तर प्रदान करने की क्षमता प्रतिबिम्बित नहीं होती है। एक अणु बम या एक नदी के ऊपर बांध बनाने पर किया गया समान व्यय राष्ट्रीय आय में समान वृद्धि करता है परंतु ये समाज को संतुष्टि के भिन्न-भिन्न स्तर प्रदान करते हैं। एक बम कल्याण में वृद्धि नहीं करता जबकि एक बांध वृद्धि करता है।

रहन-सहन का स्तर (Standard of Living)–GNP के अनुमान समाज के रहन-सहन के स्तर को भी व्यक्त नहीं करते हैं। यदि राष्ट्रीय व्यय का अधिक भाग युद्ध का सामान बनाने और पूंजी पदार्थों पर खर्च किया जाता है तथा कम भाग उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण पर तो यह अंतरराष्ट्रीय आय के अनुमानों में दिखाई नहीं देता है। परंतु उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में कमी लोगों के कल्याण को कम करने की प्रवृत्ति रखती है, जबकि युद्ध के समान और पूंजी पदार्थों पर किया गया व्यय वर्तमान में कल्याण को नहीं बढ़ाता है।

ऊपर वर्णित सीमाओं के दृष्टिकोण से, GNP कल्याण के माप के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है। फिर भी, कुछ अर्थशास्त्रियों ने GNP की परिभाषा को विस्तृत करने का प्रयत्न किया है ताकि यह आर्थिक कल्याण का माप हो सके। इस ओर प्रथम प्रयास प्रो. नोरधोस (Nordhaus) और टोबिन ने 1972 में किया। इन्होंने आर्थिक कल्याण का माप (Measure of Economic Welfare— *MEW*) निर्मित किया है जिसे सैम्युल्सन शुद्ध आर्थिक कल्याण (Net Economic Welfare—*NEW*) कहते हैं।

नोरधोस और टोबिन के अनुसार, उन्होंने *MEW* में सभी उपभोग जिससे मानव कल्याण होता है, उसे मापने का यत्न किया है। *MEW* के मूल्य का अनुमान लगाने के लिए वे उपभोग में से कुछ मदें घटा देते हैं जो कल्याण प्रदान नहीं करती हैं। जैसे, **शोचनीय आवश्यकताएं** (regrettable necessities) जिनमें सुरक्षा, पुलिस, सफाई आदि पर सरकारी व्यय और प्रतिदिन स्कूटर, बस या गाड़ी द्वारा घर से कार्य-स्थान जाने का निजी व्यक्तियों का व्यय शामिल है; दूसरे सभी घरेलू टिकाऊ वस्तुओं पर उपभोक्ता व्यय जिनमें स्कूटर, कार, टी.वी., रेडियो, कपड़े धोने की मशीन, फ्रिज आदि शामिल हैं; और तीसरे ऋणात्मक बहिर्भावों (negative externalities) से उत्पन्न अनुमानित लागतें जो शहरीकरण, भीड़भाड़ और दूषण के कारण पाई जाती हैं।

इन मदों को घटाने के बाद, नौरधोस और टोबिन निम्न तीन मदें उपभोग में जमा कर देते हैं। ये हैं : (1) मार्किटेत्तर क्रियाओं के मूल्य (value of non-market activities); (2) वास्तविक तौर से उपभोग की गई टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य के अनुमान; और (3) विश्राम के मूल्य के अनुमान।

MEW के अनुमान लगाने में नोरधोस और टोबिन विश्राम के मूल्यांकन पर अधिक बल देते हैं। इसके लिए वे दो विधियां अपनाते हैं : वैकल्पिक लागत विधि तथा यथार्थ मूल्य विधि। प्रथम विधि इस सिद्धांत पर आधारित है कि

नोट

जब कोई व्यक्ति अधिक विश्राम लेने का चुनाव करता है तो ऐसा सदैव अधिक आय त्यागने की लागत पर होता है। एक घण्टे के विश्राम का अर्थ है एक घण्टे की मजदूरी त्यागना। उनके अनुमानों के अनुसार, वैकल्पिक लागत द्वारा मापे गए विश्राम का मूल्य कई वर्षों से निरंतर बढ़ रहा है क्योंकि समय के साथ प्रति घण्टा वास्तविक मजदूरी दर निरंतर बढ़ रही है। यथार्थ मूल्य विधि विश्राम के मूल्य को एक घण्टे के विश्राम द्वारा प्रदान किए गए वास्तविक आनंद (उपयोगिता) द्वारा मापती है।

टास्क आर्थिक कल्याण पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

ऐसी मूल्यांकन विधियां प्रयोग करके, नोरधोस और टोबिन ने संयुक्त राज्य अमरीका में *MEW* का जो 1965 का अनुमान लगाया वह 1200 बिलियन डॉलर था जो उसी वर्ष की GNP से दुगुना था। 1929-65 की अवधि में प्रति व्यक्ति *MEW* का अनुमान 1.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष था जबकि प्रतिव्यक्ति GNP का अनुमान 1.7 प्रतिशत था। ये अनुमान स्पष्ट करते हैं कि इस अवधि में अमरीका के आर्थिक कल्याण में अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

परंतु ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि *MEW* की धारणा GNP को प्रतिस्थापित करती है। अधिकतर यह GNP की पूरक है जिसमें आर्थिक कल्याण को GNP में साथ संबंधित करने के लिए इसमें मार्किटेत्तर क्रियाएं भी सम्मिलित की गई हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन दो प्रकार से होता है।
8. समाज के कल्याण को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व विश्राम है।
9. GNP के अनुमानों में जीवन की गुणवत्ता सम्मिलित नहीं होती है।
10. बहिर्भाव भी कल्याण को बढ़ाने या कम करने की प्रवृत्ति रखते हैं।

3.4 सारांश (Summary)

- आर्थिक कल्याण तथा राष्ट्रीय आय दोनों मुद्रा में मापे जाने के कारण पीगू इनमें घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है। जब राष्ट्रीय आय बढ़ती है तो आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है और राष्ट्रीय आय में कमी होने से आर्थिक कल्याण में भी कमी होती है। आर्थिक कल्याण पर राष्ट्रीय आय के प्रभाव का दो प्रकार से अध्ययन किया जा सकता है: एक, राष्ट्रीय आय के आकार में परिवर्तन होने से; दो, राष्ट्रीय आय के वितरण में परिवर्तन होने से।

3.5 शब्दकोश (Keywords)

- अवरोही (Regressive) – नीचे आने वाला
- विश्राम (Leisure) – खाली समय, फुरसत

3.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. राष्ट्रीय आय के आकार तथा वितरण की प्रणाली में परिवर्तन आर्थिक कल्याण की प्रणाली को किस प्रकार प्रभावित करते हैं, समझाइए। उदाहरण दीजिए।
2. राष्ट्रीय लाभांश के आकार और वितरण में परिवर्तन का कल्याण पर प्रभाव की विवेचना कीजिए।
3. आर्थिक कल्याण के विचारों का मूल्यांकन कीजिए। इसका किसी देश की राष्ट्रीय आय से संबंध स्पष्ट कीजिए।
4. गरीबों के हित में, राष्ट्रीय लाभांश के वितरण में हुए परिवर्तन के, आर्थिक कल्याण पर जो प्रभाव होते हों, उसकी पूर्ण रूप से व्याख्या कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. संतुष्टि 2. प्रसन्न 3. कुल जोड़ 4. (अ)
5. (ब) 6. (अ) 7. सही 8. सही
9. सही 10. सही।

3.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–4: क्षेत्रवार लेखांकन (Sectorial Accounting)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
4.1 व्यावसायिक क्षेत्र (Business Sector)
4.2 व्यक्तिगत क्षेत्र (Personal Sector)
4.3 राजकीय क्षेत्र (The Government Sector)
4.4 विदेशी या अन्य क्षेत्र (Foreign or Other Sector)
4.5 कुल बचत एवं विनियोग का लेखा-जोखा (Gross Saving and Investment Account)
4.6 सामाजिक आय लेखांकन या राष्ट्रीय आय लेखांकन से आशय (Meaning of Social Accounting or National Income Accounting)
4.7 सामाजिक लेखों का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Social Accounts)
4.8 सामाजिक लेखांकन की विधियाँ (Social Accounting's Laws)
4.9 सारांश (Summary)
4.10 शब्दकोश (Keywords)
4.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
4.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- व्यावसायिक क्षेत्र को जानने हेतु।
- व्यक्तिगत क्षेत्र को समझने हेतु।
- राजकीय क्षेत्र को जानने हेतु।
- विदेशी या अन्य क्षेत्र का अध्ययन करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्तिगत क्षेत्र के आय और व्यय खाते का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते समय आय की तरफ (बायीं तरफ) हस्तांतरण भुगतान की प्राप्ति और व्यय की तरफ (दायीं तरफ) उपभोक्ताओं द्वारा ब्याज के भुगतान को दर्शाया जाता है। इन दोनों को ही राष्ट्रीय आय के लेखे-जोखे में शामिल नहीं किया जाता।

नोट

4.1 व्यावसायिक क्षेत्र (Business Sector)

अर्थव्यवस्था के इस क्षेत्र के अंतर्गत संचालित कंपनियों, एकाकी व्यापार व साझेदारी फर्मों को शामिल किया जाता है। इस क्षेत्र में चालू खाते की सभी आर्थिक क्रियाओं को लिया जाता है उसके पश्चात् उन्हें कुल राष्ट्रीय उत्पादन में शामिल किया जाता है। सन् 1991—92 का व्यावसायिक क्षेत्र की आय व उत्पादन का लेखा-जोखा निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है—

व्यावसायिक क्षेत्र की आय एवं उत्पादन का लेखा-जोखा 1991-1992

(राशि लाख रुपयों में)

आय प्राप्ति	राशि	बिक्री	राशि
1. मजदूरी एवं सम्पूरक आय	2,500	1. उपभोक्ताओं का	22, 000
2. सामाजिक सुरक्षा भुगतान	1,000	2. राज्यों को	11, 200
3. नियमों के अतिरिक्त अन्य इकाइयों की विशुद्ध आय तथा अवशिष्ट माल के मूल्य में परिवर्तन	500	3. निर्यात	4, 000
4. व्यक्तिगत लगान की आय	1,000	4. पूँजीगत वस्तुओं की बिक्री	6, 000
5. नियमों के लाभ तथा अव-शिष्ट माल के मूल्य में परिवर्तन	5,000	5. अवशिष्ट माल के मूल्य में विशुद्ध परिवर्तन	3, 500
6. विशुद्ध ब्याज	500	6. व्यावसायिक कुल उत्पादन	46, 500
7. कुल आय प्राप्ति	3,750		
8. परोक्ष व्यावसायिक कर	6,000		
9. विशुद्ध व्यावसायिक कर के बदले भुगतान	43,500		
10. घिसावट छूट	3,000		
11. व्यावसायिक उत्पादन के बदले कुल भुगतान	46,500		

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. व्यक्तिगत क्षेत्र के अंतर्गत समस्त .... क्षेत्र की आय को शामिल कर लिया गया है।
2. व्यक्तिगत क्षेत्र में संस्थाओं के कर्मचारियों की मजदूरी, वेतन और .... को सम्मिलित किया जाता है।
3. व्यक्तिगत ब्याज की आय व्यक्तियों द्वारा प्राप्त कुल ब्याज की .... को दर्शाती है।

नोट

4.2 व्यक्तिगत क्षेत्र (Personal Sector)

व्यक्तिगत क्षेत्र में संस्थाओं के कर्मचारियों की मजदूरी, वेतन और संपूरक आय (Supplements Income) को सम्मिलित किया जाता है। मजदूरी, वेतन एवं संपूरक भुगतान की आय का एक बड़ा भाग व्यावसायिक क्षेत्र से और शेष भाग पारिवारिक सरकार व विदेशी क्षेत्रों से प्राप्त होता है। व्यक्तिगत क्षेत्र के अंतर्गत समस्त गैर निगम क्षेत्र (Non-Corporate Sector) की आय को भी शामिल कर लिया गया है। निगम क्षेत्र की कुल आय का एक भाग लाभांश के रूप में व्यक्तिगत क्षेत्र की आय में शामिल किया गया है। व्यक्तिगत ब्याज की आय व्यक्तियों द्वारा प्राप्त कुल ब्याज की आय को दर्शाती है और यह आय व्यावसायिक फर्मों, निजी संस्थाओं तथा सरकार से प्राप्त होती है।

व्यक्तिगत क्षेत्र के आय और व्यय खाते का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते समय आय की तरफ (बायीं तरफ) हस्तान्तरण भुगतान की प्राप्ति और व्यय की तरफ (दायीं तरफ) उपभोक्ताओं द्वारा ब्याज के भुगतान को दर्शाया जाता है। इन दोनों को ही राष्ट्रीय आय के लेखे-जोखे में शामिल नहीं किया जाता। आगे तालिका के आय पक्ष में प्रत्यक्ष सेवाओं अर्थात् प्राप्त आय एवं शुद्ध तथा कुल उत्पादन को बताया गया है तथा व्यक्तिगत क्षेत्र के व्यय पक्ष में देश-विदेश की वस्तुओं व सेवाओं के व्यय तथा आय कर आदि प्रत्यक्ष के भुगतान को दर्शाया गया है। व्यक्तिगत बचत की मद आय व व्यय का अंतर होने के कारण एक संतुलन मद (Balancing Item) है। जब व्यक्तिगत आय व्यय से अधिक, कम या समान हो तो यह मद क्रमशः धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य हो सकती है। सन् 1991-92 की व्यक्तिगत क्षेत्र की आय एवं व्यय का लेखा-जोखा अग्रांकित तालिका में दर्शाया गया है-

व्यक्तिगत क्षेत्र की आय और व्यय का लेखा-जोखा 1991-92

(राशि लाख रुपयों में)

प्रत्यक्ष सेवाओं की		2,000	1. मजदूरी एवं		
खरीद			संपूरक आय के		
1. मजदूरी एवं			स्रोत		29,600
संपूरक आय	1,500		व्यावसायिक फर्म		
2. ब्याज	500		आदि	25,000	
3. प्राप्त आय एवं			सरकार	3,000	
शुद्ध तथा कुल			परिवार	1,500	
उत्पादन		2,000	विदेशों से प्राप्ति	100	
4. व्यावसायिक फर्मों			2. गैर निगम		
से खरीद		22,000	व्यावसायिक विशुद्ध		
5. विदेशों से खरीद		100	आय तथा अवशिष्ट		
6. व्यक्तिगत कर		5,000	माल का मूल्य		
7. सामाजिक सुरक्षा			परिवर्तन		5,000
भुगतान	1,000		3. व्यक्तिगत लगान		
8. व्यक्तिगत बचत	30,100		की आय		1,000
9. व्यक्तिगत बचत			4. लाभांश		1,500

एवं आय	11,100	5. व्यक्तिगत ब्याज की आय		
	44,200	(*i*) व्यावसायिक क्षेत्र से	500	
		(*ii*) अन्य व्यक्तियों से	500	
		(*iii*) सरकार से	1,000	2,000
		6. हस्तान्तरण		2,100
		भुगतान		3,000
		7. व्यक्तिगत आय		
				44,200

नोट्स जब व्यक्तिगत आय व्यय से अधिक, कम या समान हो तो यह मद क्रमशः धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य हो सकती है।

4.3 राजकीय क्षेत्र (The Government Sector)

राजकीय क्षेत्र के अंतर्गत व्यक्तिगत क्षेत्र की तरह ही आय और व्यय के लेखे-जोखे प्रस्तुत किए जाते हैं। इसमें उन सभी मदों को शामिल किया जाता है जो सकल राष्ट्रीय उत्पादन में सम्मिलित नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, इस क्षेत्र के लेखों-जोखों में सामाजिक सुरक्षा की प्राप्तियों तथा भुगतान में शामिल किया जाता है। सरकार की आय प्रमुख रूप से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त राज्य को व्यावसायिक, फर्मों एवं निजी क्षेत्र के सामाजिक सुरक्षा अंशदान के रूप में भी प्राप्त होती है। नीचे तालिका में व्यय पक्ष की और प्रत्यक्ष सेवाओं की खरीद, सरकार द्वारा व्यावसायिक क्षेत्र तथा विदेशों से वस्तुओं और सेवाओं की खरीद को दर्शाया गया है। हस्तांतरण भुगतान के रूप में सरकार व्यक्तियों को बेरोजगारी सहायता एवं सामाजिक सुरक्षा बीमा पर कुछ व्यय करती है तथा सार्वजनिक ऋणों पर ब्याज चुकाती है, इन्हें भी राजकीय क्षेत्र के लेखे-जोखे में सम्मिलित किया जाता है। निम्न तालिका में राजकीय क्षेत्र की आय के 1991-92 के लेखो-जोखों को प्रस्तुत किया गया है–

राजकीय क्षेत्र की आय एवं व्यय का लेखा-जोखा 1991-92

(राशि लाख रुपयों में)

प्रत्यक्ष सेवाओं की खरीद	3,000	आय के स्रोत		13,500
1. मजदूरी एवं वेतन		1. व्यक्तिगत कर	5,000	
2. सामाजिक सुरक्षा भुगतान	100	2. नियमों पर कर	2,500	

नोट

3. प्राप्त आय एवं शुद्ध तथा कुल उत्पादन	3,100	3. परोक्ष व्यावसायिक कर	6,000	
4. व्यावसायिक फ़र्मों से खरीद	1,100	4. सामाजिक सुरक्षा प्राप्ति		− 2,100
		(*i*) व्यवसाय से		
		(*ii*) व्यक्तियों से	1,000	
		(*iii*) सरकार से	1,000	
5. विदेशों से खरीद	200	5. सरकार की आय	100	
6. हस्तांतरण भुगतान	2,100			15,600
7. चुकाया गया शुद्ध ब्याज	1,000			
8. कुल व्यय (3) से (7)	17,400			
9. विशुद्ध घाटा	− 1,800			
	15,600			

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. निगम क्षेत्र की कुल आय का एक भाग .... के रूप में व्यक्तिगत क्षेत्र की आय में शामिल किया गया है।

   (अ) लाभांश (ब) हानि
   (स) लागत (द) इनमें से कोई नहीं।

5. व्यक्तिगत बचत की मद आय व व्यय का अंतर होने के कारण एक है–

   (अ) संतुलन मद (ब) असंतुलन मद
   (स) संतुलित आय (द) असंतुलित आय।

6. जब व्यक्तिगत आय व्यय से अधिक, कम या समान हो तो यह मद क्रमशः हो सकती है–

   (अ) धनात्मक (ब) धनात्मक, ऋणात्मक
   (स) शून्य (द) ऋणात्मक।

4.4 विदेशी या अन्य क्षेत्र (Foreign or Other Sector)

इसके अंतर्गत बाहरी क्षेत्र की आय व व्यय का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है। अग्र तालिका में बाहरी क्षेत्र का विशुद्ध रूप (Net terms) में लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस लेखे-जोखे के बायीं ओर वस्तुओं और सेवाओं के चालू उत्पादन का देश के अंदर व बाहर के प्रवाह का शुद्ध अवशिष्ट अंश दर्शाया गया है। यदि शुद्ध प्रवाह देश के अंदर है तो यह धनात्मक चिन्ह से प्रकट किया जाता है। देश के वस्तुओं व सेवाओं के निर्यात का मूल्य 3900

लाख रुपए है। यह कुल राष्ट्रीय उत्पादन का एक भाग है। इन निर्यातों का भुगतान देशवासियों को विदेशी शुद्ध विनियोग (Net Foreign Investment) के रूप में प्राप्त होता है।

बाह्य क्षेत्र की आय-व्यय का लेखा-जोखा 1991-92

(राशि लाख रुपयों में)

	₹			₹
1. मजदूरी एवं संपूरक आय (शुद्ध)		100	विदेशी शुद्ध विनियोग	3900
2. विदेशी शाखाओं से लाभ		100		
3. प्राप्त आय तथा विशुद्ध एवं कुल उत्पादन		200		
4. देन से विशुद्ध खरीद				
(*i*) व्यवसाय से	4000			
(*ii*) सरकार से	− 200			
(*iii*) व्यक्तियों से	− 100			
		3700		
5. विशुद्ध निर्यात		3900		

क्या आप जानते हैं राजकीय क्षेत्र के अंतर्गत व्यक्तिगत क्षेत्र की तरह ही आय और व्यय के लेखे-जोखे प्रस्तुत किए जाते हैं।

4.5 कुल बचत एवं विनियोग का लेखा-जोखा (Gross Saving and Investment Account)

इसके अंतर्गत कुल बचत एवं विनियोग से संबंधित उन समस्त विवरणों को दिया जाता है जो अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध हैं। उपरोक्त चारों क्षेत्रों में से प्रत्येक में एक अवशिष्ट राशि होती है जो उस क्षेत्र विशेष की बचत है। अन्य मदों में जहाँ आय एवं व्यय दोनों का लेखा-जोखा तालिका में दोनों ओर प्रस्तुत किया जाता है, बचत की मद केवल एक बार एवं तालिका के एक ही ओर प्रस्तुत की जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि बचत चालू लेन-देन की अपेक्षा पूँजी के लेन-देन से संबंधित है।

नोट

कुल बचत एवं विनियोग का लेखा-जोखा 1991-92

(राशि लाख रुपयों में)

1. व्यावसायिक पूँजीगत वस्तुओं की खरीद	6,000	1. निगमों की बचत		4,100
2. अवशिष्ट माल में विशुद्ध परिवर्तन	3,500	(*i*) लाभ जो वितरित न हो सके	800	
3. शुद्ध विदेशी विनियोग	3,900	(*ii*) अवशिष्ट माल के मूल्य में परिवर्तन	200	
4. कुल विनियोग	13,400	(*iii*) विदेशी शाखा लाभ	100	
		(*iv*) पूँजी घिसावट छूट	3,000	
		2. व्यक्तिगत बचत		11,100
		3. सरकारी घाटा		−1,800
		4. कुल बचत		13,400

उपरोक्त तालिका में वास्तविक तथा कुल बचत एवं कुल विनियोग का साम्य दर्शाया गया है। तालिका के दायीं ओर व्यक्तिगत बचत, निगमों की बचत तथा सरकारी घाटे को दिखाया गया है। कुल विनियोग में पूँजीगत वस्तुओं की व्यावसायिक खरीद, अवशिष्ट माल का शुद्ध परिवर्तन एवं विदेशी विनियोग शामिल है। इस प्रकार उपरोक्त पाँच क्षेत्रों के लेखों-जोखों से अर्थव्यवस्था की संरचना स्पष्ट हो जाती है।

4.6 सामाजिक आय लेखांकन या राष्ट्रीय आय लेखांकन से आशय

(Meaning of Social Accounting or National Income Accounting)

सामाजिक लेखांकन, सांख्यिक-विवरण के रूप में समस्त अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं का वर्णन करता है, उनके पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करता है तथा उनके विश्लेषण की संरचना प्रस्तुत करता है। ए०डी०पी० कोक तथा कपूर के अनुसार–"सामाजिक लेखांकन मानव तथा मानवीय संस्थाओं की क्रियाओं के सांख्यिकीय वर्गीकरण से इस प्रकार से संबंधित है कि वह संपूर्ण अर्थव्यवस्था के कार्य-कारण को समझाने में सहायक होता है, परंतु सामाजिक लेखांकन के अंतर्गत अध्ययन का क्षेत्र क्रिया के केवल सांख्यिकीय वर्गीकरण को ही शमिल नहीं करता वरन् अर्थव्यवस्था के कार्य-कारण के विश्लेषण के लिए एकत्र जानकारी को भी शामिल करता है।" सरल शब्दों में, सामाजिक लेखांकन समग्र अर्थव्यवस्था की आर्थिक परिस्थितियों को समझने के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में उनके पारस्परिक, संबंधों को सांख्यिकीय विवरण के रूप में स्पष्ट करने की विधि है।

सामाजिक लेखांकन को राष्ट्रीय आय लेखांकन, आर्थिक लेखांकन, राजनीतिक गणित आदि अनेक नामों से संबोधित किया जाता है।

4.7 सामाजिक लेखों का प्रस्तुतीकरण (Presentation of Social Accounts)

नोट

निजी एवं व्यापारिक लेखों के समान ही सामाजिक लेखों को भी दोहरा लेखा पद्धति से रखा जाता है तथा सामाजिक लेखों को सामाजिक लेखांकन तालिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस तालिका को सामाजिक लेखा आधारक कहते हैं। इस तालिका में पंक्तियों (Rows) में विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्तियाँ तथा स्तम्भों (Columns) में विभिन्न क्षेत्रों की देनदारियाँ प्रदर्शित की जाती हैं। प्रत्येक व्यवहार (Entry) का लेखा एक विशेष पंक्ति तथा विशेष स्तम्भ में किया जाता है। सामाजिक लेखा ठीक अथवा त्रुटि रहित है अथवा नहीं, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक पंक्ति का योग उसके समकक्ष स्तम्भ के कुल योग के बराबर हो।

by / Receipts → / To ↓ Payable		Account 1 Production	2 Consumption	3 Capital	4 External	5 Total
1	Production	—	16	—	4	20
2	Consumption	18	—	—	—	18
3	Capital	2	6	—	—	8
4	External	—	—	—	—	—
5	Total	20	22	—	4	46

उपर्युक्त तालिका में लेखा (1) उत्पादन क्षेत्र से संबंधित है जिसे राष्ट्रीय उत्पादन एवं आय लेखा (National Production and Income Account) भी कहते हैं। इसमें फर्मों तथा सरकारी उपक्रमों द्वारा सभी लेन-देन सम्मिलित होते हैं। लेखा (2) उपभोग क्षेत्र संबंधित है जो लेखों में बँटा है–(*i*) निजी आय एवं व्यय लेखा तथा (*ii*) सरकारी आय एवं व्यय लेखा। व्यावसायिक तथा घरेलू उपभोक्ता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भुगतान करते हैं। दूसरी ओर सरकारी व्यय प्रति-रक्षा, न्याय, पुलिस, शिक्षा, प्रशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य इत्यादि आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होता है। पंक्ति की ओर से व्याक्सायिक तथा घरेलू आय, मजदूरी, वेतन, लाभ, ब्याज, लगान, सार्वजनिक ऋण और चालू हस्तातंरणों से प्राप्त होती है जबकि सरकार की अधिकतर आय करों से प्राप्त होती है। लेखा (3) का संबंध संचय क्षेत्र से होता है और इसे राष्ट्रीय पूँजी लेखा (National Capital Account) कहते हैं। इसे पूँजी लेन-देन (Capital Transaction) भी कहते हैं। पंक्ति की ओर से ऐसे पूँजी लेन-देन मूल्य ह्रास, पूँजी हस्तांतरण और बचतों के रूप में प्राप्तियाँ होती हैं। (4) बाह्य क्षेत्र (External Sector) से संबंधित होता है। जिसे बाह्य लेखा (External Account) या बाकी संसार का लेखा (Rest of the World Account) कहते हैं, इसमें सभी देशों से प्राप्तियाँ तथा सभी देशों की देनदारियाँ शामिल होती हैं, जिसमें वस्तुएँ एवं सेवायें शुद्ध चालू हस्तांतरण (Net Current Transfers) और शुद्ध लेनदारियाँ तथा देनदारियाँ सम्मिलित होती हैं। एक बंद अर्थव्यवस्था में पहले तीनों लेखे संतुलित होंगे। खुली अर्थव्यवस्था में सामाजिक लेखे को संतुलित करने के लिए बाह्य लेखे के साथ लेन-देन में गणना में किए जाएँगे।

टास्क कुल बचत एवं विनियोग का लेखा-जोखा पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. सामाजिक लेखांकन, सांख्यिक-विवरण के रूप में समस्त अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं का वर्णन करता है।
8. सामाजिक लेखांकन के उपयोग से हमें सहज ही आर्थिक संरचना का ज्ञान नहीं होता।
9. राष्ट्रीय आय लेखांकन की सहायता से सरकारी नीतियों के प्रभावों का आसानी से मूल्यांकन किया जा सकता है।
10. खुली अर्थव्यवस्था में सामाजिक लेखे को संतुलित करने के लिए बाह्य लेखे के साथ लेन-देन में गणना में किए जाएँगे।

4.8 सामाजिक लेखांकन की विधियाँ (Social Accounting's Laws)

सामाजिक लेखांकन की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं–

(A) साइमन कुजनेट्स द्वारा प्रस्तुत रीति।

(B) लियोन्टिफ द्वारा प्रस्तुत आदान-प्रदान प्रणाली।

(C) मोरिस कोपलैंड द्वारा प्रस्तुत द्रव्य प्रवाहों के अध्ययन की पद्धति।

सामाजिक अथवा राष्ट्रीय लेखांकन का महत्त्व

1. **आर्थिक संरचना का ज्ञान**–सामाजिक लेखांकन के उपयोग से हमें सहज ही आर्थिक संरचना का ज्ञान हो जाता है। इससे राष्ट्रीय आय के विश्लेषण के साथ-साथ उत्पादन एवं उपभोग के आकार, कर एवं बचत के स्तर आदि के संबंध में जानकारियाँ मिल जाती हैं।
2. **सरकारी नीतियों के प्रभाव का मूल्यांकन**–राष्ट्रीय आय लेखांकन की सहायता से सरकारी नीतियों के प्रभावों का आसानी के साथ मूल्यांकन किया जा सकता है।
3. **व्यावसायिक गृहों का मूल्यांकन**–इससे बड़े-बड़े व्यावसायिक गृहों के कार्यकलापों का मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है।
4. **अर्थव्यवस्था के परिवर्तनों का मार्ग-दर्शक**–सामाजिक आय लेखांकन अर्थव्यस्था में परिवर्तन की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है तथा उन परिवर्तनों के लिए उपयोगी मार्ग-दर्शन प्रदान करता है।
5. **अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों एवं प्रवाहों के महत्त्व पर प्रकाश**–सामाजिक आय लेखांकन एक अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों एवं प्रवाहों के सापेक्षिक महत्त्व पर प्रकाश डालता है।
6. **अंतर्राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक**–राष्ट्रीय आय लेखांकन अंतर्राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है।
7. **विभिन्न क्षेत्रों की पारस्परिक निर्भरता पर अंतर्दृष्टि**–सामाजिक आय लेखांकन विभिन्न क्षेत्रों की पारस्परिक निर्भरता पर अंतर्दृष्टि प्रदान करता है तथा उसे स्पष्ट करता है।

राष्ट्रीय या सामाजिक लेखांकन के विभिन्न अंग

सामाजिक लेखांकन के विभिन्न अंग निम्नलिखित हैं–

(1) कुल राष्ट्रीय उत्पादन (Gross National Product)

(2) कुल राष्ट्रीय उत्पाद (Net National Product)

(3) राष्ट्रीय आय (National Income)

(4) व्यक्तिगत आय (Personal Income)

(5) व्यय योग्य आय (Disposable Income)

4.9 सारांश (Summary)

- निजी एवं व्यापारिक लेखों के समान ही सामाजिक लेखों को भी दोहरा लेखा पद्धति से रखा जाता है तथा सामाजिक लेखों को सामाजिक लेखांकन तालिका के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस तालिका को सामाजिक लेखा आधारक कहते हैं। इस तालिका में पंक्तियों (Rows) में विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्तियाँ तथा स्तम्भों (Columns) में विभिन्न क्षेत्रों की देनदारियाँ प्रदर्शित की जाती हैं। प्रत्येक व्यवहार (Entry) का लेखा एक विशेष पंक्ति तथा विशेष स्तम्भ में किया जाता है। सामाजिक लेखा ठीक अथवा त्रुटि रहित है अथवा नहीं, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक पंक्ति का योग उसके समकक्ष स्तम्भ के कुल योग के बराबर हो।

4.10 शब्दकोश (Keywords)

- राजकीय क्षेत्र (Government Sector) – व्यक्तिगत क्षेत्र
- विदेशी क्षेत्र (Foreign Sector) – बाहरी क्षेत्र।

4.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. व्यावसायिक क्षेत्र क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. राजकीय क्षेत्र से आप क्या समझते हैं?
3. 'विदेशी या अन्य क्षेत्र' पर टिप्पणी लिखिए।
4. सामाजिक लेखांकन की विधियाँ बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. गैर निगम	2. संपूरक आय	3. आय	4. (अ)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. गलत
9. सही	10. सही।		

4.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010

नोट

इकाई–5: रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत (Classical Theory of Employment)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत (Classical theory of employment)

5.2 पूर्ण क्लासिकी मॉडल का सारांश (Summary of complete classical model)

5.3 क्लासिकी सिद्धांत की केन्ज़ द्वारा आलोचना (Keyne's criticism of classical theory)

5.4 सारांश (Summary)

5.5 शब्दकोश (Keywords)

5.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत जानने हेतु।
- पूर्ण क्लासिकी मॉडल का सारांश जानने हेतु।
- क्लासिकी सिद्धांतों की केन्ज़ द्वारा आलोचना करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

जॉन मेनर्ड केन्ज़ (John Maynard Keynes) ने अपनी पुस्तक *The General Theory of employment, Interest and Money (1936)* में क्लासिकी के आधार तत्त्वों पर सीधा प्रहार किया। उसने एक नये अर्थशास्त्र का विकास किया, जिसने आर्थिक विचारधारा तथा नीति में क्रांति ला दी। उसकी विचारधारा की पृष्ठभूमि में *General Theory* लिखी गई थी। 'परंपरावादियों' (classicals) से केन्ज़ का तात्पर्य रिकार्डो के अनुयायियों से था। इनमें विशेष रूप से जे. एस. **मिल, मार्शल एवं पीगू** शामिल हैं। केन्ज़ ने उस प्रथागत तथा संस्थापित अर्थशास्त्र का खण्डन किया, जो एक शताब्दी से अधिक समय तक निर्मित हुआ था और 'बड़ी मंदी' से पहले तक आर्थिक विचारधारा तथा रीति पर अपना प्रभुत्व जमाए था। क्योंकि केन्ज़वादी अर्थशास्त्र क्लासिकी अर्थशास्त्र की आलोचना पर आधारित है, इसलिए उपरोक्त के उस स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है, जो रोजगार के सिद्धांत में शामिल है।

5.1 रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत (Classical Theory of Employment)

क्लासिकी सिद्धांत यह मानता है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है।

मजदूरी-कीमत लोचशीलता (flexibility) दी होने पर, आर्थिक प्राणाली में स्वत: (automatic) शक्तियाँ पाई जाती हैं जो पूर्ण रोजगार कायम रखने की प्रवृत्ति रखती हैं और उसी स्तर पर उत्पादन करती हैं। अत: पूर्ण रोजगार एक सामान्य स्थिति मानी जाती है और इस स्तर से विचलन (deviation) कुछ असामान्य स्थिति होती है जो अपने पूर्ण रोजगार की ओर अग्रसर होती है।

मान्यताएँ (Assumptions)

रोजगार और उत्पादन का क्लासिकी सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है:

1. बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है।
2. बिना विदेशी व्यापार के एक बंद अबंध नीति (laissez faire) वाली पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पाई जाती है।
3. श्रम और वस्तु बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
4. अर्थव्यवस्था का कुल उत्पादन, उपभोग और निवेश खर्चों में विभाजित है।
6. मुद्रा की मात्रा दी हुई है।
7. मजदूरी और कीमतें लोचशील हैं।
8. मुद्रा मजदूरी और वास्तविक मजदूरी का सीधा और समानुपातिक (proportional) संबंध है।
9. पूँजी स्टॉक और प्रौद्योगिकी ज्ञान दिये हुए हैं।

नोट्स क्लासिकी सिद्धांत यह मानता है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है।

से का बाजार नियम (Say's Law of Market)

से का बाजार नियम रोजगार के क्लासिकी सिद्धांत का मर्म है। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ के फ्रांसीसी लेखक **जीन बैपिस्ते से** (Jean Bapiste Say) ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की कि ''पूर्ति स्वयं अपनी माँग पैदा कर लेती है'' (supply creates its own demand)। यही से का नियम कहलाता है। से के शब्दों में, "उत्पादन ही वस्तुओं के लिए मार्किट पैदा करता है। ज्योंही किसी वस्तु का उत्पादन होता है, त्योंही उसी क्षण से, वह अपने मूल्य की पूरी मात्रा में अन्य वस्तुओं के लिए मार्किट प्रदान करती है। दूसरी वस्तु की पूर्ति जितनी एक वस्तु की माँग के अनुकूल होती है, उतना कुछ और नहीं।" अपने मूल रूप में यह नियम **वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था** (barter economy) पर लागू होता है, जहाँ अन्तत: वस्तुओं के बदले वस्तुओं का विक्रय होता है। मार्किट में लाई गई प्रत्येक वस्तु किसी अन्य वस्तु के लिए माँग होती है। से के अनुसार, क्योंकि कार्य करना अरुचिकर है, इसलिए यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु को अपनी इच्छित वस्तु से विनिमय नहीं करना चाहता, तो वह उस वस्तु का उत्पादन करने के लिए काम नहीं करेगा। अत: वस्तुओं की पूर्ति के कार्य में ही उनकी माँग अंतर्निहित है। ऐसी स्थिति में सामान्य से अधिक उत्पादन नहीं हो सकता क्योंकि वस्तुओं की पूर्ति कुल मांग से अधिक नहीं होगी। परंतु हो सकता है कि एक विशेष वस्तु का अधिक उत्पादन हो जाए, क्योंकि उत्पादक उस वस्तु की मात्रा का गलत आगणन कर लेता है जिसकी दूसरों को जरूरत है। परंतु यह स्थिति अस्थायी होती है, क्योंकि समय पर ही उत्पादन घटाकर, उस वस्तु विशेष के अतिरिक्त उत्पादन को ठीक किया जा सकता है। इस प्रकार पूर्ति स्वयं अपनी मांग उत्पन्न करती है और सामान्य अधिक उत्पादन तथा इसीलिए सामान्य बेरोजगारी नहीं हो सकती।

मुद्रा के पाये जाने पर यह आधारभूत नियम बदल नहीं जाता। जैसा कि प्रो. हैन्सन (Hansen) ने कहा है, ''से का मार्किट नियम, अपने व्यापक रूप में, स्वतंत्र वस्तु-विनिमय अर्थव्यवस्था की ही व्याख्या है। इस दृष्टिकोण से यह नियम इस सत्य को प्रकाशित करता है कि मांग का मुख्य स्रोत साधन-आय का वह प्रवाह है, जो स्वयं उत्पादन

नोट

की प्रक्रिया से उत्पन्न होता है।" जब उत्पादक उत्पादन-प्रक्रिया में प्रयोग होने वाली विविध आगतों (भूमि, श्रम और पूँजी) को उपलब्ध करते हैं, तो वे आवश्यक आय का सृजन करते हैं जो लगान, मजदूरी तथा ब्याज के रूप में साधन-स्वामियों को प्राप्त होती है। यही आगे, उत्पादित वस्तुओं के लिए मांग पैदा करती है। इस प्रकार पूर्ति स्वयं अपनी मांग उत्पन्न करती है। यह तर्क इस धारणा पर आधारित है कि साधन-स्वामियों द्वारा अर्जित समस्त आय उन वस्तुओं के क्रय में खर्च हो जाती है जिनके उत्पादन में वे सहायक होते हैं। आय का जो भाग खर्च नहीं होता, वह बच जाता है और उसका निवेश हो जाता है। इस प्रकार बचत निश्चय से निवेश के बराबर होगी। यदि दोनों में कोई अंतर रहता है, तो ब्याज की दर के माध्यम से समानता स्थापित हो जाती है। क्लासिकी अर्थशास्त्री ब्याज को बचत का पुरस्कार मानते हैं। ब्याज की दर जितनी ऊँची होगी, बचत भी उतनी ही अधिक होगी और विलोमशः भी। इसके विपरीत ब्याज की दर जितनी नीची होगा, निवेश के लिए स्थितियों की माँग भी उतनी ही अधिक होगी और विलोमशः भी। यदि किसी दिये हुए निश्चित समय पर निवेश से बचत बढ़ जाती है, तो ब्याज की दर गिर जाएगी। निवेश बढ़ेगा और बचत तब घटती जाएगी जब तक कि पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुँचकर दोनों समान नहीं हो जाते। ऐसा इसलिए कि बचत ब्याज दर का बढ़ता फलन (function) मानी जाती है और निवेश ब्याज दर का घटता फलन माना जाता है।

बचत और निवेश में समानता का तंत्र चित्र 5.1 में दिखाया गया है जहां *SS* बचत वक्र है और *II* निवेश वक्र है। दोनों वक्र *E* बिंदु पर एक-दूसरे को काटते हैं जहाँ *Or* ब्याज दर है और बचत तथा निवेश दोनों *OA* के बराबर हैं। यदि निवेश में वृद्धि होती है तो निवेश वक्र दाईं ओर सरक कर *I'I'* हो जाता है और *Or* ब्याज दर पर *OC* निवेश बचत *OA* से अधिक है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार, बचत वक्र *SS* अपनी पहले वाली स्थिति में ही रहता है जब निवेश में वृद्धि होती है। बचत और निवेश में समानता कायम रखने के लिए ब्याज दर बढ़ेगी। यह चित्र में *Or* से बढ़कर *Or'* दिखाई गई है। इस ब्याज दर पर, बचत वक्र निवेश *SS* निवेश वक्र *I'I'* को *E'* पर काटता है। परिणामतः बचत और निवेश दोनों *OB* पर बराबर होते हैं।

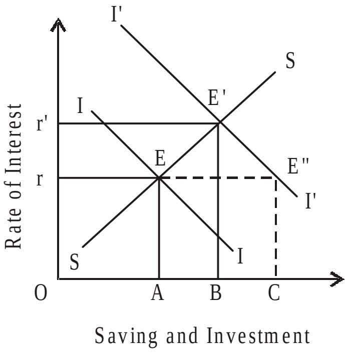

चित्र 5.1

मुद्रा अर्थव्यवस्था में से के नियम की वैधता मुद्रा के क्लासिकी परिमाण सिद्धांत पर भी निर्भर करती है जो यह बताता है कि कीमत-स्तर मुद्रा की पूर्ति का फलन है। बीजगणितीय रूप में, $MV = PT$ जहां M, V, P और T क्रमशः मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा का संचलन वेग, कीमत-स्तर और मुद्रा द्वारा किया गया लेन-देन (या कुल उत्पादन) है। यह समीकरण बताता है कि अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा-स्फीति MV बराबर है उत्पादन का कुल मूल्य PT 1 यह मान कर कि V और T स्थिर हैं मुद्रा की पूर्ति (M) में परिवर्तन से कीमत स्तर (P) में समानुपातिक परिवर्तन होता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा विनियम का माध्यम है।

मुद्रा की मात्रा, कुल उत्पादन और कीमत-स्तर को चित्र 5.2 में दिखाया गया है जहां कीमत स्तर को क्षीतिज-अक्ष पर लिया गया है और कुल उत्पादन को अनुलम्ब अक्ष पर लिया गया है। MV मुद्रा पूर्ति वक्र है जो रेक्टेन्गुलर हाइपरबोला (rectangular hyperbola) होता है। ऐसा इसलिए कि समीकरण $MV = PT$ वक्र के सभी बिंदुओं पर विद्यमान है। उत्पादन स्तर OQ दिया होने पर, मुद्रा की मात्रा के साथ मेल खाता हुआ केवल एक कीमत-स्तर OP होगा जैसा कि MV वक्र पर m बिंदु है। यदि मुद्रा की मात्रा बढ़ती है, तो MV वक्र दाईं ओर सरक कर M_1V वक्र हो जाएगा। परिणामस्वरूप, कीमत स्तर OP बढ़कर OP_1 हो जाएगा, उत्पादन स्तर OQ दिया होने पर। कीमत स्तर में यह वृद्धि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के बिल्कुल समानुपातिक है, अर्थात् $PP_1 = MM_1$.

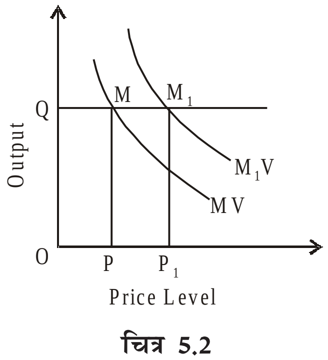

चित्र 5.2

नोट

क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार, यदि मुद्रा की मात्रा को दोगुना किया जाता है तो कीमत स्तर भी दुगुना हो जाएगा। इसके विपरीत, यदि मुद्रा की मात्रा को आधा किया जाता है तो कीमत स्तर भी आधा हो जाएगा। इस प्रकार, मुद्रा केवल एक आवरण (veil) है जिसका मुख्य कार्य सामान्य कीमत स्तर निर्धारित करना है जिस पर वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय होता है।

पीगू का मत (Pigou's Version)

रोजगार के क्लासिकी सिद्धांत को अंतिम रूप प्रदान करने का श्रेय पीगू को है जिसने से के नियम को श्रम मार्किट के प्रसंग में सूत्रबद्ध किया। पीगू के अनुसार, स्वतंत्र प्रतियोगिता के अंतर्गत आर्थिक प्रणाली की प्रवृत्ति यह रहती है कि श्रम मार्किट में अपने-आप पूर्ण रोजगार प्रदान करे। मजदूरी के ढांचे में कठोरता तथा स्वतंत्र मार्किट-अर्थव्यवस्था के कार्यकरण में हस्तक्षेप से बेरोजगारी आती है। जब ट्रेड यूनियनों को मान्यता देकर और न्यूनतम मजदूरी नियम आदि बनाकर राज्य हस्तक्षेप करता है तथा श्रम एकाधिकारात्मक रवैया अपना लेता है, तो मजदूरी बढ़ जाती है और बेरोजगारी आती है। यदि सरकार के हस्तक्षेप हटा दिये जाएं और प्रतियोगिता की शक्तियों को स्वतंत्रता से कार्य करने दिया जाए, तो मजदूरी-दरों को घटाने-बढ़ाने से पूर्ण रोजगार हो जाएगा। जैसा पीगू ने लक्ष्य किया है, ''पूर्ण रूप से स्वतंत्र प्रतियोगिता के रहते... सदैव एक ऐसी प्रवृत्ति प्रबल रूप से कार्यशील रहेगी जिससे मजदूरी की दरें मांग के साथ इस तरह संबद्ध हों कि प्रत्येक व्यक्ति रोजगार में लगा रहे।'' पीगू द्वारा प्रस्तुत समीकरण $N = qY/W$ समस्त प्रस्थापना की व्याख्या कर देता है। इस समीकरण में N रोजगार में लगे श्रमिकों की संख्या है, q मजदूरी तथा वेतन के रूप में अर्जित राष्ट्रीय आय का भाग है, Y राष्ट्रीय आय है और W को घटाकर N को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार पूर्ण रोजगार की कुंजी यह है कि मुद्रा-मजदूरी घटा दी जाए। इसे चित्र 5.3 में स्पष्ट किया गया है। चित्र के भाग (A) में S श्रम का पूर्ति वक्र है और D श्रम का मांग वक्र है। E पर दोनों वक्रों का कटान पूर्ण रोजगार के बिंदु N_0 को तथा वास्तविक मजदूरी W/P को प्रकट करता है जिस पर पूर्ण रोजगार उपलब्ध होता है। यदि वास्तविक मजदूरी को अपेक्षाकृत अधिक ऊंचे स्तर W/P_1 पर रखा जाए, तो श्रम की मांग से पूर्ति sd बढ़ जाती है और N_0N_F श्रम बेरोजगार रहता है। बेरोजगारी तभी समाप्त होती है और पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त होता है जब मजदूरी को घटाकर W/P पर ले आया जाए। यह चित्र के भाग (B) में दिखाया गया है। MPL श्रम की सीमांत उत्पादकता का वक्र है, जो मांग वक्र की तरह नीचे की ओर ढ़ालू है। इसका कारण यह है कि जब अधिक श्रम रोजगार पर लगाया जाता है तो उसकी सीमांत उत्पादकता कम हो जाती है क्योंकि हर श्रमिक को मजदूरी उसकी सीमांत उत्पादकता के बराबर ही प्राप्त होती है इसलिए मजदूरी के W/P_1 से W/P होने पर अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर N_F को प्राप्त होती है।

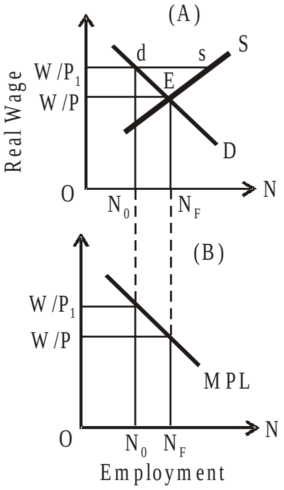

चित्र 5.3

रोजगार के क्लासिकी मॉडल में, मुद्रा-मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी में परिवर्तन प्रत्यक्षत: संबद्ध तथा समानुपाती होते हैं। *जब मुद्रा-मजदूरी में कटौती होती है तो वास्तविक मजदूरी भी उतनी ही मात्रा में घट जाती है, जो बेरोजगारी को कम कर देती है और अंत में अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार ले आती है। यह संबंध इस धारणा पर आधारित है कि कीमतें मुद्रा की मात्रा के समानुपातिक होती हैं। तर्क यह दिया जाता है कि प्रतियोगितामूलक अर्थव्यवस्था में मुद्रा-मजदूरी में कमी, उत्पादन की लागत तथा वस्तुओं की कीमत घटा देती है जिससे उनकी मांग बढ़ जाती है। वस्तुओं की बढ़ी हुई मांग को पूरा करने के लिए उनका उत्पादन करने को अधिक श्रमिक रोजगार पर लगाए जाते हैं।

नोट

रोजगार जब बढ़ता जाता है तो कुल उत्पादन भी बढ़ता है। जब तक पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं प्राप्त करती। परंतु जब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर पर होती है तो कुल उत्पादन स्थिर हो जाता है। अतः पूँजी का स्टॉक, प्रौद्योगिकी ज्ञान और साधन दिये होने पर कुल उत्पादन और रोजगार की मात्रा में एक निश्चित संबंध पाया जाता है। कुल उत्पादन मजदूरी की संख्या का बढ़ता फलन है। इसे चित्र 5.4 में दिखाया गया है। वहाँ $Q = f(K,T,N)$ जिसमें कुल उत्पादन Q फलन (f) के पूँजी स्टॉक K का, प्रौद्योगिकी ज्ञान T का और मजदूरों की संख्या N का। यह उत्पादन फलन दर्शाता है कि कुल उत्पादन, पूँजी स्टॉक तथा प्रौद्योगिकी ज्ञान दिया होने पर, मजदूरों की संख्या का बढ़ता फलन है। चित्र में कुल उत्पादन OQ चित्र 5.3 के पूर्ण रोजगार स्तर N_F के अनुरूप है।

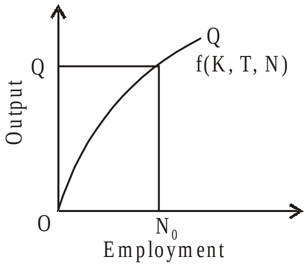

चित्र 5.4

क्लासिकी अर्थशास्त्री यह विश्वास रखते थे कि सामान्य प्रतियोगी हालात में बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार कायम किया जाएगा। मालिकों में मजदूर काम पर लगाने के लिए आपस में प्रतियोगिता होने पर भी मजदूरी पूर्ण रोजगार-स्तर से अधिक नहीं हो सकती और अर्थव्यवस्था में लागतजन्य स्फ़ीति की कोई संभावना नहीं होगी। फिर, से का नियम लागू होने के कारण, उत्पादन का पूर्ण रोजगार इसी स्तर तक मांग पैदा करेगा। समस्त मांग में वृद्धि ही स्फीति का कारण होती है। लेकिन ब्याज की दर का तंत्र (mechanism) समस्त मांग को कुल उत्पादन से अधिक बढ़ने से रोकता है। पुनः स्फीति इस कारण भी होती है जब मुद्रा की मात्रा में इतनी वृद्धि होती है कि बढ़ रहा उत्पादन उसे खपा नहीं सकता। लेकिन यह भी संभव नहीं है, क्योंकि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि केवल निरपेक्ष (absolute) कीमत स्तर बढ़ाती है न कि सापेक्ष कीमतें। अतः क्लासिकी प्रणाली में बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है।

क्या आप जानते हैं स्वतंत्र प्रतियोगिता के अंतर्गत आर्थिक प्रणाली की प्रवृत्ति यह रहती है कि श्रम मार्किट में अपने-आप पूर्ण रोजगार प्रदान करे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. से का बाजार नियम रोजगार के .... का मर्म है।
2. से के अनुसार, पूर्ति स्वयं अपनी .... पैदा कर लेती है।
3. से का मार्किट नियम, अपने व्यापक रूप में, स्वतंत्र .... अर्थव्यवस्था की ही व्याख्या है।

5.2 पूर्ण क्लासिकी मॉडल का सारांश (Summary of Complete Classical Model)

रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है जिसके अनुसार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की सामान्य स्थिति पाई जाती है और बेरोजगारी की असामान्य स्थिति असामान्य होती है। क्लासिकी सिद्धांत में उत्पादन और रोजगार का निर्धारण अर्थव्यवस्था के श्रम, वस्तु और मुद्रा बाजारों में होता है, जिन्हें चित्र 5.5 में दर्शाया गया है। इन बाजारों में मांग और पूर्ति की शक्तियां अंततः पूर्ण रोजगार ला देंगी। सरकार द्वारा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप से पूर्ण रोजगार नहीं होगा। पूर्ण रोजगार से उनका अभिप्राय अनैच्छिक बेरोजगारी का न पाया जाना है।

नोट

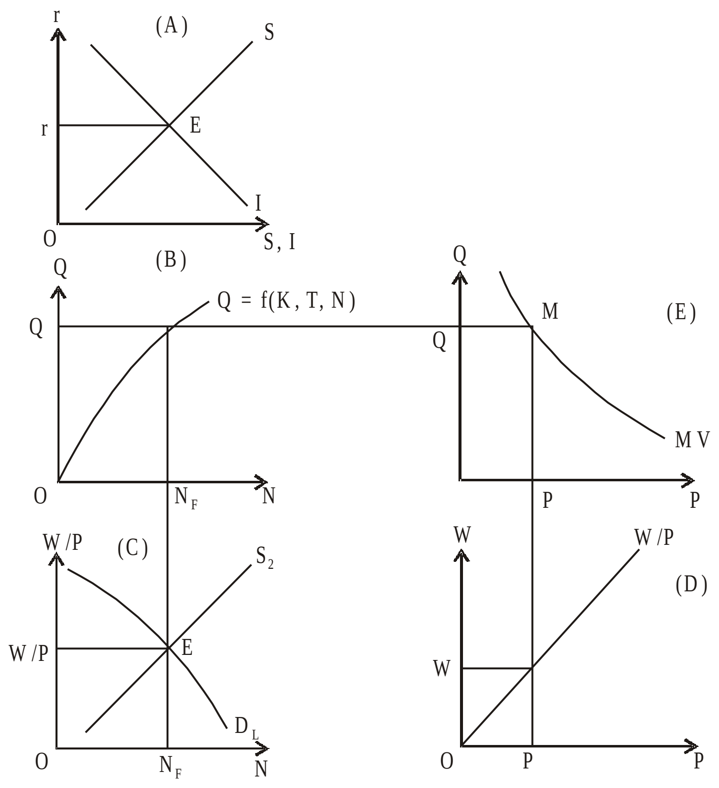

चित्र 5.5

क्लासिकी विश्लेषण में उत्पादन और रोजगार स्तर समस्त उत्पादन फलन, श्रम की मांग और श्रम की पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। पूंजी का स्टॉक, प्रौद्योगिक ज्ञान और अन्य आगतें (inputs) दी होने पर कुल उत्पादन और रोजगार की मात्रा में एक निश्चित संबंध पाया जाता है जिसे $Q = f(K, T, N)$ किया जाता है जैसा चित्र के पेनल *(B)* में दर्शाया गया है। दूसरे शब्दों में, कुल उत्पादन (Q) है (f) है, पूंजी स्टॉक (K), प्रौद्योगिकी (T) और श्रम संख्या (N) का। K और T दी होने पर कुल श्रम संख्या का (बढ़ता) फलन $Q = f(N)$ है। परंतु एक सीमा के बाद जब अधिक श्रमिक जाते हैं तो घटते सीमांत प्रतिफल (diminishing marginal returns) प्राप्त होते हैं।

श्रम बाजार में श्रम की मांग और श्रम की पूर्ति अर्थव्यवस्था में उत्पादन और रोजगार के स्तर को विचलित करती है। श्रम की मांग कुल उत्पादन पर निर्भर करती है। अधिक उत्पादन से श्रम की मांग बढ़ती है और श्रम की मांग उसकी सीमांत भौतिक उत्पादकता *(MPP)* पर निर्भर करती है जो अधिक कर लगाने से कम होती है। श्रम की पूर्ति मजदूरी दर पर निर्भर करती है $D_L = f(W/P)$। मजदूरी दर का वह बढ़ता फलन है। दूसरी ओर, श्रम की मांग मजदूरी दर पर निर्भर करती है $S_L = f(W/P)$। और उनका घटता फलन है। इस प्रकार, श्रम की मांग और पूर्ति दोनों वास्तविक मजदूरी दर (W/P) के कारण है। श्रम के मांग और पूर्ति वक्रों का कटान बिंदु E संतुलित मजदूरी दर (W/P) पर पूर्ण रोजगार का स्तर निर्धारित करता है, $D_L = S_L = N_F$, जैसे कि पेनल (C) में दिखाया गया है।

वस्तु बाजार, बचत और निवेश की समानता ($I = S$) से संतुलन में होता है जिससे पूर्ण रोजगार बिंदु E पर इन दोनों में समानता ब्याज दर के तंत्र (mechanism) द्वारा होती है जिससे पूर्ण रोजगार पर वस्तुओं की मांगी गई मात्रा उनकी पूर्ति की मात्रा के बराबर होती है। बचत ब्याज दर का (सीधा) फलन है, $I = f(r)$ और निवेश ब्याज दर का (विपरीत) फलन होता है, $S = f(r)$।

नोट

मुद्रा बाजार में संतुलन, मुद्रा की मांग और पूर्ति द्वारा होता है। इसे मुद्रा परिणाम सिद्धांत द्वारा समझाया जाता है। इसके अनुसार, कीमत स्तर मुद्रा पूर्ति का फलन है, $P = f(MV)$ । कीमतों में परिवर्तन मुद्रा की मात्रा के समानुपाती होते हैं। मुद्रा बाजार में संतुलन को $MV = PT$ समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है जहां MV मुद्रा की पूर्ति है और PT मुद्रा की मांग। मुद्रा बाजार का संतुलन कीमत स्तर को उत्पादन के पूर्ण रोजगार स्तर के साथ समरूपता की व्याख्या करता है, जो पेनल (E) और (B) हैं। रेखा MQ के साथ संबद्ध हैं।

कीमत स्तर OP को कुल उत्पादन (Q) और मुद्रा की मात्रा (MV) द्वारा निर्धारित किया जाता है जैसे कि पेनल (B) और (E) में दर्शाया गया है। फिर, मुद्रा मज़दूरी के साथ मेल खाती वास्तविक मजदूरी निर्धारित की जाती है। जैसाकि पेनल (D) में W/P वक्र द्वारा दिखाया गया है। कीमत स्तर के बढ़ने से जब मुद्रा मजदूरी बढ़ती है तो वास्तविक मजदूरी (W/P) कम होती है जिससे उत्पादन और रोजगार के स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूर्ण रोजगार के स्तर की प्राप्ति के लिए मुद्रा मजदूरी कम करनी चाहिए। अत: पूर्ण रोजगार की स्थिति कायम रखने के लिए क्लासिकी अर्थशास्त्री लचीली कीमत-मजदूरी नीति के पक्ष में थे।

टास्क रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. क्लासिकी अर्थशास्त्री ब्याज को बचत का मानते हैं–
   (अ) पुरस्कार (ब) अनुमान
   (स) भाग (द) इनमें से कोई नहीं।
5. मुद्रा के पाए जाने पर यह आधारभूत .... बदल नहीं जाता।
   (अ) सिद्धांत (ब) नियम
   (स) विनिमय (द) विनियम।
6. बचत ब्याज दर का बढ़ता फलन मानी जाती है और निवेश ब्याज दर का माना जाता है–
   (अ) घटता फलन (ब) बढ़ता फलन
   (स) लागत (द) इनमें से कुछ नहीं।

5.3 क्लासिकी सिद्धांत की केन्ज़ द्वारा आलोचना (Keynes' Criticism of Classical Theory)

रोजगार के क्लासिकी सिद्धांत की अवास्तविक धारणाओं के कारण केंज़ ने इस सिद्धांत की कड़ी आलोचना की है। उसने अपनी पुस्तक *General Theory* में लिखा है कि "क्लासिकी सिद्धांत विशेष स्थिति की जिन विशिष्टताओं को मानकर चलता है, वे उस आर्थिक समाज से संबंध नहीं रखतीं जिसमें हम वस्तुत: रहते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि जब हम उन्हें यथार्थ अनुभवों पर लागू करते हैं, तो उनका शिक्षण भ्रमोत्पादक तथा विनाशकारी सिद्ध होता है। हम अपनी अर्थव्यवस्था से जिस प्रकार के व्यवहार की आशा रखते हैं, यह उसी ढंग को व्यक्त करता है। परंतु यह मान लेना कि वस्तुत: ऐसा होता है, कठिनाइयों से आंख मूंद लेना है।"

केन्ज़ ने निम्नलिखित कारणों से क्लासिकी सिद्धांत पर प्रहार किया है–

1. **अल्परोजगार संतुलन (Under-employment Equilibrium)**–केन्ज़ ने अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार

संतुलन की आधारभूत क्लासिकी धारणा अस्वीकार कर दी। उसने इस धारणा को अवास्तविक बताया। वह पूर्ण रोजगार को एक विशिष्ट स्थिति मानता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में सामान्य स्थिति अल्परोजगार की रहती है। इसका कारण यह है कि पूँजीवादी समाज से के नियमानुसार नहीं काम करता और पूर्ति सदैव मांग से बढ़ जाती है। हम देखते हैं कि वर्तमान मजदूरी दर पर, या उससे भी कम पर, लाखों श्रमिक काम करने को तैयार रहते हैं, पर उन्हें काम नहीं मिलता। इस प्रकार, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में अनैच्छिक (involuntary) बेरोजगारी का अस्तित्व (जिसे क्लासिकी अर्थशास्त्री एकदम मानते ही नहीं) यह सिद्ध करता है कि अल्परोजगार संतुलन एक सामान्य स्थिति है और पूर्ण रोजगार संतुलन की स्थिति असाधारण तथा आकस्मिक है।

2. **सामान्य से अधिक उत्पादन संभव (Over-production Possible)**–केन्ज़ ने, से के बाजार नियम का खंडन किया कि पूर्ति स्वयं अपनी मांग पैदा करती है। उसकी धारणा है कि साधन-स्वामियों द्वारा अर्जित समस्त आय उन वस्तुओं के क्रय में खर्च नहीं होती जिनके उत्पादन में वे सहायक होते हैं। अर्जित आय का कुछ भाग बचा लिया जाता है, जो अपने आप निवेश नहीं हो जाता क्योंकि बचत तथा निवेश पृथक-पृथक कार्य हैं। इसलिए जब समस्त अर्जित आय उपभोक्ता वस्तुओं पर खर्च नहीं होती और उसका कुछ भाग बच जाता है, तो कुल मांग में कमी हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप सामान्य अति-उत्पादन होता है, क्योंकि वह सब विक्रय नहीं हो पाता जिसका उत्पादन हुआ है। इससे, आगे चलकर, **सामान्य बेरोजगारी** आती है। इस प्रकार केंज़ ने इस नियम का सहारा लेकर, कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति एक से कम रहती है, से के नियम को निरर्थक ठहराया।

3. **अर्थव्यवस्था में स्वतः समायोजन असंभव (Self-adjustment Impossible in the Economy)**–केन्ज़, क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के इस विचार से सहमत नहीं था कि पूर्ण रोजगार संतुलन की स्वतः तथा स्वयं समायोजित प्रक्रिया के लिए अबंध नीति (laissez faire) आवश्यक है। उसने लक्ष्य किया कि अपने समाज के असमान ढांचे के कारण पूँजीवादी प्रणाली स्वतः तथा स्वयं समायोजित नहीं है। उसमें दो प्रधान वर्ग होते हैं–धनी तथा गरीब। धनिकों के पास बहुत धन होता है परंतु वे उस सारे धन को उपभोग पर नहीं व्यय करते। गरीबों के पास उपभोक्ता वस्तुएं खरीदने के लिए मुद्रा का अभाव होता है। इस प्रकार कुल पूर्ति के मुकाबले कुल मांग की सामान्य न्यूनता रहती है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में अति-उत्पादन तथा बेरोज़गारी आती है। वस्तुतः 'बड़ी मंदी' इसी का परिणाम थी। यदि पूँजीवादी व्यवस्था, स्वतः तथा स्वयं समायोजित होती, तो ऐसा कभी न होता। इसलिए केंज़ ने इस बात का समर्थन किया कि अर्थव्यवस्था के भीतर पूर्ति तथा मांग का समायोजन करने के लिए राजकोषीय तथा मौद्रिक विधियों के माध्यम से राज्य हस्तक्षेप करे।

4. **आय परिवर्तनों द्वार बचत और निवेश में समानता (Equality between Saving and Investment through Income Changes)**–क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का यह विश्वास था कि पूर्ण रोजगार के स्तर पर बचत तथा निवेश बराबर होते हैं तथा यदि उनमें किसी प्रकार का विचलन हो, तो ब्याज की दर का तंत्र उनमें समानता ला देता है। केन्ज़ के अनुसार, बचत का स्तर ब्याज की दर पर नहीं बल्कि आय के स्तर पर निर्भर करता है। इसी प्रकार, निवेश को ब्याज की दर ही नहीं बल्कि पूँजी की सीमांत उत्पादकता भी निर्धारित करती है। यदि व्यवसाय प्रत्याशाएँ कम हों, तो ब्याज की नीची दर में निवेश नहीं बढ़ेगा। यदि निवेश से बचत बढ़ जाए, तो इसका मतलब है लोग उपभोग पर अधिकृत कम व्यय करते हैं। परिणामतः मांग गिर जाती है, अति-उत्पादन होता है और निवेश आय, तथा उत्पादन में कमी हो जाती है। इससे बचत घट जाएगी और अंततः आय के अपेक्षाकृत पर बचत तथा निवेश में समानता स्थापित हो जाएगी। इस प्रकार, ब्याज की दर की अपेक्षा रूप में परिवर्तन से बचत तथा निवेश में समानता आती है।

5. **मजदूरी कटौती का खंडन (Refutation of Wage Cut)**–केंज़ ने पीगू के इस सिद्धांत का खंडन किया कि मुद्रा-मजदूरी में कटौती करने से अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार उपलब्ध किया जा सकता है। पीगू के विश्लेषण में सबसे बड़ी भ्रान्ति यह रही की उसने उस तर्क को, जो विशिष्ट उद्योग से पीगू होता है, समस्त अर्थव्यवस्था पर लागू कर दिया। मजदूरी की दर में कमी, लागतों तथा मांग को बढ़ाकर एक उद्योग में तो रोजगार बढ़ा सकती है

नोट

परंतु समस्त अर्थव्यवस्था के लिए इस प्रकार की रोजगार घट जाता है। जब मजदूरी में सामान्य कटौती होती है, तो श्रमिकों की आय घट जाती है परिणामत: कुल मांग गिर जाती है जिससे रोजगार में कमी आती है।

व्यावहारिक दृष्टि से भी केन्ज़ ने मजदूरी में कटौती करने की नीति का कभी समर्थन नहीं किया। आज के युग में श्रमिकों ने मजबूत ट्रेड यूनियनें बना ली हैं जो मजदूरी घटाने की नीति का विरोध करती हैं। ये इसके विरोध में हड़ताल करेंगे। परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में जो अशांति उत्पन्न होगी, उससे आय घटेगी। फिर, सामाजिक न्याय की मांग भी यही है कि यदि लाभ को न छेड़ा जाए तो मजदूरी भी नहीं घटनी चाहिए।

केंज़ ने इस क्लासिकी मत को भी नहीं स्वीकार किया कि मुद्रा-मजदूरी तथा वास्तविक-मजदूरी के मध्य प्रत्यक्ष समानुपातिक संबंध होता है। उसके अनुसार, इन दोनों में उल्टा संबंध होता है। जब कुल मजदूरी गिरती है, तो वास्तविक मजदूरी बढ़ती है, और विलोमश: भी। इसलिए, जैसा कि परंपरावादियों का विश्वास था, वैसा नहीं होगा और मुद्रा-मजदूरी में कमी होने से वास्तविक मजदूरी घटी नहीं बल्कि बढ़ेगी ही, क्योंकि मुद्रा-मजदूरी में कटौती से उत्पादन की लागत तथा कीमतें अधिक घटेंगी। इस प्रकार परंपरावादियों का यह मत टिक नहीं पाता कि वास्तविक मज़दूरी में कमी होने से रोजगार बढ़ेगा। पर, केंज का यह विश्वास था कि मुद्रा-मजदूरी में कमी करने मौद्रिक तथा राजकोषीय विधियों के माध्यम से रोजगार को अधिक बढ़ाया जा सकता है। जब मजदूरी तथा कीमतें घटाने के संस्थानिक विरोध इतने प्रबल हैं तो इस प्रकार की नीति को चलन में नहीं लाया जा सकता।

6. राज्य हस्तक्षेप का समर्थन (Support of State Intervention)—केन्ज़ पीगू के इस मत से सहमत नहीं हैं कि "हमारी उत्पादकीय शक्ति के पूर्णरूप से उपयोग कर सकने की असफलता के अस्थायी कुसमायोजन ही उत्तरदायी है।" पूँजीवादी व्यवस्था ऐसी है कि यदि उसे अकेले कर दिया जाए, तो वह उत्पादकीय शक्तियों का पूर्ण प्रयोग करने में असमर्थ रहती है। इसलिए राज्य की ओर से हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है। आर्थिक क्रिया के स्तर को बढ़ाने के लिए राज्य सीधे निवेश कर सकता है, अथवा निजी निवेश को अनुपूरित कर सकता है। वह ट्रेड यूनियनों को मान्यता देने वाले, हम मजदूरी नियत करने वाले और सामाजिक सुरक्षा उपायों के माध्यम से श्रमिकों को राहत देने का कानून बना सकता है। 'इसलिए' जैसा कि डिल्लर्ड का मत है, "श्रम यूनियनों तथा उदार श्रम विधान का विरोध करना अर्थशास्त्र की दृष्टि से भले ही अच्छा समझा जाए, परंतु राजनीतिक दृष्टि से बुरा है।" अत: पूर्ण रोजगार उपलब्ध करने के लिए अर्थव्यवस्था के साधनों का पूरी तरह प्रयोग करने के लिए केन्ज़ राज्य-कार्रवाई का समर्थन करता है।

7. अल्पकालीन विश्लेषण (Short-run Analysis)—परंपरावादी स्वयं-समायोजित प्रक्रिया के माध्यम केन्ज़ से दीर्घकाल में पूर्ण रोजगार में विश्वास करते थे। केन्ज़ में इतना धैर्य नहीं था कि दीर्घकाल तक प्रतीक्षा कर सकें, क्योंकि वह तो यह मानता था कि "दीर्घकाल में तो हम सब मर जाते हैं।" जैसाकि शूम्पीटर ने लक्ष्य किया है, "उसका जीवन-दर्शन मूलत: अल्पकालीन दर्शन था।" उसका विश्लेषण अल्पकालीन साधनों तक सीमित है। परंपरावादियों के विपरीत, वह यह मान लेता है कि रुचियाँ, स्वभाव, उत्पादन की तकनीकें, श्रम की पूर्ति इत्यादि अल्पावधि के दौरान स्थिर रहती हैं और इसलिए वह मांग पर दीर्घकालीन प्रभाव को छोड़ देता है। यह मानकर कि उपभोग मांग स्थिर रहती है, वह इस बात पर बल देता है कि बेरोजगारी दूर करने के लिए निवेश मांग बढ़ाई जाए। परंतु इस प्रकार जो संतुलन-स्तर प्राप्त होता है, वह पूर्ण रोजगार की बजाय अल्परोजगार का स्तर होता है।

8. सट्टा मांग का महत्त्व (Importance of Speculative Demand) —क्लासिकी अर्थशास्त्री विश्वास रखते थे कि लेनदेन तथा सतर्कता उद्देश्यों के लिए मुद्रा की मांग की जाती है। वे मुद्रा की सट्टा मांग को नहीं मानते थे क्योंकि सट्टा उद्देश्य के लिए रखी गई मुद्रा निष्क्रिय शेषों से संबद्ध है। परंतु केंज़ इस मत से सहमत नहीं हैं। उसने मुद्रा की सट्टा मांग के महत्त्व पर बल दिया। उसने यह बताया कि लेनदेन और सतर्कता उद्देश्यों के लिए रखी गई परिसम्पत्तियों से अर्जित ब्याज, नीची ब्याज दर पर बहुत कम हो सकता है। परंतु नीची ब्याज दर पर मुद्रा की सट्टा मांग बहुत अधिक होगी। इसलिए ब्याज की दर एक विशेष न्यूनतम स्तर से नहीं गिरेगी और मुद्रा की सट्टा मांग

नोट

पूर्णतया ब्याज लोचदार होगी। यह केंज़ का तरलता जाल (liquidity trap) है जिसका क्लासिकी अर्थशास्त्री विश्लेषण करने में असमर्थ थे।

इस संदर्भ में केंज़ ने यह भी स्पष्ट किया कि ब्याज दर धनात्मक होने पर, बचत के निवेश से अधिक होने की संभावना रहती है। तरलता जाल, ब्याज दर को एक निश्चित न्यूनतम दर से नीचे गिरने से रोकता है। यह चित्र 5.6 में दर्शाया गया है जहाँ *SS* बचत वक्र है और *II* निवेश वक्र। यदि तरलता जाल Or_1 ब्याज दर पर हो तो यह ब्याज दर को *Or* तक गिरने से रोकता है और बचत और निवेश की समानता *E* बिंदु पर नहीं लाई जा सकती। Or_1 ब्याज दर पर तरलता जाल की अवस्था में निवेश से बचत i_1s_1 अधिक है। अतः अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार के स्तर *E* पर स्थापित नहीं होगी जहां बचत और निवेश बराबर हैं बल्कि अल्परोजगार संतुलन स्तर जहां निवेश से बचत अधिक होती है।

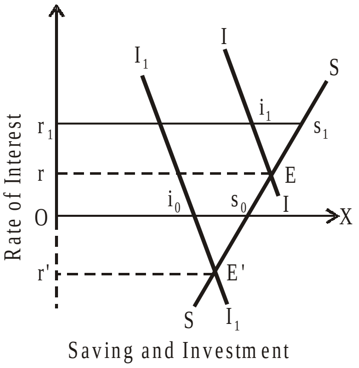

चित्र 5.6

केन्ज़ ने आगे बताया कि ब्याज दर शून्य पर गिर जाने से भी निवेश से बचत अधिक होगी। इसे भी चित्र 5.6 में दर्शाया गया है जहां *II* वक्र बाईं ओर सरक कर I_1I_1 हो जाता है और निवेश में गिरावट दिखाता है। ऐसी संभावना पाई जाती है। शून्य ब्याज दर *(O)* पर निवेश से बचत i_0s_0 अधिक है। इस स्थिति में, क्लासिकी बचत और निवेश वक्र E_1 बिंदु पर काटते हैं जब ब्याज पर *Or'* ऋणात्मक है। यह असंगत स्थिति है।

9. मुद्रा निष्प्रभावी नहीं (Money not Neutral)–क्लासिकी अर्थशास्त्री मुद्रा को निष्प्रभावी मानते थे। इसलिए उन्होंने मौद्रिक सिद्धांत में उत्पादन, रोजगार और ब्याज दर को शामिल नहीं किया था। उनके अनुसार, उत्पादन और रोजगार का स्तर और ब्याज की संतुलन दर वास्तविक शक्तियों द्वारा निर्धारित होते हैं। केन्ज़ ने क्लासिकी मत की आलोचना की कि मौद्रिक सिद्धांत मूल्य सिद्धांत से भिन्न है। उसने मौद्रिक सिद्धांत को मूल्य सिद्धांत के साथ जोड़ दिया और ब्याज सिद्धांत को मौद्रिक सिद्धांत के क्षेत्र में ला दिया जो उसने ब्याज दर को मौद्रिक तत्त्व मानकर किया। उसने उत्पादन सिद्धांत द्वारा मौद्रिक सिद्धांत को मूल्य सिद्धांत के साथ जोड़ा। ऐसा उसने ब्याज दर के माध्यम से मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर में संबंध स्थापित करके किया। उदाहरणार्थ, जब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है तो ब्याज दर गिरती है, निवेश बढ़ता है आय और उत्पादन बढ़ते हैं, माँग बढ़ती है, साधन लागतें और मजदूरी बढ़ते हैं, सापेक्ष कीमतें बढ़ती हैं और आखिरकार सामान्य कीमत-स्तर में वृद्धि होती है। इस प्रकार, केंज़ ने अर्थव्यवस्था के मौद्रिक और वास्तविक क्षेत्रों को जोड़ दिया।

इस प्रकार, रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत अवास्तविक और पूंजीवादी विश्व की वर्तमान आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. मजदूरी के ढाँचे में कठोरता तथा स्वतंत्र मार्किट-अर्थव्यवस्था के कार्यकरण में हस्तक्षेप से बेरोजगारी आती है।
8. यदि मुद्रा की मात्रा को दोगुना किया जाता है तो कीमत स्तर भी दुगुना हो जाएगा।
9. रोजगार के क्लासिकी मॉडल में मुद्रा-मजदूरी तथा वास्तविक मजदूरी में परिवर्तन प्रत्यक्षतः असंबद्ध तथा असमानुपाती होते हैं।
10. रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है।

नोट

5.4 सारांश (Summary)

- क्लासिकी सिद्धांत यह मानता है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में बिना स्फीति के पूर्ण रोजगार पाया जाता है। मजदूरी-कीमत लोचशीलता (flexibility) दी होने पर, आर्थिक प्राणाली में स्वतः (automatic) शक्तियाँ पाई जाती हैं जो पूर्ण रोजगार कायम रखने की प्रवृत्ति रखती हैं और उसी स्तर पर उत्पादन करती हैं। अतः पूर्ण रोजगार एक सामान्य स्थिति मानी जाती है और इस स्तर से विचलन (deviation) कुछ असामान्य स्थिति होती है जो अपने पूर्ण रोजगार की ओर अग्रसर होती है।

5.5 शब्दकोश (Keywords)

- बाजार नियम (Law of Market) – बाजार के नियम।
- वस्तु-विनिमय (Barter) – वस्तु की अदल-बदल।

5.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. रोजगार का क्लासिकी सिद्धांत क्या है? समझाइए।
2. से का बाजार नियम क्या है? बताइए।
3. पूर्ण क्लासिकी मॉडल का सारांश लिखिए।
4. 'क्लासिकी सिद्धांत की केन्ज़ द्वारा आलोचना' पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. क्लासिकी सिद्धांत	2. माँग	3. वस्तु-विनिमय	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. गलत		

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी** : रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010

नोट

इकाई–6: कीन्स का रोजगार सिद्धांत (Keynesian Theory of Employment)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 कीन्स का रोजगार सिद्धांत (Keynesian Theory of Employment)

6.2 प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand)

6.3 साम्य निर्धारण (Equilibrium Determination)

6.4 प्रतिष्ठित तथा कीन्स के रोजगार सिद्धांत की तुलना (Comparison of Classical and Keynesian theory of Employment)

6.5 सारांश (Summary)

6.6 शब्दकोश (Keywords)

6.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

6.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- कीन्स का रोजगार सिद्धांत जानने हेतु।
- प्रभावपूर्ण माँग का अध्ययन करने हेतु।
- साम्य निर्धारण जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

कुल प्रभावपूर्ण माँग में दो बातें सम्मिलित होती हैं (*i*) उपभोग वस्तुओं की माँग, तथा (*ii*) पूँजीगत वस्तुओं की माँग अथवा निवेश माँग। यदि उपभोग माँग (व्यय) में वृद्धि कुल आय में होने वाली वृद्धि से अधिक है, तो यह अंतर अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी को बताता है। आय व रोजगार में वृद्धि करने हेतु आय व उपभोग में होने वाले अंतर को निवेश द्वारा मिटाया जाता है। इस प्रकार रोजगार का स्तर, निवेश के स्तर पर निर्भर करता है। अत:, रोजगार को बढ़ाने के लिए निवेश द्वारा प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि की जाती है।

6.1 कीन्स का रोजगार सिद्धांत (Keynesian Theory of Employment)

कीन्स ने प्रतिष्ठित सिद्धांत को एक विशेष सिद्धांत का नाम दिया, जो कि उनके सामान्य सिद्धांत के सीमित दायरे में ही लागू होता है। उनके अनुसार निजी संपत्ति पर आधारित आर्थिक प्रणाली की सामान्य स्थिति में व्यापक

नोट

बेरोजगारी से लेकर पूर्ण रोजगार तक कुछ भी हो सकता है। उन्होंने प्रतिष्ठित विचारधारा पर आगे बढ़कर प्रहार किए तथा आर्थिक विचार व नीति में क्रांति लाते हुए अर्थशास्त्र का विकास किया।

जे.एम. कीन्स प्रथम अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने रोजगार का एक व्यवस्थित सिद्धांत दिया। सन् 1930 में प्रतिष्ठित सिद्धांत के असफल हो जाने पर उन्होंने इसकी आलोचना की। उस समय बहुत कम ब्याज दर होने पर भी निवेश में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई। इसी समय *कीन्स* ने प्रभावपूर्ण माँग का प्रतिपादन आय व रोजगार के सिद्धांत को समझाने के लिए प्रभावपूर्ण माँग की अवधारणा प्रस्तुत की। प्रभावपूर्ण माँग की इस अवधारणा ने आर्थिक सिद्धांत में क्रांति ला दी। इनका सिद्धांत अनुभव सिद्ध रहा है। यह सिद्धांत उन तथ्यों व कारणों का वर्णन करता है, जो कि आय व रोजगार के स्तर को निर्धारित करते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. जे.एम. कीन्स प्रथम अर्थशास्त्री थे, जिन्होंने .... का एक व्यवस्थित सिद्धांत दिया।
2. कीन्स ने प्रतिष्ठित सिद्धांत को एक .... का नाम दिया।
3. .... का सिद्धांत, कीन्स के राजेगार सिद्धांत में सामरिक महत्त्व रखता है।

6.2 प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand)

प्रभावपूर्ण माँग का सिद्धांत, *कीन्स* के रोजगार सिद्धांत में सामरिक महत्त्व रखता है। यह वह बिंदु है, जहाँ पर सामूहिक माँग वक्र तथा सामूहिक पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते हैं। दूसरे शब्दों में, प्रभावपूर्ण माँग-अर्थव्यवस्था में वह माँग स्तर है जो कि संबंधित पूर्ति द्वारा पूर्णतया समर्थित होता है। इस प्रकार, उद्यमी न तो पूर्ति में वृद्धि करते हैं और न ही कमी। प्रभावपूर्ण माँग, आय व रोजगार के स्तर को निर्धारित करती है। प्रभावपूर्ण माँग में कमी बेरोजगारी पैदा करती है।

कुल प्रभावपूर्ण माँग में दो बातें सम्मिलित होती हैं (*i*) उपभोग वस्तुओं की माँग, तथा (*ii*) पूँजीगत वस्तुओं की माँग अथवा निवेश माँग। यदि उपभोग माँग (व्यय) में वृद्धि कुल आय में होने वाली वृद्धि से अधिक है, तो यह अंतर अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी को बताता है। आय व रोजगार में वृद्धि करने हेतु आय व उपभोग में होने वाले अंतर को निवेश द्वारा मिटाया जाता है। इस प्रकार रोजगार का स्तर, निवेश के स्तर पर निर्भर करता है। अतः, रोजगार को बढ़ाने के लिए निवेश द्वारा प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि की जाती है।

प्रभावपूर्ण माँग के दो मुख्य निर्धारक होते हैं।

1. सामूहिक माँग फलन, तथा
2. सामूहिक कुल पूर्ति फलन

1. सामूहिक माँग फलन (Aggregate Demand)

एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं व सेवाओं की माँग के कुल योग को सामूहिक माँग कहते हैं। यह कुल उपभोग माँग तथा कुल निवेश माँग का योग होता है। वस्तुओं व सेवाओं की उपभोग की माँग निजी गृहस्थों (निजी उपभोग) तथा सरकार (सार्वजनिक उपभोग) से होती है। तथा इनका कुल योग उपभोग माँग कहलाता है। इसी प्रकार निवेश की माँग (पूँजीगत वस्तुओं की माँग) निजी उद्यमियों (निजी निवेश) व सरकार (सार्वजनिक निवेश) द्वारा की जाती है। इनका योग कुल निवेश माँग कहलाता है।

निजी व्यक्ति, फर्म तथा सरकार जब कभी वस्तुओं व सेवाओं की माँग करते हैं, उपभोग पर किया जाने वाला व्यय

नोट

उपभोग व्यय कहलाता है। तथा वह व्यय जो पूँजीगत वस्तुओं पर किया जाता है, निवेश व्यय कहलाता है। संक्षेप में,

सामूहिक माँग (या व्यय) = उपभोग माँग (या उपभोग माँग + निवेश व्यय (या निवेश माँग)

इस प्रकार सामूहिक माँग अथवा व्यय उपभोग या निवेश व्यय में वृद्धि से बढ़ती है। साथ ही देश में रोजगार के स्तर से यह सीधा संबंध रखती है। यह संबंध चित्र 6.1 में दर्शाया गया है। इस चित्र में X-अक्ष पर रोजगार की मात्रा तथा Y-अक्ष पर कुल व्यय दर्शाये गए हैं। सामूहिक व्यय को फर्मों की कुल प्राप्तियाँ भी समझा जा सकता है। क्योंकि सभी खर्चे उनकी प्राप्ति होते हैं, जो कि वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति करते हैं।

इस प्रकार, **सामूहिक माँग को फर्मों को उन वस्तुओं और सेवाओं के बदले प्राप्त होने वाली मुद्रारूपी प्राप्ति के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है, जो कि एक निश्चित संख्या में मजदूरों द्वारा उत्पादित की गई है।**

जब फर्में समाज द्वारा व सेवाओं पर बढ़े व्यय से अधिक कमाने की आशा करती हैं, वे अधिक श्रमिकों को रोजगार प्रदान करते हैं। चित्र 6.1 में दर्शाया सामूहिक माँग फलन रोजगार के विभिन्न स्तरों पर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं से होने वाली प्रत्याशित मुद्रा प्राप्तियों की सूची को बताता है। कुल उत्पादन पर किया जाने वाला व्यय रोजगार के स्तर में वृद्धि के साथ बढ़ता है तथा रोजगार के स्तर में कमी होने पर घटता है। चित्र 6.1 में रोजगार का स्तर ON_1 से बढ़कर ON_2 हो जाता है, जब उत्पादन पर प्रत्याशित व्यय (AD), OE_1 से बढ़कर OE_2 होता है। यह फलन संबंध AD = f(N) के रूप में दिखाया जा सकता है।

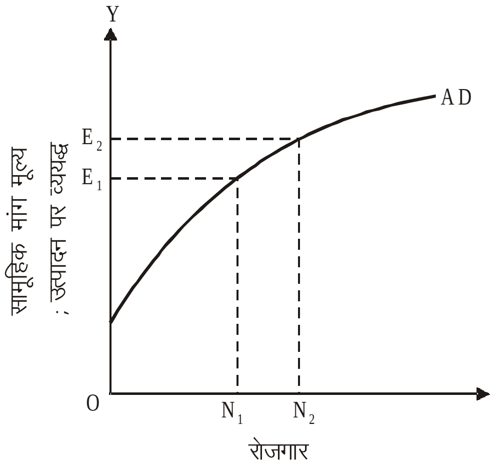

चित्र 6.1 : सामूहिक माँग वक्र

कुल माँग फलन वक्र घटती हुई दर से बढ़ता है, क्योंकि व्यक्ति अपनी उस आय का कम भाग खर्च करते हैं, जो कि उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि से बढ़ती है। अत: सामूहिक माँग का ढाल कम होता जाता है।

2. सामूहिक कुल पूर्ति फलन (Aggregate Supply)

सामूहिक पूर्ति आय व रोजगार स्तर के साम्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। यह एक अर्थव्यवस्था में उत्पादित कुल वस्तुओं व सेवाओं के योग को बताता है। यदि यह मान लिया जाए कि अर्थव्यवस्था में उत्पादित सभी वस्तुएँ व सेवाएँ उपभोग अथवा निवेश के लिए उपलब्ध हैं, तो कुल पूर्ति राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय के बराबर होगी। यह राष्ट्रीय उत्पाद, उत्पादन के चार साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी व उद्यम) की कुल आय के बराबर होगी।

नोट

सामूहिक पूर्ति व मूल्य वह न्यूनतम प्रत्याशित मूल्य है, जिसकी प्राप्ति फर्में एक निश्चित पैमाने पर उत्पादन करने व मजदूरों को नियोजित रखने के लिए चाहता है।

स्टोन्येर व हेग के शब्दों में "किसी दिए गए रोजगार के स्तर पर सामूहिक पूर्ति मूल्य मुद्रा की वह कुल मात्रा है जो कि सभी उद्यमियों को उस उत्पाद के विक्रय से मिलनी चाहिए, जिसको दिए गए व्यक्तियों द्वारा उत्पादित किया गया है, जिन्हें रोजगार देना फायदेमंद है।" सामूहिक पूर्ति मूल्य रोजगार में वृद्धि के साथ बढ़ती है तथा घटने पर घटता है। इसे सूत्र के रूप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है।

AS = f(N)

AS = सामूहिक पूर्ति मूल्य

N = नियोजित मजदूरों की संख्या

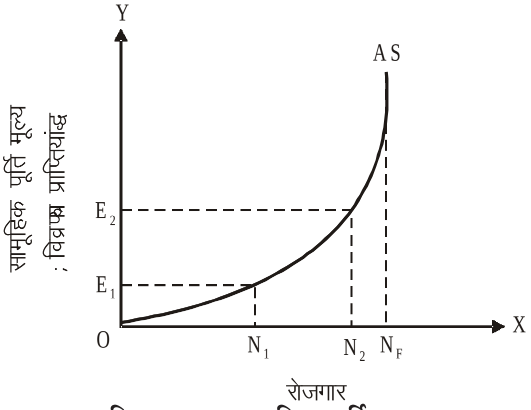

चित्र 6.2 : सामूहिक पूर्ति वक्र

चित्र 6.2 में X-अक्ष पर रोजगार की मात्रा तथा सामूहिक पूर्ति मूल्य (बिक्री प्राप्तियाँ) Y -अक्ष पर दर्शाई गई है। ON_1 रोजगार के स्तर पर कुल व्यय OE_1 है तथा ON_2 रोजगार के स्तर पर कुल व्यय OE_2 है। सामूहिक माँग वक्र की तरह, सामूहिक पूर्ति वक्र भी ऊपर की ओर चढ़ता हुआ होता है। रोजगार के स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप कुल उत्पादन व कुल लागत में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार फर्म अधिक 'न्यूनतम बिक्री प्राप्ति' की प्रत्याशा रखती है। जब सीमांत लागत घटती हुई होती है, तो बढ़ी हुई मात्रा में उत्पादन करना

लाभदायक होता है। सामूहिक पूर्ति वक्र का ढाल रोजगार के स्तर में वृद्धि के साथ बढ़ता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि रोजगार में वृद्धि होने पर सापेक्षिक रूप में कम कुशल साधनों को रोजगार प्राप्त हो जाता है। फलस्वरूप उत्पादन के विभिन्न साधनों के बीच अनुकूलतम अनुपात गड़बड़ा जाता है। उत्पादित हमेशा घटते साधन या पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल के अनुसार ही होता है। इस प्रकार रोजगार में वृद्धि करके उत्पादन में वृद्धि करने से कुल लागत में वृद्धि बढ़ती ही दर से होती हैं। परिणामस्वरूप सामूहिक पूर्ति मूल्य वक्र का ढाल तब तक बढ़ता हुआ होगा, जबकि रोजगार के इच्छुक सभी साधनों को रोजगार न मिल जाए।

पूर्ण रोजगार बिंदु पर लागत या बिक्री प्राप्ति में कोई भी वृद्धि रोजगार में बढ़ोतरी नहीं कर सकती। कुल पूर्ति वक्र ON_1 रोजगार स्तर पर लंबवत हो जाता है। इस बिंदु पर सामूहिक पूर्ति वक्र अधिकतम राष्ट्रीय स्तर पर पूर्णतया बेलोचदार हो जाता है। यहाँ रोजगार व उत्पादन स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

नोट्स एक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं व सेवाओं की माँग के कुल योग को सामूहिक माँग कहते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. प्रभावपूर्ण माँग, आय व .... के स्तर को निर्धारित करती है।
   (अ) रोजगार (ब) बेरोजगार
   (स) लागत (द) वक्र।

नोट

5. रोजगार को बढ़ाने के लिए निवेश द्वारा प्रभावपूर्ण माँग में की जाती है।

(अ) कमी (ब) वृद्धि

(स) व्यय (द) इनमें से कोई नहीं।

6. सामूहिक पूर्ति आय व रोजगार स्तर के ·············· का दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्धारक है।

(अ) असाम्य (ब) प्रकाम्य

(स) साम्य (द) इनमें से कोई नहीं।

6.3 साम्य निर्धारण (Equilibrium Determination)

रोजगार उत्पादन तथा आय का स्तर प्रभावपूर्ण माँग द्वारा निर्धारित होता है, जो कि स्वयं सामूहिक माँगफलन व सामूहिक पूर्तिफलन द्वारा निर्धारित होता है। एक फर्म उस स्तर तक रोजगार में वृद्धि करती है, जब तक सभी फर्मों की कुल प्रत्याशित प्राप्तियाँ (सामूहिक माँग मूल्य) कुल लागत (कुल पूर्तिफलन) से अधिक होती है। दूसरे शब्दों में, जब तक सामूहिक माँग वक्र, सामूहिक पूर्ति वक्र के ऊपर रहता है (जैसा कि चित्र 6.3 में ON_1 रोजगार स्तर पर दर्शाया गया है), फर्म अतिरिक्त लाभ को प्राप्त करने के लिए रोजगार स्तर में बढ़ोतरी करती है। यदि सामूहिक माँग वक्र, सामूहिक पूर्ति कीमत वक्र से नीचे है (जैसा कि चित्र 6.3 में ON_2 रोजगार स्तर पर दिखाया गया है), तो फर्म उच्च लागत से होने वाली हानि के कारण रोजगार स्तर में कमी करेगी। अतः, **साम्य उस बिंदु पर निर्धारित होगा जहाँ दो वक्र एक दूसरे को काटेंगे।**

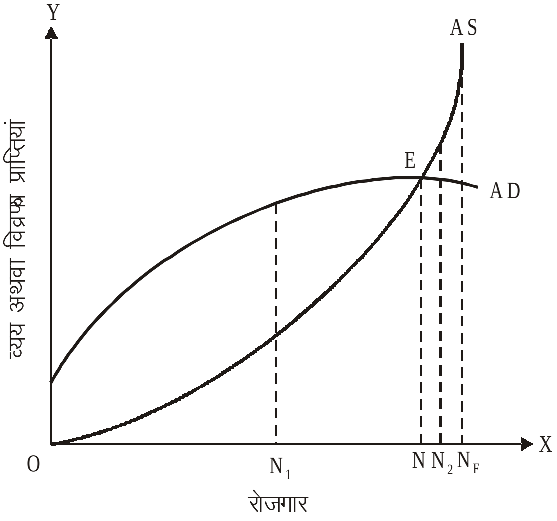

चित्र 6.3 : कीन्स सिद्धांत के अंतर्गत साम्य

चित्र 6.3 में, सामूहिक माँग तथा सामूहिक पूर्ति वक्र एक दूसरे को 'E' बिंदु पर काटते हैं। इस बिंदु (ON बिंदु) को प्रभावपूर्ण माँग अथवा रोजगार का साम्य बिंदु कहते हैं। यह बिंदु रोजगार के साम्य पर उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं पर किए जाने वाले व्यय का प्रतिनिधित्व करता है। संक्षेप में, प्रभावपूर्ण माँग = राष्ट्रीय उत्पाद = रोजगार की मात्रा = राष्ट्रीय आय = राष्ट्रीय व्यय = उपभोग व्यय + निवेश व्यय होता है। इस साम्य बिंदु पर फर्में रोजगार को बढ़ाने अथवा घटाने की प्रवृत्ति नहीं रखती हैं, क्योंकि इस बिंदु पर उनके लाभ अधिकतम होते हैं। मजदूरों के बीच प्रतियोगिता ही रोजगार स्तर को साम्य पर ले जाती है।

जब सामूहिक माँग मूल्य वक्र ऊपर की ओर बढ़ता है, तो रोजगार के स्तर में वृद्धि होती है। अल्पकाल में सामूहिक पूर्ति वक्र में परिवर्तन की संभावना नहीं के बराबर होती है, क्योंकि यह उत्पादन तकनीक, कच्चे माल की उपलब्धता, मशीन, इत्यादि पर निर्भर करता है। दीर्घकाल में श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करके ही सामूहिक पूर्ति वक्र को नीचे की ओर किया जा सकता है। लेकिन एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें बेरोजगारी है, यह संभव नहीं हो पाता है। यहाँ पर यह कहना महत्त्वपूर्ण है कि **कीन्स ने सामूहिक माँग को प्रभावपूर्ण माँग व इसलिए रोजगार स्तर का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक माना है।**

चित्र 6.4 में सामूहिक माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रभाव पूर्ण माँग दाईं ओर सरक गई है। इस कारण से साम्य बिंदु 'E' के स्थान E_1 हो गया है जो कि कुल माँग में परिवर्तन के परिणामस्वरूप है। कुल माँग में परिवर्तन के कारण

नोट

'E' बिंदु पर अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की अवस्था है, जहाँ NN_F श्रमिक बेरोजगार है। जबकि E_1 बिंदु पर अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार साम्य प्राप्त कर लेती है। यहाँ सभी रोजगार चाहने वालों को रोजगार मिल रहा है। इस प्रकार एक अर्थव्यवस्था में उपभोग अथवा निवेश व्यय में वृद्धि द्वारा सामूहिक माँग में उचित परिवर्तन कर अल्प-रोजगार की स्थिति को समाप्त किया जा सकता है।

क्या आप जानते हैं रोजगार उत्पादन तथा आय का स्तर प्रभावपूर्ण माँग द्वारा निर्धारित होता है, जो कि स्वयं सामूहिक माँगफलन व सामूहिक पूर्तिफलन द्वारा निर्धारित होता है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रभावपूर्ण माँग पूर्णरोजगार बिंदु को प्राप्त कर भी सकती है और नहीं भी। दूसरे शब्दों में, प्रभावपूर्ण माँग हमेशा पूर्ण रोजगार बिंदु से संबंधित नहीं होती है। कीन्स इस विचारधारा के थे कि **मुक्त उद्यमी अर्थव्यवस्था में अल्प-रोजगार की स्थिति एक सामान्य स्थिति है। और पूर्ण रोजगार एक अपवाद की स्थिति।** एक देश केवल अत्यधिक संपन्नता की स्थिति में ही पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। एक अर्थव्यवस्था में तभी पूर्ण रोजगार की स्थिति संभव है, जबकि निवेश माँग अथवा निवेश व्यय कुल पूर्ति व उस स्तर पर किए जाने वाले उपभोग के अंतर को पा सके।

अर्थात **आय तथा उपभोग के बीच के अंतर को निवेश द्वारा पाटने की अपर्याप्तता ही अर्थव्यवस्था में अल्प-रोजगार के लिए उत्तरदायी है।** चित्र 6.4 में एक अर्थव्यवस्था अपने विनियोगों को MM_1 से बढ़ाकर पूर्ण रोजगार की स्थिति को प्राप्त कर लेगी।

निवेश कर्त्ताओं को कर के रूप में छूट देकर अथवा संस्थागत ऋण लागत में कमी द्वारा इस निवेश को प्रेरित किया जा सकता है। इसके साथ ही सरकार द्वारा भी लोक निर्माण के कार्यों में निवेश करना चाहिए। पूर्ण रोजगार एक सीमा तक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बाद प्रभावपूर्ण माँग में वृद्धि करने से उत्पादन व रोजगार अपरिवर्तित रहते हैं। पूर्ण रोजगार बिंदु के बाद भी यदि सामूहिक माँग में वृद्धि होती है, तो यह मुद्रा स्फीति की स्थिति को जन्म देगी, क्योंकि पूर्ण रोजगार के बाद रोजगार व उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती है।

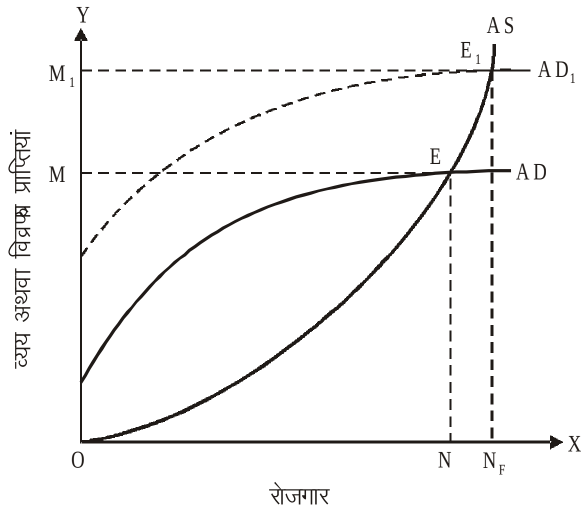

चित्र 6.4 : साम्य में खिसकाव

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. रोजगार उत्पादन तथा आय का स्तर प्रभावपूर्ण माँग द्वारा निर्धारित होता है।
8. जब सामूहिक माँग मूल्य वक्र ऊपर की ओर बढ़ता है, तो रोजगार के स्तर में वृद्धि होती है।

9. दीर्घकाल में श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करके ही सामूहिक पूर्ति वक्र को नीचे की ओर किया जा सकता है।
10. दीर्घकाल में सामूहिक पूर्ति वक्र में परिवर्तन की संभावना नहीं के बराबर होती है।

6.4 प्रतिष्ठित तथा कीन्स के रोजगार सिद्धांत की तुलना (Comparison of Classical and Keynesian Theory of Employment)

कीन्स का रोजगार सिद्धांत प्रतिष्ठित रोजगार सिद्धांत से कई रूपों में अलग है।

(*i*) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि एक अर्थव्यवस्था निरपवाद रूप से पूर्ण रोजगार बिंदु पर स्थिर साम्य पर होती है। इस प्रकार प्रतिष्ठित सिद्धांत पूर्ण रोजगार की एक विशेष दशा से संबंधित है और सामान्य बेरोजगारी की संभावना को नकारता है। इसके विपरीत *कीन्स* का सिद्धांत एक सामान्य सिद्धांत है, जो एक अर्थव्यवस्था की सभी स्थितियों में कार्य को बताता है (पूर्ण रोजगार, अल्प रोजगार व बेरोजगार)। *कीन्स* के अनुसार–एक अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति बहुत ही कम - अपवाद स्वरूप ही होती है। सामान्यतया अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार बिंदु से कम स्तर पर साम्य में होती है।

(*ii*) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मानना था कि यदि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं है, तो मजदूरी में कमी कर साम्य (पूर्ण रोजगार की स्थिति) को स्थापित किया जा सकता है। जबकि *कीन्स* इस विचार को अवास्तविक तथा अव्यावहारिक मानते हैं। *कीन्स* के अनुसार एक उद्योग विशेष में मजदूरी की दर कम करने से रोजगार बढ़ सकता है। परंतु, समस्त अर्थव्यवस्था में ऐसा करने पर यह आय, उत्पादन तथा रोजगार में कमी करेगा।

टास्क कीन्स के रोजगार सिद्धांत पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

(*iii*) प्रतिष्ठित प्रणाली में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि मुद्रा स्फीति की प्रवृत्ति लाती है। जबकि *कीन्स* के अनुसार पूर्ण रोजगार के बाद ही मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि मुद्रा स्फीति उत्पन्न करती है, पहले नहीं।

(*iv*) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार बचत-निवेश विश्लेषण ब्याज दर निर्धारण का यंत्र है। चालू ब्याज में कोई भी परिवर्तन बचत व निवेश में असमानता करता है। इसके विपरीत *कीन्स* ने बचत-निवेश विश्लेषण को आय तथा रोजगार स्तर को निर्धारित करने वाला यंत्र माना है। यदि बचत निवेश से अधिक है, तो उपभोग व्यय कम होगा। फलस्वरूप माँग में कमी होगी। यह अति उत्पादन तथा बचत, निवेश, आय, उत्पादन व रोजगार में कमी के लिए उत्तरदायी है। इस कारण जब व्यवसाय में निराशाजनक वातावरण होता है तो ब्याज दर में कमी निवेश में वृद्धि नहीं कर पाती है। इस प्रकार बचत तथा निवेश के बीच साम्य की स्थिति आय के स्तर में परिवर्तन द्वारा ही की जा सकती है। इसी कारण से ही *कीन्स* का सिद्धांत अधिक वास्तविक तथा आर्थिक विकास का विश्लेषण करने में उपयोगी है।

(*v*) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मानना है कि किसी भी अर्थव्यवस्था की आर्थिक क्रियाओं के स्तर में, मुद्रा की मात्रा तथा ब्याज दर में परिवर्तन करके, बदलाव किया जा सकता है। वे मौद्रिक नीति (मुद्रा की मात्रा में वृद्धि तथा ब्याज दर में कमी) का उपयोग बेरोजगारी, व्यापारिक मंदी, आदि को रोकने के पक्षधर थे। इसके विपरीत, *कीन्स* नीति (लोक व्यय, घाटे की वित्त व्यवस्था इत्यादि) के द्वारा इन सभी समस्याओं को सुलझाने में विश्वास रखते थे।

नोट

(*vi*) प्रतिष्ठित सिद्धांत किसी अर्थव्यवस्था में आय तथा रोजगार के साम्य स्तर को निर्धारित करने पर पूर्ति पक्ष को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस सिद्धांत की मान्यता है कि पूर्ति अपनी माँग स्वयं पैदा करती है। इसके विपरीत *कीन्स* पूर्ति (राष्ट्रीय उत्पाद का स्तर) को स्थिर मानते हैं तथा माँग को अर्थव्यवस्था के साम्य का निर्धारक समझते हैं। अर्थात् *कीन्स* सिद्धांत में पूर्ति एक स्टॉक चर है।

(*vii*) प्रतिष्ठित सिद्धांत के अंतर्गत बचत तथा निवेश निर्णय एक ही वर्ग द्वारा लिये जाते हैं। इस प्रकार बचत एवं निवेश बराबर होते हैं। इन दोनों में किसी भी प्रकार की असमानता होने पर ब्याज दर द्वारा समानता स्थापित की जाती है। अत: ब्याज दर प्रतिष्ठित व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके विपरीत, *कीन्स* ब्याज को तरलता के त्याग का प्रतिफल मानते हैं और इसको कम महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार एक अर्थव्यवस्था में जो भी परिवर्तन होते हैं, वे आय तथा व्यय में परिवर्तन के फलस्वरूप होते हैं, न कि ब्याज दर में परिवर्तन से। इसके साथ ही अर्थव्यवस्था में साम्य की दशा में ही बचत तथा निवेश बराबर होंगे, क्योंकि बचत तथा निवेश विभिन्न वर्गों द्वारा पृथक-पृथक उद्देश्य से किये जाते हैं।

(*viii*) प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों द्वारा दो पृथक सिद्धांत–एक मुद्रा के लिए तथा दूसरा मूल्य तथा उत्पादन स्तर के लिए किया गया था। जबकि *कीन्स* ने मुद्रा सिद्धांत तथा कीमत व उत्पादन सिद्धांत को मिलाकर एक सिद्धांत प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार इस सिद्धांत को दो अलग-अलग सिद्धांतों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि मुद्रा की मात्रा आय, उत्पादन तथा रोजगार के स्तर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

(*ix*) प्रतिष्ठित सिद्धांत केवल दीर्घकाल में ही क्रियाशील होता है। *कीन्स* ने इस प्रकार के सिद्धांत पर प्रश्न चिह्न लगाया तथा एक ऐसे सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जो कि अल्पकाल में क्रियाशील होता है।

6.5 सारांश (Summary)

- सामूहिक पूर्ति आय व रोजगार स्तर के साम्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। यह एक अर्थव्यवस्था में उत्पादित कुल वस्तुओं व सेवाओं के योग को बताता है। यदि यह मान लिया जाए कि अर्थव्यवस्था में उत्पादित सभी वस्तुएँ व सेवाएँ उपभोग अथवा निवेश के लिए उपलब्ध हैं, तो कुल पूर्ति राष्ट्रीय उत्पाद अथवा राष्ट्रीय आय के बराबर होगी। यह राष्ट्रीय उत्पाद, उत्पादन के चार साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी व उद्यम) की कुल आय के बराबर होगी। **सामूहिक पूर्ति व मूल्य वह न्यूनतम प्रत्याशित मूल्य है, जिसकी प्राप्ति फर्में एक निश्चित पैमाने पर उत्पादन करने व मजदूरों को नियोजित रखने के लिए चाहता है।**

6.6 शब्दकोश (Keywords)

- प्रभावपूर्ण माँग (Effective Demand) – अत्यधिक माँग।
- साम्य (Equilibrium) – समानता।

6.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कीन्स के रोजगार सिद्धांत को परिभाषित कीजिए।
2. सामूहिक माँग फलन से क्या तात्पर्य है? बताइए
3. 'साम्य निर्धारण' पर टिप्पणी लिखिए।
4. सामूहिक कुलपूर्ति फलन को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. रोजगार	2. विशेष सिद्धांत	3. प्रभावपूर्ण माँग	4. (अ)
5. (ब)	6. (स)	7. सही	8. सही
9. सही	10. गलत।		

6.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–7: उपभोग फलन के सिद्धांत (Theory of Consumption Function)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
7.1 केन्ज़ का उपभोग फलन सिद्धांत (Keynes' Consumption Function Theory)
7.2 निरपेक्ष आय परिकल्पना (Absolute Income Hypothesis)
7.3 सारांश (Summary)
7.4 शब्दकोश (Keywords)
7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे;

- कीन्स का उपभोग फलन सिद्धांत जानने हेतु।
- निरपेक्ष आय परिकल्पना का अध्ययन करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

इससे पहले अध्याय में हमने केन्ज़ द्वारा प्रतिपादित आय और उपभोग के बीच संबंध की व्याख्या की जिसे उसने उपभोग फलन कहा। **केन्ज़** के बाद के अर्थशास्त्रियों ने उपभोग फलन को प्रभावित करने वाले कुछ घटकों का अध्ययन करते हुए उससे संबंधित नये सिद्धांतों की रचना की है। वे हैं–(1) टोबिन से संबंधित निरपेक्ष आय सिद्धांत; (2) डूसनबरी का सापेक्ष आय सिद्धांत; (3) फ्रीडमैन का स्थायी आय सिद्धांत; और (4) मोदिग्ल्यानी का जीवन-चक्र सिद्धांत। इन सिद्धांतों की विवेचना से पूर्व हम केन्ज़ के सिद्धांत की संक्षिप्त व्याख्या कर रहे हैं जिस पर ये सभी चारों सिद्धांत सुधार माने जाते हैं।

7.1 केन्ज़ का उपभोग फलन सिद्धांत (Keynes Consumption Function Theory)

केन्ज़ ने अपनी पुस्तक General Theory में उपभोग फलन के सिद्धांत को प्रतिपादित किया। उसके अनुसार, समस्त उपभोग समस्त चालू प्रयोज्य आय का फलन है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जाता है–

$$C = a + cy_d$$

जहाँ a धनात्मक स्वायत्त उपभोग (Positive autonomous consumption) है जो उपभोग पर गैर-आय घटकों द्वारा प्रभावित होता है। अर्थात् यह आय में वृद्धि (या कमी) द्वारा प्रभावित नहीं होता। यह स्थिराँक (constant) है। c

सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (*MPC*) है और Y_d प्रयोज्य आय (disposable income) है जो कर देने के पश्चात उपभोक्ताओं के पास व्यय करने हेतु रहती है।

उपभोग तथा आय में यह संबंध केन्ज़ के 'उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम' पर आधारित है जो बताता है कि जब आय बढ़ती है तो उपभोग व्यय भी बढ़ता है परंतु अपेक्षाकृत कम मात्रा में। दूसरे शब्दों में, आय में वृद्धि (या कमी) होने पर उपभोग व्यय भी बढ़ता (या घटता) तो है परंतु आनुपातिक (proportional) रूप में नहीं। इस गैर–आनुपातिक (non-proportional) उपभोग फलन की धारणा का अर्थ है कि अल्पकालीन औसत प्रवृत्ति (*APC*) और सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (*MPC*) दोनों मेल नहीं खाती हैं। बल्कि $APC > MPC$ और कि *MPC* धनात्मक (positive) होती है परंतु इकाई से कम : $0 < MPC < 1$. अंतिम, केन्ज़ीय उपभोग फलन की अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में स्थिर मान लिया गया है। केन्ज़ का यह सिद्धांत असंतोषजनक सिद्ध हुआ क्योंकि यह उपभोग और आय में सांख्यिकीय दीर्घकालीन आनुपातिकता की व्याख्या नहीं कर सका।

इसे समझने के लिए हम आनुपातिक और गैर–आनुपातिक उपभोग फलन में भेद करते हैं। उपभोग फलन आनुपातिक होता है जब आय के प्रत्येक स्तर पर *APC* स्थिर हो और *MPC* के बराबर हो जैसा कि चित्र 7.1 में दर्शाया गया जहाँ उपभोग फलन *C* मूल *O* पर काटता है। जब आय में परिवर्तन क्रमशः OY_1 और OY_2 होता है तो इस *C* वक्र के साथ–साथ E_1 और E_2 बिंदुओं पर $APC = MPC$। दूसरे शब्दों में, 45° रेखा के E_1 बिंदु पर $APC = OC_1/OY_1 = 1$ और $MPC = \Delta C/\Delta Y = 1$ उपभोग फलन गैर–आनुपातिक होता है जब आय के बढ़ने (या कम होने) के साथ *APC* कम होती (या बढ़ती) है। चित्र 7.2 में *C* उपभोग फलन है। OY_1 आय स्तर पर *C* वक्र के बिंदु *E* पर $APC > MPC$, जहाँ $APC = OC_1/OY_1$ और $MPC = \Delta C/\Delta Y = ER/RE_0$ परंतु भाग के OY_0 स्तर पर जब *C* वक्र 45° रेखा को E_O बिंदु पर काटता है, वहाँ $APC = MPC$.

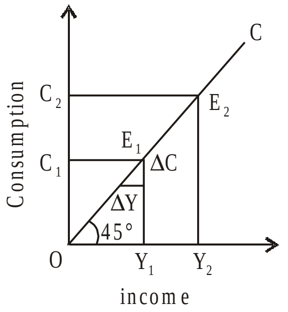

चित्र 7.1

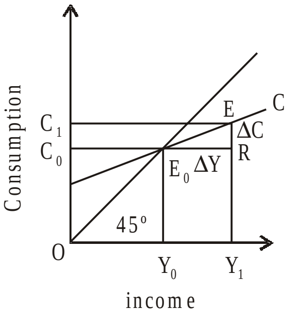

चित्र 7.2

> *नोट्स* केन्ज़ ने अपनी पुस्तक General Theory में उपभोग फलन के सिद्धांत को प्रतिपादित किया है।

1930 के दशक के अंत में तथा 1940 के दशक के मध्य में अनेक ऐसे प्रत्यक्ष अध्ययन किये गये जो बजट अंकों के तिर्यक् छेद (cross-section) तथा काल श्रेणियों (time-series) पर आधारित थे। इन अध्ययनों से केन्ज़ का उपभोग फलन सिद्धांत प्रमाणित हुआ जो निरपेक्ष आय परिकल्पना (absolute income hypothesis) कहलाता है।

1946 में कुज़नेट्स (Kuznets) ने संयुक्त राज्य अमरीका के 1869–1938 की अवधि के उपभोग तथा आय के आँकड़ों का अध्ययन किया और इस अवधि का उपभोग फलन 0.9 आँका। फिर वह इन निष्कर्षों पर पहुँचा कि दीर्घकालीन पर्यन्त, औसतन *APC* में नीचे की ओर जाने की कोई प्रवृत्ति दृष्टिगत नहीं हुई जिसके परिणामस्वरूप ज्यों–ज्यों दीर्घकालीन प्रवृत्ति के साथ आय बढ़ी, त्यों–त्यों *MPC* के बराबर *APC* होता गया। इसका मतलब है कि दीर्घकालीन उपभोग फलन ऐसी सरल रेखा है जो मूल बिंदु में से गुजरती है, जैसा कि चित्र 7.3 में C_L रेखा द्वारा

नोट

दिखाया गया है। बोल्डस्मिथ ने 1955 में पुनः इन निष्कर्षों का परीक्षण किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि दीर्घकालीन उपभोग फलन 0.87 या 0.9 पर स्थिर रहा। इन दो अध्ययनों से पता चला कि अल्पकालीन उपभोग फलन गैर-आनुपातिक है क्योंकि $APC > MPC$ और **दीर्घकालीन** उपभोग फलन आनुपातिक है, $MPC = APC$. इस प्रकार, दोनों अध्ययन एक दूसरे का खंडन करते हैं और अर्थशास्त्रियों के लिए एक पहेली (puzzle) बन गए। इसको सुलझाने हेतु, अनेक वर्षों से अर्थशास्त्री अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उपभोग फलनों में संगति (reconcile) बैठाने का प्रयत्न करते रहे हैं और "जितने हल सुझाए गए हैं उनमें उपभोग फलन में स्वतंत्र चर की पुनर्व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है।" हम आगे उपभोग फलन के ऐसे सिद्धांतों का अध्ययन कर रहे हैं।

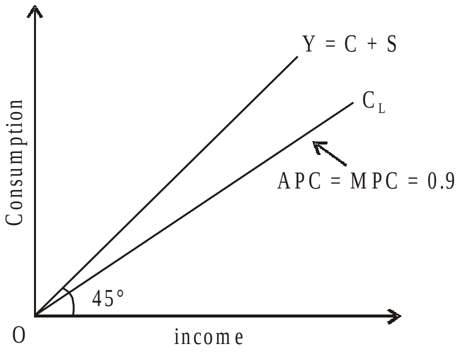

चित्र 7.3

क्या आप जानते हैं समस्त उपभोग समस्त चालू प्रयोज्य आय का फलन है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. केन्ज़ ने अपनी पुस्तक .... में उपभोग फलन के सिद्धांत को प्रतिपादित किया।
2. आय में वृद्धि या कमी होने पर .... व्यय भी बढ़ता या घटता है।
3. केन्ज़ के उपभोग फलन को .... आय परिकल्पना नाम दिया गया है।

7.2 निरपेक्ष आय परिकल्पना (Absolute Income Hypothesis)

केन्ज़ के उपभोग फलन को निरपेक्ष आय परिकल्पना नाम दिया गया है जो बताता है कि जब आय बढ़ती है, तो उपभोग भी बढ़ता है परंतु वह आय में वृद्धि की अपेक्षा कम बढ़ता है और विलोमशः भी। इसका मतलब है कि उपभोग तथा आय का संबंध गैर-आनुपातिक है। जेम्स टोबिन तथा आर्थर स्मिथीज ने अलग-अलग अध्ययनों में इस परिकल्पना का परीक्षण किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उपभोग तथा आय में अल्पकालीन संबंध गैर-आनुपातिक है, परंतु काल-श्रेणी (time-series) आँकड़ों से पता चलता है कि इन दोनों का दीर्घकालीन संबंध आनुपातिक है। यह उपभोग-आय का व्यवहार अल्पकालीन गैर-आनुपातिक उपभोग फलन के ऊपर को सरकने के माध्यम से होता है। जिसके लिए आय से भिन्न कारण उत्तरदायी होते हैं। इन कारणों की चर्चा आगे की जा रही है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. अल्पकालीन उपभोग फलन है–

(अ) गैर-आनुपातिक (ब) आनुपातिक
(स) एक अध्ययन (द) इनमें से कोई नहीं।

5. दीर्घकालीन उपभोग फलन है–
   (अ) आनुपातिक (ब) गैर-आनुपातिक
   (स) समानुपातिक (द) इनमें से कोई नहीं।
6. जब समुत्थान की अवधि के दौरान आय बढ़ती है, तो बचत में तेजी से वृद्धि के साथ बढ़ता है–
   (अ) उपभोग (ब) अनुपभोग
   (स) व्यय (द) इनमें से कोई नहीं।

प्रथम, प्रो. टोबिन ने इस परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए नीग्रो तथा श्वेत परिवारों के बजट अध्ययनों में परिसंपत्ति धारक शामिल किए। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यदि परिवारों के परिसंपत्ति (holdings) में वृद्धि होती है, तो उनकी उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है जिसके परिणामस्वरूप उनका उपभोग फलन ऊपर को सरक जाता है। **दूसरे,** द्वितीय विश्व-युद्ध के समाप्त होने के बाद से, कई प्रकार की नई घरेलू उपभोक्ता वस्तुएँ बहुत तेजी से व्यवहार में आई हैं। इस तरह की आवश्यक वस्तुओं के प्रचलन से उपभोग फलन ऊपर को सरक जाता है। **तीसरे,** युद्ध के बाद की अवधि से, शहरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या के पलायन की इस गति से उपभोग फलन ऊपर की ओर सरका है क्योंकि खेत पर काम करने वालों की अपेक्षा सारी मजदूरों की उपभोग की प्रवृत्ति अधिक होती है। **चौथे,** दीर्घकालीन पर्यन्त, कुल जनसंख्या में बूढ़े लोगों की प्रतिशतता निरंतर बढ़ रही है। यद्यपि बूढ़े लोग कमाई नहीं करते, फिर भी वे वस्तुओं का उपभोग तो करते ही हैं। परिणामत: उनकी संख्या बढ़ने से उपभोग फलन ऊपर को सरका है।

"निरपेक्ष आय सिद्धांत के अनुसार, इस तरह के कारणों ने उपभोग फलन को स्तर की ओर लगभग उतना ही सरकाया है जितना कि दीर्घकालीन में उपभोग तथा आय के बीच आनुपातिक संबंध स्थापित करने के लिए आवश्यक है और इस प्रकार उसे ऐसा प्रतीत होने से रोका है जो अन्यथा केवल आय के आधार पर संबंधित गैर-आनुपातिक संबंध प्रतीत होता है।"

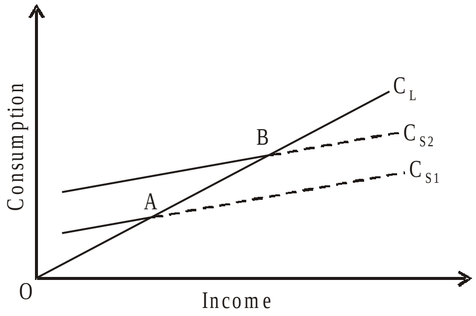

चित्र 7.4

> *टास्क* केन्ज़ के उपभोग फलन सिद्धांत पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

निरपेक्ष आय परिकल्पना को चित्र 7.4 में स्पष्ट किया गया है जहाँ C_L दीर्घकालीन उपभोग करता है, जैसे-जैसे हम दीर्घकालीन वक्र के साथ-साथ चलते हैं वैसे-वैसे, उपभोग तथा आय के बीच आनुपातिक संबंध को प्रकट करता है।

उदाहरणार्थ, इस वक्र के A तथा B बिंदुओं पर APC तथा MPC बराबर हैं। Cs_1 तथा Cs_2 अल्पकालीन उपभोग फलन हैं। परंतु जिन कारणों का ऊपर उल्लेख किया गया है, जिनके कारण ये उपभोग फलन दीर्घकालीन उपभोग फलन C_1 के साथ-साथ बिंदु A से बिंदु B की ओर ऊपर को बढ़ने लगते हैं। परंतु Cs_1 और Cs_2 अल्पकालीन उपभोग फलनों के बिंदुकित भाग के साथ गति उपभोग को आय में वृद्धि के अनुपात में नहीं बढ़ाएगी। इसलिए ये भाग गैर-आनुपातिक संबंध को दर्शाते हैं।

इसका समीक्षात्मक मूल्यांकन (Its Critical Appraisal) –इस सिद्धांत का बड़ा गुण यह है कि यह आय को छोड़कर उन अन्य कारकों पर बल देता है जो उपभोक्ता-व्यवहार को प्रभावित करते हैं जिनकी केन्ज़ ने चर्चा नहीं

नोट

की थी। परंतु इसकी कमी यह है कि यह गैर-आनुपातिक उपभोग फलन की मान्यता लेकर चलता है। जैसा कि प्रो. शपीरो ने लक्ष्य किया है, "अब अधिकाधिक अर्थशास्त्री यह महसूस करने लगे हैं कि आधारभूत उपभोग फलन आनुपातिक होता है जिसका मतलब निरपेक्ष आय परिकल्पना के प्रमुख सिद्धांत को नकारना है।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. केन्ज़ का यह सिद्धांत असंतोषजनक सिद्ध हुआ क्योंकि यह उपभोग और आय में सांख्यिकीय दीर्घकालीन आनुपातिकता व्याख्या कर सकता है।
8. 1946 में कुज़नेट्स ने संयुक्त राज्य अमेरिका के 1869-1938 की अवधि के उपभोग तथा आय के आँकड़ों का अध्ययन किया।
9. जब आय बढ़ती है तो उपभोग भी बढ़ता है।
10. उपभोग फलन में स्वतंत्र चर की पुनर्व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है।

7.3 सारांश (Summary)

- उपभोग तथा आय में यह संबंध केन्ज़ के 'उपभोग के मनोवैज्ञानिक नियम' पर आधारित है जो बताता है कि जब आय बढ़ती है तो उपभोग व्यय भी बढ़ता है परंतु अपेक्षाकृत कम मात्रा में। दूसरे शब्दों में, आय में वृद्धि (या कमी) होने पर उपभोग व्यय भी बढ़ता (या घटता) तो है परंतु आनुपातिक (proportional) रूप में नहीं।

7.4 शब्दकोश (Keywords)

- काल-श्रेणी (Time Series) – समय-श्रेणी।
- तिर्यक् छेद (Cross-Section) – आड़ा-तिरछा छेद।

7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. केन्ज़ का उपभोग फलन सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?
2. निरपेक्ष आय परिकल्पना से क्या तात्पर्य है?
3. निरपेक्ष आय परिकल्पना का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. General Theory	2. उपभोग	3. निरपेक्ष	4. (अ)
5. (अ)	6. (अ)	7. गलत	8. सही
9. सही	10. सही।		

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–8: सापेक्ष आय परिकल्पना (Relative Income Hypothesis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 सापेक्ष आय परिकल्पना (Relative Income Hypothesis)

8.2 स्थायी आय परिकल्पना की आलोचनाएँ (Permanent Income Hypothesis)

8.3 सारांश (Summary)

8.4 शब्दकोश (Keywords)

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- सापेक्ष आय परिकल्पना को जानने हेतु।
- सापेक्ष आय परिकल्पना की आलोचनाएँ जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

उपभोग फलन विषयक अपने सिद्धांत की व्याख्या करते हुए डूसनबरी लिखता है, "यदि हम उपभोक्ता व्यवहार की समस्या को वास्तव में समझना चाहते हैं, तो हमें प्रारंभ में उपभोग ढाँचों की सामाजिक प्रकृति को मान्यता देनी होगी।" "उपभोग ढाँचों की सामाजिक प्रकृति' से उसका तात्पर्य है कि मानवों की प्रवृत्ति केवल अपने धनी पड़ोसियों के स्तर तक पहुँचने की ही नहीं अपितु उनसे आगे भी बढ़ जाने की होती है।

8.1 सापेक्ष आय परिकल्पना (Relative Income Hypothesis)

जेम्स डूसनबरी (James Dussenberry) की सापेक्ष आय परिकल्पना केन्ज़ के उपभोग सिद्धांत की आधारभूत मान्यताओं के अस्वीकार पर आधारित है। डूसनबरी का कहना है कि (1) प्रत्येक व्यक्ति का उपभोग व्यवहार स्वतंत्र नहीं होता अपितु प्रत्येक अन्य व्यक्ति के व्यवहार पर निर्भर होता है, और (2) कि उपभोग संबंध समय में अपरिवर्तनीय होते हैं, और परिवर्तनीय नहीं होते।

दूसरे शब्दों में, प्रवृत्ति यह होती है कि निरंतर ऊँचे उपभोग स्तर की ओर बढ़ा जाए और अपने धनी पड़ोसियों तथा साथियों के उपभोग ढाँचों से स्पर्द्धा की जाए। इस प्रकार उपभोक्ताओं के अधिमान एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। इसे डूसनबरी प्रभाव (Dussenbery Effect) या प्रदर्शनकारी प्रभाव (Demonstration Effect) कहते हैं। परंतु, किन्हीं

समुदायों में, लोगों की सापेक्ष आय के अंतर ही उपभोग खर्चों को निर्धारित करते हैं। किसी धनी व्यक्ति की *APC* अपेक्षाकृत कम होगी क्योंकि उसे अपने उपभोग ढाँचे को बनाये रखने के लिए अपनी आय के थोड़े भाग की जरूरत पड़ेगी। दूसरी ओर, अपेक्षाकृत गरीब व्यक्ति की *APC* अधिक होगी क्योंकि वह अपने पड़ोसियों अथवा साथियों के उपभोग स्टैण्डर्ड तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। इससे दीर्घकालीन *APC* की स्थिरता स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि कुल मिलाकर कम और अधिक *APC* संतुलित हो जाएगी। इस प्रकार, यदि किसी देश में आयों का निरपेक्ष आकार बढ़ भी जाए, तो भी समस्त अर्थव्यवस्था की *APC* आय के उच्चतर निरपेक्ष स्तर पर स्थिर रहेगी।

डूसनबरी के सिद्धांत का दूसरा भाग है, 'आय की पिछली चोटी' (past peak of income) परिकल्पना जो उपभोग फलन में अल्पकालीन उतार-चढ़ावों की व्याख्या करती है और केन्ज़ की इस मान्यता का खंडन करती है कि उपभोग संबंध परिवर्तनीय है। इस परिकल्पना की स्थापना है कि समृद्धि की अवधि के दौरान उपभोग बढ़ेगा और धीरे-धीरे अपने आपको अधिक ऊँचे स्तर पर समायोजित (adjust) कर लेगा। जब एक बार लोग आय के एक विशेष उच्चतम स्तर पर पहुँच जाते हैं और इस जीवन-स्तर के आदी हो जाते हैं तो मंदी के दौरान भी वे अपने उपभोग ढाँचों को छोड़ने को तैयार नहीं होते। डूसनबरी के शब्दों में, "किसी परिवार के लिए शुरू में अधिक खर्चों को रोकने की अपेक्षा ऊँचे स्तर से खर्चे घटाना अधिक कठिन होता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों आय गिरती है त्यों-त्यों उपभोग भी गिरता तो है परंतु आय में वृद्धि की अपेक्षा कम अनुपात में, क्योंकि उपभोग को बनाए रखने के लिए उपभोक्ता व्यय करता है। दूसरी ओर, जब समुत्थान (recovery) की अवधि के दौरान आय बढ़ती है, तो बचत में तेजी से वृद्धि के साथ उपभोग बढ़ता है।' इसे अर्थशास्त्री रैचट प्रभाव (Ratchet Effect) कहते हैं।

नोट्स प्रत्येक व्यक्ति का उपभोग व्यवहार स्वतंत्र नहीं होता अपितु प्रत्येक अन्य व्यक्ति के व्यवहार पर निर्भर होता है।

डूसनबरी ने अपनी दोनों संबद्ध परिकल्पनाएँ मिलाकर इसे निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है–

$$\frac{C_t}{Y_t} = a - c\frac{Y_t}{Y_0}$$

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. जेम्स डूसनबरी की सापेक्ष आय परिकल्पना .... के उपभोग सिद्धांत की आधारभूत मान्यताओं के अस्वीकार पर आधारित है।
2. प्रत्येक व्यक्ति का उपभोग व्यवहार .... नहीं होता।
3. उपभोग संबंध समय में .... होते हैं।

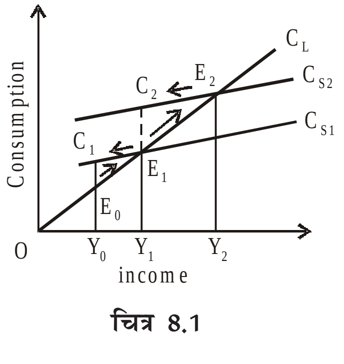

चित्र 8.1

जहाँ *C* तथा *Y* क्रमशः उपभोग तथा आय हैं, *t* चालू अवधि का बताता है, (*o*) पिछले अधिकतम स्तर को और *a* धनात्मक स्वायत्त उपभोग से संबंधित स्थिरांक है और *c* उपभोग फलन है। इस समीकरण में, चालू अवधि में उपभोग-आय अनुपात (C_t/Y_t) (= *APC*) को Y_t/Y_0 का फलन माना गया है अर्थात् पिछली अधिकतम आय से चालू आय का अनुपात। यदि यह अनुपात स्थिर रहता है, जैसा कि स्थिरता से बढ़ती आय की अवधि में होता

है, तो चालू उपभोग आय अनुपात स्थिर रहता है। मंदी के दौरान, जब चालू आय (Y_t) पिछले अधिकतम आय स्तर (Y_0) से नीचे गिरती है, तो चालू उपभोग आय अनुपात ($C_t \backslash Y_t$) बढ़ेगा।

सापेक्ष आय परिकल्पना को रेखाचित्रीय रूप से चित्र 7.5 में समझाया गया है जहाँ C_L दीर्घकालीन उपभोग फलन है और C_{s1} तथा C_{s2} अल्पकालीन उपभोग फलन हैं। मानलीजिए कि आय OY_1 के अधिकतम स्तर पर है जहाँ उपभोग E_1Y_1 है। अब आय गिरकर OY_0 हो जाती है। क्योंकि लोग OY_1 स्तर पर जीवन-स्तर के आदी हैं, इसलिए वे अपने उपभोग को घटाकर E_0Y_0 स्तर पर नहीं लाएँगे, बल्कि अपनी चालू बचतें घटाकर अपने उपभोग में यथासंभव न्यूनतम कमी करेंगे। इस प्रकार, वे C_{s1} वक्र पर पीछे की ओर जाते हुए C_1 बिंदु तक पहुँचेंगे और उपभोग के C_1Y_0 स्तर पर रहेंगे। जब समुत्थान (recovery) की अवधि शुरू होती है, तो आय बढ़कर पिछले आय के अधिकतम स्तर OY_1 पर पहुँच जाती है। परंतु उपभोग C_{s1} वक्र के साथ-साथ धीरे-धीरे C_1 से E_1 पर पहुँचता है क्योंकि उपभोक्ता पुनः अपनी बचत का पिछला स्तर स्थापित करेंगे। यदि आय बढ़ती हुई OY_2 स्तर पर पहुँच जाती है, तो उपभोक्ता नये अल्पकालीन उपभोग फलन C_{s2} पर C_1 वक्र के साथ-साथ ऊपर की ओर E_1 से E_2 पर पहुँच जाएगा। यदि आय के OY_2 स्तर पर एक बार फिर मंदी आएगी, तो उपभोग गिर कर उपभोग फलन C_{s2} के साथ-साथ C_2 बिंदु की ओर जाएगा और आय गिरकर OY_1 स्तर पर आ जाएगी। परंतु दीर्घकाल में समुत्थान के दौरान, उपभोग फिर दीर्घकालीन उपभोग फलन C_L के साथ-साथ तब तक बढ़ेगा जब तक वह अल्पकालीन उपभोग फलन C_{s2} पर नहीं पहुँच जाता। इसका कारण यह है कि जब आय अपने वर्तमान स्तर OY_1 से आगे बढ़ती है, तो दीर्घकाल में उपभोग-आय अनुपात (*APC*) स्थिर हो जाता है। अल्पकालीन उपभोग फलन ऊपर की ओर सरक कर C_{s1} से C_{s2} पर चला जाता है परंतु उपभोक्ता दीर्घकालीन उपभोग फलन C_L पर E_1 से E_2 तक जाते हैं। परंतु जब आय गिरती है तो उपभोक्ता C_{s2} वक्र पर पीछे की ओर E_2 से C_2 तक जाते हैं। यह 'रैचट प्रभाव' (Ratchet Effect) है। जब दीर्घकाल में आय बढ़ती है, तो अल्पकालीन उपभोग फलन किड़किड़ाता हुआ ऊपर को बढ़ता है, परंतु जब आय गिरती है तो यह नीचे की ओर सरक कर पहले के स्तर तक नहीं आता।

> *क्या आप जानते हैं* जब समुत्थान की अवधि के दौरान आय बढ़ती है, तो बचत में तेजी से वृद्धि के साथ उपभोग बढ़ता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. उपभोक्ताओं के अधिमान एक-दूसरे पर होते हैं–
   (अ) निर्भर (ब) आसक्त
   (स) निरासक्त (द) इनमें से कोई नहीं।
5. किन्हीं समुदायों में, लोगों की सापेक्ष आय के अंतर ही उपभोग खर्चों को करते हैं–
   (अ) प्रतिबंधित (ब) निर्धारित
   (स) कम (द) अधिक।
6. उपभोग संबंध समय में अपरिवर्तनीय होते हैं, और नहीं होते–
   (अ) अपरिवर्तनीय (ब) संबंधित
   (स) परिवर्तनीय (द) इनमें से कोई नहीं।

नोट

8.2 सापेक्ष आय परिकल्पना की आलोचनाएँ (Relative Income Hypothesis's Criticisms)

यद्यपि डूसनबरी का सिद्धांत बजट अध्ययनों तथा अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन काल श्रेणी अध्ययनों के बीच प्रत्यक्ष विरोधों का समाधान करता है, फिर भी यह बात नहीं कि इसमें कमियाँ नहीं हैं–

1. **उपभोग में अनुपाती वृद्धि नहीं (No Proportional Increase in Consumption)**–सापेक्ष आय सिद्धांत की मान्यता यह है कि आय तथा उपभोग में अनुपाती वृद्धि होती है। परंतु पूर्ण रोजगार स्तर पर होने वाली आय की वृद्धि से उपभोग में हमेशा अनुपाती वृद्धियाँ नहीं होतीं।
2. **उपभोग तथा आय में प्रत्यक्ष संबंध नहीं (No Direct Relation between Consumption and Income)**–यह सिद्धांत यह मानकर चलता है कि उपभोग तथा आय में प्रत्यक्ष संबंध होता है। परंतु अनुभव के आधार पर इस बात का समर्थन नहीं होता। व्यापारिक मंदियों के परिणामस्वरूप उपभोग हमेशा नहीं घटता। उदाहरणार्थ, 1948-49 तथा 1974-75 की व्यापारिक मंदियों के दौरान उपभोग कम नहीं हुआ था।
3. **आय का वितरण अपरिवर्तित नहीं (Distribution of Income not Unchanged)**–प्रस्तुत सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि समस्त आय के स्तर में परिवर्तन होने पर भी आय का वितरण लगभग अपरिवर्तित रहता है। यदि आय में वृद्धियाँ होने के साथ-साथ आय का अधिक समानता की दिशा में पुनर्वितरण होता है, तो अपेक्षाकृत गरीब तथा अपेक्षाकृत धनी परिवारों के संबंधित सभी व्यक्तियों की *APC* घटेगी। इस प्रकार, जब आय बढ़ेगी, तो उपभोग फलन ऊपर की ओर सरक कर C_{s1} से C_{s2} पर नहीं जाएगा।
4. **उपभोक्ता व्यवहार परिवर्तनीय (Reversible Consumer Behaviour)–माइकल ईवेन्ज़** के अनुसार, "उपभोक्ता व्यवहार पूर्णरूप से अपरिवर्तनीय होने की बजाय कालपर्यन्त धीरे-धीरे परिवर्तनीय है। तब पिछले अधिकतम स्तर (चोटी) से जितना ही अधिक समय बीत जाएगा, पिछले अधिकतम आय स्तर का चालू उपभोग पर उतना ही कम प्रभाव पड़ेगा।" यदि हम यह भी जानते हों कि किसी उपभोक्ता ने अपने पिछले उच्चतम आय स्तर (चोटी) पर कैसे व्यय किया था, तो भी यह जान सकना संभव नहीं कि वह अब किस ढंग से व्यय करेगा।
5. **अन्य कारकों की उपेक्षा (Neglect of Other Factors)**–प्रस्तुत सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता के व्यय में होने वाले परिवर्तन उसके पिछले उच्चतम आय स्तर (चोटी) से संबद्ध रहते हैं। यह सिद्धांत इस दृष्टि से दुर्बल है कि यह उपभोक्ता-व्यवहार को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों जैसे परिसंपत्ति धारणों, शहरीकरण, आयु-संरचना में परिवर्तनों, नई उपभोक्ता वस्तुओं के आगमन आदि की उपेक्षा करता है।

टास्क सापेक्ष आय परिकल्पना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

6. **उपभोक्ता अधिमान दूसरों पर निर्भर नहीं (Consumer Preferences do not depend on Others)**–इस सिद्धांत की एक और अवास्तविक मान्यता यह है कि उपभोक्ता अधिमान दूसरों पर निर्भर होते हैं जिनके परिणामस्वरूप किसी उपभोक्ता का व्यय उसके धनी पड़ोसी के उपभोग ढाँचों से संबंध रखता है। परंतु हमेशा ऐसा नहीं होता। प्रो. जार्ज कटोना (George Katona) के प्रत्यक्ष अध्ययनों से पता चला है कि उपभोक्ता व्यय में प्रत्याशाओं और प्रवृत्तियों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। उसका कहना है कि महत्त्वाकांक्षाओं के स्तरों पर आधारित आय-प्रत्याशाएँ और परिसंपत्ति धारणाओं के प्रति प्रवृत्तियाँ उपभोक्ता व्यय व्यवहार को प्रदर्शन प्रभाव की अपेक्षा अधिक प्रभावित करती हैं।

नोट

7. **विपरीत बिजली चमक प्रभाव (Reverse Lightning Bolt Effect)**—प्रो. स्मिथ और प्रो. जैकसन ने अपने आनुभविक प्रमाणों के आधार पर डूसनबरी की अलोचना की है कि मंदी के बाद से आय में जो समुत्थान (recovery) होता है वह रेचट प्रभाव के कारण नहीं बल्कि उपभोक्ताओं के उपभोग अनुभव 'विपरीत बिजली चमक प्रभाव' की तरह होते हैं। ऐसा इसलिए कि उपभोक्ता मंदी के बाद आय के बढ़ने पर अपने उपभोग को 'अनिंरतर आदत स्थिरता' के कारण धीरे-धीरे बढ़ाता है। इसे चित्र 8.2 में दर्शाया गया है जहाँ उपभोग स्तरों को तीरों द्वारा आय के बढ़ने के साथ दिखाया गया है जैसे विपरीत बिजली की चमक होती है।

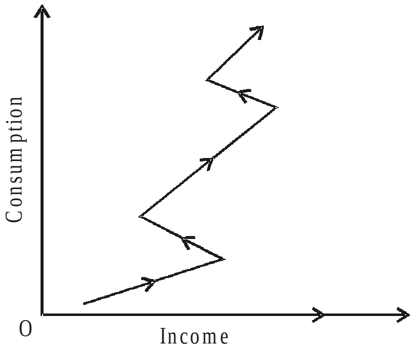

चित्र 8.2

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. डूसनबरी का सिद्धांत बजट अध्ययनों तथा अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन काल श्रेणी अध्ययनों के बीच प्रत्यक्ष विरोधों का समाधान करता है।
8. सापेक्ष आय की मान्यता यह है कि आय तथा उपभोग में अनुपाती वृद्धि होती है।
9. उपभोग तथा आय में प्रत्यक्ष संबंध होता है।
10. पूर्ण रोजगार स्तर पर होने वाली आय की वृद्धि से उपभोग में हमेशा अनुपाती वृद्धियाँ होती हैं।

8.3 सारांश (Summary)

- डूसनबरी के सिद्धांत का दूसरा भाग है, 'आय की पिछली चोटी' (past peak of income) परिकल्पना जो उपभोग फलन में अल्पकालीन उतार-चढ़ावों की व्याख्या करती है और केन्ज़ की इस मान्यता का खंडन करती है कि उपभोग संबंध परिवर्तनीय है। इस परिकल्पना की स्थापना है कि समृद्धि की अवधि के दौरान उपभोग बढ़ेगा और धीरे-धीरे अपने आपको अधिक ऊँचे स्तर पर समायोजित (adjust) कर लेगा।

8.4 शब्दकोश (Keywords)

- समायोजित (Adjust) – समाहित
- समुत्थान (Recovery) – पुनर्लाभ।

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सापेक्ष आय परिकल्पना से आप क्या समझते हैं?
2. सापेक्ष आय परिकल्पना की आलोचना कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. केन्ज़ 2. स्वतंत्र 3. अपरिवर्तनीय 4. (अ)

नोट

5. (ब) 6. (स) 7. सही 8. सही
9. सही 10. गलत

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–9: स्थायी आय और जीवन चक्र परिकल्पना (Permanent Income and Life Cycle Hypothesis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 स्थायी आय परिकल्पना (Permanent Income Hypothesis)

9.2 जीवन चक्र परिकल्पना (Life Cycle Hypothesis)

9.3 सारांश (Summary)

9.4 शब्दकोश (Keywords)

9.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- स्थायी आय परिकल्पना जानने हेतु।
- जीवन चक्र परिकल्पना जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

फ्रीडमैन स्थायी आय को इस प्रकार परिभाषित करता है, "अपने धन को ज्यों का त्यों सुरक्षित रखते हुए कोई उपभोक्ता-इकाई आय की जिस मात्रा का उपभोग कर सकती है (या समझती है कि उपभोग कर सकती है)।" यह आय किसी पारिवारिक इकाई की प्रमुख होती है जो आगे काल-क्षितिज (time-horizon) तथा दूरदर्शिता पर निर्भर करती है। इसके अंतर्गत ये सब सम्मिलित रहते हैं जैसे परिवार का गैर-मानव (non-human) धन-अर्जकों (earners) के व्यक्तिगत गुण, अर्जकों की आर्थिक क्रिया के गुण जैसे कि उनका व्यवसाय, आर्थिक क्रिया का स्थान आदि।

9.1 स्थायी आय परिकल्पना (Permanent Income Hypothesis)

आनुपातिक दीर्घकालीन तथा गैर-आनुपातिक अल्पकालीन उपभोग फलन के बीच प्रत्यक्ष विरोध का एक और समाधान **फ्रीडमैन** (Friedman) ने अपनी स्थायी आय परिकल्पना के माध्यम में प्रस्तुत किया। फ्रीडमैन ने इस मत को अस्वीकार किया कि "चालू या मापित आय" (current or measured income) उपभोग व्यय को निर्धारित करती है और इसके स्थान पर उसने यह माना है कि उपभोग तथा व्यय, दोनों के ही दो-दो भाग होते हैं–स्थायी तथा अनुस्थायी (transitory), जैसे

नोट

$$Y_m \text{ or } Y = Y_P + Y_t \quad ...(1)$$

तथा, $$C = C_p + C_t. \quad ...(2)$$

जहाँ p स्थायी और t अस्थायी, आय Y एवं उपभोग C को व्यक्त करते हैं।

फ्रीडमैन स्थायी आय को इस प्रकार परिभाषित करता है, "अपने धन को ज्यों का त्यों सुरक्षित रखते हुए कोई उपभोक्ता-इकाई आय की जिस मात्रा का उपभोग कर सकती है (या समझती है कि उपभोग कर सकती है)।" यह आय किसी पारिवारिक इकाई की प्रमुख होती है जो आगे काल-क्षितिज (time-horizon) तथा दूरदर्शिता पर निर्भर करती है। इसके अंतर्गत ये सब सम्मिलित रहते हैं जैसे परिवार का गैर-मानव (non-human) धन-अर्जकों (earners) के व्यक्तिगत गुण, अर्जकों की आर्थिक क्रिया के गुण जैसे कि उनका व्यवसाय, आर्थिक क्रिया का स्थान आदि।

क्योंकि उपभोक्ता की मापित आय अथवा चालू आय Y है, इसलिए यह किसी भी अवधि में उसकी स्थायी आय से अधिक या कम हो सकती है। मापित आय तथा स्थायी आय में इस तरह के अंतर आय के अस्थायी भाग (Y_t) के कारण होते हैं। आकस्मिक लाभों अथवा हानियों तथा चक्रीय परिवर्तनों के परिणामस्वरूप अस्थायी आय बढ़ या घट सकती है। यदि आकस्मिक लाभ के कारण अस्थायी आय धनात्मक (positive) होगी, तो मापित आय स्थायी आय से बढ़ जाएगी। यदि चोरी हो जाने से (अथवा हानि के कारण) अस्थायी आय ऋणात्मक होगी, तो मापित आय घटकर स्थायी आय से कम जो जाएगी। अस्थायी आय शून्य भी हो सकती है और उस स्थिति में मापित आय स्थायी आय के बराबर होगी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. फ्रीडमैन इस मत को अस्वीकार करते हैं कि "चालू या मापित आय" .... को निर्धारित करती है।
2. आकस्मिक लाभों या हानियों तथा चक्रीय परिवर्तनों के परिणामस्वरूप अस्थायी आय .... सकती है।

स्थायी उपभोग उन सेवाओं का मूल्य है जिसे किसी विशेष अवधि में उपभोग करने की योजना बनाई जाती है। मापित उपभोग को भी दो भागों में विभक्त किया गया है : स्थायी उपभोग (Cp) तथा अस्थायी उपभोग (Ct)। मापित उपभोग स्थायी उपभोग से अधिक, कम अथवा उसके बराबर हो सकता है जो इस बात पर निर्भर करेगा कि क्या अस्थायी उपभोग धनात्मक, ऋणात्मक अथवा शून्य है। स्थायी उपभोग (C_p), स्थायी आय (Y_p) का गुणांक (k) होता है।

$$C_p = k\,Y_p$$

और, $$k = f\,(r,w,u)\ .$$

इसलिए, $$C_p = k\,(r,w,u)\,Y_p \quad ...(3)$$

जहाँ k (गुणांक), ब्याज की दर (r), कुल धन अथवा राष्ट्रीय आय से संपत्ति एव गैर-संपत्ति आय के अनुपात (w), और उपभोक्ता की उपभोग प्रवृत्ति (u) का फलन है। इसका कारण स्थिरांक k($= C_p/Y_p$) है जो स्थायी आय से स्वतंत्र है। इस प्रकार k उपभोग की स्थायी और सीमांत प्रवृत्ति है तथा $APC = MPC$.

फ्रीडमैन ने उन प्रतिकारक (off-setting) शक्तियों का विश्लेषण किया है जिनसे यह परिणाम प्राप्त होता है। ब्याज की दर (r) को लें, तो 1920 के दशक से इसमें दीर्घकालिक (secular) पतन होता रहा है। इससे k का मूल्य बढ़ने लगता है। परंतु राष्ट्रीय धन (w) से संपत्ति तथा गैर-संपत्ति आय के अनुपात में दीर्घकालीन पतन हुआ है जिससे k का मूल्य घटता है। उपभोग की प्रवृत्ति तीन कारणों से प्रभावित हुई है। **प्रथम,** फार्म (खेत) की जनसंख्या में तीव्र

पतन हुआ है जिससे शहरीकरण के साथ उपभोग बढ़ा है। इससे k (का मूल्य) बढ़ा है। **दूसरे,** परिवारों का आकार बहुत घटा है। इससे बचत बढ़ी है और उपभोग घटा है जिसके परिणामस्वरूप k का मूल्य कम हुआ है। **तीसरे,** राज्य की ओर से सामाजिक सुरक्षा की अधिक व्यवस्था की गई है। इससे अधिक बचतें रखने की आवश्यकता कम हो गई है। इससे अधिक उपभोग की प्रवृत्ति बढ़ी है जिसके परिणामस्वरूप k का मूल्य बढ़ा है। इन प्रतिकारी शक्तियों का कुल प्रभाव यह है कि स्थायी आय भाग में परिवर्तन के अनुपात से उपभोग बढ़ जाता है।

इस प्रकार, फ्रीडमैन के अनुसार, स्थायी आय और उपभोग में आनुपातिक संबंध होता है,

$$C = k\,Y_p \qquad ....(4)$$

जहाँ k आनुपातिकता का गुणांक है जिसमें APC और MPC अंतर्निहित हैं और जो **ऊपर वर्णित कारकों पर निर्भर करता है।** दूसरे शब्दों में, यह स्थायी आय का वह अनुपात है जिसका उपभोग किया जाता है।

अब हम स्थायी आय को लेते हैं जिसे फ्रीडमैन काल श्रेणियों (time series) के आधार पर यह मानता है कि वह अंशतः चालू आय और अंशतः पिछली अवधियों की आय पर निर्भर करती है (Permanent income depends partly on current income and partly on previous periods' income) । यह इस प्रकार मापी जा सकती है :

$$Y_{pt} = a\,Y_t + (1 - a)\,Y_{t-1} \qquad ...(5)$$

जहाँ Y_{pt} = वर्तमान अवधि में स्थायी आय, Y_t = वर्तमान अवधि में चालू आय; Y_{t-1} पिछली अवधि की आय; a = पिछली अवधि $(t - 1)$ और वर्तमान अवधि के बीच आय में परिवर्तन का अनुपात। यह समीकरण बताता है कि स्थायी आय वर्तमान अवधि की आय (Y_t) और पिछली अवधि की आय (Y_{t-1}) और दोनों के बीच आय परिवर्तन के अनुपात (a) का जोड़ है। यदि वर्तमान आय एकदम बढ़ जाती है तो स्थायी आय में थोड़ी वृद्धि होगी। स्थायी आय के बढ़ने के लिए आय को निरंतर कई वर्षों तक बढ़ाना होगा। फिर लोग समझेंगे की वह बढ़ी है।

समीकरण (4) और (5) के समायोजन से अल्पकालीन और दीर्घकालीन उपभोग फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

$$Ct = KY_{pt} = K\,a\,Y_t + K\,(1 - a)\,Y_{t-1} \qquad ...(6)$$

जहाँ C_t = वर्तमान अवधि का उपभोग, ka = अल्पकालीन MPC; k = दीर्घकालीन MPC; और $(1 - a)\,Y_{t-1}$ अल्पकालीन उपभोग फलन का विच्छिन्न (intercept) है।

फ्रीडमैन के अनुसार k और ka एक दूसरे से भिन्न होते हैं और $k > ka$ । फिर k लगभग 1 (एक) के बराबर होता है तथा ka शून्य (0) के।

समीकरण (6) बताता है कि उपभोग पिछली आय और वर्तमान आय दोनों पर निर्भर करता है। उपभोग के लिए पिछली आय इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह लोगों को भविष्य की आय का पूर्वानुमान लगाने में सहायक होती है।

नोट्स चालू या मापित आय उपभोग व्यय को निर्धारित करती है।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)–फ्रीडमैन ने आय तथा उपभोग के स्थायी एवं अस्थायी भागों के बीच संबंधों के बारे में निम्न मान्यताएँ प्रस्तुत की हैं–

(1) अस्थायी तथा स्थायी आय के बीच कोई सहसंबंध नहीं है।

(2) स्थायी तथा अस्थायी उपभोग के बीच कोई सहसंबंध नहीं है।

(3) अस्थायी उपभोग तथा अस्थायी आय के बीच कोई सहसंबंध नहीं है।

(4) केवल स्थायी आय में होने वाले परिवर्तन ही उपभोग को व्यवस्थित रूप से प्रभावित करते हैं।

नोट

ये मान्यताएँ फ्रीडमैन के सिद्धांत के तिर्यक छेद (cross section) परिणामों को बताती हैं जिनके अनुसार अल्पकालीन उपभोग फलन रेखीय और गैर-आनुपातिक होता है। अर्थात $APC > MPC$ और समकालीन उपभोग फलन रेखीय और आनुपातिक होता है अर्थात $APC = MPC$. चित्र 9.1 फ्रीडमैन की स्थायी आय परिकल्पना की व्याख्या करता है जहाँ C_L दीर्घकालीन उपभोग फलन है जो एक व्यक्ति की आय और उपभोग के बीच दीर्घकालीन आनुपातिक संबंध व्यक्त करता है जिस पर $APC = MPC$. C_s गैर-आनुपातिक अल्पकालीन उपभोग फलन है जहाँ मापित या वर्तमान आय में स्थायी और अस्थायी दोनों भाग शामिल हैं, C_L और C_S। दोनों वक्र OY आय स्तर के बिंदु E पर बराबर हैं जहाँ स्थायी आय और मापित आय समान हैं और इसी प्रकार स्थायी और मापित उपभोग (YE) समान हैं। E बिंदु पर अस्थायी कारक नहीं पाए

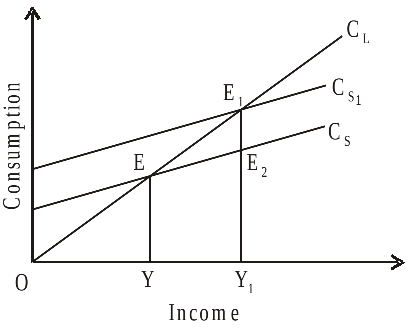

चित्र 9.1

जाते। यदि उपभोक्ता की आय बढ़कर OY_1 हो जाती है तो वह अपने उपभोग को आय में वृद्धि के अनुरूप बढ़ाएगा। इसके लिए वह C_s वक्र पर E से E_2 की ओर गति करेगा जहाँ अल्पकाल में उसकी मापित आय OY_1 है और मापित उपभोग Y_1E_2 है। परंतु यदि OY_1 आय स्तर स्थायी आय स्तर हो जाता है तो उपभोक्ता इसके अनुरूप अपने उपभोग में वृद्धि करेगा जिससे उसका अल्पकालीन उपभोग फलन C_s सरक कर ऊपर C_{s1} पर चला जाएगा और दीर्घकालीन उपभोग फलन C_L को E_1 बिंदु पर काटेगा। इस प्रकार, OY_1 स्थायी आय स्तर पर उपभोक्ता Y_1E_1 उपभोग करेगा।

फ्रीडमैन का स्थायी आय सिद्धांत तिर्यक छेद बजट आँकड़ों के अनुरूप है। दीर्घकालीन आँकड़े, आय तथा उपभोग के बीच समानुपाती संबंध को बताते हैं। परंतु दीर्घकालीन संतुलन मार्ग के गिर्द आय के अल्पकालीन उतार-चढ़ाव से संबंधित अध्ययनों से पता चलता है कि मापित आय तथा मापित उपभोग में गैर-आनुपातिक संबंध है।

> *क्या आप जानते हैं* स्थायी आय और उपभोग में आनुपातिक संबंध होता है।

इसकी आलोचनाएँ (Its Criticisms)—फिर भी, इस सिद्धांत में कुछ कमियाँ हैं—

1. अस्थायी आय और उपभोग में सहसंबंध (Correlation between Temporary Income and Consumption)—फ्रीडमैन की यह मान्यता अवास्तविक है कि उपभोग तथा आय के अस्थायी भागों में कोई सहसंबंध नहीं है। इस मान्यता का मतलब है कि जब परिवार की मापित आय बढ़ती या घटती है, तो उसका उपभोग न तो बढ़ता है, न ही घटता है, क्योंकि वह तदनुसार न तो बचत करता है और न ही व्यय करता है। परंतु यह बात वास्तविक उपभोक्ता व्यवहार के उलट है। यदि किसी व्यक्ति को आकस्मिक लाभ प्राप्त हो जाता है तो वह समस्त राशि बैंक खाते में जमा नहीं करता अपितु उसे समस्त या आंशिक रूप से अपने चालू उपभोग पर व्यय करता है। इसी प्रकार, यदि किसी व्यक्ति का बटुआ गुम हो जाए, तो वह अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए उतनी ही राशि बैंक से निकलवाने नहीं भागेगा, अपितु अपने वर्तमान उपभोग में कटौती अथवा उसे स्थगित करेगा।

2. सभी आय वर्गों की APC समान नहीं (APC of all Income Groups not Equal)—फ्रीडमैन का सिद्धांत कहता है कि सब परिवारों की APC, चाहे वे गरीब हों या धनी, दीर्घकाल में एक समान होती है। परंतु यह बात परिवारों के सामान्य-व्यवहार के विरुद्ध है। यह एक वास्तविकता है कि निम्न-आय वाले परिवार अपनी आय का उतना ही भाग बचाने की क्षमता नहीं रखते जितनी कि अधिक आय वाले परिवार। इसका एकमात्र कारण यह नहीं है कि उनकी आय थोड़ी है अपितु यह भी है कि अपनी अधूरी जरूरतों को पूरा करने के लिए वे भावी उपभोग की अपेक्षा वर्तमान उपभोग को अधिमान देंगे। इसलिए, निम्न आय परिवारों की बचत उनकी आय की सापेक्षता में

नोट

कम होती है जबकि अधिक आय वाले परिवारों की बचत उनकी आय की सापेक्षता में अधिक होती है। समान स्थायी आय स्तर वाले लोगों तक में भी बचत का स्तर भिन्न होता है, और उपभोग का भी।

3. आय और उपभोग से संबंधित अनेक शब्दों का प्रयोग भ्रमकारी (Use of Various Terms for Income and Consumption Confusing)–फ्रीडमैन ने अपने सिद्धांत में जो 'स्थायी', 'अस्थायी' तथा 'मापित' शब्दों का प्रयोग किया है, उसने सिद्धांत को उलझा दिया है। मापित आय की धारणा एक ओर तो अनुचित ढंग से स्थायी तथा अस्थायी आय से और दूसरी ओर, स्थायी तथा अस्थायी उपभोग से अनुचित ढंग से मिल जाती है।

4. मानव और गैर-मानव धन में भेद नहीं (No Distinction between Human and Non-human Wealth)–स्थायी आय सिद्धांत की एक और कमी यह है कि फ्रीडमैन मानव तथा गैर-मानव धन में कोई भेद नहीं करता और अपने सिद्धांत के आनुभविक विश्लेषण में, दोनों से प्राप्त आय को एक ही शब्दावली में सम्मिलित कर लेता है। इन कमियों के बावजूद, माइकल ईवेन्ज़ के शब्दों में "समुचित रूप से कहा जा सकता है कि प्रमाणों से इस सिद्धांत का समर्थन होता है कि फ्रीडमैन की प्रस्थापना से उपभोग फलन से संबंधित अनुसंधान को नया रूप और नई दिशा मिली है।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. यदि लाभ के कारण अस्थायी आय धनात्मक होगी, तो मापित आय .... आय से बढ़ जाएगी।

   (अ) स्थायी (ब) अस्थायी

   (स) लागत (द) इनमें से कोई नहीं।

4. अस्थायी आय हो सकती है–

   (अ) अधिक भी (ब) शून्य भी

   (स) कम भी (द) इनमें से कोई नहीं।

5. फ्रीडमैन के अनुसार, स्थायी आय और उपभोग में संबंध होता है–

   (अ) आनुपातिक (ब) घनिष्ठ

   (स) स्थायी (द) अस्थायी।

6. फ्रीडमैन के अनुसार, k और $K\dot{a}$ एक दूसरे से होते हैं–

   (अ) समान (ब) भिन्न

   (स) महत्त्वपूर्ण (द) इनमें से कोई नहीं।

9.2 जीवन चक्र परिकल्पना (Life Cycle Hypothesis)

एण्डो और मोदिग्ल्यानी ने उपभोग की जीवन चक्र उपकल्पना का निर्माण किया। इसके अनुसार, उपभोग किसी उपभोक्ता के जीवनकाल की प्रत्याशित आय पर निर्भर करता है। एक व्यक्तिगत उपभोक्ता का उपभोग इस बात पर निर्भर करता है कि उसके उपलब्ध संसाधन (resources) क्या हैं, पूँजी पर प्रतिफल की दर क्या है, उसकी व्यय करने की योजना क्या है, और वह योजना किस उम्र में बनाई गई है। उसकी आय (अथवा/संसाधनों) के वर्तमान मूल्य में परिसंपत्तियों अथवा धन से प्राप्त आय तथा चालू (current) एवं प्रत्याशित (expected) श्रम-आय से प्राप्त आय सम्मिलित रहती है।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)–जीवन चक्र सिद्धांत निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

(1) उपभोक्ता के जीवनकाल में कीमत स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता।

नोट

(2) ब्याज की दर स्थिर रहती है।

(3) उपभोक्ता को विरासत में कोई परिसंपत्तियाँ प्राप्त नहीं होतीं और उसकी निबल परिसंपत्तियाँ उसकी अपनी ही बचतों का परिणाम होती हैं।

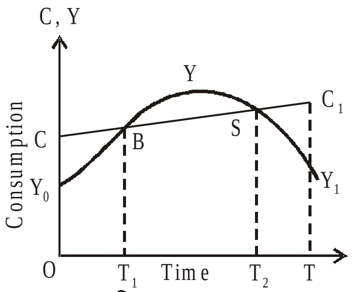

चित्र 9.2

एक उपभोक्ता का उद्देश्य अपने जीवन काल में अपनी उपयोगिता को अधिकतम बनाए रखना है, जो आगे इस बात पर निर्भर करेगा कि उसके जीवनकाल में उपलब्ध कुल आय या संसाधन कितने हैं। एक व्यक्ति की जीवन अवधि दी होने पर उसका उपभोग उसके संसाधनों के अनुपात में होता है। परंतु वह अपने संसाधनों (आय) को व्यय करने की जो योजना बनाता है उसका नियम यह है कि जीवन के प्रारंभिक वर्षों में उसकी व्यय बढ़ती, जीवन के मध्य वर्षों में ऊँची होती है और सेवानिवृत्ति पर एकदम कम हो जाती है। इस प्रकार, युवावस्था में कम बचत या विसंचय (dissave) करेगा और उपभोग अधिक, मध्य आयु में अधिक बचत और कम उपभोग करेगा और बुढ़ापे में फिर विसंचय करके अपनी आय से अधिक उपभोग करेगा। परिणामस्वरूप, उसका उपभोग स्तर समस्त जीवनकाल में लगभग स्थिर अथवा थोड़ा बढ़ता हुआ रहता है, जिसे चित्र 9.2 में CC_1 वक्र द्वारा दिखाया गया है। $Y_0 Y Y_1$ वक्र व्यक्ति के जीनकाल T में उस व्यक्तिगत उपभोक्ता की आय धारा को प्रकट करता है। अपने जीवन की प्रारंभिक अवधि में, जिसे चित्र में T_1 द्वारा दिखाया गया है, वह अपने उपभोग स्तर CB को जो कि स्थिर है, बनाए रखने के लिए वह मुद्रा की CY_0B मात्रा उधार लेता है। अपने जीवन के मध्यवर्ती वर्षों में, जिसे T_1T_2 द्वारा दिखाया गया है, वह अपने ऋण को चुकाने के लिए तथा भविष्य के लिए मुद्रा की BYS मात्रा की बचत करता है। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में, जिसे T_2T द्वारा प्रकट किया गया है, वह SC_1Y_1 मात्रा व्यय करता है।

इस सिद्धांत के अनुसार, उपभोग किसी उपभोक्ता के जीवन काल में प्रत्याशित आय का फलन है जो उसके संसाधनों पर निर्भर करता है। कुछ संसाधनों में उसकी चालू आय (Y_t) भावी प्रत्याशित श्रम आय का वर्तमान मूल्य $\left(Y_{Lt}^{e}\right)$ और परिसंपत्तियों का वर्तमान मूल्य (A_t) शामिल है।

उपभोग फलन को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

$$C_t = f(V_t) \, . \qquad ...(1)$$

जहाँ $V_t =$ कुल संसाधन समय t पर।

आगे,

$$V_t = f\left(Y_t + Y_{Lt}^{e} + A_t\right) \qquad ...(2)$$

जहाँ $Y_t =$ चालू आय; Y_{Lt}^{e} = भावी प्रत्याशित श्रम आय का वर्तमान मूल्य (present value of future expected labour income in period t); और $A_t =$ परिसंपत्तियों का अवधि t पर मूल्य।

समीकरण (2) को (1) में प्रतिस्थापन करके और (2) को रेखीय बनाकर, और विभिन्न आय वर्गों का भारित औसत (weighted average) करने पर, कुल उपभोग फलन है–

$$C_t = a_1 Y_t + a_2 Y^{e}_{L} + a_3 A_t \qquad ...(3)$$

जहाँ $a_1 =$ चालू आय की MPC; a_2 = प्रत्याशित श्रम आय की MPC; और $a_3 =$ परिसंपत्तियों की MPC, अब APC है,

$$\frac{C_t}{Y_t} a_1 + a_2 \frac{Y_L^e}{Y_t} + a_3 \frac{A_t}{Y_t}$$

नोट

दीर्घकालीन या समय पर्यन्य (over time), *APC* स्थिर होती है क्योंकि चालू आय में श्रम आय का भाग और कुल संपत्तियों का चालू आय के साथ अनुपात स्थिर रहते हैं, जब अर्थव्यवस्था वृद्धि करती है।

जीवन-चक्र सिद्धांत के आधार पर, एण्डो तथा मोदिग्ल्यानी ने अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन उपभोग फलनों का निर्माण करने के लिए अनेक अध्ययन किए। एक तिर्यक् छेद अध्ययन से पता चला कि निम्न आय वर्गों में अपेक्षाकृत अधिक व्यक्ति निम्न आय स्तर पर थे क्योंकि वे अपने जीवन की अंतिम अवधि में थे। इस प्रकार उनकी *APC* अधिक थी। दूसरी ओर, उच्च आय वर्ग से संबंध रखने वाले औसत से अधिक व्यक्ति उच्च आय स्तरों पर थे क्योंकि वे अपने जीवन के मध्यवर्ती वर्षों में थे। इस प्रकार, उनकी *APC* अपेक्षाकृत कम थी। कुल मिलाकर, ज्यो-ज्यों आय बढ़ रही थी, त्यों-त्यों *APC* घटती जा रही थी जो परिणामत: यह बताती थी कि $APC > MPC$। अमरीका से संबंधित आंकड़ों के निरीक्षण से पता चला कि दीर्घकाल में $APC = 0.7$ पर स्थिर थी।

एण्डो-मोदिग्ल्यानी अल्पकालीन उपभोग फलन को चित्र 9.3 में C_S वक्र द्वारा दिखाया गया है। समय के किसी भी दिए हुए बिंदु पर, C_S वक्र को स्थिरांक माना जा सकता है, और अल्पकालीन उतार-चढ़ावों के दौरान, जब परिसंपत्तियाँ काफी स्थिर रहती हैं, यह वक्र केन्ज़ीय उपभोग फलन जैसा प्रतीत होता है। परंतु बचतों के माध्यम से परिसंपत्तियों के संचय के परिणामस्वरूप इसका अंत:खंड (intercept) बदल जाएगा, और इससे समय के साथ C_S वक्र ऊपर की ओर सरक कर C_S पर चला जाएगा। दीर्घकालीन उपभोग फलन C_L है जो प्रकट करता है कि जब आय बढ़ने लगती है तो *APC* स्थिर रहती है। यह सरल रेखा है जो मूल बिंदु से गुजरती है। समय पर्यन्त *APC* स्थिर रहती है क्योंकि जब अर्थव्यवस्था वृद्धि की ओर अग्रसर होती है तो कुल आय में श्रम-आय का भाग और कुल आय से परिसंपत्तियों का अनुपात स्थिर रहता है।

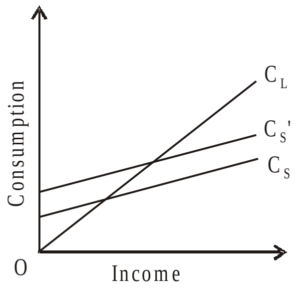

चित्र 9.3

टास्क जीवन चक्र परिकल्पना पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

इसकी आलोचनाएँ (Its Criticisms)—जीवन-चक्र सिद्धांत का कुछ सीमाएँ भी हैं।

1. जीवनकाल उपभोग की योजना अवास्तविक (Plan for Lifetime Consumption Unrealistic)—एंडो और मोदिग्ल्यानी का यह कथन है कि उपभोक्ता अपने जीवन भर के उपभोग की योजना बनाता है, अवास्तविक है क्योंकि उपभोक्ता भावी उपभोग की अपेक्षा, जो अनिश्चित है, वर्तमान उपभोग पर अधिक ध्यान देता है।

2. उपभोग परिसंपत्तियों के साथ प्रत्यक्षतौर से संबद्ध नहीं (Consumption not Directly Related to Assets)—जीवन-चक्र सिद्धांत पहले से यह मान लेता है कि उपभोग व्यक्ति की परिसंपत्तियों से प्रत्यक्ष तौर पर संबद्ध रहता है। ज्यों-ज्यों परिसंपत्तियाँ बढ़ती हैं, त्यों-त्यों उसका उपभोग बढ़ता है और परिसंपत्तियों के घटने पर उपभोग घटता है। यह भी अनावश्यक है क्योंकि हो सकता है कि व्यक्ति अपनी परिसंपत्तियाँ बढ़ाने के लिए उपभोग घटा दे।

3. उपभोग जीवन के दृष्टिकोण पर निर्भर (Consumption Dependent on Attitude towards Life)—व्यक्ति के जीवन के प्रति दृष्टिकोण पर उपभोग निर्भर करता है। समान आय एवं परिसंपत्तियों के दिए हुए होने पर, एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक उपभोग कर सकता है।

4. उपभोग विवेकी और सुबुद्ध नहीं (Consumer not Rational and Knowledgeable)—यह उपकल्पना

नोट

इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता पूर्ण विवेकी है और उसे भविष्य में अपनी आय और जीवनकाल का पूर्ण ज्ञान है। किसी भी उपभोक्ता का ऐसा विवेकी और सुबुद्ध होना अवास्तविक है।

5. बहुत चर (Many Variables)–यह सिद्धांत बहुत चरों जैसे चालू आय, भावी प्रत्याशित श्रम आय, परिसंपत्तियों का मूल्य, जीवनकाल आदि पर निर्भर करता है जिनका सही अनुमान लगाना बहुत कठिन है। इसलिए यह अवास्तविक है।

इन सब बातों के बावजूद, जीवन-चक्र सिद्धांत उन सब सिद्धांतों से श्रेष्ठ है, जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, क्योंकि इसमें उपभोग फलन के अंतर्गत चर के रूप में केवल परिसंपत्तियों को ही शामिल नहीं किया गया है, अपितु यह इस बात को भी स्पष्ट करता है कि क्यों अल्पकाल में $MPC < APC$ होती है और दीर्घकाल में *APC* स्थिर रहती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. फ्रीडमैन की यह मान्यता अवास्तविक है कि उपभोग तथा आय के अस्थायी भागों में कोई सहसंबंध नहीं है।
8. फ्रीडमैन का सिद्धांत कहता है कि सब परिवारों की *APC*, चाहे वे गरीब हों या धनी, दीर्घकाल में एक समान नहीं होती है।
9. फ्रीडमैन का स्थायी आय सिद्धांत तिर्यक छेद बजट आँकड़ों के अनुरूप है।
10. एण्डो और मोदिग्ल्यानी ने उपभोग की जीवन चक्र उपकल्पना का निर्माण किया।

9.3 सारांश (Summary)

- फ्रीडमैन का स्थायी आय सिद्धांत तिर्यक छेद बजट आँकड़ों के अनुरूप है। दीर्घकालीन आँकड़े, आय तथा उपभोग के बीच समानुपाती संबंध को बताते हैं। परंतु दीर्घकालीन संतुलन मार्ग के गिर्द आय के अल्पकालीन उतार-चढ़ाव से संबंधित अध्ययनों से पता चलता है कि मापित आय तथा मापित उपभोग में गैर-आनुपातिक संबंध है।

9.4 शब्दकोश (Keywords)

- धन-अर्जक (Earner) – धन कमाने वाला।
- समय पर्यन्त (Over time) – दीर्घकालीन।

9.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. स्थायी आय परिकल्पना से आप क्या समझते हैं?
2. जीवन चक्र परिकल्पना के बारे में आप क्या जानते हैं?
3. जीवन चक्र सिद्धांत किन मान्यताओं पर आधारित हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. उपभोग व्यय 2. घट या बढ़ 3. (अ) 4. (ब)

नोट

5. (अ) 6. (ब) 7. सही 8. गलत

9. सही 10. सही।

9.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–10: निवेश फलन (Investment Function)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
10.1 निवेश (Investment)
10.2 पूँजी की सीमांत क्षमता (Marginal Efficiency of Capital)
10.3 पूँजी की सीमांत क्षमता और ब्याज की दर (MEC and Rate of Interest)
10.4 निवेश माँग वक्र (Investment Demand Curve)
10.5 सारांश (Summary)
10.6 शब्दकोश (Keywords)
10.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
10.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- निवेश का अध्ययन करने हेतु।
- पूँजी की सीमांत क्षमता जानने हेतु।
- निवेश माँग वक्र जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में समझाए गए उपभोग फलन के अलावा, निवेश फलन सामूहिक माँग का दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। उपभोग फलन के समान, निवेश फलन भी अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय में संबंधित है, जैसा चित्र 10.1 में दर्शाया गया है। गणितीय रूप में $I = f(Y)$। कीन्स के विश्लेषण में, लघुकाल में उपभोग फलन को स्थिर माना गया है। इसलिए, अर्थव्यवस्था में निवेश फलन आय, उत्पादन और रोजगार स्तर का मुख्य निर्धारक बन जाता है। यह न केवल कीन्स और कीन्स के बाद के सिद्धांतवादियों के लिए, अपितु कीन्स से पूर्व व्यापारिक चक्र सिद्धांतों के लिए भी सत्य है।

10.1 निवेश (Investment)

निवेश से आशय सामूहिक उत्पादन के उस भाग के मूल्य से है, जो नए संयंत्र अथवा पूँजीगत उपकरण, नए ढाँचे (इमारत), नए व्यापारिक सामान का रूप ले सकता है। निवेश को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. सकल निवेश और शुद्ध निवेश (Gross Investment and net Investment)

सकल निवेश एक निश्चित समय अवधि में नई स्थायी पूँजीगत संपत्तियों (जैसे मकान, यंत्र, कारखाने आदि) अथवा माल तालिकाओं (जैसे कच्चा माल, अविक्रित उपभोग वस्तुएँ) में परिवर्तन का उल्लेख करता है। सकल निवेश को सांकेतिक रूप में इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है–

$$\Delta K_t \quad \text{अथवा} \quad I_t = K_t - K_o$$

यहां, ΔK_t एक निश्चित समय अवधि t में पूँजीगत स्टॉक में परिवर्तन है, K_t का अर्थ अवधि t के अंत में पूँजीगत स्टॉक है तथा K_o अवधि के प्रारंभ में पूँजीगत स्टॉक है। इसे अवधि t के अंत में सकल निवेश कहा जा सकता है।

अर्थव्यवस्था में किया गया सकल निवेश, आवश्यक नहीं कि पूँजीगत स्टॉक में शुद्ध वृद्धि हो, क्योंकि नई पूँजी का एक भाग अवमूल्यित (depreciated) पूँजीगत स्टॉक का प्रतिस्थापन करने के लिए आवश्यक होगा। वर्ष के दौरान अवमूल्यित पूँजी के प्रतिस्थापन पर उठाया गया व्यय प्रतिस्थापन निवेश (replacement investment) कहलाता है। यह वर्तमान स्टॉक को बनाए रखने के लिए जरूरी है। इसलिए, सकल निवेश में से प्रतिस्थापन निवेश अथवा पूँजी उपभोग को घटाकर, शुद्ध निवेश प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, शुद्ध निवेश को प्राप्त करने के लिए सकल निवेश में से अवधि के उत्पादन को उत्पादित करने में खर्च की गई (used up) वर्तमान कुल ढाँचों (structures) और उत्पादकों को टिकाऊ उपस्कर (equipment) की राशि को घटा दिया जाता है। संक्षेप में,

शुद्ध निवेश = सकल निवेश–प्रतिस्थापन निवेश

अथवा सकल निवेश = शुद्ध निवेश + प्रतिस्थापन निवेश।

जब पूँजीगत स्टॉक को अविकल (intact) रखने के लिए सकल निवेश मात्र पर्याप्त होता है, तो शुद्ध निवेश शून्य के बराबर होता है। यहाँ सकल निवेश अवधि के दौरान खर्च की गई पूँजी की राशि के समान होता है। परंतु, जब अर्थव्यवस्था मंदी की पकड़ में होती है, नए निवेश के लक्षण बहुत निराशावादी होते हैं। इस मंदी के वातावरण में अविक्रित वस्तुओं के स्टॉक जमा हो जाते हैं और निवेशक अवमूल्यित पूँजीगत उपस्कर को प्रतिस्थापित करने के लिए व्यय उठाने में भी अनिच्छुक हो जाते हैं। जब संकल्प निवेश प्रतिस्थापन आवश्यकताओं से कम होता है, उनका अंतर ऋणात्मक शुद्ध निवेश (disinvestment) होता है। यह पूँजी के स्टॉक में कमी दर्शाता है। शुद्ध निवेश तभी संभव होगा, जब सकल निवेश प्रतिस्थापन निवेश से अधिक होता है। शुद्ध निवेश में कमी न केवल विकास के लिए गंभीर रुकावट है, बल्कि यह अर्थव्यवस्था को मंदी के जाल में डाल सकती है, जिससे लोगों को भारी क्षति (tremendous strain) पहुँचती है।

2. वित्तीय निवेश और वास्तविक निवेश (Financial Investment and Real Investment)

वित्तीय निवेश का तात्पर्य केवल एक व्यक्ति से दूसरे को अधिकार का हस्तांतरण है। इससे अर्थव्यवस्था का वास्तविक पूँजी स्टॉक नहीं बढ़ता है। उदाहरण के लिए, बैंक में निक्षेप (deposits), एक व्यक्ति द्वारा मकान, वर्तमान अंशपत्र (shares), ऋणपत्र (debentures), बाण्ड (bonds) की खरीद, कुछ भी नया उत्पन्न नहीं करती। इनमें मात्र एक व्यक्ति से दूसरे को स्वामित्व के अधिकार का हस्तांतरण शामिल होता है, किंतु अर्थव्यवस्था की कुल पूँजी अपरिवर्तित रहती है। जब एक क्रेता निवेश कर रहा होता है, तो दूसरा (विक्रेता) विनिवेश (disinvests) कर रहा होता है। निवेशक को इस निवेश से कुछ प्रतिफल मिलता है। किंतु, अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कोई निवेश नहीं होता।

नोट्स जब पूँजीगत स्टॉक को अविकल रखने के लिए सकल निवेश मात्र पर्याप्त होता है, तो शुद्ध निवेश शून्य के बराबर होता है।

नोट

इसके विपरीत, वास्तविक निवेश अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादी क्षमता उत्पन्न करता है। एक नए कारखाने अथवा कार्य शिविर (workshop) का निर्माण वास्तविक निवेश का एक उदाहरण है। निवेश का यह कार्य न केवल उसके लिए है, अपितु अर्थव्यवस्था के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। कीन्स ने राष्ट्रीय आय विश्लेषण में इस निवेश का प्रयोग किया है। यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि जब एक व्यक्ति एक कंपनी के नए अंश-पत्र खरीदता है, तो वित्तीय निवेश वास्तविक निवेश का परिचायक होगा।

3. आयोजित निवेश और अनियोजित निवेश (Planned Investment and Unplanned Investment)

निवेश को आयोजित अथवा अभिप्रेत निवेश कहा जाता है, जो माल तालिकाओं में वृद्धि अथवा एक अतिरिक्त यंत्र की स्थापना द्वारा वर्तमान स्टॉक को बढ़ाने के लिए जानबूझकर किया गया प्रयास प्रोत्साहित करती है। यह भारी बिक्री अथवा अनुकूल बाजार की दशाओं से प्रेरित हो सकता है। उद्यमी एक निश्चित समय अवधि निर्धारित लक्ष्य के अनुसार इस निवेश में हाथ डालने का विचार करते हैं।

इसके विपरीत, अनियोजित निवेश उद्यमियों की ओर से विवश निवेश (forced Investment) है। यह तब होता है, जब कम बिक्री के कारण कुछ अविक्रित तैयार वस्तुएँ संचित हो जाती हैं।

यह जरूरी नहीं कि वास्तविक निवेश (realised investment) आयोजित निवेश के बराबर हो। वास्तविक निवेश, आयोजित और अनियोजित निवेश के योग के बराबर होता है। जब अनियोजित निवेश शून्य के बराबर होता है, तो वास्तविक निवेश आयोजित निवेश के बराबर होता है। संक्षेप में,

वास्तविक निवेश = आयोजित निवेश + अनियोजित निवेश

4. प्रेरित निवेश और स्वायत्त निवेश (Induced Investment and Autonomous Investment)

निवेश का प्रेरित और स्वायत्त निवेश में वर्गीकरण समष्टिगत आर्थिक विश्लेषण में महत्त्वपूर्ण है। निवेश जो कि उद्यमियों की लाभ अपेक्षाओं पर निर्भर करता है, प्रेरित निवेश कहलाता है। जब उद्यमी पूँजीगत वस्तुओं की सहायता से उत्पादित वस्तुओं की तेज बिक्री की आशा करते हैं, तो वे इन पूँजीगत वस्तुओं को उत्पन्न करते हैं अथवा मंगवाते हैं। ऐसा पूर्वानुमान आय के स्तर और उपभोक्ताओं की प्रभावपूर्ण माँग पर निर्भर करता है। आय के स्तर में वृद्धि से रोजगार का स्तर बढ़ता है और इसलिए उपभोक्ता वस्तुओं की माँग बढ़ जाती है। आय और निवेश के बीच यह धनात्मक फलनक संबंध आलेख द्वारा चित्र 10.1 में समझाया गया है। इस चित्र में, आय को X-(horizontal) अक्ष पर प्रदर्शित किया गया है।

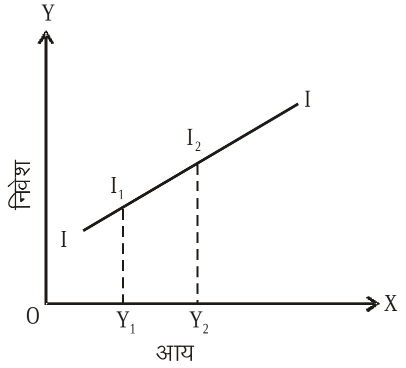

चित्र 10.1 : प्रेरित निवेश

जबकि निवेश को Y-(vertical) अक्ष पर आलेखित किया गया है। आय में OY_1 से OY_2 तक वृद्धि होने की प्रतिक्रिया स्वरूप निवेश का स्तर Y_1I_1 से Y_2I_2 बढ़ जाता है। इसलिए, प्रेरित निवेश आय लोचदार (Income elastic) है। आय का स्तर जितना ऊँचा होता है, उतना ही निवेश अधिक होगा। आय के अतिरिक्त, प्रेरित निवेश अभिनव परिवर्तन (innovations), सरकारी नीति, जनसंख्या के आकार और संघटन, आदि पर भी निर्भर करता है।

स्वायत्त निवेश आय के स्तर अथवा ब्याज की दर से प्रभावित नहीं होता। सरकार द्वारा जनोपयोगी सेवाओं (जैसे रेलवे, सड़क, बिजली, डाक और तार, इत्यादि) में किया गया अधिकांश निवेश इस श्रेणी या वर्ग से संबंधित है, चूँकि सरकार के निवेश निर्णय मात्र लाभ या हानि से प्रेरित नहीं होते। इसके विपरीत, निजी निवेश का स्वायत्त होना

आवश्यक नहीं है। चूँकि स्वायत्त निवेश ब्याज के प्रति पूर्णतया बेलोचदार है, इसका वक्र X- अक्ष के समानांतर है। इसे आरेखी रूप में चित्र 10.2 में दर्शाया गया है, जो दिखाता है कि आय के प्रत्येक स्तर पर निवेश की मात्रा एक समान रहती है। तकनीक में परिवर्तन, नए संसाधनों की खोज, जनसंख्या में वृद्धि, निवेश के लिए बजट आबंटन, इत्यादि के आधार पर यह वक्र ऊपर की ओर (या नीचे की ओर) खिसक सकता है। प्रेरित और स्वायत्त निवेश को जोड़कर सामूहिक निवेश प्राप्त किया जा सकता है।

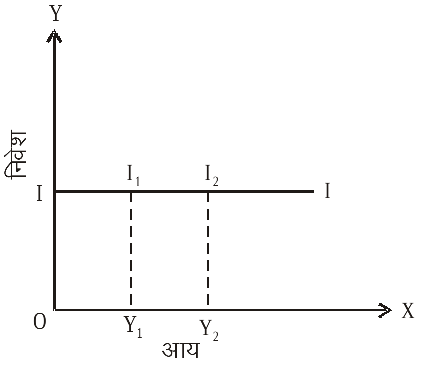

चित्र 10.2 : स्वायत्त निवेश

क्या आप जानते हैं कीन्स के विश्लेषण में, लघुकाल में उपभोग फलन को स्थिर माना गया है।

प्रेरित तथा स्वायत्त निवेश को जोड़कर सामूहिक निवेश प्राप्त किया जा सकता है। राजनीतिक स्थिरता देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश सहित स्वायत्त व प्रेरित निवेश को बढ़ा देती है। प्रेरित व स्वायत्त निवेश के बीच का अंतर निम्नलिखित तालिका 10.1 में समझाया गया है।

तालिका 10.1 : प्रेरित तथा स्वायत्त निवेश में अंतर

आधार	प्रेरित निवेश	स्वायत्त निवेश
1. लाभ	यह उद्यमियों की लाभ अपेक्षाओं पर निर्भर करता है।	यह लाभ पर निर्भर नहीं करता।
2. आय लोच	आय के स्तर में वृद्धि से प्रेरित निवेश का स्तर बढ़ जाता है तथा यह विलोमतः भी सही है कि दूसरे शब्दों में, यह आय के प्रति लोचदार है। इसके वक्र का धनात्मक ढाल होता है।	स्वायत्त निवेश आय के स्तर में परिवर्तनों से अप्रभावित रहता है। दूसरे शब्दों में, यह पूर्णतया आय बेलोचदार है। इसका रेखाचित्र X-अक्ष के समांतर है।
3. क्षेत्र	प्रेरित निवेश सामान्यतया क्षेत्र या निजी निवेश के रूप में निजी क्षेत्र में किया जाता है, जो कि पूँजी की सीमांत क्षमता तथा ब्याज की बाजार दर पर निर्भर है।	सरकार द्वारा सार्वजनिक निवेश के रूप में किया गया अधिकांश निवेश स्वायत्त निवेश है, जो कि सार्वजनिक कल्याण से प्रेरित होता है।
4. कारक	प्रेरित निवेश, आय के अतिरिक्त अभिनव परिवर्तन (Innovations) सरकारी कर नीति, जनसंख्या के आकर व संघटन, इत्यादि पर निर्भर करता है। राजीतिक स्थिति भी प्रेरित निवेश को प्रभावित करती है। सरकार की अस्थिरता एक महान विनाश कर सकती है।	स्वायत्त निवेश देश की सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक स्थितियों पर निर्भर करता है। तकनीकी सुधार, नए संसाधनों की खोज, जनसंख्या वृद्धि, आदि के कारण सरकारी बजट आबंटन वृद्धि स्वयत्त निवेश में परिवर्तन ला सकते हैं। फलस्वरूप इसका वक्र ऊपर या नीचे खिसक सकता है।

नोट

5. निजी निवेश और सार्वजनिक निवेश (Private Investment and Public Investment)

निवेश का एक अन्य महत्त्वपूर्ण वर्गीकरण, इस आधार पर कि कौन निवेश करता है, निजी निवेश और सार्वजनिक निवेश में किया जा सकता है। आज, तथाकथित पूँजीगत अर्थव्यवस्थाओं में कुल निवेश का एक बड़ा भाग सरकार द्वारा किया जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश मुख्यत: राजनीतिक और सामाजिक विचारों से प्रभावित होता है। सरकार विद्यालय, महाविद्यालय, चिकित्सालय, सड़क, बाँध, विद्युत, गैस, जल, यातायात, गृह, इत्यादि परियोजनाओं में जनसाधारण को नि:शुल्क, रियायती अथवा न लाभ न हानि आधार (break even) की सेवाओं में प्राय: निवेश करती है। यह निवेश केंद्रीय सरकार, राज्य सरकारों, स्थानीय अधिकारियों, सार्वजनिक निगमों, आदि जैसे सार्वजनिक प्राधिकारियों द्वारा पूँजीगत वस्तुओं को खरीदने के लिए किया जाता है। उनके लिए, लाभ पेश करने वाली सेवाएँ भी समाज के हित से प्रभावित होती हैं।

सार्वजनिक निवेश की स्थिति में, परियोजनाओं की आगम की उनकी निवेश लागतों से तुलना करना संभव नहीं है। विभिन्न (वांछनीय या अभीष्ट) परियोजनाओं में से सर्वाधिक लाभप्रद परियोजनाओं के चुनने का सार्वजनिक निवेश निर्णय लागत-लाभ विश्लेषण (cost-benefit analysis) पर आधारित है। इस उद्देश्य के लिए, हमें प्रस्तावित निवेशों के सामाजिक लाभों और सामाजिक लागतों को निर्धारित करना पड़ेगा। सामाजिक लाभों से तात्पर्य संपूर्ण समाज द्वारा प्राप्त कुल संतुष्टि से है, जो कि उद्यमी द्वारा अर्जित आगमों (receipts) में पूरी तरह से प्रकट नहीं होता। उदाहरण के लिए सरकार द्वारा प्रदान की गई आवास सुविधाओं (housing facilities) से विश्वविद्यालय के अध्यापकों द्वारा प्राप्त सामाजिक लाभ, आगम से कहीं अधिक होते हैं। इसी प्रकार, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के कारण वायु, जल और ध्वनि प्रदूषणों से समाज द्वारा उठाई सामाजिक लागत को, सार्वजनिक निवेश की वास्तविक लागतों का मूल्यांकन करते समय नकारा नहीं जा सकता। यद्यपि सार्वजनिक निवेश सार्वजनिक कल्याण से प्रेरित होता है, जबकि यंत्र, संयंत्र, कारखाने, कार्यालय, गोदाम, दुकान, आदि पूँजीगत वस्तुओं के क्रय पर निजी निवेश लाभ से प्रोत्साहित होता है। निजी उद्यमी तभी निवेश करते हैं, जब वे एक परियोजना से संतोषजनक प्रतिफल की आशा करते हैं। पूँजीगत संपत्ति से अपेक्षित आय और इसका क्रय मूल्य (purchase price) मिलकर पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) निर्धारित करते हैं। निवेश करना तब तक लाभप्रद है, जब तक पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) बाजार की ब्याज दर से अधिक होती है। अब, हम यह समझाएँगे कि यह कैसे होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. निवेश से आशय सामूहिक उत्पादन के उस भाग के मूल्य से है, जो नए ·············· का रूप ले सकता है।
2. नए निवेश के लक्षण बहुत ·············· होते हैं।

10.2 पूँजी की सीमांत क्षमता (Marginal Efficiency of Capital)

कीन्स के अनुसार, एक नई परियोजना में निवेश करना पूँजी की सीमांत क्षमता और बाजार की ब्याज दर पर निर्भर करता है। और फिर, पूँजी की सीमांत क्षमता पूँजीगत संपत्ति के पूर्ति मूल्य और पूँजीगत संपत्ति से प्रत्याशित प्राप्ति अथवा लाभ से निर्धारित होता है।

पूँजी संपत्ति का पूर्ति मूल्य (Supply Price of Capital Asset)

जब एक उद्यमी एक पूँजीगत संपत्ति खरीदना चाहता है, तो उसे उसके लिए कीमत अदा करनी होगी। इस राशि को पूँजीगत वस्तु का क्रय मूल्य कहा जाता है। कीन्स ने संपत्ति प्राप्ति की लागत को पूँजीगत संपत्ति का पूर्ति मूल्य अथवा

प्रतिस्थापन लागत कहा है। यह वह मूल्य है जिस पर नई पूँजीगत संपत्ति उपलब्ध या प्रतिस्थापित की जाती है। यह संभव है कि संपत्ति के पूर्ति मूल्य का समय विस्तार (spread-over) विशेष रूप में निर्माण आदि जैसी सेवाओं की स्थिति में, अनेक वर्षों तक हो। परिणामस्वरूप, उद्यमी की पूर्ण लागत अपेक्षित राशि से काफी अलग हो। परंतु, वर्तमान विश्लेषण को सरल बनाने के लिए उस अवस्था को नहीं माना गया है। इसके अतिरिक्त, संपत्ति के निपटान मूल्य (disposal value) को शून्य माना गया है।

पूँजीगत संपत्ति से प्रत्याशित प्राप्ति (Prospective Yields from Capital Asset)

पूँजीगत संपत्ति से प्रत्याशित प्राप्तियाँ अथवा अपेक्षित आय प्रवाह संपत्ति द्वारा इसके जीवन काल में उत्पादित उत्पादन के विक्रय से अपेक्षित आगम और परिवर्तनशील लागतों का अंतर है। परिवर्तनशील अथवा प्रचलित लागतें कच्चे माल, मजदूरियों, विज्ञापन, रखरखाव, यातायात, इत्यादि पर उठाए खर्चे हैं।

प्रत्येक उद्यमी जो एक नया कारखाना बनाने या नया यंत्र खरीदने का निर्णय लेता है, पहले संपत्ति के प्रत्याशित प्राप्तियों पर विचार करता है। सभी पूँजीगत संपत्तियां लंबे समय तक चलती हैं और उनकी प्राप्तियाँ सामान्यतया भविष्य में कई वर्षों तक फैली होती है। भविष्य में क्या होगा, उसका पूर्वानुमान बहुत जरूरी (inevitable) है। भविष्य के प्रतिफलों में अनिश्चितता भविष्य में पूँजीगत संपत्ति की उत्पादकता और वस्तु के मूल्य में अनिश्चितता के कारण होती है। यदि संपत्ति का भौतिक जीवन (physical life) का पता हो, तो तकनीकी परिवर्तनों की संभावना के कारण इसके आर्थिक जीवन को जानना कठिन है। परिणामस्वरूप, भौतिक रूप से छीजने से पूर्व वस्तु पुरानी या बेकार (obsolete) हो जाती है। इसलिए, उद्यमी को पूँजीगत संपत्ति के जीवन काल में इसके जीवन और आय प्रवाह का सावधानी से अनुमान करना पड़ता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पूर्ति मूल्य परिसंपत्ति की वर्तमान लागत है, जबकि प्रत्याशित प्राप्तियाँ संपत्ति से भविष्य के प्रतिफल हैं। पूँजीगत संपत्ति के आर्थिक जीवन में फैली प्राप्तियों को इसके पूर्ति मूल्य के तुल्य बनाना चाहिए क्योंकि भविष्य की प्राप्तियाँ समान वर्तमान राशि से कम मूल्यवान हैं। उद्यमी नए निवेश पर भविष्य प्राप्तियों और वर्तमान एक मुश्त व्यय के बीच अंतर नहीं जान सकता।

कीन्स ने संपत्ति से इसके जीवन काल के दौरान अपेक्षित वार्षिक शुद्ध प्रतिफल के लिए 'वार्षिकी' शब्द का प्रयोग किया है। प्रत्येक वार्षिकी पर जितने वर्षों के लिए यह वर्तमान से दूर है, बट्टा लगाकर, इन (भावी) वार्षिकियों के वर्तमान मूल्य को ज्ञात किया जा सकता है। बट्टा लगाने के लिए, चक्रवृद्धि ब्याज की गणना को विपरीत दिशा में प्रयोग करना होता है।

यदि एक मूलधन रकम P, n वर्षों के लिए चक्रवृद्धि ब्याज पर दी जाती है, यह संचित होकर A धनराशि हो, जाएगी, इस प्रकार कि $A = P(1 + r)^n$, जहाँ r ब्याज की दर है। दूसरे शब्दों में, यदि A, r तथा n ज्ञात हैं, P का मान $P = A/(1 + r)^n$ के रूप में दिया जा सकता है। यहाँ, भावी आय अथवा प्रतिफल A को r के बराबर बट्टा लगाया गया समझा जा सकता है। इस सूत्र का एक निश्चित समय काल के बाद प्राप्त होने वाली आय के वर्तमान मूल्य को ज्ञात करने में प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार, यदि शुद्ध (भावी) प्राप्ति और (वर्तमान) प्रारंभिक लागत दी हुई हो, तो हम बट्टा दर (प्राप्ति दर) ज्ञात कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक फर्म एक पूँजीगत उपस्कर को 1,00,000 रुपए में खरीदती है, जिससे अब से दो वर्ष बाद 1,21,000 रुपए की एकमुश्त शुद्ध प्राप्ति प्राप्त करने की आशा करती है तो वार्षिक प्राप्ति दर को इस सूत्र से प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ,

$$1,00,000 = \frac{1,21,000}{(1+r)^2}$$

नोट

$$\Rightarrow \quad 1 + r = \sqrt{\frac{1,21,000}{1,00,000}} = 1.1$$

$$r = 0.10 = 10\%$$

वास्तविक जीवन में प्राप्तियाँ पूँजीगत संपत्ति के जीवन में लगातार प्राप्त होती हैं। माना, अपेक्षित वार्षिक शुद्ध प्राप्तियों की श्रृंखला $A_1, A_2, A_3, \ldots\ldots, A_n$ है, जहाँ अधोलिखित वर्ष के प्रतीक हैं। $P_1, P_2, P_3, \ldots\ldots, P_n$ क्रमशः उनके वर्तमान मूल्य हैं। अपेक्षित वार्षिक शुद्ध प्राप्तियों का कुल वर्तमान मूल्य $P_1 + P_2 + P_3 + \ldots\ldots, + P_n$ है।

अथवा,
$$PV = \frac{A_1}{(1+r)} + \frac{A_2}{(1+r)^2} + \ldots\ldots + \frac{A_n}{(1+r)^n}$$

यहाँ, PV का अर्थ पूँजीगत संपत्ति में निवेश से अपेक्षित आय के भावी प्रवाह के कुल बट्टित वर्तमान मूल्य से है।

$$\frac{A_1}{(1+r)}, \frac{A_2}{(1+r)^2}, \frac{A_3}{(1+r)^3}, \ldots\ldots, \frac{A_n}{(1+r)^n}$$

आदि मदें प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष, तृतीय वर्ष और n वें वर्ष के अंत में अपेक्षित आय प्रवाह प्राप्य (स्वीकार्य) के वर्तमान मूल्य को प्रस्तुत करती है।

अब, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या निवेश परियोजना में हाथ डालना चाहिए अथवा नहीं। यदि पूँजीगत वस्तुओं की लागत प्रत्याशित प्राप्तियों के कुल वर्तमान मूल्य से कम है, निवेश परियोजना लाभप्रद होती है। परंतु, यदि वस्तु की लागत प्राप्तियों के वर्तमान मूल्य से अधिक होती है, तो निवेश में हाथ नहीं डालना चाहिए। जब दोनों केवल बराबर होते हैं, निवेश उदासीनता का विषय बन जाता है।

उदाहरण (Illustration)

5 वर्ष के आर्थिक जीवन का एक यंत्र प्रत्येक वर्ष 1,000 रुपए प्राप्ति देता है। इसकी वर्तमान लागत 3,500 रुपए है तथा ब्याज की बाजार दर 12 प्रतिशत है। क्या इस यंत्र में निवेश करना लाभप्रद है?

उत्तर

प्रत्याशित प्राप्तियों का वर्तमान मूल्य

$$PV = \frac{A_1}{(1+r)} + \frac{A_2}{(1+r)^2} + \frac{A_3}{(1+r)^3} + \frac{A_4}{(1+r)^4} + \frac{A_5}{(1+r)^5}$$

$$= \frac{1,000}{(1+0.12)} + \frac{1,000}{(1+0.12)^2} + \frac{1,000}{(1+0.12)^3} + \frac{1,000}{(1+0.12)^4} + \frac{1,000}{(1+0.12)^5}$$

$$= \frac{1,000}{(1.12)} + \frac{1,000}{(1.12)^2} + \frac{1,000}{(1.12)^3} + \frac{1,000}{(1.12)^4} + \frac{1,000}{(1.12)^5}$$

$$= 892.86 + 797.20 + 711.78 + 635.52 + 567.43$$

= 3,604.79 रुपए

नोट

स्पष्ट है, रुपए 3,604.79 (वर्तमान मूल्य) > 3,500 रुपए (वर्तमान लागत)

अतः निवेश लाभप्रद है।

निवेशक द्वारा एक वैकल्पिक विचारधारा का प्रयोग किया जा सकता है, जिसके अंतर्गत प्रतिफल की अपेक्षित दर (i) ज्ञात की जाती है और इसकी ब्याज की बाजार दर (r) से तुलना की जाती है, जिस पर उधार देय कोष उस संपत्ति को खरीदने के लिए उपलब्ध होते हैं। प्रतिफल की अपेक्षित दर का आकलन करने के लिए सभी प्रत्याशित प्राप्तियों को उचित रूप से इस प्रकार बट्टित किया जाता है कि उनका कुल वर्तमान मूल्य ठीक प्रतिस्थापन मूल्य के बराबर हो जाता है। बट्टे की यह दर जो पूँजीगत संपत्ति से उसके जीवन काल में अपेक्षित वार्षिक आय की शृंखला के कुल वर्तमान मूल्य को संपत्ति के पूर्ति मूल्य के समान कर दे, पूँजी की सीमांत क्षमता कहा जाता है। निम्नलिखित सूत्र में (i) पूँजी की सीमांत क्षमता है।

$$C = \frac{A_1}{(1+i)} + \frac{A_2}{(1+i)^2} + \frac{A_3}{(1+i)^3} + \text{...........} + \frac{A_n}{(1+i)^n}$$

यहाँ $A_1, A_2, A_3, ..., A_n$ क्रमशः पहले, दूसरे तीसरे, n वें वर्ष के अंत में अपेक्षित प्रत्याशित आय है। C संपत्ति का पूर्ति मूल्य है और i पूँजीगत संपत्ति से प्रतिफल की अपेक्षित दर है। $A_1, A_2, A_3, ..., A_n$ तथा C के निश्चित मान के लिए C का अद्वितीय मूल्य जो इस समीकरण को संतुष्ट करे, पूर्ति की सीमांत क्षमता (MEC) है। कीन्स के शब्दों में पूर्ति की सीमांत क्षमता "बट्टे की वह दर है जो पूँजीगत संपत्ति से इसके जीवन में अपेक्षित प्रतिफल द्वारा दी गई वार्षिकियों की शृंखला के वर्तमान मूल्य को ठीक इसके पूर्ति मूल्य के समान बना दे।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. वित्तीय निवेश का तात्पर्य केवल एक व्यक्ति से दूसरे को अधिकार है–
   (अ) हस्तांतरण का (ब) अहस्तांतरण का
   (स) व्यय का (द) इनमें से कोई नहीं।
4. जब एक क्रेता निवेश कर रहा होता है, दूसरा (विक्रेता) कर रहा होता है–
   (अ) निवेश (ब) विनिवेश
   (स) विक्रय (द) क्रय।
5. निवेश को आयोजित अथवा .... निवेश कहा जाता है–
   (अ) न्यूनतम (ब) अधिकतम
   (स) अभिप्रेत (द) इनमें से कोई नहीं।
6. अनियोजित निवेश उद्यमियों की ओर से है–
   (अ) विवश निवेश (ब) अनिवेश
   (स) सुनियोजित निवेश (द) इनमें से कोई नहीं।

10.3 पूँजी की सीमांत क्षमता और ब्याज की दर (MEC And Rate Of Interest)

एक विशेष पूँजीगत संपत्ति की सीमांत क्षमता, संपत्ति से प्रत्याशित प्राप्तियों को इसके पूर्ति मूल्य से संबद्ध करके ज्ञात की जा सकती है। एक संपत्ति की सीमांत क्षमता बतलाती है कि उस प्रकार की एक अतिरिक्त संपत्ति से भुगतान

की तुलना में उद्यमी क्या उपार्जित करने की आशा करता है। यह उस संपत्ति पर प्रतिफल की आंतरिक दर (Internal rate of return) है। चूँकि MEC की गणना भविष्य के अनुमान पर निर्भर है, यह अत्यंत व्यक्तिपरक (subjective) और अनिश्चित मात्रा है। सामान्यतया निवेश करने से लाभ होता है, जब तक पूँजीगत संपत्ति से प्रतिफल की यह अपेक्षित दर ब्याज की बाजार दर से अधिक होती है। यह नीचे समझाया गया है।

जब एक उद्यमी किसी पूँजीगत वस्तु में निवेश करने का निर्णय लेता है, वह या तो बाजार से कोष उधार लेता है अथवा निवेश परियोजना के लिए स्वयं अपने संसाधनों का प्रयोग कर वित्त व्यवस्था करता है। पहली स्थिति में, उसे बाजार की ब्याज दर देनी पड़ती है जबकि दूसरी स्थिति में वह उस ब्याज का त्याग करता है, जो वह इन कोषों को उधार देकर प्राप्त कर सकता था। किसी भी स्थिति में, ब्याज निवेश की कीमत है। उद्यमी निवेश की इस कीमत को प्रतिफल की अपेक्षित दर के रूप में निवेश से प्राप्त आय (अथवा लाभ) अथवा पूँजी की सीमांत क्षमता से तुलना करता है। यदि पूँजी की सीमांत क्षमता (*i*) ब्याज की बाजार दर (r) से अधिक होती है, परियोजना को प्रारंभ करना लाभप्रद है, हालांकि उद्यमी को संपूर्ण अथवा आंशिक आवश्यक कोषों को ब्याज की बाजार दर पर उधार लेना पड़े। दूसरी ओर, यदि पूँजी की सीमांत क्षमता ब्याज की बाजार दर से कम होती है, तो निवेश परियोजना लाभप्रद नहीं होती। इस स्थिति में, उद्यमी को, उपलब्ध कोषों को ब्याज की बाजार पर उधार दे देना चाहिए। उदहारण के लिए, यदि पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) 10% है और वर्तमान ब्याज की बाजार 8% है, तो कोषों की ब्याज लागत और संपत्ति की घिसावट लागत आदि सभी लागतों को प्रावधान करने के बाद, निवेश 2% का शुद्ध प्रतिफल देता है। परंतु, यदि ब्याज की दर बढ़कर 12% हो जाती है तो भावी निवेशक (prospective investor) को परियोजना को प्रारंभ नहीं करना चाहिए क्योंकि प्रतिफल की शुद्ध प्रतिफल दर–2% है। इस प्रकार, शुद्ध प्रतिफल पूँजी की सीमांत क्षमता और ब्याज की बाजार दर का अंतर है।

यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि किसी पूँजीगत संपत्ति के लिए पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) किसी प्रकार ब्याज की बाजार दर निर्भर नहीं करती। एक बार पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) का अनुमान लगने पर, ब्याज की बाजार दर हमें सिर्फ यह बतलाती है कि क्या प्रस्तावित निवेश परियोजना लाभप्रद है, जब इस दर की पूँजी की सीमांत क्षमता से तुलना की जाती है। ब्याज की दर (r) में परिवर्तन होने से पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। किंतु, यदि ब्याज की दर के बढ़ने से पूर्व, यह पूँजी की सीमांत क्षमता से कम होती है तथा बढ़ने के बाद ब्याज की दर पूँजी की सीमांत क्षमता से अधिक हो जाती है, जो निवेश परियोजना पहले लाभप्रद लगती थी, अब अलाभप्रद लगेगी। इसलिए, ब्याज की बाजार दर में वृद्धि पूँजीगत वस्तु की अपेक्षित लाभप्रदता को कम कर देती है अथवा यहाँ तक इसे अपेक्षित हानि में बदलती है और इसके विलोमत: भी सत्य है।

पूँजी की सीमांत क्षमता सूची (MEC Schedule)

किसी समय पर, एक फर्म को विभिन्न प्रकार के निवेश अवसरों का सामना करना पड़ता है। इनमें से कुछ निवेश तकनीक में परिवर्तन से, जबकि अन्य उत्पादन इकाइयों में विस्तार के लिए आवश्यक बन जाते हैं। प्रत्येक संभव परियोजना के लिए निवेश व्यय उठाने का निर्णय उनकी पूँजी की सीमांत क्षमता और वर्तमान ब्याज की बाजार दर के आधार पर किया जाता है। फर्में उन्हीं निवेश परियोजनाओं को चुनेंगीं, जिनके लिए पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) ब्याज की बाजार दर (r) से अधिक होती है। फर्म से विभिन्न परियोजनाओं को उनकी पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) के घटते हुए क्रम में चयन करने की आशा की जाती है, चूँकि फर्म प्रतिफल को अधिकतम करने का उद्देश्य करती है। इसलिए, कोष की उपलब्ध्वता और ब्याज की बाजार दर के अनुसार, निवेश अवसरों को उनकी पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) के घटते हुए क्रम से वर्गीकृत करके पूँजी की सीमांत क्षमता सूची बनाई जाती है। इसे निम्नलिखित पूँजी की सीमांत क्षमता सूची की सहायता से समझाया जा सकता है, जहाँ 5 परियोजनाएँ जो फर्म प्रारंभ कर सकती हैं, उनकी पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) के घटते हुए क्रम में वर्गीकृत की गई हैं। (सारणी 4.1)

नोट

तालिका 10.2 पूँजी की सीमांत क्षमता सूची		
निवेश परियोजना	**परियोजना का मूल्य (करोड़ रुपए)**	**पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC)**
A	5	15%
B	2	12%
C	4	10%
D	1	8%
E	3	6%

हम देखते हैं कि पूँजी की सीमांत क्षमता सूची एक व्यक्तिगत फर्म की पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) का निवेश के वैकल्पिक स्तरों से संबंध व्यक्त करती है। यदि ब्याज की बाजार दर 13% होती है, तो 5 करोड़ रुपए लागत वाली केवल पहली परियोजना लाभ प्रदान करती है। जब ब्याज की बाजार दर गिरकर 9% हो जाती है, तो फर्म 11 करोड़ रुपए की (कुल) लागत वाली तीन परियोजनाओं को लाभप्रद पाती है। अतिरिक्त निवेश स्पष्ट रूप से पूँजी की कुल मात्रा को बढ़ाएगा। माना, प्रारंभ में फर्म के पास 20 करोड़ रुपए का कुल प्रारंभिक स्टॉक (घिसावट के बाद शुद्ध) है। 13% ब्याज की दर पर, कुल पूँजी स्टॉक बढ़कर 25 करोड़ रुपए हो जाता है और फिर 31 करोड़ रुपए हो जाता है, जब ब्याज की दर 9% तक गिर जाती है। फर्म तब तक कोई नई निवेश परियोजना प्रारंभ नहीं करेगी, जब तक ब्याज की दर गिर नहीं जाती है। चित्र 10.3 में, ये पाँच भावी (संभावित) परियोजनाएँ लाभप्रदता के घटते हुए क्रम में वर्गीकृत की गई हैं। इस चित्र में गहरी (गूढ़) रेखाओं को फर्म की पूँजी की सीमांत क्षमता सूची समझा जा सकता है। इस प्रकार, व्यक्तिगत फर्म की पूँजी की सीमांत क्षमता सूची चरणों (steps) में चलती है। यदि सभी फर्मों की पूँजी की सीमांत क्षमता सूचियों पर विचार करें, तो हमें लगभग अनगिनत संख्या में निवेश परियोजनाएँ मिलेंगी। जब आरेखीय प्रदर्शन किया जाता है, तो समूह प्रक्रिया के कारण यह एक निर्बाध वक्र (smooth curve) हो सकता है।

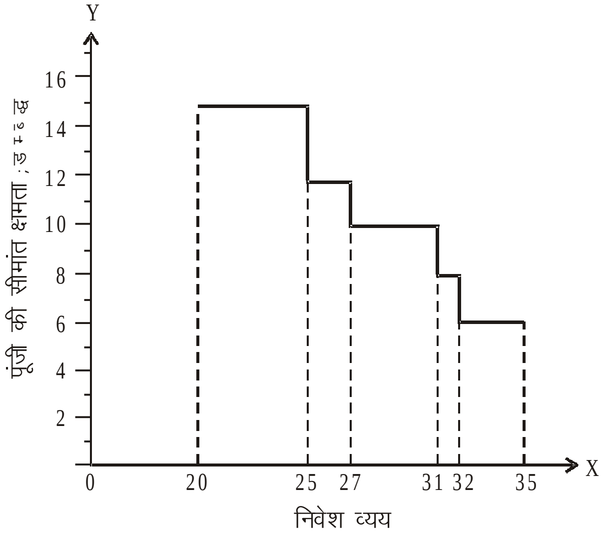

चित्र 10.3 : पूँजी की सीमांत क्षमता सूची

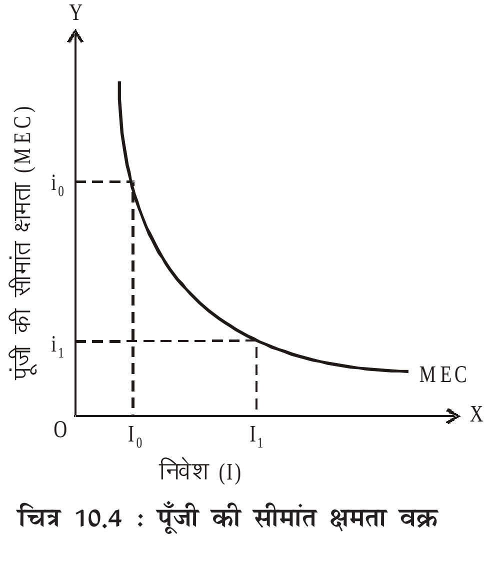

चित्र 10.4 : पूँजी की सीमांत क्षमता वक्र

नोट

चित्र 10.4 में पूँजी की सीमांत क्षमता वक्र (MEC curve) पूँजी सीमांत क्षमता (MEC) के विभिन्न मानों (Y-अक्ष पर) के अनुरूप निवेश (X-अक्ष पर) के संभव स्तरों को दर्शाता है। पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) वक्र का नीचे की ओर ढाल, निवेश के स्तर और पूँजी की सीमांत क्षमता के बीच ऋणात्मक संबंध दर्शाता है। जब निवेश का स्तर I_0 से I_1 तक बढ़ता है, पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC)i_0 से i_1 तक गिर जाती है।

निवेश और पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) के बीच विपरीत संबंध के दो कारण हैं। पहला, निवेश की वृद्धि से एक ओर ह्रासमान प्रतिफल (diminishing returns) के प्रभाव के कारण पूँजीगत संपत्ति की सीमांत उत्पादकता (marginal productivity) कम होती है। दूसरी ओर, इससे उत्पादन में वृद्धि होने के कारण, वस्तुओं की कीमतें कम हो जाती हैं। अतः, प्रत्याशित प्रतिफल कम हो जाते हैं। दूसरा, जब वास्तविक पूँजी स्टॉक में वृद्धि होती है, तो संपत्ति की बढ़ती हुई माँग के कारण, इसका पूर्ति मूल्य बढ़ जाएगा।

टास्क 'निवेश' के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) वक्र निवेशकों की अपेक्षाओं में परिवर्तन से खिसक सकता है। पूँजीगत संपत्ति से प्रत्याशित प्रतिफलों से संबंधित व्यापारियों का आशावादी रुख पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) वक्र को ऊपर की ओर खिसकाएगा। पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) वक्र में इस प्रकार खिसकाव चित्र 10.5 में दर्शाया गया है। हम देखते हैं कि पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) के वही मान के लिए अनुकूलतम व्यापारिक परिस्थिति (Optimism) के विद्यमान होने के कारण MEC_2 वक्र पर अधिक निवेश (OI_2) उपलब्ध है। उदाहरण के लिए निगम कर अथवा आय कर में कमी उद्यमियों को अपनी निवेश परियोजनाओं को ऊपर की ओर खिसकने के लिए प्रेरित करेगी। इसी प्रकार तकनीक में सुधार निवेशकों द्वारा अनुकूल दृष्टि से (favourably) लिए जाएँगे। इसके विपरीत, यदि मंदी विद्यमान होती है, पूँजी पर प्रत्याशित प्रतिफल एक बहुत नीचे स्तर तक गिर जाएँगे और MEC वक्र नीचे की ओर खिसक जाएगा। इसके अतिरिक्त, उदहारण के लिए, मजदूरी कटौतियों के परिणामस्वरूप आय में कमी तथा फलस्वरूप वस्तुओं व सेवाओं की माँग में कमी MEC वक्र को नीचे धकेल देगी। प्रत्यक्ष कर भी निवेश माँग को कम कर सकते हैं। अतः हम देखते हैं कि पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC), जिस पर निवेश माँग निर्भर करती है, सरकारी नीति, तकनीकी कारकों, व्यापारिक दशाओं, इत्यादि से प्रभावित होती है, जो काफी अनिश्चित (unpredictable) होते हैं।

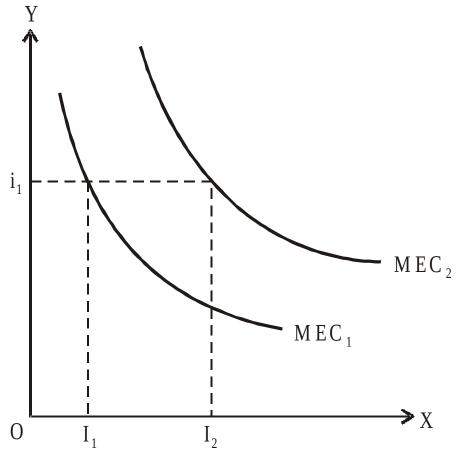

चित्र 10.5 : MEC वक्र का खिसकना

10.4 निवेश माँग वक्र (Investment Demand Curve)

पहले स्पष्ट किया गया है कि एक फर्म तब तक निवेश करती रहती है, जब तक पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) ब्याज की बाजार दर (r) के बराबर हो जाती है। इसलिए एक निश्चित पूँजी की सीमांत क्षमता सूची के लिए, निवेश माँग का स्तर ब्याज की दर से निर्धारित होता है। पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) के मानों को ब्याज की बाजार दर द्वारा प्रतिस्थापित करने पर, हमें निवेश माँग सूची और इसी प्रकार निवेश माँग वक्र प्राप्त होता है। चित्र 10.6 में निवेश (X अक्ष पर) को ब्याज (Y अक्ष पर) के विभिन्न स्तरों से संबंधित करते हुए निवेश माँग प्रदर्शित किया

नोट

गया है। इस अध्याय में दर्शाई काल्पनिक पूँजी की सीमांत क्षमता सूची के अनुसार, 25 करोड़ रुपए के निवेश, पर पूँजी की सीमांत क्षमता 15% होती है। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 15% ब्याज की दर पर 25 करोड़ रुपए निवेश उपलब्ध होगा। अतः, 15% ब्याज दर के अनुरूप 25 करोड़ रुपए निवेश माँग है, क्योंकि केवल इस निवेश स्तर पर पूँजी की सीमांत क्षमता (MEC) ब्याज की दर (r_1) के बराबर होगी। इस प्रकार, जब ब्याज की दर 12% तक गिर जाती है, निवेश 27 करोड़ रुपए तक बढ़ जाता है। 12% ब्याज की दर पर $I_1 = r_2$ । इसके अलावा, ब्याज की 10% बाजार दर पर $I_3 = r_3$ व निवेश 31 करोड़ रुपए तक बढ़ जाता है और ऐसे चलता रहता है। इस प्रकार, यह परिणाम निकलता है कि MEC वक्र के समान, निवेश माँग वक्र भी नीचे की ओर ढाल होता है।

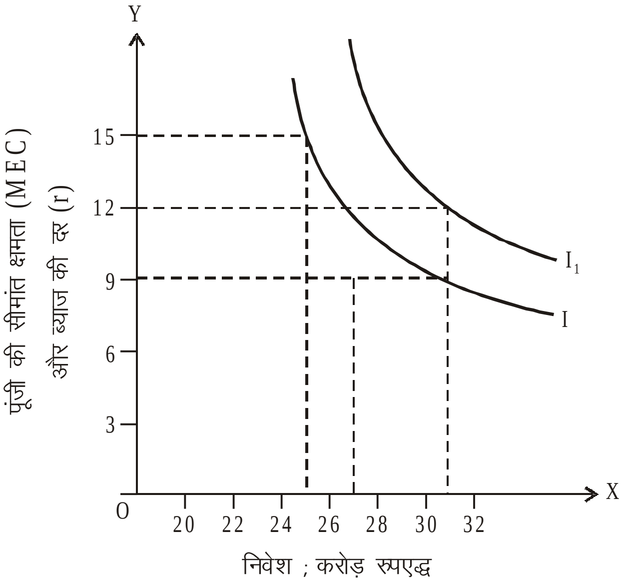

चित्र 10.6 : निवेश माँग वक्र

निवेश माँग वक्र, ब्याज की दर और निवेश के बीच विपरीत संबंध प्रकट करता है। यह उन्हीं कारणों से खिसक सकता है, जिसके कारण (MEC) परिवर्तित होता है। एक निश्चित ब्याज की दर पर, निवेश माँग वक्र के ऊपर खिसकने से निवेश का स्तर बढ़ जाएगा, जबकि नीचे खिसकने से निवेश कम हो जाएगा। चित्र 10.6 में, ब्याज की दर जैसे r =12% के अनुरूप निवेश का स्तर 27 करोड़ रुपए होगा। जब निवेश माँग वक्र ऊपर की ओर खिसक जाता है, 12% पर पूँजी की सीमांत क्षमता, निवेश के उस स्तर पर, ब्याज की 10% दर से अधिक होती है। परिणामस्वरूप, निवेश बढ़कर 31 करोड़ रुपए हो जाता है, जिससे पूँजी की सीमांत क्षमता गिरकर 10% हो जाती है, जो कि ब्याज की दर के समान है।

10.5 सारांश (Summary)

- अर्थव्यवस्था में किया गया सकल निवेश, आवश्यक नहीं कि पूँजीगत स्टॉक में शुद्ध वृद्धि हो, क्योंकि नई पूँजी का एक भाग अवमूल्यित (depreciated) पूँजीगत स्टॉक का प्रतिस्थापन करने के लिए आवश्यक होगा। वर्ष के दौरान अवमूल्यित पूँजी के प्रतिस्थापन पर उठाया गया व्यय प्रतिस्थापन निवेश (replacement investment) कहलाता है।

10.6 शब्दकोश (Keywords)

- निवेश (Investment) – पूँजी लगाना।
- पूँजी (Capital) – मूलधन।

10.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निवेश से आप क्या समझते हैं?
2. पूँजी की सीमांत क्षमता से क्या तात्पर्य है?
3. पूँजी की सीमांत क्षमता और ब्याज दर को परिभाषित कीजिए।
4. 'निवेश माँग वक्र' पर टिप्पणी लिखिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. संयंत्र 2. निराशावादी 3. (अ) 4. (ब)
5. (स) 6. (अ)।

10.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–11: त्वरण सिद्धांत (The Theory of Acceleration)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 त्वरण सिद्धांत (The Theory of Acceleration)

11.2 त्वरक का निवेश सिद्धांत के रूप में कार्य (Role of Accelerator as A Theory of Investment)

11.3 सारांश (Summary)

11.4 शब्दकोश (Keywords)

11.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- त्वरण सिद्धांत जानने हेतु।
- त्वरक का निवेश सिद्धांत जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

टी. एन. कार्वर प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने 1903 में उपभोग और शुद्ध निवेश में संबंध को समझा। परंतु ऍफ्टेलियन (Aftalion) ने इस सिद्धांत का 1909 में विस्तार से विश्लेषण किया। 'त्वरण सिद्धांत' नाम अर्थशास्त्र में पहली बार 1917 में जे. एम. क्लार्क ने प्रयोग किया। इसको आगे हिक्स, सैम्यूलसन, और गुडविन ने व्यापार चक्रों से सम्बद्ध विकसित किया।

11.1 त्वरण सिद्धांत (The Theory of Acceleration)

त्वरण सिद्धांत इस तथ्य पर आधारित है कि पूँजीगत वस्तुओं की माँग उन उपभोग वस्तुओं की माँग से व्युत्पन्न (derived) होती है जिनके उत्पादन में वे सहायक होती हैं। त्वरण सिद्धांत उस प्रक्रिया को स्पष्ट करता है जिसके द्वारा उपभोग वस्तुओं की माँग में वृद्धि (या कमी) से पूँजीगत वस्तुओं के निवेश में वृद्धि (या कमी) होती है। कुरीहारा के अनुसार, "त्वरक गुणांक प्रेरित निवेश और उपभोग व्यय में प्रारंभिक परिवर्तन के बीच अनुपात है।"

सूत्र रूप में, $\beta = \Delta I_t/\Delta C_t$ or $\Delta I_t = \beta\, \Delta C_t$ जहाँ β त्वरण गुणांक है, ΔI_t निवेश में शुद्ध परिवर्तन है और C_t उपभोग व्यय में शुद्ध परिवर्तन है। यदि 10 करोड़ रु. के उपभोग व्यय में वृद्धि से 30 करोड़ रू. की निवेश में वृद्धि होती है, तो त्वरक गुणांक 3 होता है।

नोट

त्वरण सिद्धांत के इस विवरण को हिक्स ने अधिक विस्तार से इस प्रकार व्यक्त किया है कि यह प्रेरित निवेश द्वारा उत्पादन में जो परिवर्तन होता है उसका अनुपात है। अतः त्वरक $V = \Delta I_t / \Delta Y_t$ या पूँजी उत्पादन अनुपात। यह उत्पादन में संबद्ध परिवर्तन (ΔY_t) और निवेश में परिवर्तन (ΔI_t) पर निर्भर करता है। यह दर्शाता है कि पूँजीगत वस्तुओं के लिए माँग केवल उपभोग वस्तुओं से ही व्युत्पन्न नहीं होती है बल्कि राष्ट्रीय उत्पादन की किसी भी प्रत्यक्ष माँग से। इन दोनों विवरणों में β और v समान हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. 'त्वरण सिद्धांत' नाम अर्थशास्त्र में पहली बार 1917 में .... ने प्रयोग किया।
2. त्वरक गुणांक प्रेरित निवेश और उपभोग व्यय में प्रारंभिक परिवर्तन के बीच .... है।

एक अर्थव्यवस्था में, पूँजी का इच्छित स्टॉक उत्पादन की माँग में परिवर्तन पर निर्भर करता है। उत्पादन में किसी परिवर्तन से पूँजी स्टॉक में परिवर्तन होगा। आगे यह परिवर्तन उत्पादन में परिवर्तन के v गुणा के बराबर होता है। अतः $\Delta I_t = v\Delta Y_t$ जहाँ v त्वरक है। यदि एक मशीन का मूल्य 4 लाख रुपये होता है और यह 1 लाख रुपये के मूल्य का उत्पादन करती है, तब v का मूल्य 4 होता है। एक उद्यमी जो अपने उत्पादन को प्रति वर्ष 1 लाख रुपये बढ़ाना चाहता है उसे इस मशीन पर 4 लाख रुपये अवश्य व्यय करने चाहिए। यह समान रूप से एक अर्थव्यवस्था पर भी लागू होता है जहाँ यदि त्वरक का मूल्य एक से अधिक हो तो उत्पादन की प्रति इकाई को अधिक पूँजी चाहिए, ताकि शुद्ध निवेश में वृद्धि, जो उत्पादन में वृद्धि के कारण पाई जाती है, अधिक हो। अर्थव्यवस्था में सकल निवेश बराबर होता है प्रतिस्थापन निवेश + शुद्ध निवेश। प्रतिस्थापन (replacement) निवेश स्थिर होने पर, सकल (gross) निवेश उत्पादन के प्रत्येक स्तर के अनुरूप परिवर्तित होगा।

त्वरण सिद्धांत को ब्रूमैन (Brooman) द्वारा दिए गए निम्न समीकरण से व्यक्त किया जा सकता है:

$$I_{gt} = v\,(Y_t - Y_{t-1}) + R$$
$$= v\,\Delta Y_t + R$$

जहाँ I_{gt} काल t में सकल निवेश है, v त्वरक है, Y_t काल t में राष्ट्रीय उत्पादन है, Y_{t-1} पिछली अवधि $(t-1)$ में राष्ट्रीय उत्पादन है, और R प्रतिस्थापन निवेश है।

समीकरण यह बताता है कि अवधि t के दौरान सकल निवेश निर्भर करता है उत्पादन में अवधि $t-1$ से t तक परिवर्तन पर गुणा त्वरक (v) जमा प्रतिस्थापन निवेश (R) ।

शुद्ध निवेश (I_n) निकालने के लिए, समीकरण के दोनों ओर से R को घटा देना चाहिए ताकि t अवधि में शुद्ध निवेश होता है:

$$I_{nt} = v\,(Y_t - Y_{t-1})$$
$$= v\,\Delta Y_t$$

यह समीकरण $\Delta I = v\Delta Y$ के सिवाय और कुछ नहीं है क्योंकि $\Delta Y = Y_t - Y_{t-1}$ यदि $Y_t > Y_{t-1}$ हो तो t अवधि के दौरान शुद्ध निवेश धनात्मक होता है। दूसरी ओर, यदि $Y_t < Y_{t-1}$ हो तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक होता है या t अवधि के दौरान विनिवेश (*disinvestment*) होता है।

नोट्स 'त्वरण सिद्धांत' नाम अर्थशास्त्र में पहली बार 1917 में जे.एम. क्लार्क ने प्रयोग किया।

इसकी मान्यताएँ (Its Assumptions)

त्वरण सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. यह स्थिर पूँजी-उत्पादन अनुपात मानता है।
2. यह मानता है कि संसाधन आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।
3. प्लांटों में कोई अतिरिक्त या निष्क्रिय क्षमता नहीं पाई जाती है।
4. यह माना जाता है कि बढ़ी हुई माँग स्थायी होती है।
5. यह भी मान्यता है कि पूँजी और साख की पूर्ति लोचदार है।
6. उत्पादन में वृद्धि से शुद्ध निवेश में शीघ्र ही वृद्धि हो जाती है।
7. इच्छित पूँजी स्टॉक और वास्तविक पूँजी स्टॉक में कोई अंतर नहीं पाया जाता है।

त्वरण सिद्धांत का कार्यकरण (Operation of the Acceleration Principle)

त्वरण सिद्धांत का कार्यकरण तालिका में दिए गए उदाहरण की सहायता से समझाया गया है।

त्वरण सिद्धांत का कार्यकरण $v = 4$

अवधि वर्षों में (1)	कुल उत्पादन (*Y*) (2)	इच्छित पूँजी (3)	प्रतिस्थापन निवेश (*R*) (4)	शुद्ध निवेश (*In*) + (5)	सकल निवेश (*Ig*) = (6)
t	100	400	40	0	40
t + 1	100	400	40	0	40
t + 2	105	420	40	20	60
t + 3	115	460	40	40	80
t + 4	130	520	40	60	100
t + 5	140	560	40	40	80
t + 6	145	580	40	20	60
t + 7	140	560	40	– 20	20
t + 8	130	520	40	– 40	0
t + 9	125	500	40	– 20	20

क्या आप जानते हैं टी.एन. कार्वर प्रथम अर्थशास्त्री था जिसने 1903 में उपभोग और शुद्ध निवेश में संबंध को समझा।

तालिका t से लेकर $t + 9$ तक की समय अवधि में कुल उत्पादन, पूँजी स्टॉक, शुद्ध निवेश तथा सकल निवेश में

नोट

परिवर्तन को दिखाती है। त्वरण का मूल्य $v = 4$ मानकर, इच्छित (desired) पूँजी स्टॉक प्रत्येक समय में उत्पाद का 4 गुणा है जैसा कि स्तंभ (3) में दिखाया गया है। प्रतिस्थापन निवेश समय t में पूँजी स्टॉक का 10 प्रतिशत माना गया है जो प्रत्येक अवधि में 40 करोड़ रुपये दिखाया गया है। स्तंभ (5) में शुद्ध निवेश एक अवधि और पिछली अवधि में उत्पादन में परिवर्तन का v गुणा है। उदाहरणार्थ, अवधि $t + 3$ में शुद्ध निवेश $= v\,(Y_{t+3} - Y_{t+2})$ या 40 = 4 (115 – 105) । इसका अभिप्राय यह है कि त्वरक का मूल्य 4 दिया होने पर, अंतिम उत्पादन में 10 करोड़ रुपये की वृद्धि होने पर पूँजीगत वस्तुओं की माँग में 40 करोड़ रुपये की वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप पूँजीगत वस्तुओं की कुल माँग बढ़कर 80 करोड़ रुपये हो जाती है (स्तंभ 6) जो 40 करोड़ रुपये प्रतिस्थापन निवेश (स्तंभ 4) तथा 40 करोड़ रुपये शुद्ध निवेश (स्तंभ 5) के जोड़ से प्राप्त होती है। जब तक अंतिम वस्तुओं (उत्पादन) की माँग में वृद्धि होती है तब तक शुद्ध निवेश धनात्मक होता है। परंतु जब यह कम होनी प्रारंभ हो जाती है तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक होता है। ऊपर तालिका में कुल उत्पादन (स्तंभ 2) में अवधि t + 1 से t + 4 तक बढ़ती दर से वृद्धि होती है, इसी प्रकार शुद्ध निवेश में। फिर अवधि t + 5 से t + 6 तक यह घटती दर से बढ़ता है और शुद्ध निवेश कम होता है। अवधि t + 7 से t + 9 तक कुल उत्पादन गिरता है और शुद्ध निवेश ऋणात्मक हो जाता है।

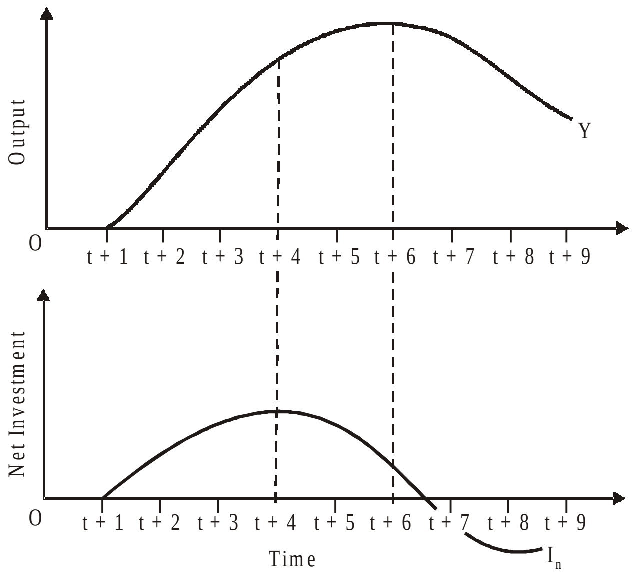

चित्र 11.1

त्वरण सिद्धांत को रेखाकृति द्वारा चित्र 11.1 में दर्शाया गया है जहाँ ऊपर के भाग में कुल उत्पादन वक्र $Yt + 4$ अवधि तक बढ़ती दर से बढ़ता जाता है। फिर $t + 6$ अवधि तक घटती दर से बढ़ता है। इसके बाद यह गिरना प्रारंभ कर देता है। चित्र से नीचे के भाग में I_n वक्र दिखाता है कि अवधि $t + 4$ तक उत्पाद बढ़ने से शुद्ध निवेश में वृद्धि होती है क्योंकि उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ रहा है। परंतु जब अवधि $t + 4$ और $t + 6$ के बीच में उत्पादन घटती दर से बढ़ता है तो शुद्ध निवेश कम होता जाता है। जब $t + 7$ अवधि में उत्पादन कम होना प्रारंभ करता है तो शुद्ध निवेश ऋणात्मक हो जाता है। वक्र I_g अर्थव्यवस्था के सकल निवेश को दर्शाता है। इसका व्यवहार शुद्ध निवेश वक्र से समान ही है। परंतु दोनों में एक अंतर है कि सकल निवेश ऋणात्मक नहीं है और जब अवधि $t + 8$ में यह शून्य हो जाता है तो I_g वक्र ऊपर की ओर बढ़ना प्रारंभ कर देता है। ऐसा इस कारण कि शुद्ध निवेश ऋणात्मक होने पर भी प्रतिस्थापन निवेश (R) एक ही दर से अर्थव्यवस्था में हो रहा है।

आलोचनाएँ (Its Criticisms)

त्वरण-नियम की कठोर मान्यताओं के कारण अर्थशास्त्रियों ने कड़ी आलोचना की है। इसकी सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1. **पूँजी-उत्पादन अनुपात स्थिर नहीं (Capital-Out Ratio not Constant)**–त्वरण-नियम स्थिर पूँजी उत्पादन अनुपात (capital-output ratio) पर आधारित है। परंतु आधुनिक गतिशील जगत् में यह अनुपात स्थिर नहीं रहता। आविष्कार तथा उत्पादन तथा उत्पादन की तकनीक में निरंतर सुधार होते रहते हैं जिनसे पूँजी उपस्कर का प्रति इकाई उत्पादन बढ़ जाता है। अथवा, वर्तमान पूँजी-उपस्कर से अधिक गहनता से काम लिया जा सकता है। फिर, कीमतों, मजदूरी, ब्याज के संबंध में व्यापारियों की प्रत्याशाओं में परिवर्तनों से भावी माँग पर प्रभाव पड़ता है और

पूँजी-उत्पादन अनुपात बदल जाता है। इस प्रकार, पूँजी-उत्पादन अनुपात स्थिर नहीं रहता बल्कि व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित हो जाता है।

2. **संसाधन लोचदार नहीं (Resources not Elastic)**—त्वरण-नियम मान लेता है कि साधन उपलब्ध रहते हैं (resources are available) । साधन लोचदार होने चाहिए ताकि उन्हें पूँजीगत वस्तु उद्योगों में लगाया जा सके जिससे वे विस्तार कर सकें। यह तभी संभव है जबकि अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी हो। परंतु जब अर्थव्यवस्था एक बार पूर्ण रोजगार के स्तर पर पहुँच जाती है, तो पर्याप्त साधनों की अप्राप्यता के कारण पूँजी-वस्तु उद्योग विस्तार नहीं कर पाते। इससे त्वरक नियम का कार्यकरण सीमित हो जाता है।

3. **प्लांटों में निष्क्रिय क्षमता (Idle Capacity in Plants)**—त्वरण-सिद्धांत मान लेता है कि प्लांटों में अप्रयुक्त (unused)) या अतिरिक्त (excess) क्षमता नहीं होती। यदि कुछ मशीनें अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार कार्य नहीं कर रही हैं और निष्क्रिय पड़ी हैं, तो उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि होने से नई पूँजीगत वस्तुओं के लिए माँग नहीं बढ़ेगी। ऐसी स्थिति में त्वरण-नियम नहीं काम करेगा। फिर, यह सिद्धांत आर्थिक सुस्ती (recession) में लागू नहीं होगा क्योंकि उसमें अतिरिक्त क्षमता पाई जाती है।

4. **इच्छित और वास्तविक पूँजीगत स्टॉक में अंतर (Difference Between Required and Real Capital Stock)**—त्वरण-नियम इस मान्यता पर आधारित है कि इच्छित और वास्तविक पूँजीगत स्टॉक में कोई अंतर नहीं पाया जाता और यदि हो भी तो एक ही अवधि में समाप्त हो जाता है। परंतु यदि पूँजीगत वस्तुएँ उत्पादित कर रहे उद्योग पहले से ही पूर्ण क्षमता पर काम कर रहे हैं तो एक अवधि में ही अंतर समाप्त करना संभव नहीं हो सकता।

5. **निवेश के समय की विवेचना नहीं (Does not Explain Timing of Investment)**—पूर्ण क्षमता के पाए जाने की मान्यता का अभिप्राय यह है कि उत्पादन की बढ़ी माँग एकदम प्रेरित निवेश लाती है। इसलिए त्वरण नियम निवेश के समय का हिसाब (timing of investment) लगाने में असफल होता है। उत्तम रूप में, यह निवेश की मात्रा की व्यवस्था करता है। वास्तव में, नया निवेश प्रजनन करने से पहले समयपश्चता (time lag) हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि समय-पश्चता चार वर्ष हो तो नये निवेश का प्रभाव एक वर्ष में नहीं बल्कि चार वर्षों में प्रतीत होगा।

6. **पूँजीगत वस्तुओं की लागत और उपलब्धता पर विचार नहीं (Does not Consider Availability and Cost of Capital Goods)**—फिर, पूँजीगत वस्तुओं की प्राप्ति के समय का हिसाब उनकी उपलब्धि और लागत तथा वित्त की प्राप्यता और लागत पर निर्भर करता है।

7. **स्थापित पूँजीगत उपस्कर के लिए त्वरण प्रभाव शून्य (Acceleration Effect, Zero for Installed Capital Equipment)**—यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता वस्तुओं की माँग में वृद्धि का पहले से अनुमान नहीं किया गया था और पिछले निवेशों में उनके लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। यदि भावी माँग का पूर्वानुमान करके पूँजी उपस्कर पहले ही लगा दिया गया है, तो इससे प्रेरित निवेश नहीं होगा और त्वरण प्रभाव शून्य रहेगा।

8. **अस्थायी माँग के लिए कार्य नहीं करता (Does not work for Temporary Demand)**—यह सिद्धांत आगे यह भी मान लेता है कि नई उपभोग माँग स्थायी होती है। यदि यह आशा हो कि उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग अस्थायी है, तो उत्पादक नई पूँजीगत वस्तुओं में निवेश नहीं करेंगे। इसकी बजाय, वे वर्तमान पूँजीगत उपस्कर को और अधिक गहनता से चलाकर बढ़ी हुई माँग पूरी कर सकते हैं। इसलिए त्वरण नहीं सफल होगा।

9. **साख की पूर्ति लोचदार नहीं (Supply of Credit not Elastic)**—त्वरण नियम मान लेता है कि साख की पूर्ति लोचदार होती है, ताकि जब प्रेरित उपभोग के परिणामस्वरूप प्रेरित निवेश हो, तो पूँजीगत वस्तु उद्योगों में निवेश के लिए सस्ती साख आसानी से मिल सके। यदि सस्ती साख पर्याप्त मात्रा में नहीं उपलब्ध होगी, तो ब्याज की दर ऊँची होगी और पूँजी वस्तुओं में बहुत कम निवेश होगा। इस प्रकार, त्वरण पूर्णरूप से काम नहीं करेगा।

10. **प्रत्याशाओं की भूमिका की उपेक्षा (Neglects the Role of Expectations)**—त्वरण नियम की मुख्य त्रुटि

नोट

यह है कि यह उद्यमियों द्वारा निर्णय लेने में **प्रत्याशाओं के कार्यभार** (role of expectations) की उपेक्षा करता है। निवेश निर्णय केवल माँग द्वारा ही प्रभावित नहीं होते हैं। वे भावी प्रत्याशाओं जैसे स्टॉक बाजार परिवर्तनों, राजनीतिक हलचलों, अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं, आर्थिक वातावरण, आदि द्वारा भी प्रभावित होते हैं।

11. **तकनीकी कारकों की भूमिका की उपेक्षा (Neglects the Role of Technological Factors)**–त्वरण नियम की एक कमी यह भी है कि यह निवेश में **प्रौद्योगिकीय कारकों** की अवहेलना करता है। प्रौद्योगिकीय परिवर्तन पूँजी-बचाऊ या श्रम-बचाऊ हो सकते हैं। इसलिए वे निवेश की मात्रा को कम या अधिक कर सकते हैं।

12. **लाभ की वित्त के स्रोत के रूप में उपेक्षा (Neglects Profits as the Source of Finance)**–इस मान्यता का यह अभिप्राय है कि फर्म निवेश उद्देश्यों के लिए वित्त के बाहरी स्रोतों का सहारा लेती है। परंतु आनुभविक प्रमाण दर्शाता है कि फर्में वित्त के बाहरी स्रोतों की अपेक्षा आंतरिक स्रोतों को चुनती हैं। त्वरण नियम इस अर्थ में कमजोर है कि यह आंतरिक वित्त के स्रोतों के रूप में लाभ की उपेक्षा करता है। वास्तव में लाभ का स्तर निवेश का एक मुख्य निर्धारक है।

13. **यथार्थ और संतोषजनक नहीं (Not Precise and Satisfactory)**–प्रो. **नोक्स** (Knox) के अनुसार, निवेश के समय-निर्धारण की व्याख्या के रूप में त्वरण नियम यथार्थ नहीं और असंतोषजनक भी है। इसलिए यह निवेश सिद्धांत के रूप में अपर्याप्त है।

14. **नीचे के मोड़ बिंदु के लिए बेकार (Of no use for Lower Turning Point)**–इसकी एक अन्य कमी व्यापार चक्र के नीचे के मोड़ बिंदु की व्याख्या करने में विफलता है।

टास्क त्वरण सिद्धांत के संबंध में विचार व्यक्त कीजिए।

इन सीमाओं के बावजूद गुणक सिद्धांत की अपेक्षा त्वरण का नियम आय-प्रजनन की प्रक्रिया को अधिक वास्तविक तथा स्पष्ट बनाता है। गुणक, उपभोग के मार्ग से आय पर निवेश में परिवर्तन का प्रभाव दिखाता है, जबकि त्वरण निवेश तथा आय पर उपभोग के प्रभाव को व्यक्त करता है। इस प्रकार, त्वरण पूँजी वस्तु उद्योगों में उतार-चढ़ावों के परिणामस्वरूप आय तथा रोजगार में होने वाले तीव्र उतार-चढ़ावों की व्याख्या करता है। परंतु यह नीचे के मोड़ बिंदुओं की अपेक्षा ऊपर के मोड़ बिंदुओं की अधिक अच्छी व्याख्या कर सकता है। चक्रीय उतार-चढ़ावों को समझने के लिए आय प्रजनन की प्रक्रिया के पूर्ण विश्लेषण के लिए सैम्यूल्सन, हिक्स तथा गुडविन जैसे अर्थशास्त्रियों ने गुणक तथा त्वरक को मिला दिया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. उत्पादन में किसी परिवर्तन से पूँजी स्टॉक में होगा–

   (अ) परिवर्तन (ब) अपरिवर्तन

   (स) लाभ (द) हानि।

4. प्रतिस्थापन निवेश स्थिर होने पर, सकल निवेश उत्पादन के प्रत्येक स्तर के अनुरूप होगा–

   (अ) अपरिवर्तित (ब) परिवर्तित

   (स) हानिकारक (द) लाभकारक।

नोट

5. उत्पादन में किसी परिवर्तन से पूँजी स्टॉक में होगा–

(अ) परिवर्तन (ब) अपरिवर्तन

(स) लाभ (द) इनमें से कोई नहीं।

6. उत्पादन में वृद्धि से शुद्ध निवेश में शीघ्र ही हो जाती है–

(अ) कमी (ब) वृद्धि

(स) हानि (द) इनमें से कोई नहीं।

11.2 त्वरक का निवेश सिद्धांत के रूप में कार्य

(Role of Accelerator as a Theory of Investment)

त्वरण सिद्धांत के अनुसार, निवेश माँग उत्पादन की वृद्धि पर निर्भर करती है क्योंकि उत्पादन में वृद्धि से फर्मों को प्रेरणा मिलती है कि वे पूँजीगत वस्तुओं के स्टॉक में वृद्धि करें। उत्पादन में परिवर्तन और निवेश में स्पष्ट संबंध पूँजी-उत्पादन अनुपात ($\Delta I/\Delta Y$) पर निर्भर करता है अर्थात $v = \Delta I/\Delta Y$ जहाँ v त्वरक है और ΔY उत्पादन में परिवर्तन तथा ΔI निवेश में परिवर्तन।

वास्तव में त्वरण नियम यह बताता है कि पूँजी स्टॉक में परिवर्तन, उत्पादन में परिवर्तन के v गुणा के बराबर होता है। अर्थात् $\Delta I = v\,\Delta Y$. इस सिद्धांत में त्वरक का मूल्य सदैव एक से अधिक माना जाता है जिस कारण शुद्ध निवेश में वृद्धि सदैव उत्पादन में वृद्धि से अधिक होती है।

एक अर्थव्यवस्था में तीन प्रकार का निवेश पाया जाता है–सकल (Gross), प्रतिस्थापन (replacement) तथा शुद्ध (net) निवेश। सकल निवेश = प्रतिस्थापन निवेश + शुद्ध निवेश। यदि प्रतिस्थापन निवेश स्थिर मान लिया जाए तो सकल निवेश उत्पादन के प्रत्येक स्तर के साथ परिवर्तित होता है।

त्वरण सिद्धांत में शुद्ध निवेश तथा सकल निवेश का उत्पादन के साथ संबंध लिया जाता है। शुद्ध निवेश का सूत्र है–$I_{nt} = \Delta Y_t$, तथा सकल निवेश जानने के लिए शुद्ध निवेश के सूत्र के दोनों पक्षों में प्रतिस्थापन निवेश (R) जमा कर देते हैं। अतः सकल निवेश, $I_{gt} = v + \Delta Y_t R$ ।

त्वरक के निवेश सिद्धांत के रूप में कार्य की ऊपर तालिका 1 और चित्र 11.1 की सहायता से व्याख्या की गई है। इससे कुछ बातें स्पष्ट होती हैं।[4]

प्रथम, त्वरण नियम उत्पादन और निवेश में संबंध को व्यक्त करता है।

दूसरे, निवेश में जो परिवर्तन, उत्पादन में परिवर्तन के कारण होता है, वह उत्पादन में परिवर्तन से अधिक होता है।

तीसरे, अर्थव्यवस्था के पूर्ण क्षमता पर कार्य करने की मान्यता के आधार पर, सापेक्षतया उत्पादन में थोड़ी-सी भी वृद्धि होने पर निवेश में सापेक्षतया बहुत अधिक वृद्धि होगी। इसका अभिप्राय यह है कि निवेश में निरंतर वृद्धि के लिए अर्थव्यवस्था को सदैव बढ़ती हुई दर से वृद्धि करनी होगी।

चौथे, तालिका 1 और चित्र 11.1 से यह भी स्पष्ट होता है कि त्वरक के कार्यकरण से निवेश और उत्पादन एक चक्रीय ढाँचे में गति करते हैं। पहले दोनों में धीमी गति से वृद्धि होती है, फिर तीव्र गति से और अंत में कमी चालू हो जाती है।

अंतिम, त्वरण नियम को यदि *MEC* और *MEI* वक्रों में व्यक्त किया जाए तो उत्पादन के बढ़ने के साथ दोनों वक्र, जो क्रमशः पूंजी स्टॉक और निवेश से संबंधित होते हैं, ऊपर को सरक जाएंगे।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. त्वरण नियम मान लेता है कि साधन उपलब्ध रहते हैं।
8. साधन लोचदार होने चाहिए ताकि उन्हें पूँजीगत वस्तु उद्योगों में लगाया जा सके।
9. त्वरण नियम मान लेता है कि साख की पूर्ति लोचदार नहीं होती।
10. निवेश के समय-निर्धारण की व्याख्या के रूप में त्वरण नियम यथार्थ नहीं और असतोषजनक भी है।

11.3 सारांश (Summary)

- इन सीमाओं के बावजूद गुणक सिद्धांत की अपेक्षा त्वरण का नियम आय-प्रजनन की प्रक्रिया को अधिक वास्तविक तथा स्पष्ट बनाता है। गुणक, उपभोग के मार्ग से आय पर निवेश में परिवर्तन का प्रभाव दिखाता है, जबकि त्वरण निवेश तथा आय पर उपभोग के प्रभाव को व्यक्त करता है। इस प्रकार, त्वरण पूँजी वस्तु उद्योगों में उतार-चढ़ावों के परिणामस्वरूप आय तथा रोजगार में होने वाले तीव्र उतार-चढ़ावों की व्याख्या करता है। परंतु यह नीचे के मोड़ बिंदुओं की अपेक्षा ऊपर के मोड़ बिंदुओं की अधिक अच्छी व्याख्या कर सकता है। चक्रीय उतार-चढ़ावों को समझने के लिए आय प्रजनन की प्रक्रिया के पूर्ण विश्लेषण के लिए सैम्यूल्सन, हिक्स तथा गुडविन जैसे अर्थशास्त्रियों ने गुणक तथा त्वरक को मिला दिया है।

11.4 शब्दकोश (Keywords)

- त्वरण (Acceleration) – गतिवर्धन।
- त्वरक (Accelerator) – गतिवर्धक।

11.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. त्वरण सिद्धांत से क्या तात्पर्य है?
2. त्वरण सिद्धांत की कार्यकरण तालिका बनाइए।
3. त्वरक सिद्धांत का निवेश सिद्धांत को परिभाषित कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. जे.एम. क्लार्क	2. अनुपात	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. सही।		

11.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–12: मुद्रा की माँग : मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Demand of Money : Quantity Theory of Money)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
12.1 मुद्रा का मूल्य किसे कहते हैं? (What is Value of Money?)
12.2 मुद्रा का मूल्य तथा कीमत स्तर (Value of Money and Price Level)
12.3 मुद्रा के मूल्य के सिद्धांत (Theories of Value of Money)
12.4 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Quantity Theory of Money)
12.5 मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के दो समीकरण (Two Equations of the Quantity Theory of Money)
12.6 फिशर के समीकरण में मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा की माँग की अवधारणाएँ (Concepts of Supply of Money and Demand for Money in Fisher’s Equation)
12.7 सारांश (Summary)
12.8 शब्दकोश (Keywords)
12.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
12.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मुद्रा का मूल्य जानने हेतु।
- मुद्रा के मूल्य के सिद्धांत जानने हेतु।
- मद्रा के परिमाण सिद्धांत जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

मुद्रा के मूल्य तथा वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य कीमत स्तर में विपरीत (Inverse) **संबंध होता है। जब सामान्य कीमत स्तर घटता है तब मुद्रा का मूल्य बढ़ता है।**

12.1 मुद्रा का मूल्य किसे कहते हैं? (What is Value of Money?)

क्राउथर के शब्दों में, **"मुद्रा की क्रय शक्ति को ही मुद्रा का मूल्य कहा जाता है।"** (The value of money is what it will buy.–**Crowther**) मुद्रा की एक इकाई के बदले में जितनी वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त होती हैं, वह

नोट

ही उसका मूल्य है। **राबर्टसन** के अनुसार, **"मुद्रा के मूल्य से अभिप्राय वस्तुओं की उस मात्रा से है जो सामान्य रूप से मुद्रा की एक इकाई के बदले में प्राप्त होती हैं।"** (By the value of money we mean the amount of things in general which will be given in exchange for a unit of money.–**Robertson**)

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. मुद्रा की क्रय शक्ति को ही मुद्रा का .... कहा जाता है।
2. मुद्रा के मूल्य तथा वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य कीमत स्तर में .... संबंध होता है।
3. जब सामान्य कीमत स्तर घटता है तब मुद्रा का मूल्य .... है।

12.2 मुद्रा का मूल्य तथा कीमत स्तर (Value of Money and Price Level)

विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है, किंतु मुद्रा का अपना मूल्य मुद्रा के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यदि मुद्रा का मूल्य वस्तुओं तथा सेवाओं के रूप में व्यक्त किया जाएगा तो मुद्रा के लाखों मूल्य हो जाएँगे क्योंकि संसार में लाखों ही वस्तुएँ तथा सेवाएँ पाई जाती हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए हम मुद्रा का सामूहिक मूल्य निकाल लेते हैं। इसके लिए हम कुछ ऐसी प्रतिनिधि वस्तुओं तथा सेवाओं को चुनते हैं जिनका हम प्रतिदिन के जीवन में उपयोग करते हैं। जिनका औसत मूल्य निकाल लिया जाता है, उसे **सामान्य कीमत स्तर** (General Price Level) कहा जाता है। **मुद्रा के मूल्य तथा वस्तुओं और सेवाओं के सामान्य कीमत स्तर में विपरीत** (Inverse) **संबंध होता है। जब सामान्य कीमत स्तर घटता है तब मुद्रा का मूल्य बढ़ता है।**

$$\text{मुद्रा का मूल्य (Value of Money)} = \frac{1}{\text{कीमत स्तर (P)}}$$

(यहाँ P: कीमत स्तर)

इरविंग फिशर के शब्दों में, **"मुद्रा की क्रय शक्ति कीमत स्तरों के ठीक विपरीत होती है, अतः इसका अध्ययन कीमत स्तर के अध्ययन के समान ही होता है।"** (The purchasing power of money is the reciprocal of the level of prices, so that the study of purchasing power of money is identical with the study of price level.–**Irving Fisher**)

नोट्स विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का मूल्य मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है, किंतु मुद्रा का अपना मूल्य मुद्रा के रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

12.3 मुद्रा के मूल्य के सिद्धांत (Theories of Value of Money)

मुद्रा के मूल्य संबंधी सिद्धांतों में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि कैसे मुद्रा का मूल्य कीमत स्तर के विपरीत निर्धारित होता है। इस संदर्भ में दो महत्त्वपूर्ण सिद्धांत इस प्रकार हैं–(*i*) मुद्रा परिमाण सिद्धांत (Quantity Theory of Money) तथा (*ii*) मुद्रा का केन्जियन सिद्धांत (Keynesian Theory of Money)। इस अध्याय में दोनों सिद्धांतों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाएगा।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

4. मुद्रा की क्रयशक्ति कीमत स्तरों के ठीक होती है–

(अ) विपरीत (ब) अनुकूल

(स) विलोम (द) इनमें से कोई नहीं।

5. मुद्रा के परिमाण तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत .... संबंध है।

(अ) अगाध (ब) आनुपातिक

(स) समानुपातिक (द) इनमें से कोई नहीं।

6. प्रो. मिल्टन फ्रीडमेन ने आधुनिक .... सिद्धांत प्रस्तुत किया है।

(अ) परिमाण (ब) लागत

(स) वक्र (द) इनमें से कोई नहीं।

12.4 मुद्रा का परिमाण सिद्धांत (Quantity Theory of Money)

मुद्रा का परिमाण सिद्धांत मुद्रा के मूल्य के निर्धारण का सबसे पुराना सिद्धांत है। इसका प्रतिपादन सन् 1566 में फ्रेंच अर्थशास्त्री **जीन बोदी** (Jean Bodin) ने किया था। सन् 1588 में इटली के अर्थशास्त्री **दावनजत्ती** (Davanzatti), सन् 1691 में अंग्रेज अर्थशास्त्री **जॉन लॉक** (John Locke) और सन् 1752 में **डेविड ह्यूम** (David Hume) ने इस सिद्धांत की अधिक स्पष्ट व्याख्या की थी। बीसवीं शताब्दी में इस सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या इरविंग फिशर, मार्शल, पीगू, राबर्टसन आदि अर्थशास्त्रियों ने की है। **प्रो. मिल्टन फ्रीडमेन** (Miltion Friedman) ने **आधुनिक परिमाण सिद्धांत** (Modern Quantity Theory) प्रस्तुत किया है।

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के अनुसार **मुद्रा के परिमाण तथा सामान्य कीमत स्तर में एक प्रत्यक्ष और आनुपातिक संबंध है तथा मुद्रा के परिमाण तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत आनुपातिक संबंध है।** (The Quantity Theory of Money states that there is a direct and proportionate relation between quantity of money and general price-level and an inverse proportionate relation between quantity of money and value of money.) इस सिद्धांत के अनुसार, मुद्रा के परिमाण में वृद्धि होने से कीमत स्तर में उसी अनुपात में वृद्धि हो जाती है और मुद्रा के परिमाण में कमी होने से कीमत स्तर में उसी अनुपात में कमी हो जाती है।

- **जे. एस. मिल** के अनुसार, **"यदि अन्य बातें समान रहें तो, मुद्रा का मूल्य उसकी मात्रा की विपरीत दिशा में परिवर्तित होता है। मुद्रा की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि मुद्रा के मूल्य को उसी अनुपात में घटाती है तथा मुद्रा की मात्रा में प्रत्येक कमी मुद्रा के मूल्य को उसी अनुपात में बढ़ाती है।"** (*The value of money, other things being the same, varies inversely with its quantity; every increase of quantity lowers the value and every diminution raising it in a ratio exactly equivalent.*–**J.S. Mill**)
- **प्रो. ए. सी. एल. डे** के शब्दों में, **"मुद्रा के परिमाण सिद्धांत से ज्ञात होता है कि कीमत स्तर में मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तन के प्रत्यक्ष अनुपात में परिवर्तन होता है। यदि मुद्रा की मात्रा दो गुणी हो जाती है तो कीमत स्तर भी दो गुणा हो जाता है। इसी प्रकार ये दोनों एक साथ होंगे।"** (*The quantity theory of money states that the price level varies in direct proportion to the quantity of money. If the quantity of money doubles so will be the price-level. Similarly, they will fall together.*–**Prof. A.C.L. dey**)
- **फिशर** के शब्दों में, **"अन्य बातें स्थिर रहने पर, जब चलन में मुद्रा का परिमाण बढ़ता है तो कीमत**

नोट

स्तर भी प्रत्यक्ष अनुपात में बढ़ता है तथा मुद्रा का मूल्य कम हो जाता है एवं इसके विपरीत भी होता है।" (*Other things remaining unchanged, as the quantity of money in circulation increases the price level increases in direct proportion and the value of money decreases and vice-versa.*–**Irving Fisher**)

क्या आप जानते हैं मुद्रा की क्रशक्ति को ही मुद्रा का मूल्य कहा जाता है।

12.5 मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के दो समीकरण (Two Equations of the Quantity Theory of Money)

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत से संबंधित दो प्रमुख समीकरण इस प्रकार हैं–

(1) नकद व्यवसाय या फिशर का समीकरण (Transactions Approach of Fisher's Equation)

(2) नकद शेष या कैम्ब्रिज समीकरण (Cash Balance or Cambridge Equation)

(1) नकद व्यवसाय या फिशर का समीकरण (Transactions Approach or Fisher's Equation)

सन् 1911 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "The Purchasing Power of Money" में **प्रो. इरविंग फिशर** ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के नकद व्यवसाय दृष्टिकोण (Transactions Approach) का प्रतिपादन किया है। **फिशर** के अनुसार, **"मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का यह कथन सत्य है कि मुद्रा के चलन वेग तथा व्यापार की मात्रा के स्थिर रहने पर कीमत स्तर में प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार परिवर्तन होते हैं।** (The quantity theory is correct in the sense that the level of prices varies directly with the quantity of money in circulation provided the velocity of circulation of that money and volume of trade are not changed.–**Irving Fisher**) जो यह दर्शाता है की मुद्रा का मूल्य (जो कीमत स्तर के विपरीत है) मुद्रा परिमाण के साथ विपरीत रूप से परिवर्तित होता है। साधारणत:, फिशर के मुद्रा परिमाण सिद्धांत को निम्न विनिमय समीकरण (Equation of exchange) के रूप में प्रयोग किया जाता है।

$$PY = MV + M'V'$$

अथवा

$$P = \frac{MV + M'V'}{Y}$$

(यहाँ M : प्रचलन में मुद्रा या करेन्सी की मात्रा; V : प्रचलन में मुद्रा या करेन्सी की मात्रा की चलन गति; M′ : बैंक मुद्रा या साख मुद्रा की मात्रा; V′ : साख मुद्रा की चलन गति; Y : वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल मात्रा जिसका मुद्रा के माध्यम से विनिमय होता है। यह वास्तविक GDP को दर्शाता है। P : कीमत स्तर)

उपरोक्त समीकरण से ज्ञात होता है कि **मुद्रा के परिमाण (M + M′) को उसकी चलन गति (V + V′) से गुणा करने (MV + M′V′) पर निश्चित समयावधि में मुद्रा की कुल पूर्ति को जाना जा सकता है तथा समय की एक निश्चित अवधि में वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा (Y) को कीमत स्तर (P) से गुणा करने (PY) पर मुद्रा की माँग को जाना जा सकता है।**

फिशर के अनुसार, एक निश्चित समयावधि पर M´, V, V´ और Y स्थिर रहते हैं, अतः मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में एक प्रत्यक्ष संबंध स्थापित हो जाता है। दूसरे शब्दों में, मुद्रा की मात्रा (M) में वृद्धि होने पर कीमत स्तर (P) में भी वृद्धि हो जाती है और मुद्रा का मूल्य $\left(\frac{1}{P}\right)$ उसी अनुपात में कम हो जाता है।

मान लीजिए कि M = 100 रु.; V = 8;

M´ = 200 रु. V´ = 4

Y = 400

$$P = \frac{MV + M'V'}{Y} = \frac{100\times8+200\times4}{400} = \frac{800+800}{400}$$

$$= \frac{1600}{400} = 4$$

और मुद्रा का मूल्य $\left(\frac{1}{P}\right) = \frac{1}{4}$ रु.

☞ **मूलाधार परंपरावादी मान्यता (The Underlying Classical Assumption)**

मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर के बीच विपरीत अनुपात में या मुद्रा की मात्रा और मुद्रा के मूल्य के बीच एक के लिए एक का संबंध, परंपरावादी सिद्धांत का एक विशेष निष्कर्ष है और यह इस मान्यता पर आधारित है कि मुद्रा का केवल मात्र एक ही कार्य है, अर्थात् विनिमय का माध्यम।

विशेष रूप से, यह माना गया है कि विनिमय के माध्यम के अतिरिक्त मुद्रा का कोई अन्य कार्य नहीं है जैसा कि मूल्य का संचय। यदि एक बार इस मान्यता को हटा दिया जाए (और निश्चित रूप से इसे हटाना भी चाहिए क्योंकि यह मान्यता वास्तविक जीवन स्थिति के विरुद्ध है) तो परंपरावादी एक-के-लिए-एक का मुद्रा की पूर्ति तथा कीमत स्तर के बीच सांख्यिकी संबंध का दावा ध्वस्त हो जाएगा। अध्याय के अगले भाग में इसका उल्लेख किया गया है।

फिशर के अनुसार, साख मुद्रा (M´) तथा प्रचलन मुद्रा (M) का अनुपात स्थिर रहता है। इसका अर्थ यह है कि यदि प्रचलन मुद्रा (M) दो गुनी हो जाए तो साख मुद्रा (M_1) भी दो गुनी हो जाएगी। अतः

M = 200 रु.; V = 8

M´ = 400 रु.; V´ = 4

Y = 400

$$P = \frac{200\times8+400\times4}{400}$$

$$= \frac{3200}{400} = 8 \text{ रु.}$$

और मुद्रा का मूल्य $\left(\frac{1}{P}\right) = \frac{1}{8}$

नोट

उपरोक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि मुद्रा की मात्रा को दो गुना करने से, कीमत स्तर भी दो गुना हो जाता है, अर्थात् यह 4 रु. से बढ़कर 8 रु. हो जाता है और मुद्रा का मूल्य घट कर आधा $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{8}$ रह जाता है।

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि जब मुद्रा की मात्रा दुगनी हो जाती है तब कीमत स्तर भी दुगना हो जाता है। यह बढ़कर 4 से 8 हो जाता है और मुद्रा का मूल्य घटकर 1/4 से 1/8 हो जाता है।

मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर के बीच आनुपातिक संबंध को चित्र 12.1 में दिखाया गया है।

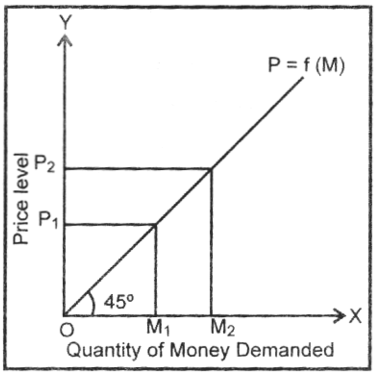

चित्र 12.1

ऊपर को उठ रही सीधी रेखा P = f (M) OX –अक्ष पर मुद्रा की मात्रा तथा OY–अक्ष पर कीमत स्तर के बीच प्रत्यक्ष आनुपातिक संबंध को दर्शाती है। अतः जब मुद्रा की मात्रा $M_1 M_2$ बढ़ती है तब कीमत स्तर $P_1 P_2$ उसी अनुपात में बढ़ता है। मुद्रा की मात्रा में प्रतिशत वृद्धि $\left(=\frac{M_1 M_2}{OM_1}\right)$ कीमत स्तर में प्रतिशत वृद्धि $\left(=\frac{P_1 P_2}{OP_1}\right)$ के बराबर है। इस प्रकार जब मुद्रा की मात्रा में OM_2 से OM_1 की कमी होती है, तब कीमत स्तर में OP_2 से OP_1 की कमी उसी अनुपात में होती है।

टास्क मुद्रा का मूल्य तथा कीमत स्तर पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

12.6 फिशर के समीकरण में मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा की माँग की अवधारणाएँ (Concepts of Supply of Money and Demand for Money in Fisher's Equation)

(1) मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)

मुद्रा की पूर्ति दो तत्त्वों पर निर्भर करती है, (*i*) मुद्रा की मात्रा तथा (*ii*) मुद्रा की चलन गति।

(*i*) मुद्रा की मात्रा (Quantity of Money)–मुद्रा की मात्रा से अभिप्राय प्रचलन मुद्रा (M) तथा बैंकों की माँग जमा (M′) जिसे साख मुद्रा भी कहते हैं, का जोड़ है। अतएव

मुद्रा की पूर्ति = M + M′ = (नोट + सिक्के) + साख मुद्रा

अतः मुद्रा की मात्रा से अभिप्राय मुद्रा की उस कुल मात्रा से है जो वस्तुओं तथा सेवाओं को खरीदने के लिए उपलब्ध होती है। वास्तव में, परंपरावादी अर्थशास्त्रियों (जिनमें फिशर सम्मिलित है) के अनुसार, मुद्रा केवल विनिमय के माध्यम के लिये प्रयोग में लाई जाती है। इसे मूल्य के संचय के रूप में नहीं रखा जाता। तद्नुसार, प्रचलन में समस्त मुद्रा वस्तुओं तथा सेवाओं को खरीदने के लिए उपलब्ध होती है।

(*ii*) मुद्रा की चलन गति (Velocity of Money)–एक निश्चित समयावधि (प्रायः एक वर्ष) में मुद्रा की एक

इकाई कितनी बार एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास जाती है। (Velocity of money is number of times a unit of money changes hands during a specified period of time.) मुद्रा की चलन गति का अर्थ है कि मुद्रा की एक इकाई निश्चित समय में कितनी बार वस्तुएँ तथा सेवाएँ खरीदती है। मान लीजिए, राम के पास एक रुपया है। वह श्याम से एक रुपये का पेन खरीद लेता है श्याम उसी एक रुपये से मोहन से मिठाई खरीद लेता है। इस प्रकार समय की एक निश्चित अवधि में, एक रुपये के नोट ने चार बार विनिमय के सौदों को निपटाया है, अर्थात् एक रुपये के नोट ने चार रुपये का काम किया है। अत: एक रुपये की चलन गति चार कहलाएगी। एक देश में मुद्रा की चलन गति को ज्ञात करने के लिए एक वर्ष के कुल राष्ट्रीय उत्पाद को मुद्रा की प्रचलन मात्रा (Money in Circulation) से भाग दिया जाता है।

$$\textbf{चलन गति (V)} = \frac{\textbf{कुल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)}}{\textbf{प्रचलन में मुद्रा (Money in Circulation)}}$$

इस प्रकार , मुद्रा की कुल पूर्ति = MV + M'V'

(2) मुद्रा की माँग (Demand for Money)

मुद्रा की माँग इसलिए की जाती है क्योंकि यह **विनिमय के माध्यम** का काम करती है। अत: किसी एक समय, मुद्रा की माँग समाज में किए जाने वाले विनिमय की मात्रा पर निर्भर करती है। विनिमय की मात्रा दो बातों पर निर्भर करती है–

(*i*) **व्यापारिक सौदे (Trade Transactions -Y)**–व्यापारिक सौदों से अभिप्राय एक निश्चित समय अवधि में मुद्रा के रूप में व्यापारिक सौदों से बेची जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं की कुल भौतिक मात्रा है। एक वस्तु निश्चित समय अवधि में जितनी बार बेची जाती है उसे व्यापारिक सौदों में गिना जाता है।

(*ii*) **कीतम स्तर (P) (Price Level)**–एक निश्चित समय में 'Y' की प्रत्येक इकाई की औसत कीमत ही (P) कहलाती है। विस्तृत अर्थों में इसे सामान्य कीमत स्तर (General Price Level) कहा जाता है।

अत: **मुद्रा की माँग** (Demand for Money) = **कीमत स्तर** (P) × **व्यापारिक सौदे** (Y) (P')।

> ☞ **कीमत एक निष्क्रिय पैरामीटर के रूप में**
>
> **फिशर** का यह मत है कि कीमत (P) एक निष्क्रिय पैरामीटर है। कीमत मुद्रा की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है, किंतु यह स्वयं अर्थव्यवस्था के उत्पादन के मूल्य, आय तथा रोजगार को निर्धारित नहीं करती, इन सबकी प्रकृति पूर्ण रोजगार के स्तर पर स्थिर हो जाने की होती है। इसलिए **फिशर** के समीकरण में Y पैरामीटर पर P पैरामीटर में होने वाले परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की मान्यताएँ (Assumptions of Quantity Theory of Money)

मुद्रा का परिमाण सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है–

1. **करेन्सी तथा बैंक मुद्रा की चलन गति में स्थिति (Constant V and V´)**–यह मान लिया जाता है कि करेन्सी की चलन गति (V) तथा साख मुद्रा अथवा बैंक मुद्रा की चलन गति (V´) स्थिर रहती है।
2. **अर्थव्यवस्था में प्राय: पूर्ण रोजगार (Full Employment)**–की स्थिति पाई जाती है।
3. **व्यापार की स्थिर मात्रा (Constant Trade Transactions)**–पूर्ण रोजगार की स्थिति के कारण फिशर की यह मान्यता भी है कि एक निश्चित समय में व्यापार की मात्रा (Y) अर्थात् वस्तुओं, सेवाओं तथा प्रतिभूतियों की मात्रा स्थिर रहती है।

नोट

4. **बैंक मुद्रा तथा करेन्सी का अनुपात स्थिर रहना (Constant Proportion between M and M´)** –यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि बैंक मुद्रा की मात्रा (M´) में परिवर्तन करेन्सी की मात्रा (M) के अनुपात में ही होता है। जब करेन्सी की मात्रा में विस्तार होता है तब बैंक मुद्रा में भी उसी अनुपात में विस्तार होता है। इसके विपरीत जब करेन्सी में संकुचन होता है तब बैंक मुद्रा में भी समानानुपात में संकुचन होता है क्योंकि लोग अपनी बैंक जमाओं को निकलवा लेते हैं। परिणामस्वरूप, बैंक मुद्रा की मात्रा में कमी हो जाती है।

आलोचना (Criticism)

केन्ज़ तथा केन्ज़ोत्तर अर्थशास्त्रियों जैसे, **क्राउथर, हॉम** आदि ने फिशर के समीकरण की निम्नलिखित आलोचनाएँ की हैं–

1. **एक साधारण सत्य या समानार्थक धारणा (A Simple Truism or Tautological)**–केन्ज़ के शब्दों में, "मुद्रा का परिमाण सिद्धांत एक स्वयंसिद्ध सत्य है, जो सभी परिस्थितियों में लागू होता, यद्यपि इसका कोई महत्त्व नहीं है।" (The quantity theory is a truism which holds in all cirucumstances though without significance.–**Keynes**) मुद्रा का परिमाण सिद्धांत एक साधारण सत्य या स्वयंसिद्ध सत्य (Truism) है। यह कोई ऐसी बात नहीं बताता जिसे लोग पहले से नहीं जानते। यह सिद्धांत हमें बताता है कि क्रेताओं के कुल मौद्रिक व्यय की मात्रा विक्रेताओं की कुल मौद्रिक आय के बराबर होती है। अन्य शब्दों में, जितनी वस्तुएँ तथा सेवाएँ बाजार में बेची जाती हैं उतनी ही खरीदी जाती हैं। यह एक ऐसा सत्य है जिसे एक अनपढ़ व्यक्ति भी जानता है। इसके द्वारा यह ज्ञात नहीं होता कि मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन होने के कारण कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तन की वास्तविक प्रक्रिया क्या है तथा इन तत्त्वों में से कौन-सा तत्त्व कारण है और कौन-सा परिणाम है। इसके द्वारा यह भी ज्ञात नहीं होता कि मुद्रा की पूर्ति या परिमाण में परिवर्तन क्यों होते हैं? यह तो केवल एक समानता (Identity) ही बताता है।

2. **अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumption)**–यह सिद्धांत इस अवास्तविक मान्यता पर आधारित है कि कीमत स्तर पर केवल मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तन का ही प्रभाव पड़ता है। समीकरण के अन्य तत्त्वों जैसे V, V´ और Y को स्थिर मान लिया जाता है और इनकी कीमत स्तर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि ये तत्त्व कभी भी स्थिर नहीं रहते और इनमें होने वाले परिवर्तन से कीमत-स्तर में भी परिवर्तन होता है।

3. **चर स्वतंत्र नहीं हैं (Variables are not Independent)**–फिशर की यह मान्यता है कि M, M´, V, V´ और Y स्वतंत्र चर हैं अर्थात् एक का दूसरे पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। किंतु वास्तविक जीवन में हम देखते हैं कि ये चर एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं होते। किसी एक चर में परिवर्तन, जैसे Y, का दूसरे चरों पर भी प्रभाव पड़ता है।

4. **एकपक्षीय (Lop-Sided)**–आलोचकों के अनुसार, यह सिद्धांत मुद्रा की माँग की अपेक्षा मुद्रा की पूर्ति पर अधिक बल देता है। फिशर ने मुद्रा की माँग को स्थिर मान कर कीमत निर्धारण में माँग के प्रभाव को समाप्त कर दिया है। फिशर के अनुसार, केवल मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन होने से ही कीमत स्तर में परिवर्तन हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि इस सिद्धांत में मुद्रा के केवल 'विनिमय के माध्यम' (Medium of Exchange) कार्य को ही महत्त्व दिया गया है तथा 'मूल्य के संचय' (Store of Value) कार्य की अवहेलना की गई है। अत: एकपक्षीय सिद्धांत है।

5. **कीमत स्तर एक निष्क्रिय तत्त्व नहीं है (Price Level is not a passive Factor)**–इस सिद्धांत की यह मान्यता भी गलत है कि कीमत स्तर एक निष्क्रिय तत्त्व है। वास्तव में कीमत स्तर एक सक्रिय तत्त्व है। कीमत स्तर में होने वाले परिवर्तनों के कारण व्यापार की मात्रा (Y) पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि कीमतों में वृद्धि होने से लाभों में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप व्यापार (Y) में तथा मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है। इसलिए कीमतों में होने वाली वृद्धि के कारण मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है तथा कीमतों में कमी होने से मुद्रा की मात्रा कम होती है।

6. **केवल पूर्ण रोजगार की स्थिति में लागू होता है (Applicable only in Case of Full Employment)**–मुद्रा का परिमाण सिद्धांत केवल पूर्ण रोजगार की स्थिति में लागू होता है। किंतु **केन्ज़** के अनुसार, अर्थव्यवस्थाएँ अपूर्ण रोजगार की स्थिति में भी हो सकती हैं। ऐसी अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने पर उत्पादन में न कि कीमतों में वृद्धि होती है।

7. **व्यापार चक्रों की व्याख्या करने में असफल (It Fails to Explain Trade Cycles)–क्राउथर** के अनुसार, **"परिमाण सिद्धांत अधिक से अधिक व्यापार चक्रों के कारणों का अपूर्ण मार्गदर्शक है।"** (The quantity theory is at best an imperfect guide to the cause of trade cycle.–**Crowther**) इस सिद्धांत से यह ज्ञात नहीं होता कि मंदी के दिनों में मुद्रा की मात्रा को बढ़ाने पर भी कीमत क्यों नहीं बढ़ती है और तेजी के दिनों में बिना मुद्रा की मात्रा में वृद्धि किए कीमतें क्यों बढ़ जाती हैं? इसका वास्तविक कारण यह है कि मंदी के दिनों में मुद्रा की चलन गति कम हो जाती है तथा तेजी की स्थिति में यह बढ़ जाती है। किंतु यह सिद्धांत तो मुद्रा की चलन गति को स्थिर मान लेता है। वास्तव में मुद्रा की चलन गति में परिवर्तन होता रहता है।

8. **असंगत (Inconsistent)–हॉम** (Halm) के अनुसार मुद्रा का परिमाण सिद्धांत असंगत है। इसमें मुद्रा की मात्रा जिसका संबंध समय बिंदु से है अर्थात् जो एक स्टॉक (Stock) या अगत्यात्मक धारणा है को चलन गति जिसका संबंध समय अवधि से है अर्थात् जो एक प्रवाह या गत्यात्मक धारणा है से गुणा करके मुद्रा की मात्रा को ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया है। ऐसा तकनीकी दृष्टि से असंगत (Technically Inconsistent) है।

9. **ब्याज की दर के प्रभाव की अवहेलना (It Ignores the Effect of Rate of Interest)**–यह सिद्धांत कीमतों पर ब्याज की दर के प्रभाव की अवहेलना करता है। **लार्ड केज़, हाट्रे तथा प्रो. हायक** आदि के अनुसार इस सिद्धांत की यह धारणा गलत है कि मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष संबंध होता है। वास्तव में मुद्रा की मात्रा में होने वाला परितर्वन ब्याज की दर को प्रभावित करता है तथा ब्याज की दर में होने वाला परिवर्तन कीमत स्तर में परिवर्तन उत्पन्न करता है। अत: मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में परोक्ष न कि प्रत्यक्ष संबंध पाया जाता है–

मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन	→	ब्याज की दर में परिवर्तन	→	निवेश की मात्रा में परिवर्तन	→	आय तथा रोजगार में परिवर्तन	→	उत्पादन की लागत में परितर्वन	→	कीमतों में परिवर्तन

श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार, **"मुद्रा की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का बहुत अधिक महत्त्व है। उनका महत्त्व ब्याज की दर पर उनके पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर करता है। किंतु मुद्रा का सिद्धांत, जो ब्याज की दर का वर्णन नहीं करता, मुद्रा का सिद्धांत कहलाने के योग्य नहीं है।"** (Changes in the quantity of money are of great significance. Their importance lies in their effect on the rate of interest. But a theory of money that makes no mention of rate of interest is not worthy of being called money theory.–**Mrs. Joan Robinson**)।

10. **चलन गति को मापना कठिन है (Difficult to Measure Velocity)–फिशर** के समीकरण में मुद्रा की चलन गति को मापना अत्यंत कठिन है। मुद्रा की एक इकाई एक निश्चित समय में कितने हाथों में जाती है इसकी गणना करना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त मुद्रा की कुल मात्रा जानने के लिए निजी कोषों में संचित मुद्रा का जानना आवश्यक है। भारत जैसे देश में काला धन (Black Money) भी चलन में पाया जाता है। ऐसी मुद्रा की कुल मात्रा और इसकी चलन गति को मापना कठिन है। इसके अतिरिक्त अल्पकाल में चलन गति को स्थिर माना जा सकता है किंतु दीर्घकाल में इसमें परिवर्तन अवश्य होता है।

11. **अमौद्रिक तत्त्वों के प्रभाव की अवहेलना (It Ignores the Effect of Non-Monetary Factors)**–यह सिद्धांत कीमत स्तर पर अमौद्रिक तत्त्वों के प्रभाव की अवहेलना करता है। कीमत स्तर को केवल मुद्रा की मात्रा

नोट

ही प्रभावित नहीं करती बल्कि कई अन्य अमौद्रिक तत्त्वों जैसे, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक आदि का भी प्रभाव पड़ता है। इस सिद्धांत में इन तत्त्वों का अध्ययन नहीं किया गया है।

☞ **पूर्ण रोजगार: परंपरावादी अर्थशास्त्रियों के दावे, कि मुद्रा की पूर्ति तथा कीमत स्तर में समानुपातिक संबंध होता है, की पूर्व शर्त है** (Full Employment–a precondition of the classical assertion of one-to-one relation between supply of money and price level)

परंपरावादी अर्थशास्त्रियों का यह मत था कि पूर्ण रोजगार एक स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था की प्राकृतिक घटना है। उनका यह दावा वास्तव में उनके इस विश्वास की पूर्व-शर्त है कि कीमत स्तर में उसी अनुपात में परिवर्तन होता है जिस अनुपात में मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होता है। एक बार इस पूर्व-शर्त के पूरा होने पर, मुद्रा की मात्रा तथा कीमत-स्तर में आनुपातिक संबंध एक वास्तविकता बन जाती है, जिसे चुनौती नहीं दी जा सकती। किंतु प्रश्न उठता है कि क्या पूर्ण रोजगार स्वतंत्र अर्थव्यवस्था में अपने आप होने वाली घटना है? सन् 1930 के दशक की महामंदी, एक ऐतिहासिक प्रमाण के रूप में, इस मत का समर्थन नहीं करती।

नकद शेष या कैम्ब्रिज समीकरण (Cash Balance or Cambridge Equation)

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैंड के कई अर्थशास्त्रियों जैसे, **मार्शल, पीगू, राबर्टसन** (आरंभ में केन्ज़ भी) ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के नकद शेष समीकरण का प्रतिपादन किया है। इसे कैम्ब्रिज समीकरण भी कहा जाता है।

नकद शेष समीकरण के अनुसार मुद्रा का मूल्य मुद्रा की माँग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। समय के एक निश्चित बिंदु पर, मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है, इसलिए मुद्रा की माँग में होने वाले परिवर्तनों का मुद्रा के मूल्य (अथवा कीमत-स्तर) पर अधिक प्रभाव पड़ता है। अत: यह सिद्धांत मुद्रा की पूर्ति के स्थान पर मुद्रा की माँग को अधिक महत्त्व देता है। इसलिए इस सिद्धांत को **मुद्रा की माँग का सिद्धांत** (Demand Theory of Money) भी कहा जाता है। इस समीकरण को पूरी तरह समझने के लिए मुद्रा की माँग तथा पूर्ति संबंधी धारणाओं का अध्ययन जरूरी है।

1. **मुद्रा की पूर्ति (Supply of Money)**–नकद शेष समीकरण के अनुसार, मुद्रा की पूर्ति एक निश्चित समय बिंदु पर जनता के पास उपलब्ध नोटों, सिक्कों तथा बैंकों में माँग जमा का जोड़ है। (Supply of money at a particular point of time is the sum total of all the notes and coins with the public and the demand deposits.) अत:

मुद्रा की पूर्ति = नोट + सिक्के + माँग जमाएँ

यदि समय के एक निश्चित बिंदु पर इसका विचार किया जाए तो ऐसा विश्वास किया जाता है कि मुद्रा की पूर्ति पर चलन गति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

☞ **एक महत्त्वपूर्ण अवलोकन (An Important Observation)**

कैम्ब्रिज समीकरण के समर्थकों ने मुद्रा के न केवल विनिमय के माध्यम कार्य अपितु मूल्य के संचय कार्य को भी पहचाना था। किंतु मुद्रा की माँग की अवधारणा की व्याख्या करते समय उन्होंने मुद्रा की माँग को विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग करने या आपात स्थिति से निपटने हेतु प्रयोग करने पर बल दिया था। अन्य शब्दों में, उनका मुद्रा की माँग से अभिप्राय "लेन-देन के लिए माँग" तथा "सावधानी के लिए माँग" था। सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग के महत्त्व या मुद्रा से मुद्रा कमाने के लिए मुद्रा की माँग के महत्त्व की उन्होंने अवहेलना की थी।

2. **मुद्रा की माँग (Demand For Money)**—कैम्ब्रिज समीकरण के अनुसार मुद्रा की माँग से अभिप्राय मुद्रा को नकद शेष के रूप में रखने की लोगों की इच्छा है। फिशर के अनुसार, मुद्रा की माँग उसका केवल विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग करने के लिए की जाती है। किंतु नकद शेष समीकरण के अनुसार मुद्रा की माँग ने केवल विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग करने के लिए अपितु धन के संचय के उद्देश्य हेतु भी की जाती है। नकद शेष वार्षिक वास्तविक आय का वह अनुपात है जिसे लोग नकद मुद्रा के रूप में रखना चाहते हैं। अत:

मुद्रा की माँग = नकद शेष का जोड़

इस समीकरण के अनुसार, यदि मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहे तो, **मुद्रा की माँग या नकद शेष में वृद्धि होने पर कीमतें घटेंगी क्योंकि लोग अपनी आय का बड़ा भाग नकद रूप में अपने पास रखना चाहेंगे तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए उनकी माँग कम होगी।** इसके विपरीत, यदि नकद शेष की माँग घटेगी तो वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए माँग बढ़ेगी जिस कारण कीमत स्तर में वृद्धि होगी। तदनुसार, मुद्रा की माँग या नकद शेष का कीमत स्तर से विपरीत संबंध है।

नकद शेष समीकरण के विभिन्न रूपांतर (Different Variants of Cash Balance Equation)

नकद शेष समीकरण के विभिन्न रूप हैं। इनमें से महत्त्वपूर्ण की व्याख्या इस प्रकार है—

मार्शल का समीकरण (Marshall's Equation)—डॉ. मार्शल ने मुद्रा के मूल्य की व्याख्या निम्नलिखित समीकरण के रूप में की है—

$$M = kY$$

(यहाँ, M: मुद्रा की मात्रा; Y: मौद्रिक आय; K: आय का वह भाग जिसे लोग नकद रूप में रखना चाहते हैं)

क्योंकि मौद्रिक आय (Y) कुल उत्पादन (O) तथा कीमत-स्तर (P) का गुणनफल है, अर्थात् $Y = P \times O$, अत: उपरोक्त समीकरण को इस प्रकार लिखा जाता है—

$$M = POk \text{ or } P = \frac{M}{Ok}$$

यदि M = 100 करोड़ रु.; O = 500 इकाइयाँ; $k = \frac{1}{5}$ (अर्थात् लोग अपनी आय का पांचवां भाग नकद रूप में रखना चाहते हैं) तो,

$$P = \frac{M}{Ok} = \frac{100}{500 \times \frac{1}{5}} = \frac{100}{100} = 1 \text{ रु. प्रति इकाई}$$

यदि लोग नकद शेष (k) को $\frac{1}{5}$ से घटाकर $\frac{1}{10}$ कर देते हैं तब कीमत स्तर बढ़ कर

$$\frac{100}{500 \times \frac{1}{10}} = 2 \text{ रु. प्रति इकाई को जाएगा।}$$

पीगू का समीकरण (Pigou's Equation) पीगू का समीकरण इस प्रकार है—

नोट

$$P = \frac{kR}{M}$$

(यहाँ M : मुद्रा की कुल मात्रा; R : कुल वास्तविक आय; k : वास्तविक आय का वह भाग जिसे लोग नकद रूप में रखना चाहते हैं)

मुद्रा का मूल्य सामान्य कीमत स्तर के विपरीत होता है। लोग अपनी सारी मुद्रा करेन्सी या विधि ग्राह्य मुद्रा (Legal Tender Money) के रूप में नहीं रखते। वे अपने नकद शेष का एक भाग बैंक जमा के रूप में रखते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, पीगू ने अपने समीकरण में कुछ संशोधन किया जिसमें k का कुछ भाग विधि ग्राह्य मुद्रा के रूप में और कुछ भाग बैंक जमा के रूप में रखा जाता है। नया समीकरण इस प्रकार है–

$$P = \frac{kR}{M}\ [c + h(1 - c)]$$

अथवा

$$M = \frac{kR}{P}\ [c + h(1 - c)]$$

(यहाँ c : लोगों के पास नकदी, 1 – c : बैंक जमा, h : बैंक जमा का वह भाग जो बैंक अपने पास नकदी के रूप में (Cash Reserve Ratio) रखते हैं)

उदाहरण (Illustration)

मान लीजिए: $K = \frac{1}{4}; c = \frac{1}{2}; h = \frac{1}{10}$

R = 2000 क्विंटल चावल; M = 550 रु.

हमें P ज्ञात करना है।

हम जानते हैं कि

$$P = \frac{kR}{M}\ [c + h(1 - c)]$$

$$= \frac{\frac{1}{4}\times 2000}{550}\left[\frac{1}{2}+\frac{1}{10}(1-\frac{1}{2})\right]$$

$$= \frac{500}{550}\left[\frac{1}{2}+\frac{1}{10}\times\frac{1}{2}\right]$$

$$= \frac{500}{550}\left[\frac{1}{2}+\frac{1}{20}\right]$$

$$= \frac{10}{11}\times\frac{11}{20}=\frac{1}{2}$$ क्विंटल चावल

पीगू के समीकरण के अनुसार, यदि हमें मुद्रा की कुल मात्रा (M) ज्ञात करनी है तो निम्नलिखित विधि द्वारा इसे ज्ञात किया जा सकता है– **नोट**

$$M = \frac{kR}{P}\ [c + h\,(1 - c)]$$

$$= \frac{\frac{1}{4}\times 2000}{\frac{1}{2}}\left[\frac{1}{2}+\frac{1}{10}(1-\frac{1}{2})\right] = \frac{500}{\frac{1}{2}}\left[\frac{1}{2}+\frac{1}{10}\times\frac{1}{2}\right] = 500\times\frac{2}{1}\left[\frac{1}{2}+\frac{1}{20}\right]$$

$= 1000\ \left[\frac{1}{2}+\frac{1}{20}\right]$ (इसमें $1000 \times \frac{1}{2} = 500$ रु. लोगों के पास करेन्सी या विधि ग्राह्य मुद्रा है और $1000 \times \frac{1}{20} = 50$ रु. बैंक मुद्रा है।)

$$= 1000 \times \frac{11}{20} = 550 \text{ रु.}$$

पीगू के अनुसार यदि k, R, c और h को स्थिर मान लिया जाए तो मुद्रा की पूर्ति में होने वाले परिवर्तन के कारण मुद्रा के मूल्य में आनुपातिक परिवर्तन होगा। इसे चित्र 12.2 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

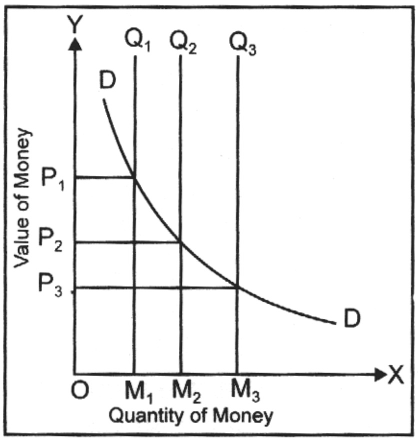

चित्र 12.2

चित्र 12.2 में मुद्रा की माँग तथा पूर्ति को OX-अक्ष पर तथा मुद्रा के मूल्य को OY-अक्ष पर दिखाया गया है। DD मुद्रा का माँग वक्र है। $Q_1 M_1$; $Q_2 M_2$; तथा Q_3M_3 मुद्रा का पूर्ति वक्र है। समय के एक निश्चित बिंदु पर मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है; अत: इसे एक सीधी खड़ी रेखा द्वारा दिखाया गया है। जब मुद्रा की पूर्ति OM_1 से बढ़कर OM_2 हो जाती है तब मुद्रा का मूल्य OP_1 से घट कर OP_2 हो जाता है। मुद्रा के मूल्य में कमी मुद्रा की पूर्ति में होने वाली वृद्धि के अनुपात में है। इसी प्रकार जब मुद्रा की पूर्ति OM_2 से OM_3 बढ़ती है तब मुद्रा का मूल्य OP_2 से OP_3 घट जाता है।

फिर भी मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन के संदर्भ में पीगू ने M की अपेक्षा K को अधिक महत्त्व दिया है। अर्थात् मुद्रा की पूर्ति की अपेक्षा मुद्रा की माँग को मुद्रा के मूल्य का अधिक महत्त्वपूर्ण निर्धारक माना जाता है।

राबर्टसन का समीकरण (Robertson's Equation)

राबर्टसन का समीकरण के अनुसार

$$M = PkT \text{ अथवा } P = \frac{M}{kT}$$

नोट

(यहाँ P : कीमत स्तर; M : मुद्रा की मात्रा; T : समय के एक निश्चित बिंदु पर वस्तुओं तथा सेवाओं की खरीदी गयी मात्रा; k : T का वह भाग जिसे लोग नकद रूप में रखना चाहते हैं)

राबर्टसन के समीकरण को पीगू के समीकरण से अधिक अच्छा समझा जाता है क्योंकि यह सरल है।

आलोचना (Criticism)

ए.सी.एल.डे के शब्दों में, **"यद्यपि परिमाण सिद्धांत का कैम्ब्रिज दृष्टिकोण, फिशर के दृष्टिकोण से अधिक उत्तम है, किंतु यह अपने आप में एक पर्याप्त मौद्रिक सिद्धांत नहीं है। इसकी कमजोरी यह है कि यह आर्थिक व्यवस्थाओं की जटिलता पर पर्याप्त विचार करने के लिए अत्यंत सरल है।"** (Although the Cambridge version of the Quantity Theory represented a big advance on the Fisher version, it is not in itself an adequate monetary theory. Its weakness is that it is too simple to deal adequately with the complexities of economic system.**–A.C.L. Dey**)

कैम्ब्रिज समीकरण की मुख्य आलोचनाएँ इस प्रकार हैं–

1. **अवास्तविक मान्यता (Unrealistic Assumption)**–इस सिद्धांत में कुछ तत्त्वों जैसे k और T को स्थिर मान लिया गया है। किंतु वास्तविक जीवन में न तो 'k', 'T' और न ही 'R' अथवा 'O' कभी स्थिर रहते हैं, इनमें परिवर्तन होता रहता है।

2. **सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग की अवहेलना (Ignores Speculative Demand for Money)**–यह सिद्धांत मुद्रा की माँग की पूर्ण व्याख्या नहीं करता। इसके अनुसार मुद्रा की माँग केवल लेन-देन (Transaction) तथा सावधानी (Precautionary) उद्देश्यों के लिए ही की जाती है। इस सिद्धांत में सट्टा उद्देश्य (Speculative Motive) के लिए मुद्रा की माँग की अवहेलना की गई है।

3. **चक्रीय तर्क (Circular Reasoning)**–नकद शेष सिद्धांत में, चक्रीय तर्क का दोष पाया जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार, एक ओर, कीमत स्तर (P) या मुद्रा का मूल्य, नकद शेष (k) द्वारा निर्धारित होता है किंतु दूसरी ओर, कीमत स्तर (P) या मुद्रा का मूल्य, नकद शेष (k) को निर्धारित करता है। अतएव इस सिद्धांत में चक्रीय तर्क का दोष पाया जाता है, जहाँ तक कि, मुद्रा का मूल्य नकद शेष को निर्धारित करता है तथा नकद शेष मुद्रा के मूल्य को निर्धारित करता है। यह कारण तथा परिणाम (Causal Relationship) का संबंध स्थापित करने में असफल रहा है।

4. **अपूर्ण सिद्धांत (Incomplete Theory)**–नकद शेष सिद्धांत एक अपूर्ण सिद्धांत है। यह सिद्धांत नकद कोषों (k) के निर्धारण में केवल एक तत्त्व, अर्थात् आय (R) को ही महत्त्व देता है। किंतु वास्तव में नकद कोष कई अन्य तत्त्वों जैसे–कीमत स्तर, मौद्रिक आदतों, व्यावसायिक ढाँचे आदि पर निर्भर करता है। सिद्धांत में इन तत्त्वों की अवहेलना की गई है।

5. **ब्याज की दर के प्रभाव की अवहेलना (It ignores the Effect of the Rate of Interest)**–नकद शेष सिद्धांत की यह मान्यता गलत है कि मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में प्रत्यक्ष संबंध पाया जाता है। वास्तव में, मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन होने पर पहले ब्याज की दर में परिवर्तन होता है। ब्याज की दर में परिवर्तन के कारण निवेश की मात्रा में परिवर्तन होता है। निवेश की मात्रा में परिवर्तन के कारण उत्पादन की लागत में परिवर्तन होता है और उत्पादन की लागत में परिवर्तन के कारण कीमतों में परिवर्तन होता है। किंतु इस सिद्धांत में परिवर्तन की इस तर्कपूर्ण प्रक्रिया का कोई उल्लेख नहीं है।

6. **वास्तविक तत्त्वों के प्रभाव की अवहेलना (Ignores the Influence of Real Factor)**–इस सिद्धांत के अनुसार मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन का कारण मुद्रा की माँग में होने वाला परिवर्तन है। किंतु मुद्रा के मूल्य पर कई अन्य वास्तविक तत्त्वों जैसे–बचत, निवेश, आय आदि का भी प्रभाव पड़ता है। यह सिद्धांत इन वास्तविक तत्त्वों की अवहेलना करता है।

7. **मूल्य सिद्धांत तथा मुद्रा सिद्धांत में समन्वय का अभाव (Lack of Integration of Theory of Value and Theory of Money)–डॉन पैटिन्कन** (Don Patinkin) के अनुसार, नकद शेष समीकरण में मूल्य सिद्धांत अथवा सापेक्षिक कीमतों तथा मुद्रा सिद्धांत अथवा सामान्य कीमत स्तर में समन्वय का अभाव पाया जाता है। इस सिद्धांत ने मूल्य सिद्धांत को मुद्रा सिद्धांत से पूर्णत: पृथक कर दिया है। वास्तव में, दोनों सिद्धांतों मे परस्पर निर्भरता पाई जाती है। यह परस्पर निर्भरता, वास्तविक शेष प्रभाव (Real Balance Effect) द्वारा निर्धारित होती है। वास्तविक शेष प्रभाव से अभिप्राय यह है कि कीमत स्तर में परिवर्तन होने के कारण लोगों की वास्तविक आय में परिवर्तन होता है। इसका वस्तुओं की माँग तथा पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप, यह सापेक्ष कीमतों को भी प्रभावित करता है। अत: मूल्य के सिद्धांत तथा मुद्रा के सिद्धांत को वास्तविक शेष द्वारा समन्वित किया जाता है। किंतु, उपरोक्त सिद्धांत इस समन्वय की अवहेलना करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. मुद्रा की मात्रा से अभिप्राय मुद्रा की कुल मात्रा से है।
8. मुद्रा की माँग इसलिए की जाती है क्योंकि यह विनिमय के माध्यम का काम करती है।
9. मुद्रा की पूर्ति दो तत्वों पर निर्भर करती है– (*i*) मुद्रा की मात्रा तथा (*ii*) मुद्रा की चलन गति।
10. मुद्रा की क्रयशक्ति को ही मुद्रा का मूल्य कहा जाता है।

12.7 सारांश (Summary)

- **मुद्रा के परिमाण सिद्धांत** के अनुसार **मुद्रा के परिमाण तथा सामान्य कीमत स्तर में एक प्रत्यक्ष और आनुपातिक संबंध है तथा मुद्रा के परिमाण तथा मुद्रा के मूल्य में विपरीत आनुपातिक संबंध है।** इस सिद्धांत के अनुसार, मुद्रा के परिमाण में वृद्धि होने से कीमत स्तर में उसी अनुपात में वृद्धि हो जाती है और मुद्रा के परिमाण में कमी होने से कीमत स्तर में उसी अनुपात में कमी हो जाती है।

12.8 शब्दकोश (Keywords)

- कीमत स्तर (Price Level) – मूल्य स्तर।
- परिमाण (Quantity) – मात्रा।

12.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मुद्रा का मूल्य किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
2. मुद्रा के मूल्य के सिद्धांत बताइए।
3. मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के दो समीकरणों की व्याख्या कीजिए।
4. फिशर के समीकरण में मुद्रा की पूर्ति तथा मुद्रा की माँग की अवधारणाओं का उल्लेख कीजिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. मूल्य	2. विपरीत	3. बढ़ता	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. सही	10. सही।		

12.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–13: केन्ज़ियन दृष्टिकोण (Keynesian Approach)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
13.1 मुद्रा तथा कीमतों संबंधी केन्ज़ियन सिद्धांत (Keynesian Theory of Money and Prices)
13.2 केन्ज़ियन दृष्टिकोण की श्रेष्ठता (Superiority of Keynesian Approach)
13.3 सारांश (Summary)
13.4 शब्दकोश (Keywords)
13.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
13.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मुद्रा तथा कीमतों संबंधी केन्ज़ियन सिद्धांत जानने हेतु।
- केन्ज़ियन दृष्टिकोण की श्रेष्ठता जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

केन्ज़ के अनुसार, मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का कीमत स्तर पर **अप्रत्यक्ष** प्रभाव पड़ता है। मुद्रा की पूर्ति कीमत स्तर को केवल ब्याज की दर तथा उत्पादन की लागत में परिवर्तन के द्वारा ही प्रभावित करती है। मुद्रा और कीमतों के संबंध के बारे में केन्ज़ के विचारों को समझने के लिए निम्नलिखित अवलोकनों को ध्यानपूर्वक नोट करें।

13.1 मुद्रा तथा कीमतों संबंधी केन्ज़ियन सिद्धांत (Keynesian Theory of Money and Prices)

अपनी प्रसिद्ध पुस्तकों “A Treatise on Money” तथा “The General Theory of Employment, Interest and Money” में **केन्ज़** ने मुद्रा तथा कीमतों के संबंध में एक सिद्धांत प्रस्तुत किया है। इसमें उत्पादन की लागत में परिवर्तनों के द्वारा मुद्रा तथा कीमतों में संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के अनुसार, मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का कीमत स्तर पर **प्रत्यक्ष** तथा आनुपातिक प्रभाव पड़ता है। किंतु **केन्ज़** के अनुसार मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का कीमत स्तर पर **अप्रत्यक्ष** प्रभाव पड़ता है। मुद्रा की पूर्ति कीमत स्तर को केवल ब्याज की दर तथा उत्पादन की लागत में परिवर्तन के द्वारा ही प्रभावित करती है। मुद्रा और कीमतों के संबंध के बारे में केन्ज़ के विचारों को समझने के लिए निम्नलिखित अवलोकनों को ध्यानपूर्वक नोट करें।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. केंज़ के अनुसार, मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन की कीमत स्तर पर ·············· प्रभाव पड़ता है।
2. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन सबसे पहले ·············· की दर को प्रभावित करता है।

केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की मात्रा कीमत स्तर को निम्नलिखित क्रमानुसार प्रभावित करती है–

1. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन सबसे पहले ब्याज की दर को प्रभावित करता है। जब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है तब ब्याज की दर घटती है, बशर्ते कि सट्टा उद्देश्य के लिए तरलता अधिमान में कोई परिवर्तन न हो। यह क्रम इस प्रकार चलता है–

मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के कारण–

⇒ लोगों के नकद शेषों में वृद्धि होना

⇒ बॉण्डस की माँग में वृद्धि होना

⇒ बॉण्डस की कीमत में वृद्धि होना

⇒ ब्याज की दर में कमी होना

> *नोट्स* बॉण्ड्स की कीमत तथा ब्याज की दर में विपरीत संबंध होता है। बॉण्ड्स की कीमत में वृद्धि होने का निहित अर्थ ब्याज की दर में कमी होना है; तथा इसके विपरीत भी होता है।

2. ब्याज की दर में कमी निवेश को उत्साहित करती है, बशर्ते कि पूँजी सीमांत उत्पादन (MEC) स्थिर रहे।
3. निवेश में वृद्धि (ΔI) गुणक प्रक्रिया के द्वारा, आय, रोजगार तथा उत्पादन में वृद्धि करती है। ऐसा इस मान्यता पर है कि साधनों का अभी तक पूर्ण उपयोग नहीं किया गया है।
4. जैसे ही आय, उत्पादन तथा रोजगार ($\Delta Y, \Delta O, \Delta N$) में वृद्धि होती है, उत्पादन के साधनों की माँग में वृद्धि होती है। किंतु पूर्ण रोजगार की स्थिति से पूर्व उनकी पूर्ति पूर्णतः लोचशील होने के कारण, उत्पादन में होने वाली वृद्धि के फलस्वरूप कीमतों में कोई वृद्धि नहीं होती।
5. एक बार पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त हो जाने पर और अधिक रोजगार में वृद्धि नहीं हो सकती। अतः उत्पादन के आगतों (Inputs) की माँग में वृद्धि के फलस्वरूप उनकी कीमतों में वृद्धि होती है।
6. जब आगतों की कीमतों में वृद्धि होती है तब उत्पादन की लागत में अवश्य वृद्धि होती है।
7. उत्पादन की लागतों में वृद्धि के कारण उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में वृद्धि होती है।

निम्न अनुक्रम चार्ट (Flow Chart) में मुद्रा तथा कीमतों के बीच उपरोक्त घटना क्रम का समन्वय दिखाया गया है।

मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि ⇒ लोगों के नकद कोषों में वृद्धि ⇒ बॉण्डस की माँग में वृद्धि ⇒ बॉण्डस की कीमत में वृद्धि ⇒ ब्याज की दर में कमी ⇒ निवेश में वृद्धि ⇒ आगतों की माँग में वृद्धि ⇒ आगतों की कीमत में वृद्धि (यदि साधन पूर्ण रोजगार की स्थिति में पहुँच चुके हों तो) ⇒ उत्पादन की लागत में वृद्धि ⇒ उत्पादित वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में वृद्धि।

नोट

नोट्स जब एक अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति पाई जाती है, तब मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है।

मुद्रा तथा कीमतों संबंधी केन्ज़ियन सिद्धांत का सारांश इस प्रकार है–**जब एक अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति पाई जाती है, तब तक मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है। पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाने से मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने के कारण कीमतों में उसी अनुपात में वृद्धि होने लगती है।**

चित्र द्वारा व्याख्या

चित्र 12.3 में मुद्रा, उत्पादन तथा कीमतों के संबंध को प्रकट किया गया है। चित्र 12.3(A) में दिखाया गया है कि जैसे-जैसे मुद्रा की मात्रा O से A तक बढ़ती है, उत्पादन भी O से Q तक उसी अनुपात में बढ़ता है। जब मुद्रा की मात्रा OA हो जाती है, तब उत्पादन OQ होता है जो कि पूर्ण रोजगार वाला उत्पादन है। किंतु उत्पादन वक्र बिंदु B तक तो ऊपर को उठ रहा है किंतु इसके पश्चात् वह एक खड़ी रेखा BM का रूप धारण कर लेता है। इसका अर्थ यह है कि बिंदु B के पश्चात् (पूर्ण रोजगार के पश्चात्) मुद्रा की मात्रा में वृद्धि उत्पादन को प्रेरित नहीं करती।

अब चित्र 12.3 को देखें। जब तक मुद्रा की मात्रा OA है कीमत स्तर OQ पर स्थिर है। जब मुद्रा की मात्रा OA से अधिक होती है तब कीमत रेखा BR ऊपर को उठने लगी है, जो कि मुद्रा की मात्रा और कीमत स्तर में आनुपातिक संबंध को प्रकट करती है।

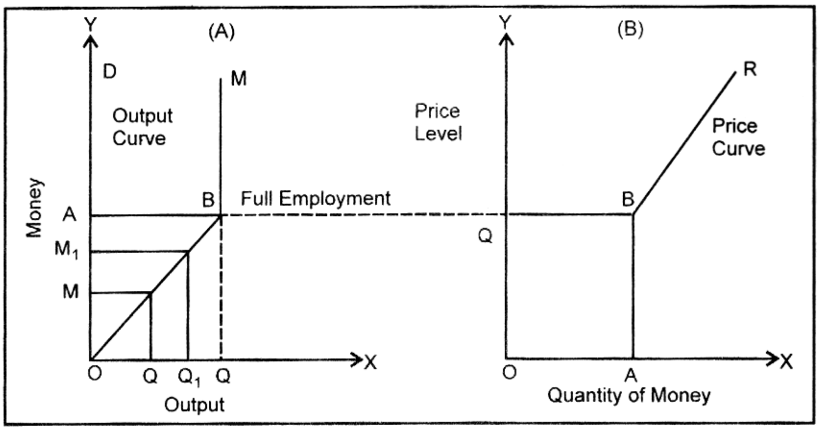

चित्र 13.1

क्या आप जानते हैं पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाने से मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने के कारण कीमतों में उसी अनुपात में वृद्धि होने लगती है।

नोट

> ☞ **इस तथ्य की उपेक्षा न करें (You are not to Overlook the Fact)**
>
> केन्ज़ के अनुसार पूर्ण रोजगार की स्थिति से पहले कीमत स्तर में वृद्धि की सीमांत प्रवृत्ति पाई जा सकती है। इसका कारण उत्पादन के साधनों की "गतिशीलता में रुकावट" है भले ही वे बेराजगार हैं और रोज़गार के इच्छुक हैं। साधनों को उनके रोजगार के स्थान तक पहुँचाने में समय लग सकता है। परिणामस्वरूप उनकी पूर्ति उनकी माँग के बराबर नहीं हो पाती तथा उनकी कीमतों में वृद्धि होने लगती है। लागत में वृद्धि का अर्थ कीमत-स्तर में वृद्धि है। किंतु कीमत स्तर में यह वृद्धि बहुत साधारण होती है और केन्ज़ ने इसे संस्फीति (Reflation) का नाम दिया है (स्फीति (Inflation) का नहीं)।

मुद्रा तथा कीमतों के केन्ज़ियन सिद्धांत का बीजगणित
(The Algebra of Keynesian Theory of Money and Prices)

अथवा

केन्ज़ का आधारभूत समीकरण (Keynes' Fundamental Equation)

केन्ज़ ने मुद्रा तथा कीमतों के संबंध में अपने विचारों को निम्नलिखित समीकरणों के रूप में व्यक्त किया है–

$$Y = E + Q \quad ...(1)$$

(Y : राष्ट्रीय आय; E : साधनों को किया गया भुगतान; Q : आकस्मिक लाभ)

राष्ट्रीय आय (Y) को साधनों को किए गए भुगतानों (E) तथा आकस्मिक लाभों (Q) का जोड़ माना गया है। वास्तविक बिक्री में से साधन भुगतानों को घटा कर आकस्मिक लाभों (Windfall Profits) का अनुमान लगाया जाता है। $Y = E$ की स्थिति में केवल सामान्य लाभ ही कमाए जाते हैं।

$$O = R + C \quad ...(2)$$

(O : कुल उत्पादन; R : उपभोक्ता वस्तुएँ; C : पूँजीगत वस्तुएँ)

$$S = E - PR \quad ...(3)$$

(S : बचत; PR : उपभोग व्यय अर्थात् उपभोग वस्तुएँ (R) गुणा उनकी कीमतें (P)

$$I = P_1 C \quad ...(4)$$

(I = निवेश व्यय अर्थात् जिसकी गणना पूँजीगत वस्तुओं (C) तथा उनकी कीमतों (P_1) को गुणा करके की जाती है।)

$$n = \frac{PR + P_1C}{O} \quad ...(5)$$

(n : सामान्य कीमत स्तर)

यह कुल व्यय ($PR + P_1C$) और कुल उत्पाद (O) के अनुपात को प्रकट करता है।

क्योंकि $PR = E - S$ (समीकरण 3 में $S = E - PR$) और $P_1C = 1$

समीकरण (5) को इस प्रकार लिखा जा सकता है–

$$n = \frac{E - S + I}{O}$$

अथवा

$$n = \frac{E}{O} + \frac{I - S}{O}$$

नोट

मुद्रा तथा कीमतों संबंधी यह केन्ज़ियन सिद्धांत का मूलभूत समीकरण है। इसके दो महत्त्वपूर्ण भाग इस प्रकार हैं–(*i*) $\frac{E}{O}$, अर्थात् साधन भुगतानों तथा कुल उत्पादन का अनुपात और (*ii*) $\frac{I-S}{O}$

अर्थात् I और S के अंतर तथा कुल उत्पादन का अनुपात

केन्ज़ $\frac{E}{O}$ को लगभग स्थिर मानता है और अपना ध्यान $\frac{I-S}{O}$ पर केंद्रित करता है ताकि वह इस बात की व्याख्या कर सके कि कीमत स्तर कैसे प्रभावित होता है। इस संदर्भ में निम्नलिखित अवलोकन महत्त्वपूर्ण हैं–

(*i*) निवेश (I) तथा बचत (S) में अंतर का कारण ब्याज की बाजार दर तथा प्राकृतिक दर में अंतर है। ब्याज की बाजार दर उस दर को कहते हैं जो कि मुद्रा बाजार में एक निश्चित समय बिंदु पर पाई जाती है। ब्याज की प्राकृतिक दर उस दर को कहते हैं जो कि पूर्ण रोजगार स्तर पर ब्याज तथा निवेश की समानता के अनुरूप होती है।

(*ii*) यदि पूर्ण रोजगार स्तर पर बचत = निवेश, तो ब्याज की बाजार दर = ब्याज की प्राकृतिक दर और कीमत स्तर स्थिर हो जाता है तथा उसमें परिवर्तन के कोई चिह्न दिखाई नहीं देते।

(*iii*) यदि $I > S$ (जबकि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति में होती है) तो ब्याज की बाजार दर प्राकृतिक दर से कम होती है। इसका कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होना है और फलस्वरूप बॉण्डस की माँग का बढ़ना है। बॉण्डस की माँग के बढ़ने से उनकी कीमत बढ़ती है तथा ब्याज की बाजार दर घटती है।

(*iv*) यदि $I < S$ (तथा अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार की स्थिति में नहीं होती) तो ब्याज की दर में, मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के फलस्वरूप होने वाली कमी उत्पादन को कीमत स्तर में वृद्धि के बिना, बढ़ाएगी।

(*v*) यदि मुद्रा की मात्रा कम होती है और फलस्वरूप ब्याज की दर बढ़ती है, तो I में कमी होगी और यह S से कम हो जाएगी (अर्थात् $I < S$)। ऐसी स्थिति में, आगतों की माँग घटेगी, जिसका अर्थ होगा उत्पादन की लागत में कमी का होना। फलस्वरूप कीमत स्तर में भी कमी होगी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. केंज़ ने मुद्रा तथा कीमतों के संबंध में प्रस्तुत किया है–
   (अ) एक सिद्धांत (ब) नियम
   (स) कानून (द) इनमें से कोई नहीं।
4. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का कीमत स्तर पर .... तथा आनुपातिक प्रभाव पड़ता है।
   (अ) अप्रत्यक्ष (ब) प्रत्यक्ष
   (स) आर्थिक (द) इनमें से कोई नहीं।
5. एक बार पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त हो जाने पर और अधिक रोजगार में नहीं हो सकती–
   (अ) वृद्धि (ब) कमी
   (स) समानता (द) असमानता।
6. लागत में वृद्धि का अर्थ कीमत स्तर में है–
   (अ) वृद्धि (ब) कमी
   (स) समानता (द) असमानता।

नोट

13.2 केन्ज़ियन दृष्टिकोण की श्रेष्ठता (Superiority of Keynesian Approach)

केन्ज़ियन मुद्रा का सिद्धांत मुद्रा के परिमाण सिद्धांत से श्रेष्ठ है, जैसा कि निम्नलिखित कारणों से स्पष्ट है–

1. मौद्रिक सिद्धांत का मूल्य सिद्धांत के साथ एकीकरण (Integration of Monetary Theory with the Theory of Value)–केन्ज़ियन सिद्धांत की एक विशेषता यह है कि इस सिद्धांत ने मौद्रिक सिद्धांत अथवा सामान्य कीमत-स्तर के सिद्धांत तथा मूल्य सिद्धांत अथवा सापेक्षिक कीमत सिद्धांत का एकीकरण करने का प्रयास किया है। मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के अनुसार, सामान्य कीमत स्तर तथा भिन्न-भिन्न वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों का निर्धारण विभिन्न प्रकार से होता है। सामान्य कीमत स्तर में परिवर्तन का कारण मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का होना है। अत: इसे मुद्रा का सिद्धांत कहा जाता है। इसके विपरीत, सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन का कारण वस्तुओं की माँग तथा पूर्ति में परिवर्तन होता है, अत: इसे मूल्य सिद्धांत कहते हैं। डॉन पैटिन्कन (Don Patinkin) ने मुद्रा के सिद्धांत के इस अंतर को परंपरावादी विभाजन (Classical Dichotomy) का नाम दिया है। केन्ज के अनुसार, यह विभाजन अवास्तविक है। सामान्य कीमत स्तर तथा सापेक्षिक कीमतों में परिवर्तन का मुख्य कारण उत्पादन की लागत में परिवर्तन है। सापेक्षिक कीमतों का निर्धारण माँग तथा पूर्ति की लोच तथा उत्पादन की लागत द्वारा होता है। यही आर्थिक तत्त्व सामान्य कीमत-स्तर को भी निर्धारित करते हैं। अत: मूल्य सिद्धांत तथा मुद्रा सिद्धांत एक ही प्रकार के कारणों द्वारा प्रभावित होते हैं।

2. अधिक वास्तविक सिद्धांत (More Realistic Theory)–मुद्रा का परिमाण सिद्धांत केवल पूर्ण रोजगार की स्थिति में ही मान्य (Valid) होता है। किंतु पूर्ण रोजगार की स्थिति एक दुर्लभ (Rare) स्थिति है। अधिकांश देशों में अल्प रोजगार की स्थिति पाई जाती है। केन्ज़ का मुद्रा का सिद्धांत पूर्ण रोजगार तथा अल्प रोजगार दोनों ही अवस्थाओं में मान्य है। अल्प रोजगार की स्थिति में, मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के परिणामस्वरूप रोजगार तथा उत्पादन में वृद्धि होती है। किंतु पूर्ण रोजगार की अवस्था के पश्चात् मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने पर कीमत स्तर बढ़ता है। केन्ज़ यह भी मानता है कि अपूर्ण रोजगार की स्थिति में भी बाजार की अपूर्णताओं के कारण उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ कीमत स्तर में भी वृद्धि हो सकती है। किंतु ऐसी वृद्धि बहुत सीमित होती है।

3. मौद्रिक सिद्धांत तथा उत्पादन सिद्धांत में एकीकरण (Integration between Monetary Theory and Theory of Output)–लार्ड केन्ज़ ने मौद्रिक सिद्धांत का उत्पादन सिद्धांत के साथ भी एकीकरण किया है। मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन ब्याज की दर को प्रभावित करता है और इसके परिणामस्वरूप निवेश की मात्रा में भी परिवर्तन होता है। अत: अर्थव्यवस्था में उत्पादन की मात्रा में भी परिवर्तन होता है। उत्पादन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन के कारण उत्पादन की लागत तथा कीमत-स्तर में भी परिवर्तन होता है।

4. कारणात्मक क्रियाओं की उचित व्याख्या (Proper Explanation of the Causal Process)–यह सिद्धांत मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की अपेक्षा कारणात्मक क्रियाओं के संबंध की अधिक वैज्ञानिक व्याख्या करता है। केन्ज़ के अनुसार मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का यह दोष है कि इसमें मुद्रा की मात्रा के उन प्रभावों की, जो ब्याज की दर, निवेश, उत्पादन तथा रोजगार पर पड़ते हैं, बिल्कुल अवहेलना की है। इस सिद्धांत में केवल मुद्रा की कुल मात्रा तथा कीमतों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। परंतु केन्ज़ के सिद्धांत में इन सभी तत्त्वों को ध्यान में रखा गया है। इस सिद्धांत के अनुसार मुद्रा की पूर्ति माँग से अधिक होने पर ब्याज की दर को घटाती है। जिसके फलस्वरूप निवेश में वृद्धि होती है। निवेश में वृद्धि होने से उत्पादन के साधनों की माँग बढ़ती है, तथा उनकी उत्पादन लागत बढ़ जाने के कारण कीमतें बढ़ जाती हैं। अत: मुद्रा की मात्रा का कीमतों पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह व्याख्या निश्चय ही अधिक वास्तविक है।

5. आर्थिक नीतियों का अच्छा पथ-प्रदर्शक (Better Guide Economic Policies)–केन्ज़ का सिद्धांत मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की तुलना में अधिक व्यावहारिक है तथा आर्थिक नीतियों का अच्छा पथ-प्रदर्शक है। मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के अनुसार, मुद्रा की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि कीमतों में वृद्धि अथवा स्फीति का कारण बनती है। किंतु

केन्ज़ के अनुसार मुद्रा की मात्रा में वृद्धि प्राय: मुद्रा स्फीति का कारण पूर्ण रोजगार के पश्चात् ही बनती है। यदि किसी देश में बेरोजगारी तथा मंदी की स्थिति पाई जाती है तो इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था अथवा साख विस्तार की नीति को बिना कीमतों में वृद्धि के डर के अपनाया जा सकता है। अत: मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के कारण कीमत स्तर में वृद्धि होगी, ऐसी कोई खतरनाक बात नहीं है।

संक्षेप में, केन्ज़ का यह विचार है कि मुद्रा की पूर्ति आर्थिक विकास का तब तक एक उपकरण है जब तक पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त नहीं हो जाती। पूर्ण रोजगार की अवस्था के प्राप्त हो जाने के पश्चात् मुद्रा की पूर्ति होने से कीमत स्तर में वृद्धि का खतरा बहुत बढ़ जाता है।

टास्क केन्ज़ियन सिद्धांत के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

मुख्य बिंदु (Key Points)

- **मुद्रा का मूल्य (Value of Money)**–एक इकाई मुद्रा के बदले में जितनी वस्तुएँ तथा सेवाएँ प्राप्त होती हैं, उसको मुद्रा की इस इकाई का मूल्य कहा जाता है।
- **मुद्रा का मूल्य एवं कीमत स्तर (Value of Money and Price Level)**–मुद्रा का मूल्य एवं कीमत स्तर विपरीत रूप से संबंधित है अर्थात्, मुद्रा का मूल्य = $\dfrac{1}{\text{कीमत स्तर}}$
- **मुद्रा परिमाण सिद्धांत (Quantity Theory of Money)**–मुद्रा की मात्रा एवं साधारण कीमत स्तर के बीच में प्रत्यक्ष आनुपातिक संबंध है एवं मुद्रा की मात्रा और मुद्रा मूल्य के बीच में विपरीत आनुपातिक संबंध है।
- **फिशर का समीकरण (Fisher's Equation)**–$PY = MV + M'V'$ अथवा $P = \dfrac{MV + M'V'}{Y}$
- **मुद्रा परिमाण सिद्धांत की शर्तें (Assumptions of Quantity Theory of Money)**–(*i*) मुद्रा की चलन गति V एवं V′ स्थिर है (*ii*) व्यापार विनिमय स्थिर है (*iii*) पूर्ण रोजगार (*iv*) M एवं M′ का अनुपात स्थिर है।
- **आलोचना (Criticisms)**–(*i*) मुद्रा की मात्रा एवं कीमत स्तर में संबंध एक साधारण सत्य है। (*ii*) यह सिद्धांत अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। (*iii*) इस मॉडल में जिन चरों को लिया गया है उनको स्वतंत्र माना गया है लेकिन वास्तव में यह चर स्वतंत्र नहीं है। (*iv*) यह सिद्धांत एक-पक्षीय है क्योंकि यह मुद्रा पूर्ति पर केंद्रित है। (*v*) यह सिद्धांत कीमत स्तर को एक निष्क्रिय कारण मानता है जोकि गलत है। (*vi*) यह सिद्धांत केवल पूर्ण रोजगार की स्थिति में प्रयोग हो सकता है। (*vii*) यह सिद्धांत व्यापार चक्र का वर्णन करने में विफल है। (*viii*) यह सिद्धांत असंगतता को प्रकट करता है। (*ix*) यह ब्याज दर के महत्त्व की अवहेलना करता है। (*x*) मुद्रा के चलन की गति को मापना कठिन है। (*xi*) यह अमौद्रिक कारकों की व्याख्या करता है। (*xii*) कीमत में बदलाव आय स्तर में बदलाव का परिणाम हो सकती है न कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का।
- **मार्शल का समीकरण (Marshall's Equation)**–$M = kY + k'A$
- **पीगू का समीकरण (Pigou's Equation)**–$P = \dfrac{kR}{M}$

नोट

- **राबर्टसन का समीकरण (Robertson's Equation)**–$P = \frac{M}{kT}$
- **कैम्ब्रिज विचारधारा की आलोचना (Criticism of Cambridge Version of Quantity Theory of Money)**–(*i*) यह अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। (*ii*) यह सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग की अवहेलना करता है। (*iii*) इस सिद्धांत में चक्रीय तर्क को लिया गया है। (*iv*) यह एक अपूर्ण सिद्धांत है। (*v*) यह ब्याज दर के प्रभाव की अवहेलना करता है। (*vi*) यह वास्तविक कारकों के प्रभाव की अवहेलना करता है। (*vii*) यह व्यापार चक्र की व्याख्या करने में विफल रहा है। (*viii*) इस सिद्धांत में मूल्य सिद्धांत तथा मुद्रा सिद्धांत में समन्वय का अभाव है।
- **केन्ज़ का मुद्रा एवं कीमत सिद्धांत (Keynesian Theory of Money and Prices)**–जब तक अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी है मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण उत्पादन एवं रोजगार बढ़ता है। एक बार अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार हो जाए तो मुद्रा की मात्रा में वृद्धि आनुपातिक रूप से कीमत स्तर में वृद्धि करेगी।
- **केन्ज़ का समीकरण (Keynes Equation)**–$n = \frac{E}{O} + \frac{I-S}{O}$
- **मुद्रा परिमाण सिद्धांत से केन्जियन दृष्टिकोण की श्रेष्ठता (Superiority of Keynesian Approach Over Quantity Theory of Money)**–(*i*) यह मौद्रिक सिद्धांत को मूल्य सिद्धांत के साथ एकीकृत करने में सहायक होती है। (*ii*) यह निश्चित रूप से एक अधिक वास्तविक सिद्धांत है। (*iii*) यह मौद्रिक एवं उत्पादन सिद्धांत को एकीकृत करने में सहायक होती है। (*iv*) यह कारणात्मक क्रियाओं की उचित व्याख्या करती है। (*v*) यह आर्थिक नीतियों का अच्छा पथ प्रदर्शक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. मुद्रा का परिमाण सिद्धांत केवल पूर्ण रोजगार की स्थिति में ही मान्य होता है।
8. लॉर्ड रिपन ने मौद्रिक सिद्धांत का उत्पादन सिद्धांत के साथ भी एकीकरण किया गया है।
9. पूर्ण रोजगार की स्थिति एक दुर्लभ स्थिति है।
10. मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन ब्याज की दर को प्रभावित नहीं करता।

13.3 सारांश (Summary)

- मुद्रा तथा कीमतों संबंधी केन्ज़ियन सिद्धांत का सारांश इस प्रकार है–**जब एक अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति पाई जाती है, तब तक मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के कारण उत्पादन तथा रोजगार में वृद्धि होती है। पूर्ण रोजगार की स्थिति आ जाने से मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने के कारण कीमतों में उसी अनुपात में वृद्धि होने लगती है।**

13.4 शब्दकोश (Keywords)

- स्फीति (Inflation) – मुद्रा-स्फीति।
- दृष्टिकोण (Approach) – सोचने-समझने का पहलू।

13.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. 'केन्ज़ियन सिद्धांत' को स्पष्ट कीजिए।
2. केन्ज़ियन दृष्टिकोण की श्रेष्ठता से आप क्या समझते हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. अप्रत्यक्ष	2. ब्याज	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (अ)	7. सही	8. गलत
9. सही	10. गलत।		

13.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010

नोट

इकाई–14: बोमल एवं टोबिन का योगदान (Contribution of Boumal and Tobin)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
14.1 बोमल का मालसूची सैद्धांतिक मत (Boumol's Inventory Theoretic Approach)
14.2 टोबिन का निवेशसूची चयन मॉडल : जोखिम निवारण तरलता अधिमान सिद्धांत (Tobin's Portfolio Selection Model : The Risk Aversion Theory of Liquidity Preference)
14.3 केन्जीय सिद्धांत की तुलना में टोबिन के सिद्धांत की श्रेष्ठता (Its Superiority of over Keynesian Theory)
14.4 सारांश (Summary)
14.5 शब्दकोश (Keywords)
14.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
14.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- बोमल का मालसूची सैद्धांतिक मत जानने हेतु।
- टोबिन का निवेशसूची चयन मॉडल जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

बोमल के विश्लेषण का आधार यह है कि कोई फर्म या व्यक्ति लेन-देन के लिए मुद्रा की इष्टतम मालसूची अपने पास रखता है। वह लिखता है, "फर्म के नकदी शेष का मतलब मुद्रा की वह मालसूची मानी जा सकती है जिसे उसका रखने वाला श्रम, कच्चे माल आदि के क्रय के बदले देने को तैयार है।"

14.1 बोमल का मालसूची सैद्धांतिक मत (Boumol's Inventory Theoretic Approach)

केंज द्वारा प्रस्तुत मुद्रा की लेन-देन माँग में विलियम बोमल ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। केंज मुद्रा की लेन-देन माँग को आय के स्तर का फलन मानता है और लेन-देन माँग तथा आय के बीच रेखीय एंव समानुपातिक संबंध मानता है। बोमल कहता है कि लेन-देन माँग तथा आय में संबंध न तो रखीय है और न ही समानुपातिक, बल्कि होता यह है कि जब आय में परिवर्तन होते हैं, तो मुद्रा की लेन-देन माँग में आनुपातिक से कम परिवर्तन होते हैं। फिर केंज मानता था कि लेन-देन माँग प्रमुखतः ब्याज बेलोच होती है। परंतु बोमल ने मुद्रा की लेन-देन माँग की ब्याज लोचात्मकता का विश्लेषण किया है।

बोमल के विश्लेषण का आधार यह है कि कोई फर्म या व्यक्ति लेन-देन के लिए मुद्रा की इष्टतम मालसूची अपने

पास रखता है। वह लिखता है, "फर्म के नकदी शेष का मतलब मुद्रा की वह मालसूची मानी जा सकती है जिसे उसका रखने वाला श्रम, कच्चे माल आदि के क्रय के बदले देने को तैयार है।" नकदी शेष इसलिए रखे जाने हैं कि आय तथा व्यय एक साथ नहीं होते। "परंतु पूँजी की बड़ी राशियों को नकदी शेष के रूप में बाँध रखना महँगा पड़ता है। क्योंकि वह मुद्रा फर्म में कहीं और अधिक लाभप्रद ढंग से प्रयोग की जा सकती है... उसे लाभप्रद से प्रतिभूतियों में निवेश किया जा सकता है।" इस प्रकार नकदी शेष रखने का दूसरा तरीका बांड हैं जिन पर ब्याज मिलता है। अपनी परिसंपत्तियों से अधिकतम लाभ कमाने के लिए फर्म हमेशा यह प्रयत्न करेगी कि लेन-देन के लिए न्यूनतम नकदी शेष रखे जाएँ। बांडों पर ब्याज की दर जितनी ही अधिक होगी, फर्म उतने ही कम लेन-देन शेषों को रखेगी।

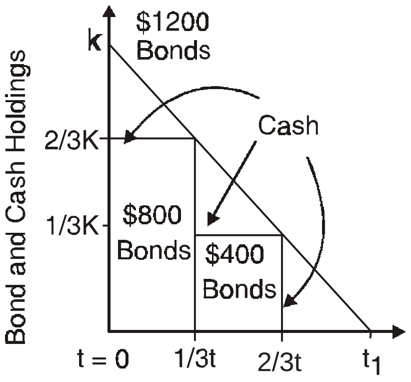

चित्र 14.1

> *नोट्स* केंज़ मुद्रा की लेन-देन माँग को आय के स्तर का फलन मानता है और लेन-देन माँग तथा आय के बीच रेखीय एवं समानुपातिक संबंध मानता है।

बोमल यह मानकर चलता है कि किसी फर्म को प्रति समय-अवधि, जैसे एक वर्ष में Y डालरों की आय होती है जिसे वह उस अवधि में धीरे-धीरे एक स्थिर दर से खर्च करती है। इसलिए फ़र्म को अपनी निष्क्रिय निधियों से बांड खरीदना हमेशा लाभदायक रहेगा। लेन-देन के लिए नकदी की जरूरत पड़ने पर बांड बेचे जा सकते हैं।

फर्म के नकद धारणों और बांड धारणों को ढाँचा चित्र 14.1 में दिखाया गया है। मान लें कि फर्म के पास \$1200 हैं जो उसे वर्ष के दौरान प्रति चार मास स्थिर दर से व्यय करने हैं इस राशि में से वह लेन-देन के लिए \$400 नकदी में रख बाकी \$800 से बांड खरीद लेती है। खरीदे गए आधे बांडों की परिपक्वता 1/3t (चार मास) और शेष आधे बांडों की परिपक्वता $2/3t$ (आठ मास) होती है, मान लीजिए कि k बांडों को बेचने से निकाली गई राशि का आकार है और फर्म के औसत नकदी धारण बांडों के बेचने से प्राप्त राशि के आधे के बराबर (1/2k) है। ये मान्यताएँ दी होने पर, फर्म में समय $t = 0$ पर अपनी 2/3 आय के बांड (\$800) खरीदती है और बाकी 1/3 (\$400) नकदी में रखती है, जैसाकि चित्र में दर्शाया गया है। समय $1/3t$ पर खरीदे गए पहले आधे बांड (\$400) परिपक्व हो जाते हैं जो वह समय $2/3t$ तक नकदी के लिए बेचती है। समय $2/3t$ पर शेष बांड परिपक्व हो जाते हैं जिन्हें फर्म बेच देती है ताकि t_1 समय तक लेन-देन कर सके। समय t_1 पर नकदी शेष शून्य है और फर्म नए वर्ष में नकद प्राप्तियों के लिए तैयार हो जाती है।

नोट

> *क्या आप जानते हैं* बोमल का विश्लेषण लेन-देन शेषों की माँग के व्यवहार के प्रति एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य को लक्ष्य करता है।

इस समस्या को हल करने के लिए आवश्यक है कि वर्ष भर-नकदी-शेषों को रखने की लागत न्यूनतम रखी जाए। नकदी-शेषों को रखने में ब्याज-लागतें और गैर-ब्याज (non-interest) लागतें सम्मिलित रहती हैं। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं ब्याज-लागतें अवसर लागत के रूप में होती हैं। क्योंकि जब कोई फर्म लेन-देन के लिए नकदी रखती है, तो उसे ब्याज-आय छोड़नी पड़ती है। दूसरी ओर, गैर-ब्याज लागतों में नकदी को बांडों अथवा बांडों को नकदी में बदलने के लिए दलाली, डाक-व्यय, बहीखाता व्यय आदि मदें शामिल रहती हैं।

इस प्रकार, जब कभी कोई फर्म लेन-देन के लिए मुद्रा रखती है, तो ब्याज-लागतें और दलाली (गैर-ब्याज लागतें) उठानी पड़ती है। मान लीजिए ब्याज की दर r है तो वर्ष भर के लिए स्थिर मान ली गई है और दलाली b है जिसे भी स्थिर मान लिया गया है। मान लीजिए कि वर्ष के प्रारंभ में फर्म की आय Y है जो इसके द्वारा किए लेन-देनों के वास्तविक मूल्य के बराबर है और K अंतरालों पर प्रत्येक बार निकाली गई राशि का आकार है जो बांड बेचने के समय निकाली गई है। इस प्रकार, वर्ष भर में Y/K बार राशि निकाली गई है। वर्ष के दौरान दलाली पर $b(Y/K)$ लागत आएगी। क्योंकि औसत नकदी निकास (withdrawals) $K/2$ हैं, इसलिए नकदी शेष रखने के की ब्याज-लागत $rK/2$ है। इस प्रकार लेन-देन करने की कुल लागत अर्थात C को समीरकण के रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$C = r\frac{K}{2} + b\frac{Y}{K}$$

K का इष्टतम मूल्य वह होगा जिससे कुल मालसूची की लागत न्यूनतम हो जाए। K के संबंध में C का विभेदीकरण करने से व्युत्पन्न dC/dK शून्य के बराबर रखने से और C को हल करने पर हमें उपलब्ध होता है,

$$\frac{dC}{dK} = \frac{r}{2} + \frac{-by}{K^2} = 0$$

अथवा, $$\frac{r}{2} = \frac{bY}{K^2}$$

अथवा दोनों पक्षों को $2K^2/r$ से गुणा करने पर हमें प्राप्त होता है :

$$K^2 = \frac{2bY}{r}$$

अथवा, $$K = \sqrt{\frac{2bY}{r}}$$

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. केंज़ द्वारा प्रस्तुत मुद्रा की लेन-देन माँग में .... ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

2. नकदी शेष इसलिए रखे जाते हैं कि .... एक साथ नहीं होते।

समीकरण (2) से स्पष्ट है कि यदि दलाली बढ़ जाएगी, तो निकासों की संख्या कम हो जाएगी। दूसरे शब्दों में, इष्टतम नकदी शेष बढ़ जाएगा, क्योंकि फर्म बांडों में कम निवेश करेगी। दूसरी ओर, यदि बांडों पर ब्याज की दर बढ़ जाएगी, तो फर्म के लिए बांडों में निवेश करना अधिक लाभदायक होगा और इष्टतम नकदी शेष अपेक्षाकृत कम हो जाएँगे और विलोमशः भी।

बोमल का विश्लेषण लेन-देन शेषों की माँग के व्यवहार के प्रति एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य को लक्ष्य करता है। जब कोई फर्म या व्यक्ति बड़ी संख्या में बांड खरीदता है, तो उसके पास लेन-देन शेष थोड़े रह जाते हैं और विलोमशः भी। परंतु प्रत्येक क्रय में दलाली, डाक-व्यय इत्यादि के रूप में गैर-ब्याज लागतें पाई जाती हैं जो खरीदने वाले को देनी पड़ती हैं। इसलिए उसे बड़ी संख्या में बांड खरीदने पर होने वाले व्यय के मुकाबले कम बांड खरीदने से होने वाली आय की कमी को संतुलित करना पड़ता है। यह निर्णय बांडों पर मिलने वाली ब्याज दर पर निर्भर करता है।

ब्याज की दर जितनी ही अधिक होगी, फर्म बांड खरीदने में उतना ही अधिक खर्च खपा सकेगी। इस निर्णय को निर्धारित करने वाला एक और भी महत्त्वपूर्ण कारण मुद्रा की वह राशि है जो लेन-देन के लिए रखी जाती है क्योंकि बांड खरीदने और बेचने की दलाली अपेक्षाकृत स्थिर रहती है और लेन-देन की राशि की अपेक्षा अधिक नहीं बदलती। जब लेन-देन के लिए मुद्रा अधिक होगी, तो दलाली लागतें अपेक्षाकृत कम होंगी। "एक हजार डालर के बांड खरीदने पर न्यूनतम दलाली महंगी पड़ेगी। दस लाख डालर के बांड खरीदने पर दलाली नगण्य (negligible) होगी। इसलिए कुल लेन-देन की राशियाँ जितनी ही अधिक होंगी, दलाली की लागतें उतनी ही कम होंगी, और उतने की बार-बार इष्टतम निकास किए जाएंगे।" ऐसा नकदी प्रबंध अथवा मुद्रा के प्रयोग में पैमाने की बचतों के कारण होता है।

इसका मतलब है कि आय के अधिक ऊँचे स्तरों पर लेन-देन की औसत लागत अर्थात् दलाली अपेक्षाकृत कम होती है। ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है, त्यों-त्यों मुद्रा की लेन-देन माँग भी बढ़ती जाती है पर यह वृद्धि आय में वृद्धि की अपेक्षा कम मात्रा में होती है। यदि आय चार गुणा बढ़ती है, तो इष्टतम लेन-देन शेष केवल दुगने होते हैं। क्योंकि बोमल मुद्रा माँग की आय-लोच 1/2 (आधी) मानता है, इसलिए जिस अनुपात में आय बढ़ेगी, मुद्रा की माँग उसी अनुपात में नहीं बढ़ेगी। ऐसा पैमाने की बचतों के कारण होता है। आय में वृद्धि होने के कारण जब लेन-देन में लगाई गई मुद्रा की राशि अपेक्षाकृत अधिक होती है तब पैमाने की बचतें बांडों में अधिक निवेश को प्रोत्साहन देती हैं। मुद्रा की माँग के इस स्टॉक सिद्धांत में बोमल इस बात पर भी बल देता है कि मुद्रा की माँग वास्तविक शेषों के लिए माँग होती है। क्योंकि वर्ष-भर औसत नकदी धारणों का मूल्य $K/2$ है, इसलिए लेन-देन के लिए वास्तविक शेषों की माँग यह होगी:

$$\frac{M_D}{P} = \frac{K}{2}\sqrt{\frac{2bY}{r}}$$

$$M_D = \frac{1}{2}\sqrt{\frac{2bY}{r}}P \qquad ...(3)$$

जहाँ M_D मुद्रा की माँग है और कीमत स्तर है। समीकरण (3) से पता चलता है कि लेन-देन शेषों की माँग" लेन-देनों की मात्रा के वर्गमूल के समानुपाती और ब्याज की दर के वर्गमूल के प्रतीपानुपाती (inverse) होती है।" इसका मतलब है कि स्तर में परिवर्तनों और मुद्रा की लेन-देन माँग के बीच प्रत्यक्ष एवं समानुपातिक संबंध होता है। यदि फर्म के क्रय का ढाँचा अपरिवर्तित रहता है, तो इष्टतम नकदी शेष (Y) ठीक उसी अनुपात में बढ़ेंगे जिस अनुपात में कीमत स्तर (P) बढ़ेगा। यदि कीमत स्तर दो गुणा हो जाएगा, तो फर्म के लेन-देन का मुद्रा मूल्य भी दो गुणा हो जाएगा। जब सब कीमतें दो गुणी हो जाएंगी, तो दलाली (b) भी दोगुनी हो जाएगी। "परिणामतः निवशों

नोट

और निकासों तथा उनकी दलाली लागतों से बचने के लिए अधिक नकदी शेष रखना वांछनीय होगा।" इस प्रकार के लेन-देन का मुद्रा मूल्य और दलाली बढ़ जाने से मुद्रा की इष्टतम माँग ठीक उसी अनुपात में बढ़ जाती है जिस अनुपात में कीमत स्तर बढ़ता है। इस प्रकार बोमल द्वारा प्रस्तुत वास्तविक शेषों की माँग के विश्लेषण का मतलब है कि लेन-देन के लिए मुद्रा की माँग में मुद्रा-भ्रांति नहीं है।

क्लासिकी एवं केन्ज़ीय मतों की तुलना में बोमल सिद्धांत की श्रेष्ठता

(Its Superiority over the Classical and Keynesian Approaches)

बोमल का मुद्रा की लेन-देन माँग संबंधी स्टॉक सैद्धांतिक मत क्लासिकी तथा केन्ज़ीय मतों से निम्न बातों में श्रेष्ठ है–

(*i*) मुद्रा का नकदी शेष परिमाण सिद्धांत यह मान्यता लेकर चलता है कि लेन-देन माँग और आय स्तर में रेखीय एवं समानुपातिक संबंध होता है। बोमल ने स्पष्ट किया है कि यह संबंध मानना सही नहीं है। निस्संदेह यह सच है कि जब आय बढ़ती है, तो लेन-देन माँग भी बढ़ती है परंतु नकदी प्रबंध में पैमाने की बचतों के कारण यह माँग आय की अपेक्षा कम अनुपात में बढ़ती है।

(*ii*) बोमल के सिद्धांत की एक श्रेष्ठता यह है कि जहाँ केन्ज़ का मत यह था कि मुद्रा की लेन-देन माँग ब्याज बेलोच होती है वहाँ बोमल ने सिद्ध किया कि मुद्रा की लेन-देन माँग ब्याज लोचनात्मक होती है।

(*iii*) बोमल का सिद्धांत वास्तविक शेषों के लिए लेन-देन माँग का विश्लेषण करता है, और परिणामतः मुद्रा भ्रांति (money illusion) के अभाव पर बल देता है।

(*iv*) बोमल का मालसूची विषयक सैद्धांतिक दृष्टिकोण क्लासिकी एवं केन्ज़ीय दोनों ही दृष्टिकोणों से इसलिए भी श्रेष्ठ है कि यह परिसंपत्तियों और उनकी ब्याज एवं गैर-ब्याज लागतों को ध्यान में रखकर मुद्रा की लेन-देन माँग को पूँजी-सिद्धांत में एकीकृत कर देता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. नकदी शेषों को रखने में ब्याज-लागतें और गैर-ब्याज लागतें रहती हैं–

(अ) सम्मिलित (ब) शेष

(स) अधिकतम (द) न्यूनतम।

4. यदि दलाली बढ़ जाती है तो निकासों की संख्या हो जाती है–

(अ) अधिक (ब) कम

(स) अत्यधिक (द) इनमें से कोई नहीं।

5. ज्यों-ज्यों आय बढ़ती है, ज्यों-त्यों बढ़ती जाती है–

(अ) मुद्रा की लेन-देन माँग (ब) आय

(स) व्यय (द) इनमें से कोई नहीं।

6. यदि आय चार गुणा बढती है, तो इष्टतम लेन-देन शेष होते हैं–

(अ) केवल तिगुने (ब) केवल दुगुने

(स) केवल बराबर (द) केवल चार गुने।

14.2 टोबिन का निवेशसूची चयन माडल : जोखिम निवारण तरलता अधिमान सिद्धांत (Tobin's Portfolio Selection Model : The Risk Aversion Theory of Liquidity Preference)

जेम्स टोबिन ने अपने "Liquidity Preference as Behaviour Towards Risk" शीर्षक प्रसिद्ध लेख में निवेशसूची चयन पर आधारित जोखिम निवारण अधिमान सिद्धांत प्रस्तुत किया। इस सिद्धांत ने तरलता अधिमान के केन्ज़ीय सिद्धांत के दो प्रमुख दोषों को दूर किया है। एक, केन्ज़ीय तरलता अधिमान भावी ब्याज-दरों की प्रत्याशाओं की बेलोच पर निर्भर करता है; और दूसरे, व्यक्ति या तो मुद्रा रखते हैं या फिर बांड ही। टोबिन ने इन दोषों को दूर कर दिया है। उसका सिद्धांत भावी ब्याज-दरों की प्रत्याशाओं की लोच पर निर्भर नहीं करता, अपितु यह मान्यता लेकर चलता है कि ब्याजधारक परिसंपत्तियाँ रखने से पूँजी लाभ अथवा हानि का प्रत्याशित मूल्य सदैव शून्य होता है। फिर, यह इस बात को भी स्पष्ट करता है कि किसी व्यक्ति की निवेशसूची में मुद्रा तथा बांड दोनों ही रहते हैं, यह नहीं कि एक समय में कोई एक ही रहे।

टोबिन तरलता अधिमान का अपना निवेश सूची चयन मॉडल प्रस्तुत करते हुए शुरू में ही यह मानकर चलता है कि परिसंपत्ति धारक व्यक्ति की निवेश सूची में मुद्रा तथा बांड दोनों हैं। मुद्रा से उसे न तो कोई आय होती है और न ही उसे कोई जोखिम उठानी पड़ती है। परंतु बांडों से ब्याज मिलता है और आय भी होती है। परंतु बांडों से प्राप्त होने वाली आय अनिश्चित है क्योंकि पूँजी हानि अथवा लाभ की जोखिम सम्मिलित रहती है। बाडों में जितना अधिक निवेश होगा, उनसे पूँजी हानि की जोखिम भी उतनी ही बड़ी होगी। निवेशक यह जोखिक तभी उठा सकता है जब बांडों से पर्याप्त आय उसकी क्षतिपूर्ति करे।

यदि प्रत्याशित पूँजी लाभ या हानि g है, तो मान्यता यह है कि निवेशक इस (g) के संभाव्यता वितरण (probability distribution) के अपने अनुमान के आधार पर कार्य करेगा और यह भी मान्यता है कि इस संभाव्यता वितरण का प्रत्याशित मूल्य शून्य है तथा बांडों पर चालू ब्याज दर r के स्तर से स्वतंत्र है।

उसकी निवेश सूची में मुद्रा का M अनुपात और बांडों का B अनुपात रहता है, जहाँ M तथा B दोनों का योग एक है। इनका कोई मूल्य ऋणात्मक नहीं है। निवेश सूची R पर प्रतिफल है:

$$R = B\,(r + g) \text{ जहाँ } 0 \leq B \leq I$$

क्योंकि g यदृच्छिक चर (random variable) है जिसका प्रत्याशित मूल्य शून्य है इसलिए निवेश सूची पर प्रतिफल है:

$$RE = \mu R = Br$$

निवेश सूची से संबंध जोखिम R के मानक विचलन (standard deviation) द्वारा मापी जाती है अर्थात σR टोबिन ने तीन प्रकार के निवेशकों का उल्लेख किया है। एक प्रकार के निवेशक तो वे हैं जिन्हें जोखिम उठाने में मजा आता है और वे अधिकतम जोखिम उठाने में अपना सारा धन बांडों में लगा देते हैं। बांडों से प्रत्याशित आय के बदले जोखिम उठाते हैं। वे जुआरियों जैसे होते हैं। दूसरा वर्ग गोताखोरों (plungers) का है। वे या तो अपना सारा धन बांडों में लगा देते हैं या उसे नकदी के रूप में रखते हैं। ये गोताखोर प्रवृत्ति के लोग या तो सब कुछ दाँव पर लगा देते हैं, या बिल्कुल जोखिम नहीं उठाते।

परंतु अधिकांश निवेशक तीसरे वर्ग के ही होते हैं। वे जोखिम निवारक (risk averters) अथवा विविधक (diversifiers) होते हैं। जोखिम निवारक हानि की उस जोखिम से बचना चाहते हैं जो मुद्रा की बजाय बांड रखने से संबंधित रहती है। वे केवल उस अवस्था में अतिरिक्त जोखिम उठाने को तैयार होते हैं जब उन्हें यह आशा हो कि बांडों पर कुछ अतिरिक्त प्रतिफल (आय) प्राप्त होगी, बशर्ते कि जो प्रत्येक अधिक जोखिम वे उठाते हैं वह अपने साथ प्रतिफल आय में अधिक वृद्धियाँ लाता हो। इसलिए वे अपनी निवेश सूची को विविध बनाएँगे और मुद्रा तथा नकदी दोनों रखेंगे। यद्यपि मुद्रा रखने से न तो कोई प्रतिफल प्राप्त होता है और न ही कोई जोखिम, फिर भी यह परिसंपत्तियों का सर्वाधिक तरल रूप है जिसे कभी भी बांड खरीदने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। जोखिम

नोट

निवारक के जोखिम तथा प्रत्याशित प्रतिफल में अधिमान का पता लगाने के लिए, टोबिन धनात्मक ढलान वाले उदासीनता वक्रों का प्रयोग करता है, जो प्रकट करते हैं कि जोखिम निवारक अधिक जोखिम उठाने के लिए और अधिक प्रत्याशित प्रतिफलों की माँग करता है। इसे चित्र 14.2 में दिखाया गया है जिसमें क्षैतिज अक्ष जोखिम (σR) को तथा अनुलंब अक्ष प्रत्याशित प्रतिफलों ($\sigma\mu R$) को मापता है। Or रेखा जोखिम निवारक की बजट रेखा है। यह जोखिम और प्रत्याशित प्रतिफल के उन संयोगों को व्यक्त करती है जिनके आधार पर वह अपने धन की निवेशसूची को मुद्रा और बांडों में लगाता है। I_1 तथा I_2 उदासीनता वक्र हैं। उदासीनता वक्र बताता है कि वह प्रत्याशित फल और जोखिम के उन सभी संयोगों के प्रति उदासीन है जो I_1 वक्र पर स्थित हैं। I_1 वक्र पर स्थित बिंदुओं की अपेक्षा वह I_2 पर स्थित बिंदुओं को अधिमान देता है। परंतु जोखिम निवारक को प्रत्याशित प्रतिफल तथा जोखिम के बीच संतुलन की स्थिति वहाँ उपलब्ध होगी जहाँ उसकी बजट रेखा उदासीनता वक्र को स्पर्श करेगी। बजट रेखा और I_1 वक्र पर ऐसा बिंदु T है।

टास्क बोमल के मालसूची सैद्धांतिक मत पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

चित्र के निचले भाग में अनुलंब वक्र की लंबाई उस संपत्ति को प्रकट करती है जिसे जोखिम निवारक अपनी निवेशसूची को मुद्रा एवं बांडों में रखता है। *OC* रेखा जोखिम को बांडों में रखी कुल निवेशसूची के भाग के अनुपात के रूप में व्यक्त करती है। इस प्रकार बिंदु *T* से लंब के रूप में खींची गई इस रेखा पर बिंदु *E* मुद्रा तथा बांडों का निवेशसूची मिश्रित निर्धारित करता है। इसमें *OP* बांड तथा *PW* मुद्रा है।

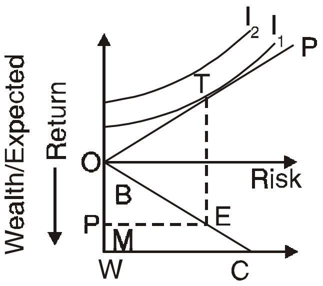

चित्र 14.2

इस प्रकार जोखिम निवारक अपने कुल धन *OW* को कुछ-कुछ बांडों में और कुछ-कुछ नकदी के रूप में रखकर

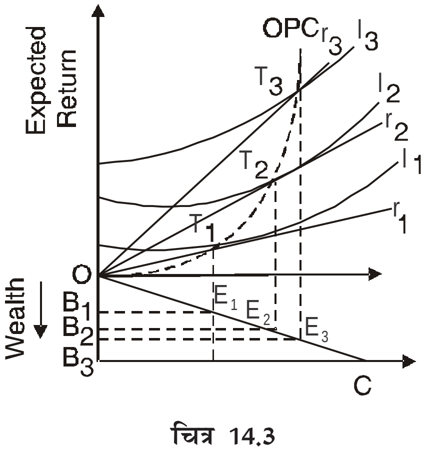

चित्र 14.3

नोट

अपने कुल धन को विविध (diversify) करता है। यही कारण है कि उसे विविधक कहा जाता है। वह तब तक अधिक जोखिम उठाने को तैयार नहीं होता जब तक उसे अधिक प्रत्याशित प्रतिफल की आशा न हो। पर, जोखिम निवारक मन-ही-मन तरलता को अधिमान देता है जिसे केवल अधिक ऊँची ब्याज दरों से दूर किया जा सकता है। ब्याज की दर जितनी ऊँची होगी, मुद्रा की माँग उतनी ही कम होगी, परिणामत: बांड रखने की प्रेरणा उतनी ही अधिक होगी। इसके विपरीत, ब्याज की दर जितनी कम होगी, मुद्रा की माँग उतनी ही अधिक होगी, और परिणामत: बांड रखने की इच्छा उतनी ही कम होगी। इसे चित्र 14.3 में दिखाया गया है।

जब ब्याज की दर बढ़ती है तो बजट रेखा की ढलान बढ़ती है। इसे बजट रेखा r_1 द्वारा दिखाया गया है जो घूमती हुई ऊपर की ओर r_2 तथा r_3 पर पहुँचती है। परिणामत: ब्याज दर में वृद्धि के साथ जोखिम के अनुपात में प्रतिफल बढ़ते जाते हैं और बजट रेखा अधिक ऊँचे उदासीनता वक्रों को स्पर्श करती चलती है। चित्र 14.3 में r_1, r_2 और r_3 रेखाएँ l_1, l_2, l_3 वक्रों पर क्रमश: T_1, T_2, T_3 बिंदुओं पर स्पर्श करती हैं। ये बिंदु चित्र में इष्टतम निवेश सूची वक्र OPC को अनुरेखित करती है, जो बताता है कि ज्यों-ज्यों स्पर्श बिंदु बाईं ओर से दाईं ओर ऊपर को बढ़ते हैं, त्यों-त्यों प्रत्याशित प्रतिफल और जोखिम बढ़ते जाते हैं।

ये स्पर्श बिंदु जोखिम निवारक के निवेश-सूची चलन को भी निर्धारित करते हैं, जैसा कि चित्र 14.3 के निचले भाग में दिखाया गया है। जब ब्याज दर r_1 है तो वे OB_1 बांड तथा B_1W मुद्रा रखते हैं। ज्यों-ज्यों ब्याज की दर r_1 से बढ़कर r_2 और r_3 होती जाती है त्यों-त्यों जोखिम निवारक अपनी निवेश सूची में क्रमश: अधिक बांड OB_2 और OB_3 मुद्रा रखते चलते हैं और मुद्रा को घटाकर B_2W तथा B_3W कर देते हैं। चित्र यह भी प्रदर्शित करता है कि जब ब्याज की दर में समान मात्राओं में r_1 से r_2 से r_3 तक वृद्धि होती है तो जोखिम निवारक घटती मात्राओं में बांड रखते हैं। $B_2B_3 < B_2B_1 < OB_1$। इसका यह अर्थ भी है जब ब्याज की दर बढ़ती है तो मुद्रा की माँग अपेक्षाकृत कम मात्रा में घटती है। इसका कारण यह है कि निवेश सूची में कुल संपत्ति के अंतर्गत बांड तथा मुद्रा होती है।

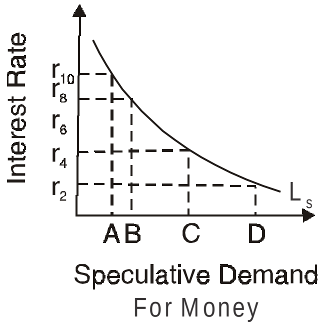

चित्र 14.4

इस प्रकार चित्र 14.3 के आधार पर मुद्रा का माँग वक्र खींचा जा सकता है। इसे चित्र 14.4 में Ls वक्र के रूप में व्यक्त किया गया है। वक्र बताता है कि ब्याज की दर ऊँचे स्तर से गिरती है, तो मुद्रा की माँग में अपेक्षाकृत कम वृद्धि होती है। उदाहरणार्थ, जब ब्याज की दर r_{10} से गिरकर r_8 हो जाती है तो मुद्रा की माँग में AB वृद्धि होती है जो OA से कम है। इसका कारण यह है कि जोखिम निवारक, मुद्रा की अपेक्षा बांड अधिक रखना चाहता है। परंतु जब नीचे के स्तर पर ब्याज की दर गिरती है जैसे r_4 से गिर कर r_2 हो जाती है, तो मुद्रा की माँग में बहुत अधिक वृद्धि होती है। चित्र 14.4 में यह वृद्धि CD है। यह मुद्रा का माँग वक्र मुद्रा की समस्त माँग से नहीं अपितु मुद्रा की सट्टा माँग से संबंध रखता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. ब्याज की दर जितनी अधिक होगी, फर्म बांड खरीदने में उतना ही अधिक खर्च खपा सकेगी।
8. बोमल का सिद्धांत वास्तविक शेषों के लिए लेन-देन माँग का विश्लेषण करता है।
9. टोबिन का सिद्धांत भावी ब्याज दरों की प्रत्याशाओं की बेलोच पर निर्भर करता है।
10. टोबिन, केन्ज़ के सिद्धांत की अपेक्षा तार्किक रूप से अपने सिद्धांत को तरलता अधिमान का अधिक संतोषजनक आधार मानता है।

14.3 केन्जीय सिद्धांत की तुलना में टोबिन के सिद्धांत की श्रेष्ठता (Its Superiority of over Keynesian Theory)

केंज के मुद्रा की सट्टा माँग के तरलता अधिमान सिद्धांत की तुलना में टोबिन का निवेश सूची चयन जोखिम निवारक सिद्धांत श्रेष्ठ है।

1. अधिक संतोषजनक (More Satisfactory)–टोबिन का सिद्धांत भावी ब्याज दरों की प्रत्याशाओं की बेलोच पर निर्भर नहीं करता, अपितु यह मान्यता लेकर चलता है कि ब्याज धारक परिसंपत्तियों से पूँजी-लाभ अथवा हानि का प्रत्याशित मूल्य हमेशा शून्य होता है। इस संबंध में टोबिन, केन्ज के सिद्धांत की अपेक्षा तार्किक रूप से अपने सिद्धांत को तरलता अधिमान का अधिक संतोषजनक आधार मानता है।

2. विविध निवेशसूची (Diversified Portfolio)–केन्ज के सिद्धांत की अपेक्षा यह सिद्धांत इस बात में भी श्रेष्ठ है क्योंकि यह बताता है कि लोग केवल बांड या मुद्रा की बजाय बांडों तथा मुद्रा के रूप में विविध निवेश सूची रखते हैं।

14.4 सारांश (Summary)

- बोमल यह मानकर चलता है कि किसी फर्म को प्रति समय-अवधि, जैसे एक वर्ष में Y डालरों की आय होती है जिसे वह उस अवधि में धीरे-धीरे एक स्थिर दर से खर्च करती है। इसलिए फ़र्म को अपनी निष्क्रिय निधियों से बांड खरीदना हमेशा लाभदायक रहेगा। लेन-देन के लिए नकदी की जरूरत पड़ने पर बांड बेचे जा सकते हैं।

14.5 शब्दकोश (Keywords)

- सैद्धांतिक मत (Theoretic Approach) – सिद्धांत, नियम।
- मुद्रा भ्रांति (Money Illusion) – मुद्रा की भ्रांति।
- संभाव्यता वितरण (Probability Distribution) – संभावित वितरण।

14.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. बोमल का मालसूची सैद्धांतिक मत ज्ञात कीजिए।
2. टोबिन का निवेशसूची चयन मॉडल का वर्णन कीजिए।
3. केन्ज़ीय सिद्धांत की तुलना में टोबिन के सिद्धांत की श्रेष्ठता सिद्ध कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. विलियम बोमल	2. आय तथा व्यय	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. सही।		

14.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010

नोट

इकाई–15: फ्रीडमैन का मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का पुनः प्रतिपादन (Restatement of Friedman's Quantity Theory of Money)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 फ्रीडमैन का सिद्धांत (Friedman's Theory)

15.2 फ्रीडमैन के मुद्रा सिद्धांत का अनुभवसिद्ध प्रमाण (Empirical Evidence of Friedman's Theory)

15.3 फ्रीडमैन बनाम केन्ज़ (Friedman Vs Keynes)

15.4 सारांश (Summary)

15.5 शब्दकोश (Keywords)

15.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

15.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- फ्रीडमैन का सिद्धांत जानने हेतु।
- फ्रीडमैन के मुद्रा सिद्धांत का अनुभवसिद्ध प्रमाण जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

केन्ज़ की पुस्तक General Theory of Employment, Interest and Money, 1936 में प्रकाशित होने के बाद, अर्थशास्त्रियों ने मुद्रा के परंपरागत परिमाण सिद्धांत को रद्द कर दिया। परंतु शिकागो विश्वविद्यालय में "1930 और 1940 के दशकों में मुद्रा का परिमाण सिद्धांत मौखिक परंपरा का केंद्रीय तथा शक्तिशाली अंग बना रहा।" शिकागो में फ्रीडमैन, साइमंज़, लॉयड मिंटस्, फ्रैंक नाइट तथा जैकब वाइनर पढ़ाते थे और उन्होंने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का उसके सैद्धांतिक रूप में ऐसा सूक्ष्म एवं सुसंगत रूपांतर विकसित किया ''जिसमें मुद्रा के परिमाण सिद्धांत को सामान्य कीमत सिद्धांत से संबंद्ध तथा समन्वित कर दिया गया।" मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के शिकागो रूपांतर का सर्वप्रथम व्याख्याता प्रो. फ्रीडमैन है जिसने तथाकथित मुद्रावादी क्रांति प्रस्तुत की। उसने 1956 में प्रकाशित The Quantity Theory of Money : A Restatement शीर्षक अपने निबंध में मुद्रा के आधुनिक परिमाण सिद्धांत का विशेष मॉडल बनाया। उस पर नीचे विचार किया जा रहा है।

15.1 फ्रीडमैन का सिद्धांत (Friedman's Theory)

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के पुनः प्रतिपादन में फ्रीडमैन ने बल देकर कहा है कि "परिमाण सिद्धांत पहले मुद्रा की माँग का एक सिद्धांत है। यह उत्पादन अथवा मुद्रा आय या कीमत स्तर का सिद्धांत नहीं है।" (The quantity

नोट

theory is in the first instance a theory of the demand for money. It is not a theory of output, or of money income, or of the price level.) अंतिम संपत्तिधारकों की ओर से मुद्रा की माँग एक उपभोग सेवा की माँग के साथ औपचारिक रूप से समान है। वह वास्तविक नकदी शेषों की राशि *M/P* को एक वस्तु मानता है जिसकी माँग की जाती है, क्योंकि यह उस व्यक्ति को सेवाएँ प्रदान करती है जो इसे धारण करता है। इस प्रकार, मुद्रा एक परिसंपत्ति अथवा पूँजी वस्तु है। अत: मुद्रा की माँग पूँजी अथवा संपत्ति सिद्धांत का अंग है।

अंतिम संपत्ति धारकों के लिए वास्तविक रूप में मुद्रा की माँग मुख्यतया निम्न चरों का फलन होने की संभावना हो सकती है–

1. **कुल संपत्ति (Total Wealth)**–कुल संपत्ति बजट अवरोध (constraint) का समरूप है। कुल संपत्ति विभिन्न प्रकार की परिसंपत्तियों में बाँटी जानी चाहिए। व्यवहार में, कुल संपत्ति के अनुमान कभी-कभार उपलब्ध होते हैं। इसके बजाय, आय संपत्ति के सूचक का कार्य कर सकती है। अत: फ्रीडमैन के अनुसार आय संपत्ति की एक प्रतिनिधि है।

2. **संपत्ति का मानव और गैर-मानव रूपों में विभाजन (Division of Wealth between Human and Non-Human Forms)**–संपत्ति का मुख्य स्रोत मानवों की उत्पादकीय क्षमता है जो मानव संपत्ति है। परंतु मानव संपत्ति का गैर-मानव संपत्ति में परिवर्तन या इसका विपरीत, संस्थानिक प्रतिबंधों के अधीन है। ऐसा गैर-मानव संपत्ति को वर्तमान अर्जनों द्वारा खरीद कर अथवा गैर-मानव संपत्ति के प्रयोग से वित्त प्रबंधन द्वारा दक्षताएँ प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। अत: गैर-मानव संपत्ति के रूप में कुल संपत्ति का अंश एक अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण चर है। फ्रीडमैन गैर-मानव से मानव संपत्ति के अनुपात को अथवा संपत्ति से आय के अनुपात को ω (ओमेगा) कहलाता है।

3. **मुद्रा और अन्य परिसंपत्तियों पर प्रतिफल की प्रत्याशित दरें (Expected Rates of Return on Money and Other Assets)**–ये प्रतिफल की दरें उपभोक्ता माँग सिद्धांत में एक वस्तु की कीमत की, उसके स्थानापन्नों की, और पूरकों की दूसरा रूप हैं। प्रतिफल की अंकित दर शून्य हो सकती है जैसे सामान्यत: करेंसी पर होती है, अथवा ऋणात्मक जैसे यह अक्सर माँग खातों पर जिन पर शुद्ध सेवा चार्ज देने होते हैं, अथवा धनात्मक जैसे उन माँग खातों पर जिन पर ब्याज देय होती है और सामान्यत: समय खातों पर। अन्य परिसंपत्तियों पर अंकित प्रतिफल की दर में दो भाग शामिल होते हैं: *प्रथम,* कोई वर्तमान में भुगतान की गई प्राप्ति या लागत जैसे कि बांडों पर ब्याज, शेयरों पर लाभांश और भौतिक परिसंपत्तियों को स्टोर करने की लागत; तथा *द्वितीय,* इन परिसंपत्तियों की कीमतों में परिवर्तन जो अवस्फीति अथवा स्फीति की स्थितियों में विशेषतौर से महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं।

4. **अन्य चर (Other Variables)**–आय के अलावा अन्य चर मुद्रा की सेवाओं से संबद्ध उपयोगिता को प्रभावित कर सकते हैं, जो वास्तविक तरलता को निर्धारित करते हैं। तरलता के अतिरिक्त संपत्ति धारकों की रुचियाँ और अधिमान चर होते हैं। एक अन्य चर अंतिम संपत्ति धारकों द्वारा वर्तमान पूँजी वस्तुओं में व्यापार है। ये चर संपत्तियों के अन्य प्रकारों के साथ मुद्रा के माँग फलन को भी निर्धारित करते हैं। ऐसे चरों को फ्रीडमैन μ (म्यू) का नाम देता है।

नोट्स परिमाण सिद्धांत पहले मुद्रा की माँग का एक सिद्धांत है। यह उत्पादन अथवा मुद्रा आय या कीमत स्तर का सिद्धांत नहीं है।

संपत्ति के प्रकार (Forms of Wealth)

फ्रीडमैन के अनुसार, मोटे तौर पर संपत्ति में आय के सभी स्रोत अथवा उपभोग करने योग्य सेवाएँ शामिल होती हैं। यह पूँजीकृत (Capitalised) आय है। आय से फ्रीडमैन का मतलब "स्थायी आय" है जो संपत्ति के जीवनकाल की औसत प्रत्याशित प्राप्ति है। संपत्ति पाँच भिन्न प्रकारों से धारण की जा सकती है–मुद्रा, बांड, इक्विटियाँ, भौतिक वस्तुएँ और मानव पूँजी। प्रत्येक प्रकार की संपत्ति की अपनी अद्वितीय विशेषता है और यह विभिन्न प्रतिफल देती है, जिसका निम्न वर्णन है–

1. **मुद्रा (Money)**–मुद्रा के विस्तृत अर्थ में लिया गया है जिसमें करेंसी, माँग खाते और समय खाते शामिल हैं जिनमें जमाओं पर ब्याज प्राप्त होता है। इस प्रकार मुद्रा एक विलासिता वस्तु है। यह धारक को सुविधा, सुरक्षा, आदि के रूप में वास्तविक प्रतिफल देती है जिसे सामान्य कीमत स्तर (P) में मापा जाता है।

2. **बांड (Bonds)**–बांडों को भुगतानों की समय धारा के दावों के रूप में परिभाषित किया गया है, जो मुद्रारूप (nominal) इकाईयों में स्थिर है।

3. **इक्विटियाँ (Equities)**–इक्विटियों को भुगतानों की समय धारा के दावों के रूप में परिभाषित किया गया है, जो वास्तविक इकाईयों में स्थिर हैं।

4. **भौतिक वस्तुएँ अथवा गैर-मानव वस्तुएँ (Physical Goods or Non-human Goods)**–ये उपभोक्ता और उत्पादक टिकाऊ वस्तुओं की मालसूचियाँ (inventories) हैं।

5. **मानव-पूँजी (Human Capital)**–मानव-पूँजी मानवों की उत्पादकीय क्षमता है।

इस प्रकार संपत्ति की प्रत्येक किस्म की अपनी अद्वितीय विशेषता और भिन्न प्रतिफल या तो स्पष्टतया ब्याज, लाभांश, श्रम, आय आदि के रूप में अथवा अस्पष्टतया कीमत स्तर (P) में मापी गई मुद्रा की सेवाओं और मालसूचियों के रूप में होती है। इन पाँच प्रकार की संपत्ति से इन प्रत्याशित आय प्रवाहों का वर्तमान बट्टागत मूल्य संपत्ति का चालू मूल्य बनता है, जिसे निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

$$W = Y/r$$

जहाँ W कुल संपत्ति का चालू मूल्य है, Y संपत्ति की पाँच किस्मों से प्रत्याशित आय का कुल प्रवाह है, और r ब्याज दर। यह समीकरण दर्शाता है कि संपत्ति पूँजीकृत आय है।

> *क्या आप जानते हैं* कुल संपत्ति बजट अवरोध का समरूप है।

मुद्रा का माँग फलन (Demand Function of Money)

फ्रीडमैन अपने नवीनतम अनुभवसिद्ध अध्ययन Monetary Trends in the United States and the United Kingdom (1982) में एक व्यक्तिगत संपत्ति धारक के मुद्रा के माँग फलन को सरल ढंग से अपने 1956 के मूल अध्ययन से कुछ भिन्न निम्न संकेत-चिह्नों से व्यक्त करता है:

$$M/P = f(Y\, W, R_m, R_b, R_e, g_p, \mu)$$

जहाँ W माँगी गई मुद्रा का कुल स्टॉक; P कीमत स्तर है; Y वास्तविक आय है; W गैर-मानव रूप में संपत्ति का अंश है; R_m मुद्रा पर प्रत्याशित मुद्रा रूप की दर है; R_b बांडों पर प्रत्याशित प्रतिफल की दर है जिसमें उनकी कीमतों में प्रत्याशित परिवर्तन शामिल है; R_e इक्विटियों पर प्रत्याशित मुद्रारूप प्रतिफल की दर है जिसमें उनकी कीमतों में प्रत्याशित परिवर्तन शामिल है; $g_p = (1/P)(dP/dt)$ वस्तुओं की कीमतों में होने वाले परिवर्तन की प्रत्याशित दर है और इसलिए भौतिक परिसंपत्तियों पर प्रत्याशित मुद्रारूप प्रतिफल की दर है; μ(क्यु) आय के अलावा अन्य चरों के लिए है जो मुद्रा की सेवाओं से संबद्ध उपयोगिता को प्रभावित कर सकते हैं जैसे रुचियाँ, अधिमान आदि।

व्यवसाय का माँग फलन लगभग समान ही है। यद्यपि कुल संपत्ति और मानव संपत्ति में विभाजन बहुत लाभदायक नहीं होता है, क्योंकि एक फर्म मार्किट में बेच और खरीद सकती है और अपनी इच्छानुसार अपनी मानव संपत्ति को किराए पर दे सकती है। परंतु अन्य घटक महत्त्वपूर्ण होते हैं। मुद्रा का समस्त माँग फलन व्यक्तिगत माँग फलनों का योग है जिसमें M और Y क्रमश: प्रति व्यक्ति मुद्रा धारणों और प्रतिव्यक्ति आय को व्यक्त करते हैं। और W गैर-मानव रूप में समस्त संपत्ति को व्यक्त करता है।

नोट

मुद्रा का माँग फलन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विभिन्न परिसंपत्तियों की प्रत्याशित प्राप्तियों (प्रतिफलों) में वृद्धि होने से एक संपत्तिधारक की मुद्रा की माँग कम हो जाती है, और संपत्ति में वृद्धि से मुद्रा की माँग बढ़ जाती है। आय जिन नकदी शेषों (M/P) के साथ समायोजित की जाती है, वह आय का प्रत्याशित दीर्घकालीन स्तर है, न कि प्राप्त हो रही चालू आय। अनुभवसिद्ध प्रमाण बताता है कि मुद्रा-माँग की आय लोच इकाई से अधिक होती है, जिसका अर्थ है कि दीर्घकाल में आय वेग (velocity) गिर रही होती है। इसका अभिप्राय है कि मुद्रा का दीर्घकालीन माँग फलन स्थिर है। दूसरे शब्दों में, मुद्रा के दीर्घकालीन माँग फलन की ब्याज लोच नगण्य (negligible) है।

फ्रीडमैन के मुद्रा के परिमाण सिद्धांत के पुनः प्रस्तुतिकरण में मुद्रा की पूर्ति मुद्रा की माँग से स्वतंत्र है। मुद्रा अधिकारियों के कार्यों के कारण मुद्रा की पूर्ति अस्थिर होती है। दूसरी ओर, मुद्रा की माँग स्थिर रहती है। इसका मतलब है कि वह मुद्रा जिसे लोग नकदी अथवा बैंक जमा के रूप में रखना चाहते हैं, स्थिर रूप में उनकी स्थायी आय से संबंधित रहती है। यदि केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियाँ खरीदकर मुद्रा की पूर्ति बढ़ा देगा, तो जो लोग प्रतिभूतियाँ बेचेंगे वे देखेंगे कि उनकी आय के अनुपात में उनके मुद्रा के धारण बढ़ गये हैं। इसलिए, वे अपने मुद्रा के आधिक्य (excess) धारणों को आंशिक रूप से परिसंपत्तियों पर और आंशिक रूप में उपभोक्ता वस्तुओं तथा सेवाओं पर खर्च करेंगे। इस खर्च से उनके मुद्रा शेष घट जाएँगे और साथ ही मुद्रारूप (nominal) आय बढ़ जाएगी। दूसरी ओर, जब केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियाँ बेचकर मुद्रा की पूर्ति घटा देगा, तो प्रतिभूतियाँ खरीदने वालों के मुद्रा के धारण उनकी स्थायी आय के अनुपात में कम हो जाएँगे। इसलिए, वे आंशिक रूप से परिसंपत्तियों को बेचकर और आंशिक रूप से वस्तुओं तथा सेवाओं पर अपना उपभोग व्यय कर करके अपने मुद्रा-धारणों को बढ़ाएँगे। इससे मुद्रारूप आय घटने लगेगी। इस प्रकार दोनों तरह से मुद्रा की माँग स्थिर रहती है। फ्रीडमैन के अनुसार, यदि मुद्रा के स्टॉक में परिवर्तन होता है, तो उससे कीमत स्तर में अथवा आय में अथवा कीमत स्तर एवं आय दोनों में समानुपाती परिवर्तन होता है। मुद्रा की माँग दी होने पर, कुल व्यय और आय पर मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तनों के प्रभावों का पूर्वानुमान करना संभव है। यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार से कम स्तर पर हो तो मुद्रा-पूर्ति में वृद्धि कुल व्यय बढ़ने पर उत्पादन और रोजगार में वृद्धि कर देगी। परंतु यह केवल अल्पकाल में ही संभव है। फ्रीडमैन का मुद्रा परिमाण सिद्धांत चित्र 15.1 के द्वारा समझाया गया है जहाँ आय (Y) अनुलंब अक्ष पर मापी गयी है और मुद्रा की माँग तथा पूर्ति क्षैतिज अक्ष पर। M_D मुद्रा का माँग वक्र है जो आय के साथ परिवर्तित होता है। Ms मुद्रा पूर्ति वक्र है जो आय के परिवर्तनों के साथ पूर्णतया बेलोच है। दोनों वक्र एक-दूसरे को E पर काटते हैं और OY संतुलन आय निर्धारित करते हैं। यदि मुद्रा पूर्ति बढ़ती है तो MS वक्र दाईं ओर शिफ्ट होकर M_1S_1 हो जाता है। परिणामस्वरूप, मुद्रा-पूर्ति मुद्रा की माँग से अधिक हो जाता है जो कुल आय को तब तक बढ़ाती है जब तक M_D और M_1S_1 वक्रों में नया संतुलन E_1 बिंदु पर स्थापित नहीं हो जाता है। इस प्रकार, आय भी बढ़कर OY_1 हो जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)–निष्कर्ष में, फ्रीडमैन परिमाण सिद्धांत को मुद्रा की माँग सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत करता है तथा मुद्रा की माँग को परिसंपत्ति कीमतों या सापेक्ष प्रतिफल और संपत्ति अथवा आय पर निर्भर मानता है। वह दर्शाता है कि मुद्रा की स्थिर माँग कैसे कीमतों और उत्पादन का सिद्धांत बनती है। माँगी गई मुद्रा की मुद्रारूप मात्रा और आपूरित (supplied) मुद्रा की मुद्रारूप मात्रा में अंतर मुख्यतया प्रयत्न किए गए व्यय में प्रकट होगा। जब मुद्रा की माँग अपने निर्धारकों में परिवर्तनों की प्रतिक्रिया में परिवर्तित होती है, तो इसके परिणामस्वरूप कीमतों अथवा मुद्रारूप आय में पर्याप्त परिवर्तन लगभग सदैव मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तनों के कारण होते हैं।

आलोचना (Criticism)

मुद्रा के परिमाण सिद्धांत का फ्रीडमैन के पुनः प्रतिपादन ने बहुत वाद-विवाद उत्पन्न किया है और केन्ज़वादियों तथा मुद्रावादियों की ओर से अनुभवसिद्ध जाँच हुई है। फ्रीडमैन के सिद्धांत के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की चर्चा निम्न है–

1. **मुद्रा की परिभाषा बहुत व्यापक (Very Broad Definition of Money)**–फ्रीडमैन पर लगाया गया एक

नोट

आरोप यह है कि उसने मुद्रा की ऐसी व्यापक परिभाषा का प्रयोग किया है जिसमें न केवल करेन्सी तथा माँग जमा (M_1) अपितु कमर्शियल बैंकों के समय जमा (M_2) भी शामिल हैं। इस व्यापक परिभाषा से स्पष्ट निष्कर्ष यह निकला कि मुद्रा की माँग की ब्याज लोच नगण्य होती है। यदि समय जमा पर ब्याज की दर बढ़ती है तो उनकी (M_2) की माँग बढ़ जाती है। परंतु करेंसी तथा माँग जमाओं (M_1) की माँग गिर जाती है। इसलिए मुद्रा की माँग पर कुल मिलाकर जो प्रभाव पड़ेगा, वह नहीं के बराबर होगा। परंतु फ्रीडमैन के विश्लेषण की कमजोरी यह है कि वह दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन ब्याज-दरों में अंतर नहीं करता। वास्तव में यदि माँग जमाओं (M_1) को काम में लाया जाए तो अल्पकालीन दर को प्राथमिकता देनी चाहिए, जबकि समय जमाओं (M_2) के लिए दीर्घकालीन दर बेहतर है। यह जरूरी है कि इस तरह का ब्याज-दर का ढाँचा मुद्रा की माँग को प्रभावित करेगा।

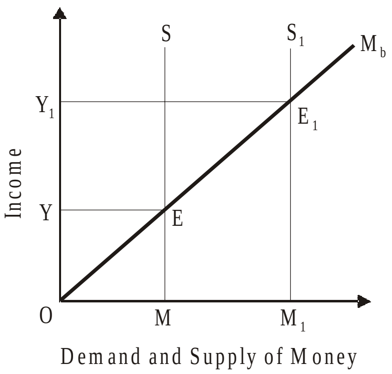

चित्र 15.1

2. **मुद्रा विलास की वस्तु नहीं (Money not a Luxury Good)**–क्योंकि फ्रीडमैन ने मुद्रा में समय जमाएँ शामिल कर ली हैं, इसलिए वह मुद्रा को एक विलास की वस्तु मानता है। इस आधार पर उसका यह निष्कर्ष है कि अमेरिका में आय की अपेक्षा मुद्रा की पूर्ति की प्रवृत्ति दर अधिक ऊँची होती है। परंतु इंग्लैंड के बारे में इस प्रकार का कोई 'विलास प्रभाव' (luxury effect) उपलब्ध नहीं हुआ।

3. **संपत्ति चरों को अधिक महत्त्व (Much Importance to Wealth Variables)**–फ्रीडमैन के मुद्रा की माँग के फलन में, आय की अपेक्षा संपत्ति चरों को अधिक अधिमान के योग्य मानना और संपत्ति तथा आय के चरों का एक साथ परिचालित होना, तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। जैसा कि जोहन्सन ने लक्ष्य किया है, संपत्ति पर जो प्रतिफल मिलता है, वही आय है और आय का वर्तमान मूल्य ही संपत्ति है। मुद्रा के माँग फलन में ब्याज की दर तथा इन चरों में से एक का विद्यमान रहना दूसरे को निरर्थक बनाना प्रतीत होगा।

4. **मुद्रा-पूर्ति बहिर्जात नहीं (Money Supply not Exogenous)**–फ्रीडमैन ने मुद्रा को अस्थिर माना है। फ्रीडमैन की व्यवस्था में मुद्रा को मुद्रा प्राधिकारी बहिर्जात ढंग से परिवर्तित करते हैं। परंतु अमेरिका में मुद्रा पूर्ति उन बैंक जमाओं से बनती है जिन्हें बैंक-उधारदान में परिवर्तनों द्वारा निर्मित किया जाता है। बैंक उधार दान आगे उन आरक्षित निधियों पर आधारित होता है जो तब बढ़ती या घटती हैं जब (क) वित्तीय बिचौलिए करेन्सी जमा करते हैं और निकालते हैं; (ख) संघीय रिजर्व व्यवस्था से कमर्शियल बैंक उधार लेते हैं; (ग) विदेशों से मुद्रा का अंतर्वाह और विदेशों को मुद्रा का प्रवाह होता है; और (घ) संघीय रिजर्व व्यवस्था प्रतिभूतियों का क्रय और विक्रय करता है। पहली तीन मदें मुद्रा की पूर्ति को निश्चित रूप से अंतर्जात तत्त्व प्रदान करती हैं। इस प्रकार, मुद्रा की पूर्ति पूर्ण रूप से बहिर्जात नहीं है, जबकि फ्रीडमैन की मान्यता उसे बहिर्जात मानती है। मुद्रा की पूर्ति अधिकांशत: अंतर्जात होती है।

5. **मुद्रा पूर्ति पर अन्य चरों के प्रभाव की उपेक्षा (Ignores the Effect of Other Variables on Money Supply)**–फ्रीडमैन मुद्रा पूर्ति पर अन्य चरों जैसे कीमतों, उत्पादन अथवा ब्याज दर के प्रभाव की उपेक्षा करता है। परंतु पर्याप्त अनुभवसिद्ध प्रमाण है कि मुद्रा पूर्ति ऊपर वर्णित चरों के फलन के रूप में व्यक्त नहीं की जा सकती।

6. **समय घटक पर विचार नहीं (Does not Consider Time Factor)**–फ्रीडमैन समायोजन की गति और समय निर्धारण के बारे में अथवा समय की अवधि जिसमें यह सिद्धांत लागू नहीं होता के बारे में कुछ नहीं बताता है।

7. **मुद्रा पूर्ति और मुद्रा GNP में धनात्मक संबंध नहीं (No Positive Relation between Money Supply and Money GNP)**–फ्रीडमैन के निष्कर्षों में पाया गया है कि मुद्रा पूर्ति और मुद्रा GNP धनात्मक रूप से

सहसंबंधित रहते हैं। परंतु काल्डर (Kaldor) का मत है कि ब्रिटेन में सर्वोत्कृष्ट सहसंबंध पब्लिक द्वारा नोटों और सिक्कों में धारित नकद राशि में होने वाले तिमाही परिवर्तनों तथा बाजार कीमतों पर वैयक्तिक उपभोग के अनुरूप परिवर्तनों के बीच होता है, न कि मुद्रा पूर्ति और मुद्रा GNP के बीच।

निष्कर्ष (Conclusion)–परंतु इन आलोचनाओं के बावजूद "फ्रीडमैन द्वारा पूँजी सिद्धांत के आधारभूत नियम को मुद्रा सिद्धांत पर लागू किया जाना अर्थात पूँजी पर प्रतिफल और आय का वर्तमान मूल्य पूँजी संभवतः मुद्रा सिद्धांत में केन्ज़ के सामान्य सिद्धांत के बाद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विकास है। इसका सैद्धांतिक महत्त्व इस बात में निहित है कि यह व्यवहार पर प्रभावों के रूप में संपत्ति तथा आय का धारणात्मक एकीकरण करता है।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. फ्रीडमैन के अनुसार मुद्रा एक परिसंपत्ति अथवा .... है।
2. मुद्रा की माँग पूँजी अथवा .... का अंग है।

15.2 फ्रीडमैन के मुद्रा सिद्धांत का अनुभवसिद्ध प्रमाण (Empirical Evidence of Friedman's Theory)

फ्रीडमैन के मुद्रा सिद्धांत से संबद्ध अनेक अनुभवसिद्ध अध्ययन शिकागो और अन्य विश्वविद्यालयों में हुए हैं, जिनमें से कुछेक पर निम्न प्रकाश डाला गया है–

मुद्रा का आधुनिक सिद्धांत मुद्रा की माँग पर बल देता है। मुद्रा की माँग परिसंपत्ति है जो अनेक चरों पर निर्भर करती है और यह सामान्यतः स्थिर होती है। स्वयं फ्रीडमैन तथा शिकागो के अन्य अर्थशास्त्रियों विशेषकर सैलडन ने इस संबंध में अनुभवसिद्ध अध्ययन किए हैं। इनके अनुसार मुद्रा की माँग जिन चरों पर निर्भर करती है उनके प्रभावों के प्रमाण इस प्रकार हैं–

1. आय के संबंध में फ्रीडमैन ने पाया कि प्रतिव्यक्ति मुद्रा-स्टॉक तथा प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय के दीर्घकालीन परिवर्तनों में उच्चकोटि का सहसंबंध है। परंतु प्रतिव्यक्ति आय में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा की माँग की लोच एक से अधिक है। अमेरिका के बारे में फ्रीडमैन ने पाया कि यह लोच 1.8 है जिससे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वास्तविक शेषों की माँग का यह व्यवहार विलासिता वस्तुओं की माँग के व्यवहार की तरह ही रहा है।

2. आय के चक्रीय व्यवहार के बारे में फ्रीडमैन का अध्ययन बताता है कि अर्थव्यवस्था के विस्तार में मुद्रा का वास्तविक स्टॉक तथा वास्तविक आय दोनों बढ़ते हैं, और संकुचन में कम होते हैं, परंतु वास्तविक आय की अपेक्षा मुद्रा के वास्तविक स्टॉक में परिवर्तन की कोटि कम होती है। इसका अभिप्राय यह है कि मुद्रा का आय वेग (income velocity of money) का आय के मुद्रा स्टॉक के साथ अनुपात, विस्तार की स्टेज में बढ़ता है और संकुचन की स्टेज में कम होता है।

3. मुद्रा धारण करने की लागत, अर्थात् ब्याज दर के संबंध में फ्रीडमैन अनुभवसिद्ध प्रमाणों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ब्याज दरें मुद्रा की माँग पर सुनिश्चित प्रभाव डालती हैं परंतु यह प्रभाव आकार में बड़ा नहीं है। दूसरे, इस पर कोई सहमती नहीं कि क्या अल्पकालीन या दीर्घकालीन ब्याज दरें मुद्रा की माँग के साथ घनिष्ठता से संबंधित हैं। परंतु यह प्रमाण स्पष्ट है कि निरपेक्ष मूल्य के रूप में दीर्घकाल की अपेक्षा अल्पकाल में लोच कम है। *तीसरे,* लगभग सभी अनुमान, चाहे वे दीर्घकालीन या अल्पकालीन दरों से संबद्ध हों, निरपेक्ष मूल्य में इकाई से कम लोच दिखाते हैं। अंतिम, ब्याज दरों में परिवर्तनों की अपेक्षा वास्तविक आय में परिवर्तन, मुद्रा की माँग में परिवर्तनों के अधिक महत्त्वपूर्ण कारण पाए गए हैं।

नोट

> टास्क फ्रीडमैन का सिद्धांत के विषय में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. संपत्ति का मुख्य स्रोत मानवों की क्षमता है—

   (अ) उत्पादकीय (ब) संपादकीय
   (स) आर्थिक (द) इनमें से कोई नहीं।

4. आय संपत्ति के सूचक का ··············· कर सकती है।

   (अ) विरोध (ब) कार्य
   (स) प्लान (द) इनमें से कोई नहीं।

5. प्रतिफल की अंकित दर हो सकती है—

   (अ) शून्य (ब) कम
   (स) अधिक (द) इनमें से कोई नहीं।

6. तरलता के अतिरिक्त संपत्ति धारकों की रुचियाँ और अधिमान होते हैं—

   (अ) अचर (ब) चर
   (स) सचर (द) इनमें से कोई नहीं।

15.3 फ्रीडमैन बनाम केन्ज़ (Friedman Vs Keynes)

फ्रीडमैन का मुद्रा माँग फलन अनेक प्रकार से केन्ज़ से भिन्न है जिनकी नीचे चर्चा की जा रही है—

1. केन्ज़ की तुलना में फ्रीडमैन अपने मुद्रा के माँग फलन की व्याख्या करने के लिए मुद्रा की एक विस्तृत परिभाषा का प्रयोग करता है। वह मुद्रा को एक परिसंपत्ति या पूँजीगत वस्तु मानता है जो क्रयशक्ति के एक अस्थायी निवास का कार्य करने की क्षमता रखती है। यह आय के प्रवाह अथवा उपभोग करने योग्य सेवाएँ प्रदान करने के लिए धारण की जाती है। दूसरी ओर, केन्ज़ की मुद्रा की परिभाषा में माँग जमा और सरकारी ब्याज-रहित ऋण शामिल हैं।

2. फ्रीडमैन एक ऐसा मुद्रा का माँग फलन निर्मित करता है जो केन्ज़ से सर्वथा भिन्न है। उसके अनुसार, संपत्ति धारकों की ओर मुद्रा की माँग अनेक चरों का फलन है। ये हैं–R_m –मुद्रा पर प्राप्ति; R_b –बांडों पर प्राप्ति; R_e–प्रतिभूतियों पर प्राप्ति (yield);g_p –भौतिक परिसंपत्तियों पर प्राप्ति; और μ (म्यु) अन्य चरों को व्यक्त करता हुआ। केन्ज़ीय सिद्धांत में, परिसंपत्ति के रूप में मुद्रा की माँग बांडों तक ही सीमित है, जहाँ ब्याज दरें मुद्रा धारण करने की संबद्ध लागत है।

3. केन्ज़ और फ्रीडमैन के मुद्रा यंत्रवाद में भी अंतर है कि मुद्रा में परिवर्तन आर्थिक क्रिया को किस प्रकार प्रभावित करते हैं? केन्ज़ के अनुसार, मौद्रिक परिवर्तन बांड कीमतों और ब्याज दरों द्वारा परोक्ष रूप में आर्थिक क्रिया को प्रभावित करते हैं। मौद्रिक अधिकारी बांड खरीदकर मुद्रा पूर्ति बढ़ाते हैं जो उनकी कीमतों में वृद्धि करती है और उन पर प्राप्ति कम करती है। दूसरी ओर, फ्रीडमैन के सिद्धांत में मौद्रिक परिवर्तन सभी प्रकार

नोट

की वस्तुओं की कीमतों और उत्पादन को प्रत्यक्ष और सीधे प्रभावित करते हैं। क्योंकि लोग अपने पास रखी हुई किसी भी परिसंपत्ति को खरीदेगें और बेचेंगे। फ्रीडमैन इस बात पर बल देता है कि मार्किट ब्याज की दरें उन दरों के कुल स्पेक्ट्रम का एक छोटा सा भाग ही हैं जिनसे ये संबद्ध हैं।

4. दोनों दृष्टिकोणों में मुद्रा शेषों के धारण करने के उद्देश्यों के बारे में भी अंतर है। केन्ज़ मुद्रा शेषों को 'सक्रिय' और 'निष्क्रिय' श्रेणियों में विभाजित करता है। पहले में लेन-देन और सतर्कता उद्देश्य शामिल हैं और दूसरे में, मुद्रा धारण का सट्टा उद्देश्य। दूसरी ओर, फ्रीडमैन मुद्रा शेषों में ऐसा कोई विभाजन नहीं करता है। उसके अनुसार मुद्रा अनेक प्रकार के विभिन्न उद्देश्यों के लिए धारण की जाती है जो मुद्रा भौतिक परिसंपत्तियाँ, कुल संपत्ति मानव संपत्ति और सामान्य अधिमान, रुचियाँ और प्रत्याशाओं जैसी परिसंपत्तियों के कुल परिमाण निर्धारित करती है।

5. फ्रीडमैन अपने विश्लेषण में स्थायी आय और मुद्रारूप (nominal) आय द्वारा अपने सिद्धांत की व्याख्या करता है। स्थायी आय वह है जिसकी मात्रा का एक संपत्ति धारक उपभोग कर सकता है। कुछ देर के लिए अपनी संपत्ति को संपूर्ण रखते हुए। मुद्रारूप आय को करेंसी की चालू इकाइयों में मापा जाता है। यह व्यापारिक वस्तुओं की मात्रा और कीमत दोनों पर निर्भर करती है। दूसरी ओर केन्ज़ ऐसा कोई विभेद नहीं करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. मुद्रा के दीर्घकालीन माँग फलन की ब्याज लोग नगण्य है।
8. व्यवसाय का माँग फलन लगभग समान ही है।
9. फ्रीडमैन ने मुद्रा को स्थिर माना है।
10. मुद्रा की पूर्ति अधिकांशतः बहिर्जात होती है।

15.4 सारांश (Summary)

- फ्रीडमैन परिमाण सिद्धांत को मुद्रा की माँग सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत करता है तथा मुद्रा की माँग को परिसंपत्ति कीमतों या सापेक्ष प्रतिफल और संपत्ति अथवा आय पर निर्भर मानता है। वह दर्शाता है कि मुद्रा की स्थिर माँग कैसे कीमतों और उत्पादन का सिद्धांत बनती है। माँगी गई मुद्रा की मुद्रारूप मात्रा और आपूरित (supplied) मुद्रा की मुद्रारूप मात्रा में अंतर मुख्यतया प्रयत्न किए गए व्यय में प्रकट होगा। जब मुद्रा की माँग अपने निर्धारकों में परिवर्तनों की प्रतिक्रिया में परिवर्तित होती है, तो इसके परिणामस्वरूप कीमतों अथवा मुद्रारूप आय में पर्याप्त परिवर्तन लगभग सदैव मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तनों के कारण होते हैं।

15.5 शब्दकोश (Keywords)

- अवरोध (Constraint) – नियामक।
- पूँजीकृत (Capitalised) – पूँजी सहित।

15.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. फ्रीडमैन के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

नोट

2. फ्रीडमैन के मुद्रा सिद्धांत का अनुभवसिद्ध प्रमाण का विवेचन कीजिए।
3. 'फ्रीडमैन बनाम केन्ज़' पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. पूँजी	2. संपत्ति सिद्धांत	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. गलत।		

15.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–16: मुद्रा पूर्ति : मुद्रा की परिभाषा और समष्टि अर्थशास्त्र में इसका महत्त्व (Money Supply : Definition of Money and its Importance)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 मुद्रा पूर्ति : अर्थ एवं परिभाषा (Money Supply : Meaning and Definition)

16.2 मुद्रा पूर्ति के दो मुख्य संघटक-करेंसी तथा माँग जमा (Two Principal Components of Money Supply–Currency and Demand Deposits)

16.3 मौद्रिक समुच्चय एवं भारत में मुद्रा पूर्ति का माप (Monetary Aggregates and Money Supply Measures in India)

16.4 मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक : एक सैद्धांतिक निर्धारण (Factors influencing Supply of Money : A Theoretical Prescription)

16.5 सारांश (Summary)

16.6 शब्दकोश (Keywords)

16.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

16.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मुद्रा पूर्ति जानने हेतु।
- मुद्रा गुणक का अध्ययन करने हेतु।
- बीजगणितीय अभिव्यक्ति जानने हेतु।
- साख सृजन की सीमाएँ जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में मुद्रा का अर्थ, कार्य एवं विशेषताओं को जानने के बाद आपको कई प्रश्नों का उत्तर जानने की उत्सुकता हो सकती है। जैसे आप यह जानने के लिए उत्सुक होंगे की अर्थव्यवस्था में मुद्रा कैसे चलन में आती है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति की मात्रा कैसे निर्धारित होती है? क्या अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति की मात्रा के संबंध में लोग अथवा वाणिज्यिक बैंकों की कोई भूमिका है? मौद्रिक समुच्चयों के क्या-क्या संघटक होने चाहिए? आदि।

नोट

इस अध्याय में इन सभी प्रश्नों का उपयुक्त उत्तर देने का हम प्रयास करेंगे। इस अध्याय में वाणिज्यिक बैंकों का मुद्रा पूर्ति में योगदान (जो वाणिज्यिक बैंकों के साख सृजन के नाम से जाना जाता है) की भी चर्चा की गई है। इसके अलावा भारत में मुद्रा पूर्ति की वर्तमान स्थिति की संक्षेप में चर्चा की गई है।

16.1 मुद्रा पूर्ति : अर्थ एवं परिभाषा (Money Supply : Meaning and Definition)

मुद्रा पूर्ति का अभिप्राय अर्थव्यवस्था में उपलब्ध मुद्रा की मात्रा से है। यह एक स्टॉक अवधारणा है जिसका एक समय में माप किया जाता है। एक निर्दिष्ट समय में अर्थव्यवस्था में प्रचलित करेंसी की कुल मात्रा एवं माँग जमा की मात्रा के कुल जोड़ को मुद्रा पूर्ति कह जाता है। करेंसी अर्थव्यवस्था में प्रचलित सिक्के एवं कागज मुद्रा का कुल जोड़ है। माँग जमा अथवा चेक जमा उस बैंक जमा को कहते हैं जिसे जमाकर्ता मांगने पर बैंक से प्राप्त कर सकता है या जिसे चेक द्वारा बैंक से ले सकता है। लेकिन अर्थशास्त्री मुद्रा की साधारण परिभाषा पर एक मत नहीं हैं। मुद्रा पूर्ति के बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं। कई अर्थशास्त्री करेंसी एवं माँग जमा का मुद्रा पूर्ति के केवल दो संघटक के रूप में मानते हैं जबकि दूसरे अर्थशास्त्री समय जमा को मुद्रा पूर्ति के तृतीय संघटक के रूप में मानते हैं। वास्तव में यदि केवल चलन में करेंसी एवं माँग जमा को ही मुद्रा पूर्ति में शामिल किया जाएगा तो हम मुद्रा को केवल विनिमय के माध्यम तक सीमित कर देंगे। मूल्य संचय का आधार भी मुद्रा का महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस कार्य का विवेचन करने से मुद्रा पूर्ति में करेंसी, माँग जमा, समय जमा एवं वित्तीय उपकरण को शामिल करना चाहिए जो मूल्य संचय के आधार के रूप में काम करते हैं।

- **मिल्टन फ्रीडमैन** के अनुसार, **"चलन में करेंसी एवं माँग जमा के अलावा मुद्रा पूर्ति में बचत एवं समय जमा शामिल होनी चाहिए।"** (*Money Supply should also include saving and term deposits besides currency in circulation and demand deposits.*–**Milton Friedman**)
- **एडवर्ड शापीरो** के शब्दों में **"मुद्रा पूर्ति उन सभी वस्तु सेवाओं की डॉलर मात्रा है जो साधारणतः लोगों के द्वारा वस्तुओं, सेवाओं के विनिमय के लिए प्रदान एवं अन्य मूल्यवान परिसंपत्ति एवं ऋण अदायगी के लिए ग्रहण की जाती है।"** (*Supply of money is the dollar amount of all those things which are generally acceptable by the public in payment of goods, services and other valuable assets and for discharge of debts*.–**Edward Shapiro**)
- **जे.जी. गुरले** एंव **ई.एस. शॉ** के अनुसार, **"मुद्रा में उन सभी वस्तुओं को शामिल किया जाना चाहिए जो उसके निकटतम प्रतिस्थापन हैं।"** (*Money should include all those things which are its close substitutes.*–**J.G. Gurley and E.S. Shaw**)

☞ **निश्चितकालीन जमाओं को मुद्रा की पूर्ति में क्यों सम्मिलित किया जाता है?**

(Why include term Deposits in the Supply of Money?)

ये जमाएँ निश्चित समयावधि के लिए होती हैं। इन पर ब्याज की दर समयानुसार निश्चित होती है। चेक द्वारा इन्हें नकदी में बदला नहीं जा सकता, जिस कारण ये जमाएँ माँग जमाओं से भिन्न होती हैं। अतः इन्हें नकदी (Cash-in-hand) नहीं कहा जाता। प्रश्न उठता है कि यदि ये जमाएँ करेंसी की तरह तरल नहीं हैं तो इन्हें मुद्रा की पूर्ति में सम्मिलित क्यों किया जाता है? निःसंदेह बैंक द्वारा जारी निश्चितकालीन जमा की रसीद को वर्तमान या भविष्य के भुगतान हेतु विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग में नहीं लाया जाता; तथापि **मिल्टन फ्रीडमैन** जैसे अर्थशास्त्री इन रसीदों को मुद्रा की पूर्ति में शामिल करने के पक्ष में हैं। उनकी दलील यह है कि समयावधि (निश्चितकालीन) जमा को ऊँची बट्टे की दर पर माँग जमा में बदला जा सकता है। समयावधि जमा को माँग जमा में बदलने में उतना ही समय लगता है जितना ऊँचे बट्टे की दर का भुगतान बैंक को करने में। अतः निश्चितकालीन जमाओं को भी माँग जमाओं की तरह मुद्रा की पूर्ति का एक भाग समझा जाना चाहिए।

नोट्स समयावधि जमा को माँग जमा में बदलने में उतना ही समय लगता है जितना ऊँचे बट्टे की दर का भुगतान बैंक को करने में।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. करेंसी अर्थव्यवस्था में प्रचलित सिक्के एवं .... का कुल जोड़ है।
2. मूल्य संचय का आधार भी .... का महत्त्वपूर्ण कार्य है।

16.2 मुद्रा पूर्ति के दो मुख्य संघटक-करेंसी तथा माँग जमा (Two Principal Components of Money Supply–Currency and Demand Deposits)

मुद्रा पूर्ति के दो मुख्य घटक (1) करेंसी तथा (2) बैंक जमाएँ हैं। इनकी विस्तृत व्याख्या निम्नलिखित है–

(1) करेंसी (Currency)

करेंसी से अभिप्राय चलन में सिक्के तथा नोट हैं।

***(i)* सिक्के (Coins)**–आजकल प्रत्येक देश में सरकार द्वारा सिक्के जारी किए जाते हैं, यद्यपि पुराने समय में निजी संस्थाएँ भी सिक्के जारी किया करती थीं। निजी संस्थाओं द्वारा जारी किए जाने वाले सिक्कों के वजन तथा धातु की शुद्धता के संबंध में सरकार प्रतिबंध लगाया करती थी जिससे कि धोखे से बचा जा सके। स्वर्ण या चाँदी मान के अंतर्गत दो प्रकार के सिक्के हुआ करते थे–पूर्णकाय प्रामाणिक सिक्के (Full-bodied Standard Coins) तथा सांकेतिक सिक्के (Token Coins)। किंतु आजकल प्रचलित प्राबंधित करेंसी प्रणाली (Managed Currency System) के अंतर्गत, पूर्णकाय प्रामाणिक सिक्कों की कोई उपयोगिता नहीं है। अतः अब यह चलन में नहीं हैं। भारतीय रुपया न तो एक पूर्णकाय प्रामाणिक सिक्का है और न ही एक सांकेतिक सिक्का है। 50 पैसे, 25 पैसे, 10 पैसे, 5 पैसे, 2 पैसे तथा 1 पैसे वाले सिक्के सांकेतिक सिक्के हैं। सांकेतिक सिक्के मुद्रा की पूर्ति के महत्त्वपूर्ण घटक नहीं हैं। यद्यपि निर्धनता के कारण भारत में बड़ी मात्रा में छोटे सिक्के चलन में हैं तथापि ये कुल मुद्रा पूर्ति का केवल 3.5 प्रतिशत भाग हैं। अमेरिका जैसे विकसित देशों में, सांकेतिक सिक्के कुल मुद्रा पूर्ति के 2 प्रतिशत से भी कम हैं।

***(ii)* करेंसी नोट (Currency Notes)**–मुद्रा पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंग करेंसी नोट होते हैं। आजकल करेंसी नोट या तो देश का केंद्रीय बैंक या सरकार या दोनों जारी करते हैं। भारत में एक रुपये का नोट भारत सरकार द्वारा तथा शेष अन्य नोट रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा जारी किए जाते हैं। इस प्रकार भारत में करेंसी नोटों का बहुत बड़ा भाग देश के केंद्रीय बैंक (रिजर्व बैंक) द्वारा जारी किया जाता है। नोट जारी करने (निर्गमन) की कई विधियाँ हो सकती हैं; जैसे, **प्रतिनिधित्व, आनुपातिक, न्यूनतम निधि, परिवर्तनशील, अपरिवर्तनशील,** इत्यादि। धात्विक मान के युग में, पत्र मुद्रा प्रतिनिधित्व हुआ करती थी। दूसरे शब्दों में, इन नोटों के पीछे शत-प्रतिशत धात्विक कोष रखा जाता था। यदि केंद्रीय बैंक एक करोड़ रुपये के नोट जारी करता था तो उसे एक करोड़ रुपये मूल्य का सोना या चाँदी कोष में रखना पड़ता था। प्रतिनिधित्व पत्र मुद्रा को जारी करने के दो मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे–(*i*) सिक्के ढालने के खर्च की बचत। (*ii*) धातु के घिसने से होने वाली हानि से बचाव। किंतु नोट जारी करने की यह प्रणाली लोचहीन थी क्योंकि पत्र मुद्रा की पूर्ति धातु के स्टॉक पर निर्भर हुआ करती थी। धातु के स्टॉक से यह अधिक नहीं

नोट

हो सकती थी। प्रतिनिधित्व पत्र मुद्रा के दोषों को दूर करने हेतु **आनुपातिक विधि** को अपनाया गया। सन् 1956 तक रिजर्व बैंक, आनुपातिक कोष प्रणाली (Proportional Reserve System) के आधार पर नोट जारी करता था। इस प्रणाली के अनुसार कुल नोटों के मूल्य का 40% भाग सोने, चाँदी, विदेशी प्रतिभूतियों तथा विदेशी मुद्राओं में रखा जाता था। सन् 1956 के पश्चात् न्यूनतम निधि प्रणाली (Minimum Reserve System) अपनाई गई। इस विधि के अनुसार, रिज़र्व बैंक को 200 करोड़ रुपए की न्यूनतम निधि रखना कानूनी तौर पर अनिवार्य कर दिया गया है, जिसमें 115 करोड़ रुपए का सोना चाहिए। इस प्रकार 200 करोड़ रु. की न्यूनतम निधि के आधार पर रिजर्व बैंक किसी भी सीमा तक नोट जारी कर सकता है। यह प्रणाली बहुत लोचशील है किंतु इसमें सदा अत्यधिक नोटों के प्रसार का डर बना रहता है। करेंसी नोट परिवर्तनशील अथवा अपरिवर्तनशील हो सकते हैं। परिवर्तनशील पत्र मुद्रा के अंतर्गत मौद्रिक अधिकारी को स्थिर दर पर नोटों का धातु में परिवर्तन करना होता है। अपरिवर्तनशील पत्र मुद्रा के अंतर्गत, केंद्रीय बैंक (मौद्रिक अधिकारी) कागजी नोटों को सांकेतिक सिक्कों या अन्य नोटों में बदलने की गारण्टी देता है, लेकिन सोने या चाँदी में बदलने की नहीं। **वर्तमान समय में, संसार के सभी देशों में नोट जारी करने की अपरिवर्तनशील विधि ही प्रचलित है।** नोट वास्तव में प्रतिज्ञा-पत्र (Promissory Notes) होते हैं। मौद्रिक अधिकारी इनके बदले में सिक्के या अन्य नोट देने की प्रतिज्ञा करता है। इस विधि के फलस्वरूप मौद्रिक नीति तथा मौद्रिक प्रबंध का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। अब नोटों को जारी करना सोने या चाँदी के स्टॉक पर निर्भर नहीं करता। नोटों की पूर्ति या निर्धारण मौद्रिक अधिकारी द्वारा अर्थव्यवस्था की जरूरत को ध्यान में रख कर किया जाता है।

(2) माँग जमाएँ (Demand Deposits)

सभी देशों में लोग अपने धन को बैंकों में जमा कराते हैं। बैंक जमाएँ दो प्रकार की होती हैं– (*i*) निश्चितकालीन जमाएँ तथा (*ii*) माँग या चालू जमाएँ। निश्चितकालीन जमाएँ एक निश्चित अवधि के लिए होती हैं। इन जमाओं को चेक द्वारा निकलवाया नहीं जा सकता। किंतु माँग जमाओं की राशि को जमाकर्ता द्वारा कभी भी निकलवाया जा सकता है। अत: माँग जमा के रूप में राशि उतनी ही तरल होती है जितनी मुद्रा। पश्चिमी देशों में 90% भुगतान बैंकों द्वारा किए जाते हैं। भारत में भी माँग अथवा चालू जमा का महत्त्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

चालू या माँग जमा खाते से चेक द्वारा भुगतान करना बहुत सुरक्षित तथा सुविधाजनक है। चेक द्वारा भुगतान इस कारण सुविधाजनक है क्योंकि चेकों द्वारा जमा राशि की कितनी भी रकम निकलवायी जा सकती है। ऊँचे मूल्य वाले नोटों का प्रयोग असुरक्षित हो सकता है। चेक द्वारा भुगतान का बैंकों के पास सबूत होता है क्योंकि इन्हें बैंक के खातों में दर्ज किया जाता है। यदि भुगतान संबंधी कोई विवाद उत्पन्न हो जाए तो जाँच द्वारा इसका निपटारा हो जाता है।

केन्ज़ ने अपनी पुस्तक “A Treatise on Money” (1930) में मुद्रा की पूर्ति में माँग जमाओं को भी सम्मिलित किया है। उस समय, पार्कर विल्स (Parker Wills) जैसे अर्थशास्त्रियों ने इस पर आपत्ति उठायी थी। किंतु वर्तमान समय में लगभग सभी देशों में माँग जमाओं को मुद्रा की पूर्ति में सम्मिलित किया जाने लगा है क्योंकि वस्तुओं तथा सेवाओं को माँग जमाओं द्वारा भी खरीदा जा सकता है। किंतु यह बात उल्लेखनीय है कि चेक द्वारा भुगतान को स्वीकार करना कानूनी तौर पर अनिवार्य नहीं है। कोई भी व्यक्ति चेक लेने से इंकार कर सकता है। किंतु मुद्रा के रूप में भुगतान करना एक कानूनी अनिवार्यता है।

बैंक उनके पास जमा करायी गई मुद्रा के आधार पर उधार देते हैं। अपने अनुभव से बैंकों को इस बात का ज्ञान होता है कि सभी जमाकर्ता एक ही समय अपनी कुल जमाएँ नहीं निकलवाते। अत: यदि वे कुल जमाओं का एक निश्चित अनुपात अपने पास नकद रख लें और शेष राशि ऋण के रूप में दे दें तो वो जमाकर्ताओं की जरूरतों को पूरा कर सकते हैं। यही कारण है कि बैंक इस स्थिति में होते हैं कि जितनी कुल जमा राशियाँ उनके पास होती हैं उनसे कई गुणा अधिक वे लोगों को उधार दे सकते हैं। बैंकों की इस क्रिया को साख निर्माण (Credit Creation) कहते हैं। बैंकों द्वारा निर्मित साख को भी मुद्रा की पूर्ति में सम्मिलित किया जाता है। क्योंकि यह माँग जमा का एक भाग होती हैं।

नोट

क्या आप जानते हैं चलन में करेंसी एवं माँग जमा के अलावा मुद्रा पूर्ति में बचत एवं समय जमा शामिल होनी चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. मुद्रा में उन सभी वस्तुओं को शामिल किया जाना चाहिए जो उसके निकटतम .... हैं।

   (अ) प्रतिस्थापन (ब) स्थापन

   (स) नहीं हैं (द) इनमें से कोई नहीं।

4. मुद्रा पूर्ति के दो घटक हैं–

   (अ) करेंसी एवं बैंकजमाएँ (ब) धन एवं संपत्ति

   (स) घर एवं दुकान (द) इनमें से कोई नहीं।

5. करेंसी से अभिप्राय चलन में .... तथा नोट हैं।

   (अ) धन (ब) सिक्के

   (स) रुपए (द) इनमें से कोई नहीं।

6. मुद्रा पूर्ति का एक महत्त्वपूर्ण होते हैं–

   (अ) बैंक (ब) करेंसी नोट

   (स) नागरिक (द) इनमें से कोई नहीं।

16.3 मौद्रिक समुच्चय एवं भारत में मुद्रा पूर्ति का माप (Monetary Aggregates and Money Supply Measures in India)

जहाँ तक भारत में मुद्रा पूर्ति माप के इतिहास का प्रश्न है 1967-1968 तक RBI द्वारा मुद्रा का एक मात्र पूर्ति माप M प्रयोग हो रहा था। M लोगों की माँग जमा एवं करेंसी को शामिल करता था। पारंपरिक रूप से M को संकीर्ण मुद्रा पूर्ति का माप कहा जाता था। 1967-68 से 1977 तक एक विस्तृत मुद्रा पूर्ति माप प्रयोग किया गया उसको समुच्चय मौद्रिक संसाधन (Aggregate Monetary Resources-AMR) कहा जाता था। AMR में करेंसी, माँग जमा एवं समय जमा को शामिल किया जाता था। 1977 में भारतीय रिजर्व बैंक ने मुद्रा पूर्ति के चार नये माप प्रतिपादित किए हैं, ये हैं M_1, M_2, M_3 एवं M_4 है। इनका विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है–

$\mathbf{M_1}$ = जनता के पास करेंसी + बैंक की माँग जमा + रिजर्व बैंक के पास अन्य जमा

$\mathbf{M_2}$ = जनता के पास करेंसी + बैंक की माँग जमा + रिजर्व बैंक के पास अन्य जमा + डाकखानों की बचत योजनाओं में जमा

$\mathbf{M_3}$ = जनता के पास करेंसी + बैंक की माँग जमा + रिजर्व बैंक के पास अन्य जमा + बैंकों की सावधी जामा

$\mathbf{M_4}$ = जनता के पास करेंसी + बैंक की माँग जमा + रिजर्व बैंक के पास अन्य जमा + बैंकों की सावधी जमा + डाकखाने की कुल जमा (NSC को छोड़कर)

नोट

> ☞ **यह आप नोट करें**
>
> संकीर्ण अर्थ में मुद्रा पूर्ति माप M 1977 की नयी शृंखला के M_1 के बराबर नहीं है, यद्यपि इन समुच्चयों का संघटक समान है। M_1 सभी केंद्रीय, राज्य एवं प्राथमिक सहकारी बैंकों की माँग जमा को शामिल करता है जबकि M केवल राज्य सहकारी बैंकों की माँग जमा को शामिल करता है।
>
> नयी शृंखला की M_3 सभी सहकारी बैंकों की समय जमा को शामिल करता है जबकि समुच्चय मौद्रिक संसाधन (AMR) किसी भी सहकारी बैंकों की समय जमा को शामिल नहीं करता है।

1998 में RBI की कार्यकारी समिति ने दो नये मापों का सुझाव दिया जैसे NM_2 एवं NM_3। इसके अतिरिक्त इस समिति ने 3 तरलता माप जैसे L_1, L_2 एवं L_3 के लिए भी सुझाव दिया। इन तीनों को मौद्रिक एवं तरलता समुच्चय (Monetary and Liquidity Aggregates) कहा जाता है। इन मापों के संघटक का विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है–

1. $\mathbf{NM_2}$ = जनता के पास करेंसी + माँग जमाएँ + रिजर्व बैंक के पास अन्य जमाएँ + अल्पकालीन सावधि जमाएँ।
2. $\mathbf{NM_2}$ = NM_2 + दीर्घकालीन सावधि जमाएँ + वित्तीय संस्थाओं का अल्पकालीन फंड।
3. $\mathbf{L_1}$ = NM_2 + डाकखानों की जमाएँ।
4. $\mathbf{L_2}$ = समय अवधि मौद्रिक प्राप्तियाँ + जमाओं का प्रमाण पत्र + समय अवधि जमाएँ।
5. $\mathbf{L_3}$ = L_2 + गैर बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के पास सार्वजनिक जमाएँ।

> ☞ **अन्य जमाएँ (Other Deposits)**
>
> यह सरकार एवं वाणिज्यिक बैंकों के अलावा RBI में जमा होने वाली राशि को दर्शाती है। इसमें अंतर्राष्ट्रीय संगठन, विदेशी केंद्रीय बैंक, विदेशी सरकार एवं वित्तीय संगठनों आदि की माँग जमा को शामिल किया जाता है। नयी शृंखला की M_3 सभी सहकारी बैंकों की समय जमा को शामिल करता है।

> *टास्क* मुद्रा पूर्ति के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. नोट वास्तव में प्रतिज्ञा-पत्र होते हैं।
8. सभी देशों में लोग अपने धन को बैंकों में जमा नहीं कराते हैं।
9. वर्तमान समय में संसार के सभी देशों में नोट जारी करने की अपरिवर्तनशील विधि ही प्रचलित है।
10. बैंक उनके पास जमा कराई गई मुद्रा के आधार पर उधार देते हैं।

16.4 मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक : एक सैद्धांतिक निर्धारण

नोट

(Factors influencing Supply of Money : A Theoretical Prescription)

प्रो. चैण्डलर के अनुसार एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्त्वों पर निर्भर करती है–

(1) मौद्रिक आधार का आकार (Size of the Monetary Base)

इसे उच्च शक्ति मुद्रा (High Powered Money) या बाह्य मुद्रा (Outside Money) या रिजर्व मुद्रा (Reserve Money) कहा जाता है। उच्च शक्ति मुद्रा (High Powered Money) या बाह्य मुद्रा (Outside Money) उस मुद्रा को कहते हैं जिसको केंद्रीय बैंक या सरकार जारी करती है और जिसे जनता तथा बैंक अपने पास रखते हैं। दूसरे शब्दों में,

$$H = R + C$$

(यहाँ, H : उच्च शक्ति मुद्रा, R : बैंकों के कुल रिजर्व, C : चलन में करेंसी)

दूसरे शब्दों में,

उच्च शक्ति मुद्रा = बैंकों के कुल रिजर्व + जनता के पास करेंसी (नोट + सिक्के)

मुद्रा तथा उच्च शक्ति मुद्रा में अंतर यह है कि मुद्रा में करेंसी के अतिरिक्त माँग जमाओं को सम्मिलित किया जाता है जबकि उच्च शक्ति मुद्रा में करेंसी के अतिरिक्त बैंकों के नकद रिजर्व को भी सम्मिलित किया जाता है। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि तब होती है जब उच्च शक्ति मुद्रा में वृद्धि होती है। मुद्रा की पूर्ति का आकार मुद्रा गुणक (Money Multiplier) पर निर्भर करता है। मुद्रा गुणक, उच्च शक्ति मुद्रा तथा करेंसी का कुल जोड़ बैंकों के रिजर्व तथा बैंकों की केंद्रीय बैंक के पास अन्य जमाओं का अनुपात है। (The money multiplier is the ratio of high powered money and the sum total of currency, required reserves of the banks and other deposits of the banks with the central bank.)

(2) नकदी तथा माँग जमा का अनुपात (Proportion of Cash and Demand Deposits)

मुद्रा की पूर्ति पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि नकदी और माँग जमाओं का क्या अनुपात है। लोग कुल मुद्रा का जितना अधिक अनुपात जमाओं के रूप में रखना चाहेंगे, उतनी ही बैंकों की उन जमाओं के आधार पर, साख निर्माण करने की शक्ति अधिक होगी। साख के निर्माण की मात्रा साख गुणक (Credit Multiplier) के आकार पर निर्भर करती है। साख गुणक का आकार नकद कोष अनुपात (Cash Reserve Ratio–CRR) द्वारा प्रभावित होता है। कुल जमाओं का जितना अनुपात बैंकों को अपने पास नकदी के रूप में रखना पड़ता है उसको नकद कोष अनुपात (Cash Reserve Ratio) कहा जाता है। नकद कोष अनुपात जितना कम होगा बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति उतनी ही अधिक होगी तथा मुद्रा की पूर्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ जाएगी। अतएव यदि लोग कुल मुद्रा का अधिक भाग बैंक जमाओं के रूप में रखना पसंद करेंगे तो मुद्रा की पूर्ति अधिक होगी।

(3) चलन की गति (Velocity of Circulation)

मुद्रा की पूर्ति का अनुमान लगाने के लिए अर्थशास्त्रियों के दो दृष्टिकोण हैं–

***(i)* समय बिंदु पर मुद्रा की पूर्ति (The Supply of Money at a Point of Time)**–कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के

नोट

अर्थशास्त्रियों, जैसे–मार्शल, पीगू, राबर्टसन तथा केन्ज़ का यह मत था कि किसी निश्चित समय बिंदु पर मुद्रा की पूर्ति का अनुमान लोगों के पास करेंसी तथा माँग जमा के जोड़ द्वारा लगाया जा सकता है।

(*ii*) समयावधि में मुद्रा की पूर्ति (The Supply of Money in a Period of Time)–मुद्रा परिमाण सिद्धांत के प्रतिपादकों में इरविंग फिशर (Irving Fisher) की रुचि यह ज्ञात करने में थी कि किसी विशेष समयावधि में मुद्रा की पूर्ति कितनी होती है। एक विशेष समयावधि में मुद्रा की इकाई का प्रयोग कई बार किया जा सकता है। अत: मुद्रा की वह इकाई एक से अधिक इकाइयों का काम करती है। मान लीजिए भारत में मुद्रा की एक इकाई एक वर्ष में औसतन सात बार प्रयोग में लायी जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुद्रा की एक इकाई ने सात इकाइयों का काम किया है। इसे कहा जाएगा कि मुद्रा की व्यवसाय चलन गति (Transaction Velocity of Money), अर्थात् 'V' सात है। अतएव मुद्रा की चलन गति से अभिप्राय यह है कि "मुद्रा की एक इकाई एक वर्ष में कितनी बार विनिमय के माध्यम के रूप में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के पास जाती है।" (Velocity of money is number of times a unit of money changes hands in the course of a year.)

इस प्रकार एक निश्चित समयावधि में मुद्रा की पूर्ति का अनुमान मुद्रा की मात्रा को चलन गति से गुणा करके लगाया जाता है। अन्य शब्दों में,

मुद्रा की पूर्ति = MV

16.5 सारांश (Summary)

- मुद्रा की पूर्ति पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि नकदी और माँग जमाओं का क्या अनुपात है। लोग कुल मुद्रा का जितना अधिक अनुपात जमाओं के रूप में रखना चाहेंगे, उतनी ही बैंकों की उन जमाओं के आधार पर, साख निर्माण करने की शक्ति अधिक होगी। साख के निर्माण की मात्रा साख गुणक (Credit Multiplier) के आकार पर निर्भर करती है। साख गुणक का आकार नकद कोष अनुपात (Cash Reserve Ratio–CRR) द्वारा प्रभावित होता है।

16.6 शब्दकोश (Keywords)

- मुद्रा पूर्ति (Money Supply) – मुद्रा की पूर्ति।
- साख निर्माण (Creation of Credit) – गौण जमा।
- बाह्य मुद्रा (Outside Money) – बाहरी मुद्रा का निर्माण।

16.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मुद्रा पूर्ति के अर्थ एवं परिभाषा को व्यक्त कीजिए।
2. मुद्रा पूर्ति के दो मुख्य संघटक कौन-से हैं?
3. मौद्रिक समुच्चय एवं भारत में मुद्रा पूर्ति का माप ज्ञात कीजिए।
4. मुद्रा की पूर्ति को प्रकाशित करने वाले कारकों का विवरण कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. कागज मुद्रा   2. मुद्रा   3. (अ)   4. (अ)

नोट

5. (ब) 6. (ब) 7. सही 8. गलत

9. सही 10. सही।

16.8. संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई—17: मुद्रा गुणक और वाणिज्य बैंकों द्वारा साख निर्माण
(Money Multiplier and Credit Creation by Commercial Banks)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 मुद्रा गुणक (Money Multiplier)

17.2 साख मुद्रा का विस्तार अथवा साख निर्माण (Expansion of Credit Money or Credit Creation)

17.3 कुछ मूल अवधारणाएँ (Some Basic Concepts)

17.4 साख निर्माण की प्रक्रिया अथवा बैंक साख का निर्माण कैसे कर सकते हैं?
(Process of Credit Creation or How do Banks Creat Credit?)

17.5 बीजगणितीय अभिव्यक्ति (Algebraic Expression)

17.6 साख सृजन की सीमाएँ (Limitations of Credit Creation)

17.7 प्रतियोगी बैंकिंग एवं साख विस्तार (Competitive Banking and Credit Expansion)

17.8 क्या बैंक वास्तव में साख का निर्माण करते हैं? (Do Banks Really Create Credit?)

17.9 भारत में मुद्रा पूर्ति (Money Supply in India)

17.10 मुद्रा अर्थव्यवस्था में कैसे प्रचलित होती है? (How Does Money Get into the Economy?)

17.11 क्या अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति केंद्रीय बैंक की इच्छा (समझ-बूझ) पर निर्भर करती है?
(Does Supply of Money in the Economy Depend on the Discretion of the Central Bank?)

17.12 सारांश (Summary)

17.13 शब्दकोश (Keywords)

17.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

17.15 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मुद्रा गुणक जानने हेतु।
- बीजगणितीय अभिव्यक्ति जानने हेतु।
- भारत में मुद्रा पूर्ति जानने हेतु।
- साख सृजन की सीमाएँ जानने हेतु।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

साख निर्माण द्वारा वाणिज्यिक बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि करते हैं जिसका उत्पादन, उपभोग तथा निवेश के स्तर पर प्रभाव पड़ता है और साथ ही संवृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

17.1 मुद्रा गुणक (Money Multiplier)

मुद्रा गुणक, मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन तथा मौद्रिक आधार में परिवर्तन का अनुपात है। (Money multiplier is the ratio of change in supply of money to the change in monetary base) मौद्रिक आधार, चलन में करेंसी तथा बैंकों के नकद रिजर्व का कुल जोड़ है। मान लीजिए कि मौद्रिक आधार में 10 करोड़ रु. के परिवर्तन के फलस्वरूप मुद्रा की पूर्ति में 30 करोड़ रु. का परिवर्तन हो जाता है तो मुद्रा गुणक 3 होगा। मुद्रा गुणक का गुणांक निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$$\textbf{मुद्रा गुणक (Money Multiplier)} = \frac{\textbf{मुद्रा पूर्ति (Money Supply)}}{\textbf{उच्च शक्ति मुद्रा (High Powered Money)}}$$

अथवा

$$m = \frac{M}{H} \qquad ...(i)$$

(यहाँ m : मुद्रा गुणक; M : मुद्रा की पूर्ति (चलन में करेंसी तथा बैंकों की माँग जमा); H = उच्च शक्ति मुद्रा) मुद्रा की कुल पूर्ति; करेंसी तथा माँग जमा का जोड़ है)

$$M = C + D \qquad ...(ii)$$

(यहाँ, C : करेंसी, D : माँग जमाएँ)

> ☞ **M और H में अंतर (Difference between M and H)**
>
> M = मुद्रा की पूर्ति जिसमें करेंसी तथा माँग जमाएँ शामिल होती हैं।
>
> H = उच्च शक्ति मुद्रा जिसमें करेंसी तथा व्यापारिक बैंकों के रिजर्व सम्मिलित होते हैं।

नकद रिजर्व में व्यापारिक बैंकों के आपेक्षित न्यूनतम रिजर्व तथा अतिरिक्त रिजर्व ही सम्मिलित होते हैं।

> *नोट्स* मुद्रा गुणक, मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन तथा मौद्रिक आधार में परिवर्तन का अनुपात है।

उच्च शक्ति मुद्रा की कुल पूर्ति, करेंसी, बैंकों की अपेक्षित रिजर्व (Required Reserve), बैंकों की अन्य जमाओं या केंद्रीय बैंक के पास अतिरिक्त रिजर्व (Excess Reserve) के कुल जोड़ के बराबर होती है।

$$H = C + RR + ER \qquad ...(iii)$$

[यहाँ, H : उच्च शक्ति मुद्रा; C : करेंसी; RR : व्यापारिक बैंकों के अपेक्षित रिजर्व; ER : व्यापारिक बैंकों के केंद्रीय बैंक के पास अतिरिक्त रिजर्व (Excess Reserve)]

नोट

यदि समीकरण (*i*) में M और H के मूल्यों का प्रतिस्थापन करें, तो हमें निम्नलिखित समीकरण प्राप्त होगा–

$$M = \frac{M}{H} = \frac{C + D}{C + RR + ER}$$

समीकरण के दाएँ ओर के भाग को D (माँग जमा) से भाग करें

$$m = \frac{M}{H} = \frac{\frac{C}{D} + \frac{D}{D}}{\frac{C}{D} + \frac{RR}{D} + \frac{ER}{D}} \qquad ...(iv)$$

यदि समीकरण (*iv*) में हम $\frac{C}{D}$ के स्थान पर c, $\frac{RR}{D}$ के स्थान पर r और $\frac{ER}{D}$ के स्थान पर e लिखें तो

(*a*) मुद्रा गुणक

$$m = \frac{M}{H} = \frac{1 + c}{c + r + e} \qquad ...(v)$$

(*b*) मुद्रा की पूर्ति = मुद्रा गुणक × उच्च शक्ति मुद्रा

$$M = \frac{1 + c}{c + r + e} \times H = mH \qquad ...(vi)$$

(*c*) उच्च शक्ति मुद्रा

$$H = \frac{M}{m} \qquad ...(vii)$$

संक्षेप में, मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा गुणक के मूल्य द्वारा प्रभावित होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. मौद्रिक आधार, चलन में करेंसी तथा बैंकों के नकद रिजर्व का .... है।
2. बैंक ऋण देकर अधिक से अधिक .... कमाना चाहता है।

17.2 साख मुद्रा का विस्तार अथवा साख निर्माण (Expansion of Credit Money or Credit Creation)

उपरोक्त चर्चा के अनुसार एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति करेंसी के चलन एवं वाणिज्यिक बैंकों की माँग जमा पर निर्भर करती है। इन दो संघटकों में किसी भी वृद्धि के कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति बढ़ती है। करेंसी की मात्रा केंद्रीय बैंक के द्वारा तय होती है जो सरकार के व्यय करने के व्यवहार पर निर्भर करती है जबकि मुद्रा पूर्ति का जमा संघटक वाणिज्यिक बैंक द्वारा प्रभावित होता है। साख सृजन करके या साख मुद्रा का विस्तार करके वाणिज्यिक बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करते हैं। वाणिज्यिक बैंक की साख विस्तार क्षमता इनके नकद आरक्षित अनुपात पर निर्भर करती है। लिप्सी एवं क्रिस्टल के शब्दों में **"बैंक तब मुद्रा सृजन करते हैं जब वे नकद**

आरक्षित अनुपात से अधिक प्रमाणित जमा सृजन करते हैं।" (Banks can create money by issuing more promises to pay (deposits) than they have cash reserve available to pay out.–**Lipsey and Chrystal**)

न्यूलन के शब्दों में, **"साख निर्माण से अभिप्राय व्यापारिक बैंकों की उस शक्ति से है जिसके द्वारा वे ऋण देकर या प्रतिभूतियों में निवेश करके गौण जमा का विस्तार करते हैं।"** (Credit Creation refers to the power of commercial banks to expand sceondary deposits either through the process of making loans or through investment in securities.–**Newlyn**)

जी. एन. हॉम के अनुसार, **"गौण जमा का निर्माण ही साख निर्माण कहलाता है।"** (The creation of derivative deposits is identical with what is commonly called the creation of credit.–**G.N. Halm**)

साख निर्माण की प्रक्रिया का विश्लेषण करने से पहले कुछ मूल अवधारणाओं का ज्ञान पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

क्या आप जानते हैं करेंसी की मात्रा केंद्रीय बैंक के द्वारा तय होती है।

17.3 कुछ मूल अवधारणाएँ (Some Basic Concepts)

1. माँग जमा (Demand Deposits) बैंक की उस जमा को कहते हैं जिसे जमाकर्ता किसी भी समय चेक जारी करके निकलवा सकता है। इसे 'चेक जमा' (Chequing Deposits or Chequable Deposits) भी कहते हैं।

इनका विस्तृत वर्गीकरण इस प्रकार है–

(*i*) **प्राथमिक अथवा नकद जमा (Primary or Cash Deposits)**–उस धन राशि को, जो लोगों द्वारा बैंकों में नकद मुद्रा के रूप में जमा करवाई जाती है, प्राथमिक या नकद जमा कहते हैं। इसे निष्क्रिय जमा (Passive Deposits) भी कहा जाता है क्योंकि इस जमा का निर्माण करने में व्यापारिक बैंकों की कोई भूमिका नहीं होती। ऐसी जमा की राशि पूर्णत: जमाकर्ताओं की इच्छा पर निर्भर करती है।

(*ii*) **साख जमा या गौण जमा (Derivative or Secondary Deposits)**–जब कोई व्यक्ति बैंक से उधार लेने के लिए जाता है तब बैंक उसे यह उधार नकद राशि के रूप में नहीं देता बल्कि उसके नाम का एक खाता खोल देता है और उसे चेक द्वारा उसमें से रुपया निकालने का अधिकार दे देता है। इस प्रकार की जमा को साख जमा या गौण जमा कहते हैं। अत: बैंक द्वारा दिया गया प्रत्येक ऋण नई जमा का निर्माण करती है। गौण जमा, प्राथमिक जमा का परिणाम है क्योंकि बैंक प्राथमिक जमा के एक भाग को रिज़र्व में रख कर ही गौण जमा का निर्माण करता है। **हॉम** के अनुसार, **गौण जमा का निर्माण ही साख निर्माण है, एक बैंक जितना अधिक ऋण देता है, उतनी ही अधिक साख जमा या गौण जमा का निर्माण होता है। तभी तो यह कहा जाता है, "ऋण, जमा राशियों का निर्माण करते हैं और जमा राशियाँ ऋणों का निर्माण करती हैं।"** (According to **Halm**, creation of secondary deposit is credit creation; larger the amount that a bank advances, greater is the creation of secondary deposits or loans created. That is why it is said, "*loans create deposits and deposits create loans.*")।

माँग जमा = प्राथमिक जमा + गौण अथवा साख जमा

(Demand Deposits = Primary Deposits + Secondary or Derivative Deposits)

2. **नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio)**–नि:संदेह बैंक ऋण देकर अधिक से अधिक लाभ कमाना चाहता है किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपनी सारी नकदी उधार दे देगा। जो लोग बैंक में रुपया जमा करवाते

नोट

हैं, वे इसे किसी भी समय निकलवा सकते हैं, क्योंकि यह उनका रुपया है अतः बैंक कुल जमा राशि का एक भाग सदा अपने पास नकद आरक्षित निधि (Cash Reserve) के रूप में रखते हैं, जिससे कि जमाकर्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। कुल जमा का वह भाग जिसे बैंक अपने पास नकद रूप में रखता है, उसे नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio) कहा जाता है।

3. **अत्यधिक या फालतू कोष (Excess Reserves)**–वह राशि जो बैंक के पास आवश्यक नकद आरक्षित अनुपात (CRR) से अधिक होती है उसे अत्यधिक या फालतू कोष कहते हैं। वास्तव में, यही वह फालतू कोष (Excess Reserve) है जो साख निर्माण का आधार बनता है।

4. **साख गुणक (Credit Multiplier)**–प्राथमिक जमा में वृद्धि तथा कुल जमा में वृद्धि के अनुपात को साख गुणक कहते हैं। यदि प्राथमिक जमा में 1,000 रु. की वृद्धि के परिणामस्वरूप 10,000 रु. की साख का निर्माण होता है तो साख गुणक 10 होगा। साख गुणक और नकद आरक्षित अनुपात (CRR) में विपरीत संबंध को निम्नलिखित समीकरण के रूप में व्यक्त किया जाता है।

$$\text{साख गुणक (Credit Multiplier)} = \frac{1}{\text{नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio)}}$$

मुद्रा गुणक तथा साख गुणक में अंतर

(Difference between Money Multiplier and Credit Multiplier)

मुद्रा गुणक : मुद्रा की पूर्ति तथा उच्च शक्ति मुद्रा का अनुपात है।

$$m = \frac{1+c}{c+r+e}$$

साख गुणक : कुल जमाओं में वृद्धि तथा बैंक की प्राथमिक जमाओं में वृद्धि का अनुपात है या नकद आरक्षित अनुपात (CRR) का अन्योन्य (reciprocal) है।

$$\text{साख गुणक} = \frac{\Delta D}{\Delta P} = \frac{1}{r}$$

यहाँ r : आरक्षित अनुपात, D : कुल जमाएँ, P : प्राथमिक जमाएँ।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. गौण जमा का निर्माण ही है–

(अ) साख निर्माण (ब) साख

(स) जमा (द) इनमें से कोई नहीं।

4. ऋण जमा राशियों का करते हैं–

(अ) चयन (ब) निर्माण

(स) साख (द) इनमें से कोई नहीं।

5. प्राथमिक जमा में वृद्धि तथा कुल जमा में वृद्धि के अनुपात को कहते हैं–

   (अ) साख गुणक (ब) साख

   (स) गुणक (द) इनमें से कोई नहीं।

6. फालतू कोष ही साख निर्माण का बनता है–

   (अ) आधार (ब) बजट

   (स) गुणक (द) इनमें से कोई नहीं।

17.4 साख निर्माण की प्रक्रिया अथवा बैंक साख का निर्माण कैसे कर सकते हैं? (Process of Credit Creation or How do Banks Create Credit?)

वाणिज्यिक बैंकों की साख विस्तार पद्धति निम्न शर्तो पर आधारित है–

(i) **बैंकों के नकद आरक्षित अनुपात में स्थिरता**–बैंकों की वाणिज्यिक कुल जमाओं का नकद आरक्षित अनुपात साख सृजन पद्धति के अंतराल समान रहता है।

(ii) **नकद प्रवाह न होना**–बैंकिंग व्यवस्था से अत्यधिक नकद प्रवाह नहीं होना चाहिए अर्थात् लोगों को करेंसी का एक निर्दिष्ट प्रतिशत विनिमय के लिए अपने पास रखना चाहिए।

साख निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है–

(1) एक बैंकिंग प्रणाली तथा (2) बहुबैंकिंग प्रणाली

(1) एक बैंकिंग प्रणाली में साख का निर्माण (Credit Creation in a Single Banking System)

यह केवल एक सरल मान्यता है कि एक अर्थव्यवस्था में केवल एक ही बैंक सभी बैंकिंग कारोबार करता है। मान लो Mr. X बैंक में 1,000 रुपया जमा करता है। प्राथमिक जमा के रूप में यह राशि बैंक की माँग जमा है। इस मान्यता पर कि नकद आरक्षित अनुपात (CRR) 10% है, बैंक के स्थिति विवरण का रूप इस प्रकार होगा–

बैंक का स्थिति विवरण
(प्रारंभिक जमा 1,000 रु. होने पर)

देनदारियाँ (Liabilities)	परिसंपत्तियाँ (Assets)
माँग जमा... 1,000 रु. (प्राथमिक जमा)	नकदी = 1,000 रु. नकद आरक्षित निधि = 100 रु. (1,000 का 10%) अत्यधिक (फालतू) कोष= 1,000–100 = 900 रु.
कुल = 1,000 रु.	कुल = 1,000 रु.

बिना तरलता तथा सुरक्षा संबंधी जोखिम के, बैंक 900 रु. ऋण दे सकता है। यदि बैंक ऐसा करता है तो इसका स्थिति विवरण इस प्रकार होगा–

नोट

बैंक का स्थिति विवरण
(जब प्रारंभिक अत्यधिक कोष को ऋण में बदला जाता है)

देनदारियाँ (Liabilities)		परिसंपत्तियाँ (Assets)	
(*i*) माँग जमा (प्राथमिक जमा)	= 1,000 रु.	(*i*) नकदी प्राप्ति	= 1,000 रु.
(*ii*) माँग जमा	= 900 रु.	नकद आरक्षित निधि (1,000 का 10%)	= 100 रु.
(गौण अथवा साख जमा)		फालतू कोष = 1000–100	= 900 रु.
		(*ii*) ऋण	= 900 रु.
	कुल = 1,900 रु.		कुल = 1,900 रु.

ऋण की राशि 900 रु. किधर जाती है? यदि उधार लेने वाला व्यक्ति 900 रु. का चेक किसी अन्य व्यक्ति (जिस का खाता उसी बैंक में होता है) को देता है, तो बैंक के 1,000 रु. के नकद रिजर्व में कोई खलबली नहीं मचती। बैंक की माँग जमा 1,900 रु. हो जाती है जिसके लिए उसे नकद आरक्षित नकदी निधि 190 रु. $\left(\frac{10}{100}\times 1,900\right)$ चाहिए। इस स्थिति में बैंक के पास फालतू कोष 1,000–190 = 810 रु. रह जाएगा। बैंक के लिए 810 रु. का एक अन्य ऋण देना संभव हो जाएगा। तद्नुसार बैंक की माँग जमा का जोड़ 1,000 + 900 + 810 = 2,710 रु. हो जाएगा। यदि ऋणी व्यक्ति 810 रु. का चेक किसी ऐसे व्यक्ति को दे देता है जिसका खाता उसी बैंक में है तो बैंक के 1,000 रु. के नकद रिज़र्व में फिर कोई खलबली नहीं मचेगी। बैंक की माँग जमा 2,710 रु. के लिए 271 रु. (2,710 का 10 प्रतिशत) नकद आरक्षित निधि के रूप में रख कर बैंक फालतू कोष 1000–271 = 729 रु. किसी अन्य व्यक्ति को ऋण के रूप में दे सकेगा। बैंक द्वारा ऋण देने की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक फालतू कोष (Excess Reserves) शून्य नहीं हो जाता। अन्त में बैंक का स्थिति विवरण इस प्रकार होगा–

बैंक का स्थिति विवरण
(जब अत्यधिक कोष पूर्णतः समाप्त हो जाता है)

देनदारियाँ (Liabilities)		परिसंपत्तियाँ (Assets)	
माँग जमा		(*i*) नकदी प्राप्ति	= 1,000 रु.
(*i*) प्राथमिक जमा	= 1,000 रु.	(*ii*) ऋण	= 900 रु.
(*ii*) गौण अथवा साख जमा	= 900 रु.		810 रु.
	810 रु.		729 रु.
	729 रु.		
यही सिलसिला जब तक अत्यधिक कोष शून्य नहीं हो जाता।			
	कुल = 10,000 रु.		कुल = 10,000 रु.

इस प्रकार प्रकार 1,000 रु. की नकद प्राप्ति के आधार पर बैंक 10,000 रु. की माँग जमा का निर्माण करता है। **नोट**

$\left(\frac{1}{\text{CRR}} \times 1{,}000 = \frac{1}{10\%} \times 1000 = \text{Rs.}10{,}000\right)$ क्योंकि इस उदाहरण में साख गुणक 10 है।

साख गुणक $= \frac{1}{\text{CRR}} = \frac{1}{10\%} = 10$

अर्थव्यवस्था में साख/मुद्रा की पूर्ति में 10,000 रु. की वृद्धि हो जाती है।

निष्कर्ष : बैंक की माँग जमा में 1,000 रु. (प्राथमिक जमा के रूप में) की प्रारंभिक वृद्धि होने पर तथा नकद आरक्षित अनुपात (CRR) की 10 प्रतिशत की मान्यता के आधार पर बैंक की माँग जमा (प्राथमिक तथा गौण जमाओं का जोड़) बढ़कर 10,000 रु. हो जाएगी।

17.5 बीजगणितीय अभिव्यक्ति (Algebraic Expression)

साख निर्माण प्रक्रिया की बीजगणितीय अभिव्यक्ति इस प्रकार है–

$\Delta D = \Delta P + \Delta P\,(1 - r) + \Delta P\,(1 - r)^2 + \Delta P\,(1 - r)^3 + \ldots\ldots\ldots\ldots$

$= \Delta P\{1 + (1 - r) + (1 - r)^2 + (1 + r)^3 + \ldots\ldots\ldots\}$

जहाँ, ΔD : प्राथमिक जमा के आरंभिक परिवर्तन के कारण माँग जमा में कुल परिवर्तन

ΔP : प्राथमिक जमा में परिवर्तन

r : नकद आरक्षित अनुपात (CRR)

उपरोक्त उदाहरण को जारी रखते हुए जहाँ $\Delta P = 1{,}000$ रु. और $r\,(\text{CRR}) = 10\%$ साख निर्माण प्रक्रिया इस प्रकार होगी–

$\Delta D = \Delta P + \Delta P\,(1 - r) + \Delta P\,(1 - r)^2 \ldots\ldots\ldots\ldots$

$= 1000 + 1000\,(1 - 10\%) + 1000\,(1 - 10\%)^2 \ldots\ldots\ldots\ldots$

$= 1000 + 1000 \times \left(\frac{9}{10}\right) + 1000 \times \left(\frac{9}{10}\right)^2 + \ldots\ldots\ldots\ldots$

$= 1000 \left\{1 + \frac{9}{10} + \left(\frac{9}{10}\right)^2 + \ldots\ldots\ldots\right\}$

$= 1000 \times \frac{1}{1 - \frac{9}{10}}$

$= 1000 \times \frac{1}{\frac{10 - 9}{10}}$

$= 1000 \times 10 = \text{Rs. } 10,\,000$

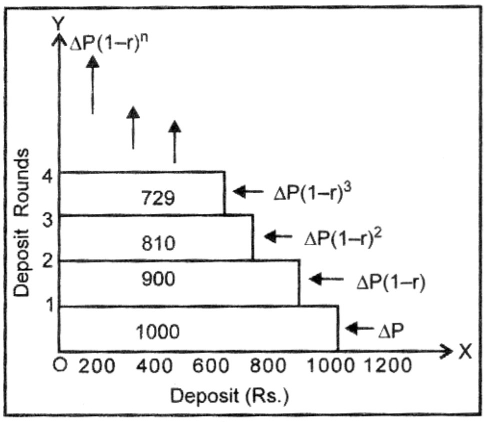

चित्र 17.1

नोट

इस प्रकार 1000 रु. की प्राथमिक जमा अर्थव्यवस्था में 10,000 रु. का साख सृजन करता है, यहाँ नकद आरक्षित अनुपात 10 प्रतिशत है एवं बैंकिंग व्यवस्था से कोई अत्यधिक (फालतू) नकद प्रवाह नहीं होता है। साख निर्माण की इस प्रक्रिया को चित्र 16.1 द्वारा दिखाया गया है।

चित्र 16.1 में X अक्ष जमा एवं Y अक्ष प्राथमिक जमा के कारण होने वाले भिन्न-भिन्न जमा चक्र को मापता है। प्राथमिक जमा 1,000 रु. है पहले चरण में कुल जमा भी 1000 रु. है। प्रारंभिक जमा 1,000 रु. द्वितीय चरण में 900 रु. की जमा एवं तृतीय चरण में 810 रु. की जमा सृजन करता है। इस प्रकार जमा सृजन का यह चरण तब तक चलता रहेगा जब तक सारे प्राथमिक जमा नकद आरक्षित अनुपात में बंट न जाए।

(2) बहुबैंकिंग प्रणाली में साख का निर्माण

(Credit Expansion in Multiple Banking System)

बहु बैंकिंग प्रणाली में ऋण प्रदान माध्यम से साख पद्धति एक बैंकिंग प्रणाली जैसी है जिसकी हमने पहले चर्चा की है। अलग-अलग वाणिज्यिक बैंकों के कल्पित संतुलन पत्र का प्रयोग करके साख विस्तार का विश्लेषण करेंगे। यहाँ बैंकिंग व्यवस्था गुणक साख सृजन तब करती है जब सारे बैंक एक दूसरे के साथ अपनी जमा राशि में वृद्धि करते हैं। एक बैंकिंग व्यवस्था की तुलना में बहुबैंकिंग व्यवस्था में साख विस्तार प्रक्रिया अधिक वास्तविक है।

मान लीजिए कि एक अर्थ व्यवस्था में A, B, C तथा कई अन्य बैंक पाए जाते हैं। सर्वप्रथम, एक व्यक्ति बैंक A में 1,000 रु. प्राथमिक जमा के रूप में जमा कराता है। इस स्थिति में बैंक A का स्थिति विवरण निम्न प्रकार का होगा–

बैंक 'A' का आरंभिक स्थिति विवरण

देनदारियाँ (Liabilities)	रु. (Rs.)	परिसंपत्तियाँ (Assets)	रु. (Rs.)
जमा (Deposits)	1,000	आरक्षित निधि (Reserves)	1,000
कुल (Total)	1,000	**कुल (Total)**	1,000

बैंक 'A' 10% नकद आरक्षित निधि रखकर 900 रु. उधार देता है इस स्थिति में बैंक 'A' का अंतिम स्थिति विवरण निम्न प्रकार का होगा–

बैंक 'A' का अंतिम स्थिति विवरण

देनदारियाँ (Liabilities)	रु. (Rs.)	परिसंपत्तियाँ (Assets)	रु. (Rs.)
जमा (Deposits)	1,000	आरक्षित निधि (Reserves)	100
		उधार (Loans)	900
कुल (Total)	1,000	**कुल (Total)**	1,000

मान लीजिए, एक व्यक्ति बैंक 'A' से 900 रु. उधार लेता है तथा किसी दूसरे व्यक्ति को ऋण अदायगी के लिए 900 रु. का चेक देता है जिसका जमा खाता बैंक B में है। बैंक 'B' का आरंभिक स्थिति विवरण इस प्रकार बनेगा–

नोट

बैंक 'B' का आरंभिक स्थिति विवरण

देनदारियाँ (Liabilities)	रु. (Rs.)	परिसंपत्तियाँ (Assets)	रु. (Rs.)
जमा (Deposits)	900	आरक्षित निधि (Reserves)	900
कुल (Total)	900	**कुल (Total)**	900

बैंक 'B' प्राथमिक जमा 900 रु. का 10% नकद आरक्षित अनुपात (CRR) के रूप में रखकर शेष 810 रु. उधार दे देता है। बैंक का अंतिम स्थिति विवरण इस प्रकार का होगा–

बैंक 'B' का अंतिम स्थिति विवरण

देनदारियाँ (Liabilities)	रु. (Rs.)	परिसंपत्तियाँ (Assets)	रु. (Rs.)
जमा (Deposits)	900	आरक्षित निधि (CRR)	90
		उधार (Loans)	810
कुल (Total)	900	**कुल (Total)**	900

एक व्यक्ति बैंक B से 810 रु. उधार लेता है और किसी व्यक्ति को ऋण अदायगी के लिए 810 रु. का चेक देता है जिसका जमा खाता बैंक 'C' में है। इस स्थिति में बैंक 'C' का आरंभिक स्थिति विवरण निम्न प्रकार का बनेगा।

बैंक 'C' का आरंभिक स्थिति विवरण

देनदारियाँ (Liabilities)	रु. (Rs.)	परिसंपत्तियाँ (Assets)	रु. (Rs.)
जमा (Deposits)	810	कोष (Reserves)	810
कुल (Total)	810	**कुल (Total)**	810

बैंक 'C' प्राथमिक जमा 810 रु. का 10% नकद आरक्षित निधि (CRR) के रूप में रख कर शेष 729 रु. उधार दे देता है। बैंक 'C' का अंतिम स्थिति विवरण निम्न प्रकार का होगा–

बैंक 'C' का अंतिम स्थिति विवरण

देनदारियाँ (Liabilities)	रु. (Rs.)	परिसंपत्तियाँ (Assets)	रु. (Rs.)
जमा (Deposits)	810	आरक्षित निधि (CRR)	81
		उधार (Loans)	729
कुल (Total)	810	**कुल (Total)**	810

साख विस्तार की यह पद्धति तब तक चलती रहेगी जब तक 1000 रु. की प्राथमिक जमा आरक्षित निधि (Reserve

नोट

Fund) के रूप में पूरी बैंकिंग व्यवस्था में बँट न जाए। सभी बैंक मिलकर 9,000 रु. मूल्य की नई जमा का निर्माण करेंगे तथा कुल बैंकिंग प्रणाली की जमा 10,000 रु. होगी, जैसा कि तालिका 17.1 द्वारा दिखाया गया है।

तालिका 17.1

बैंक (Bank)	नयी जमा (New Deposits)	नकद आरक्षित निधि (CRR)	नए उधार (New Loans)
A	1,000	100	900
B	900	90	810
C	810	81	729
अन्य बैंक	729	–	–
	–	–	–
समस्त बैंकिंग प्रणाली का जोड़ (Total for the Banking System)	10,000	1,000	9,000

कुल जमा में परिवर्तन = प्राथमिक जमा × साख गुणक

साख गुणक = $\frac{1}{CRR} = \frac{1}{10\%} = 10$

कुल जमा में परिवर्तन = 1000 × 10 = 10,000

संक्षेप में, समस्त बैंकिंग प्रणाली की कुल जमा, आरंभिक जमा 1,000 रु. के कारण, 10,000 रु. हो जाएगी।

टास्क मुद्रा गुणक के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

17.6 साख सृजन की सीमाएँ (Limitations of Credit Creation)

बैंक असीमित मात्रा में साख का निर्माण नहीं कर सकते। व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति की कई सीमाएँ होती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

(1) नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio)–साख निर्माण की शक्ति मुख्यत: नकद आरक्षित अनुपात (CRR) पर निर्भर करती है। साख निर्माण और नकद आरक्षित अनुपात में पारस्परिक उल्टा संबंध है। नकद आरक्षित अनुपात जितना अधिक होगा उतना ही साख का निर्माण कम होगा। इसके विपरीत नकद आरक्षित अनुपात जितना कम होगा उतना ही साख का निर्माण अधिक होगा। उदाहरण के लिए,

नोट

नकद आरक्षित अनुपात (r) (Cash Reserve Ratio)	**आरंभिक जमा (Primary Deposit)**	**कुल जमा में वृद्धि $\left(\Delta D = \frac{1}{r}\Delta P\right)$ (Increase in Total Deposit)**	**साख निर्माण (credit Creation)**
10%	1000	10,000	10,000–1,000 = 9,000
5%	1000	20,000	20,000–1,000 = 19,000
20%	1000	5,000	5,000–1,000 = 4,000

(यहाँ ΔP : प्राथमिक जमा में वृद्धि; ΔD : कुल जमा में वृद्धि; r : आरक्षित नकदी निधि अनुपात)

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि जब नकद आरक्षित अनुपात (r) 10 प्रतिशत होता है तब कुल जमा में वृद्धि 10,000 रु. होती है। जब नकद आरक्षित अनुपात बढ़ कर 20 प्रतिशत होता है तब कुल जमा में वृद्धि केवल 5,000 रु. होती है। इसके विपरीत, जब नकद आरक्षित अनुपात घट कर 5 प्रतिशत होता है तब कुल जमा में वृद्धि 20,000 रु. होती है।

(2) प्राथमिक जमाओं की मात्रा (Amount of primary Deposits)–साख निर्माण का विस्तार प्राथमिक जमा की मात्रा पर निर्भर करता है। साख निर्माण तथा प्राथमिक जमा में सीधा संबंध है। यदि प्राथमिक जमा की मात्रा अधिक है तो साख का निर्माण भी अधिक होगा और यदि प्राथमिक जमा की मात्रा कम है तो साख का निर्माण भी कम होगा, भले ही नकद आरक्षित अनुपात (CRR) समान रहे। उदाहरण के लिए, यदि

$$\Delta P = ₹\ 1000\ ;\ r = 10\% \quad \Rightarrow \quad \Delta D = ₹\ 10{,}000$$

$$\Delta P = ₹\ 500\ ;\ r = 10\% \quad \Rightarrow \quad \Delta D = ₹\ 5{,}000$$

$$\Delta P = ₹\ 2000\ ;\ r = 10\% \quad \Rightarrow \quad \Delta D = ₹\ 20{,}000$$

यदि नकद आरक्षित अनुपात (r) 10% हो तो 1,000 रु. की प्राथमिक जमा से 10,000 रु. की कुल जमा प्राप्त हो सकती है। दूसरी ओर, प्राथमिक जमा 500 रु. रह जाने पर कुल जमा केवल 5,000 रु. तक ही बढ़ सकती है। यदि प्राथमिक जमा 2,000 रु. हो तो कुल जमा बढ़ कर 20,000 रु. हो सकती है। अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि नकद आरक्षित अनुपात (r) स्थिर रहे तो प्राथमिक जमा तथा कुल जमा का परस्पर सीधा संबंध होता है।

(3) लोगों की बैंकिंग संबंधी आदतें (Banking Habits of the People)–बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति लोगों की बैंकिंग संबंधी आदतों पर भी निर्भर करती है। यदि लोग अपना व्यवसाय अधिकतर चेकों द्वारा करते हैं तो उन्हें अपने पास बहुत कम नकदी रखनी पड़ेगी। फलस्वरूप बैंकों के पास नकदी बहुत बढ़ जाएगी जिससे उनकी साख निर्माण की शक्ति भी बहुत बढ़ जाएगी। विश्व के विकसित देशों में ऐसा ही होता है। किंतु अल्प-विकसित देशों में लोग अधिकतर अपना व्यवसाय नक़दी द्वारा करते हैं। परिणामत: उनकी नकदी के लिए माँग सदैव अधिक होती है। इस कारण बैंकों के नकद शेष कम हो जाते हैं और साथ ही उनकी साख निर्माण करने की शक्ति भी घट जाती है।

(4) केंद्रीय बैंक की साख नीति (Credit Policy of the Central Bank)–देश के केंद्रीय बैंक की साख नीति पर भी व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति निर्भर करती है। यदि केंद्रीय बैंक सस्ती साख नीति (साख विस्तार नीति) का अनुसरण करता है तो व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति बढ़ जाती है इसके विपरीत, यदि केंद्रीय बैंक महँगी साख नीति (साख संकुचन नीति) का अनुसरण करता है तो व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण की शक्ति घट जाती है।

नोट

(5) अन्य बैंकों की नीति (Policy of Other Banks)–एक बैंक द्वारा साख निर्माण करने की शक्ति अन्य बैंकों द्वारा अपनायी गयी साख नीति पर भी निर्भर करती है। यदि सभी बैंक एक सुर में कार्य करते हैं तो उनकी साख निर्माण की शक्ति अधिक होगी। किंतु यदि एक बैंक साख का विस्तार करता है तथा अन्य बैंक उसके साथ सहयोग नहीं करते तो साख निर्माण की क्रिया सीमित हो जाएगी।

(6) जमाकर्ताओं का विश्वास (Confidence of Depositors)–बैंकों के साख निर्माण करने की शक्ति पर लोगों के विश्वास का भी प्रभाव पड़ता है। यदि जमाकर्ताओं का बैंकिंग प्रणाली में पूरा भरोसा है तो वे अपनी मुद्रा बैंक में पड़ी रहने देंगे इससे बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति बढ़ेगी। इसके विपरीत, यदि लोगों को बैंकिंग प्रणाली में कोई विश्वास नहीं है तो वे अपनी बचत (Saving) बैंकों में नहीं रखेंगे। बैंकों के पास नकद शेष की मात्रा का कम होना उनकी साख निर्माण शक्ति को घटाता है।

(7) अच्छे उधार लेने वालों की उपलब्धता (Availability of Good Borrowers)–साख के योग्य उधार लेने वालों की उपलब्धता भी बैंकों की साख निर्माण शक्ति को प्रभावित करती है। यदि ऐसे उधार लेने वाले बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं तो साख का अधिक निर्माण होगा। यदि अच्छे उधार लेने वाले उपलब्ध नहीं हैं तो बैंक उधार देने से संकोच करेगा तथा साख का निर्माण सीमित ही रहेगा।

(8) व्यापारिक तथा औद्योगिक स्थिति (Commercial and Industrial Conditions)–मंदी की अवधि के दौरान, व्यापारियों तथा उद्योगपतियों की ऋणों के लिए माँग बहुत कम हो जाती है। अतः बैंकों द्वारा गौण जमाओं के रूप में अधिक साख निर्माण नहीं किया जाता। किंतु तेजी (Boom Period) की अवधि के दौरान बैंकों के लिए उधार देना लाभप्रद होता है और वे गौण जमाओं के रूप में अधिक साख का निर्माण करते हैं।

व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति का सीमांकन करने वाले दो मुख्य मापक

(Two principal parameters that Delimit the Credit Creation Capacity of the Commercial Banks)

व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण की शक्ति का सीमांकन करने वाले दो मुख्य मापक इस प्रकार हैं–

(*i*) **व्यापारिक बैंकों की प्राथमिक जमाएँ या नकद कोष**–नकद कोष जितने अधिक होंगे बैंकों की साख निर्माण की शक्ति भी उतनी ही अधिक होगी।

(*ii*) **केंद्रीय बैंक या शिखर बैंक द्वारा निर्धारित नकद आरक्षित कोष अनुपात**–व्यापारिक बैंकों के लिए केंद्रीय बैंक के नकद आरक्षित अनुपात (CRR) संबंधी आदेशों का पालन करना अनिवार्य होता है। यदि नकद आरक्षित अनुपात को बढ़ाया जाता है, जैसा कि मुद्रा स्फीति की स्थिति में, तो बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति संकुचित हो जाती है। इसके विपरीत यदि नकद आरक्षित अनुपात को कम कर दिया जाता है, जैसा कि मंदी की अवस्था में, तो बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति काफी बढ़ जाती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति करेंसी के चलन एवं वाणिज्यिक बैंकों की माँग जमा पर निर्भर करती है।
8. वाणिज्यिक बैंक की साख विस्तार क्षमता इनके नकद आरक्षित अनुपात पर निर्भर करती है।
9. माँग जमा बैंक की उस जमा को कहते हैं जिसे जमाकर्ता किसी भी समय चेक जारी करके नहीं निकलवा सकता।
10. मुद्रा की पूर्ति तथा उच्च शक्ति मुद्रा का अनुपात है।

17.7 प्रतियोगी बैंकिंग एवं साख विस्तार (Competitive Banking and Credit Expansion)

नोट

संयुक्त स्टॉक कंपनियाँ जैसे वाणिज्यिक बैंक भी लाभ के लिए काम करते हैं। साख विस्तार के अनुसार दृष्टिकोण के अनुसार वाणिज्यिक बैंक साख विस्तार माध्यम से अपने लाभ को सर्वाधिक करते हैं। लेकिन साख विस्तार हमेशा संभव नहीं हो सकता यदि वाणिज्यिक बैंक लोगों की प्राथमिक जमा एवं नकद जमा के आने की अपेक्षा करेंगे। यदि लोग अपनी प्राथमिक जमा में वृद्धि करने का निर्णय लेंगे तब वाणिज्यिक बैंक अपने द्वितीयक जमा की वृद्धि कर पाएँगे। बैंक लोगों की प्राथमिक जमा की सहायता से द्वितीयक जमा में वृद्धि एवं साख का विस्तार करते हैं। लेकिन वर्तमान प्रतियोगी युग में वाणिज्यिक बैंक अपने लाभ को सर्वाधिक करने के लिए एवं साख विस्तार करने के लिए दूसरे उपाय की कोशिश करते हैं। बैंक अपने पास अत्यधिक आरक्षित कोष (Excess Reserves) रखते हैं जो कि मुद्रा बाजार में बढ़ती हुई साख आवश्यकता को पूरा करता है। साख में विस्तार एवं लाभ में वृद्धि करने के लिए वाणिज्यिक बैंक अपनी रणनीति की योजना मुद्रा बाजार की माँग तथा पूर्ति प्राचलों के अनुसार करते हैं।

प्रतियोगी बैंकिंग व्यवस्था में बैंकों की साख की मात्रा ऋण की माँग एवं ऋण की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। ऋण की माँग प्रचलित ब्याज दर पर निर्भर करती है एवं ऋण की पूर्ति जमा की मात्रा एवं ब्याज दर अंतराल (Spread of Interest Rate)) बैंक लोगों से जमा स्वीकार करने के लिए कितनी ब्याज दर देते हैं एवं लोगों को ऋण देने पर कितनी ब्याज दर वसूलते हैं इसका अंतर ब्याज दर अंतराल है) पर निर्भर करती है। ब्याज दर अंतराल ऋण पूर्ति रेखा एवं जमा पूर्ति रेखा द्वारा निर्धारित होता है। ऋण की माँग ब्याज दर के साथ विपरीत रूप से संबंधित है। अत्यधिक ब्याज दर ऋण की माँग को घटा देता है एवं कम ब्याज दर ऋण माँग को बढ़ाता है। इस प्रकार ऋण माँग वक्र नीचे को गिरने वाली एक रेखी होती है। ऋण की पूर्ति एवं जमा की पूर्ति ब्याज दर के साथ प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है। ऊँची ब्याज दर पर बैंक अधिक ऋण पूर्ति करता है एवं लोग अधिक नकद बैंक में जमा करते हैं। दोनों ऋण पूर्ति एवं जमा पूर्ति रेखा का ढलान ऊपर की ओर होता है।

चित्र 16.2 में S_L ऋण पूर्ति रेखा एवं S_d जमा पूर्ति रेखा है। D_L ऋण का माँग वक्र है। संतुलित ब्याज दर Or है जहाँ $D_L = S_L$। यह वो ब्याज दर है जो बैंक लोगों से ऋण प्रदान करने के लिए प्राप्त करता है। Or_1 ब्याज दर वह ब्याज दर है जो बैंक लोगों को जमा राशि पर देते हैं। दोनों ब्याज दर का अंतर rr_1 (ब्याज दर अंतराल) बैंकों द्वारा ऋण पूर्ति मात्रा का निर्णय करता है।

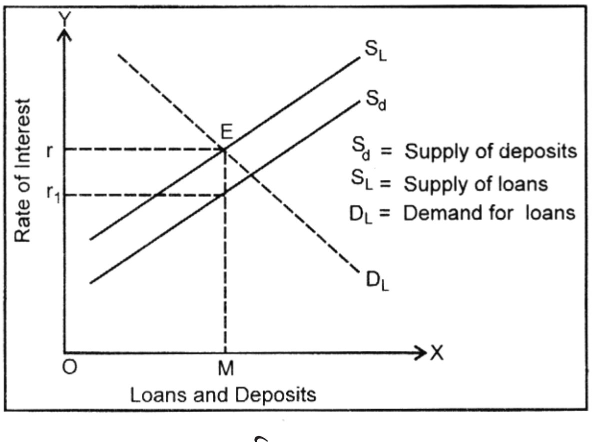

चित्र 17.2

चित्र में ब्याज दर अंतराल को स्थिर माना गया है। इसलिए ऋण पूर्ति वक्र एवं जमा पूर्ति वक्र परस्पर समानांतर है। बैंकों द्वारा ऋण पूर्ति की मात्रा ब्याज दर अंतराल एवं जमा पूर्ति पर निर्भर करती है। निःसंदेह जब मुद्रा बाजार में तेजी की स्थिति पायी जाती है तब ऋणों की पूर्ति तथा ऋणों की माँग को समायोजित करने के लिए बैंकों के अत्यधिक आरक्षित कोष (Excess Reserves) की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।

नोट

17.8 क्या बैंक वास्तव में साख का निर्माण करते हैं? (Do Banks Really Create Credit?)

अर्थशास्त्रियों में इस संबंध में मतभेद पाया जाता है कि क्या वास्तव में साख का निर्माण बैंक करते हैं या जमाकर्ता करते हैं। वाल्टर लीफ तथा कैनन (Walter Leaf and Canon) का यह मत है कि बैंक स्वयं साख का निर्माण नहीं करते। साख निर्माण का कार्य जमाकर्ता करते हैं जो अपनी जमा द्वारा बैंकों को मौद्रिक साधन प्रदान करते हैं। बैंकों द्वारा इस जमा का एक भाग ऋण के रूप में दिया जाता है। ये ऋण साख निर्माण में सहायक होते हैं। यदि जमाकर्ता अपना धन बैंकों में जमा न कराए तो बैंक साख का निर्माण नहीं कर पाएँगे। बैंकों की तुलना एक क्लॉक रूम (Cloak room) से की जा सकती है। मान लीजिए, एक पार्टी में 50 मेहमान एक जैसे ओवर कोट लेकर आते हैं। जिन्हें वे क्लॉक रूम में जमा करा देते हैं। यह भी मान लीजिए की पार्टी रात के 12 बजे तक चलेगी। क्लॉक रूम का चपरासी 10 ओवर कोट अपने पास रख कर शेष 40 ओवर कोट अन्य लोगों को रात के 11.30 बजे तक किराये पर दे देता है। वह अपने पास 10 ओवर कोट इसलिए रखता है जिससे यदि कुछ लोग रात के 12 बजे से पहले पार्टी से जाना चाहते हैं तो उन्हें ये कोट दे सके। क्या इस प्रकार 40 ओवर कोट किराए पर देकर चपरासी ने 40 कोटों का निर्माण किया है? ऐसा सरासर गलत लगता है। इसी प्रकार, बैंक भी जमाकर्ताओं का रुपया उधार देकर साख का निर्माण नहीं करते। इसी बात को ध्यान में रखते हुए केनन ने कहा है, **"बैंकों द्वारा साख निर्माण की बात मूर्खता है और प्रत्येक व्यावहारिक बैंकर जानता है कि वह साख, मुद्रा अथवा अन्य किसी वस्तु का निर्माता नहीं है, वरन् एक ऐसा व्यक्ति है जो उन व्यक्तियों से जिनके पास साधन हैं, अन्य व्यक्तियों को जो उनका प्रयोग कर सकते हैं, ऋण दिलाने की सुविधा प्रदान करता है।"** (The talk of credit creation by banks is all moon-shine and that every practical banker knows that he is not a creator of credit or money or anything else but a person who facilitates the lending of resources by the people who have them, to those who can use them.–**Cannon**)

परंतु आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार वाल्टर लीफ तथा केनन का उपरोक्त विचार उचित नहीं है, क्योंकि बैंक प्राथमिक जमा से अधिक रुपया उधार दे देते हैं। इसलिए यह मानना ही पड़ेगा कि बैंक साख का निर्माण करते हैं। हार्टले विदर्स ने ठीक ही कहा है कि, **"ऋण जमाओं को जन्म देते हैं और उनके निर्माण का श्रेय बैंकों को है।"** (Loans make deposits and the initiative of creating them goes to the banks.–**Hartley Withers**)

लिप्से तथा स्टीनर का भी यह विश्वास है कि साख का विस्तार स्वचालित नहीं है। यह बैंकों के निर्णय पर निर्भर करता है। यदि बैंक आरक्षित नकदी निधि में होने वाली वृद्धि का प्रयोग नहीं करते तो साख का विस्तार नहीं हो पाएगा।

17.9 भारत में मुद्रा पूर्ति (Money Supply in India)

1977 से RBI भारत में चार मौद्रिक समुच्चय माप प्रयोग कर रही है वे हैं M_1, M_2, M_3 एवं M_4। M_1 सकीर्ण माप है जबकि M_3 मुद्रा पूर्ति का विस्तृत माप है। प्रथम पंचवर्षीय योजना से आज तक M_1 एवं M_3 दोनों में द्रुत गति से वृद्धि हो रही है। मुद्रा पूर्ति के करेंसी संघटक एवं बैंक जमा संघटक दोनों की भी काफी वृद्धि हुई है। योजना के प्रारंभिक वर्षों में करेंसी संघटक की वृद्धि जमा संघटकों से अधिक हो रही थी। लेकिन वर्तमान समय में माँग जमा संघटक की वृद्धि करेंसी की अपेक्षा तेजी से हो रही है इसका मुख्य कारण बैंकिंग सेवा सुविधाओं में व्यापक वृद्धि है। तालिका 17.2 मुद्रा पूर्ति के M_1 एवं M_3 समुच्चयों की वृद्धि को दर्शाती है–

नोट

तालिका 17.2. मुद्रा पूर्ति (M_1 एवं M_3)
[Money Supply (M_1 and M_3)]

Year (1)	M_1 (2)	M_3 (3)
1970–71	7,321	10,958
1980–81	23,117	55,358
1990–91	92,892	2,65,828
2000–02	4,22,843	14,98,355
2004–05	6,46,263	22,33,164
2005–06	8,26,375	27,29,545
2006–07	7,65,195	33,10,278

(Source : RBI Bulletin 2006, Statistical Outline of India, 2007-08)

तालिका 17.2 से यह स्पष्ट होता है कि 1970–71 से 2006–07 तक M_1 एवं M_3 की वृद्धि द्रुत गति से हुई है। M_3 की द्रुत वृद्धि (लगभग 302 गुणक) समय जमा की वृद्धि के कारण हुई है। M_1 की व्यापक वृद्धि माँग जमा में वृद्धि के कारण हुई है।

भारत में विभिन्न योजना अवधियों में मुद्रा की पूर्ति, राष्ट्रीय आय तथा कीमत स्तर में होने वाले प्रतिशत वृद्धि दर का ज्ञान अग्रलिखित तालिका 17.3 से प्राप्त होता है–

तालिका 17.3 मुद्रा की पूर्ति, राष्ट्रीय आय तथा कीमत स्तर में प्रतिशत वृद्धि दर
(Percentage Growth Rate in Money Supply, National Income and Price Level)

Period	Growth Rate in Money Supply (M_3)	Growth Rate in National Income	Growth Rate in Price-level
First Plan	2.2	3.7	– 3.6
Scond Plan	5.3	4.1	+ 6.3
Third Plan	9.1	2.4	+ 5.8
Fourth Plan	15.5	3.3	+ 9.0
Fifth Plan	17.9	5.0	+ 6.3
Sixth Plan	16.7	5.4	+ 9.7
Seventh Plan	17.5	5.7	+ 6.7
Eighth Plan	13.8	5.8	+ 6.6
Ninth Plan	14.2	5.6	+ 3.9
Tenth Plan (2002-03)	16.4	8.7	+ 5.2

(Source : Statistical Outline of India, 2007-08)

नोट

यह आम धारणा पाई जाती है कि मुद्रा की पूर्ति और कीमत स्तर में घनिष्ठ संबंध होता है। जब मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होती है तब माँग में वृद्धि द्वारा कीमतों में भी वृद्धि होती है। निःसंदेह, मुद्रा की पूर्ति का सीधा प्रभाव कीमतों पर पड़ता है किंतु मुद्रा के परिमाण सिद्धांत (Quantity Theory of Money) के मुख्य समर्थक इरविंग फिशर (Irving Fisher) से इस बात पर सहमत होना कठिन है कि मुद्रा की मात्रा तथा कीमत स्तर में सीधा तथा समानुपातिक संबंध है। उदाहरण के लिए उपरोक्त तालिका में दिखाया गया है कि प्रथम योजना की अवधि में, कीमत स्तर में कमी हुई जबकि मुद्रा पूर्ति में वृद्धि हुई है। नौवीं योजना की अवधि में कीमत स्तर में केवल 3.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि मुद्रा की पूर्ति में 14.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई। भारत जैसे अल्पविकसित देश में, अर्थव्यवस्था का एक बहुत बड़ा भाग अमौद्रिक (Non-monetized) होता है। इस क्षेत्र में सभी लेन-देन वस्तु विनिमय के आधार पर किए जाते हैं। यदि मुद्रा पूर्ति का एक भाग इस क्षेत्र के मौद्रिकरण के लिए प्रयोग किया जए तो इससे माँग में वृद्धि होगी किंतु कीमतों में कोई वृद्धि नहीं होगी। अतः भारत जैसे अल्पविकसित देशों में, यदि मुद्रा की पूर्ति में हुई वृद्धि का प्रयोग उत्पादन को बढ़ाने के लिए और अमौद्रिक क्षेत्रों का मौद्रिकरण करने के लिए किया जाए, तो कीमतों में वृद्धि नहीं होगी।

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि मुद्रा की पूर्ति का कीमतों पर प्रभाव तो पड़ता है किंतु इन दोनों में कोई विशेष संबंध नहीं है। मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि होने के परिणामस्वरूप कीमतों में कितनी वृद्धि होगी यह अनेक कारकों पर निर्भर करता है, विशेषकर अर्थव्यवस्था में उत्पादन की वृद्धि पर। प्रो. बी. एन. पण्डित के अनुसार, भारत में मुद्रा पूर्ति के बढ़ने और इसके कीमतों पर प्रभाव पड़ने में लगभग एक वर्ष का कालांतर (Time-Lag) पाया जाता है। योजनाओं की अवधि में मुद्रा की पूर्ति की वृद्धि दर औसतन 14 प्रतिशत रही है जबकि विकास की दर (राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर) 4.1 प्रतिशत, तथा कीमत स्तर की वृद्धि दर (विकास दर) 6.6 प्रतिशत रही है।

17.10 मुद्रा अर्थव्यवस्था में कैसे प्रचलित होती है?

(How Does Money Get into the Economy?)

एक इकाई मुद्रा अर्थव्यवस्था में कैसे प्रचलित होती है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जिसको अर्थशास्त्र के एक छात्र को समझना चाहिए। विश्व के अधिकांश देशों में केंद्रीय बैंक नोट एवं सिक्के जारी करता है। एक साधारण व्यक्ति के लिए केंद्रीय बैंक (भारत में RBI) मुद्रा छापता है एवं अर्थव्यवस्था में मुद्रा का प्रचलन करता है। लेकिन किन शर्तों एवं परिस्थितियों में केंद्रीय बैंक मुद्रा छापता है एवं प्रचलित करता है यह प्रश्न इतना सरल नहीं जितना कि एक साधारण व्यक्ति सोचता है।

सरकार बजटीय घाटे को पूरा करने के लिए केंद्रीय बैंक से अपनी सिक्योरिटी जमा कराकर ऋण लेती है। केंद्रीय बैंक, अधिक मुद्रा छापकर सरकार को ऋण देता है एवं सरकार यह ऋण मुद्रा अलग-अलग विकासात्मक एवं गैर विकासात्मक कार्यों में व्यय करती है। अलग-अलग प्रोजेक्ट पर सरकार द्वारा किए जाने वाले व्यय से देश के लोग अपनी आय, लगान, मजदूरी, लाभ एवं ब्याज के रूप में प्राप्त करते हैं। इस रूप में करेंसी अर्थव्यवस्था में प्रचलित होती है।

☞ **लिप्सी एवं क्रिस्टल** के अनुसार केंद्रीय बैंक अर्थव्यवस्था को उच्च शक्ति मुद्रा की तब पूर्ति करता है जब वे प्रतिभूतियाँ खरीदते हैं (साधारण : सरकारी प्रतिभूतियाँ)। सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए वे नई उच्च शक्ति मुद्रा छापते हैं। (**Lipsey and Chrystal:** The central bank gets high powered money into the economy simply by buying securities (usually government debt instruments). It pays for these purchases with newly issued high powered money.)

17.11 क्या अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति केंद्रीय बैंक की इच्छा (समझ-बूझ) पर निर्भर करती है?

(Does Supply of Money in the Economy Depend on the Discretion of the Central Bank?)

नहीं, अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति केंद्रीय बैंक की इच्छा पर निर्भर नहीं करती। नि:संदेह, देश का केंद्रीय बैंक देश की करेंसी के निर्गमन (जारी करना) का अधिकारी होता है। किंतु मुद्रा की कुल पूर्ति केवल केंद्रीय बैंक की समझ–बूझ (Discretion) पर निर्भर नहीं करती। एक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की कुल पूर्ति अर्थव्यवस्था के निम्नलिखित तत्त्वों के व्यवहार तथा इच्छा पर निर्भर करती है–

(*i*) देश का केंद्रीय बैंक; (*ii*) देश के व्यापारिक बैंक; (*iii*) आम जनता।

- उच्च शक्ति मुद्रा जो कि मुद्रा गुणक के आधार का कार्य करती है की मात्रा निश्चित करते हुए केंद्रीय बैंक की पूर्ति का निर्धारण करता है।
- अपने नकद निधि अनुपात (CRR), जो कि साख गुणक का आधार होता है, को निश्चित करते हुए, व्यापारिक बैंक मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करते हैं।
- आम जनता अपनी तरलता पसंदगी को निश्चित करते हुए मुद्रा की पूर्ति को प्रभावित करती है। यह व्यापारिक बैंकों के नकद निधि अनुपात (CRR) का तथा उनकी साख निर्माण करने की शक्ति का निर्धारण करती है।

मुद्रा की चलन गति (Velocity of Money) की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। इसका अभिप्राय है कि मुद्रा की एक इकाई (जैसे एक रुपए का नोट या सिक्का) को कितनी बार, विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है। मुद्रा की चलन गति को यदि प्रति इकाई समयावधि या एक प्रवाह धारणा के रूप में मापा जाए तो यह भी मुद्रा पूर्ति की एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक होती है।

मुद्रा की आदर्श पूर्ति (Ideal Supply of Money)

विद्यार्थियों को परामर्श दिया जाता है कि वे इस पैराग्राफ को ध्यान से पढ़ें जिससे उन्हें इस बात का ज्ञान हो सके कि मुद्रा की पूर्ति कैसे अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रिया को प्रभावित करती है।

मुद्रा की पूर्ति का प्रभाव कुल व्यय पर पड़ता है। परिणामस्वरूप, व्यापारिक गतिविधियाँ, उत्पादन तथा रोजगार सभी इससे प्रभावित होते हैं। प्रश्न उठता है कि एक पूर्ण रोजगार वाली अर्थव्यवस्था, जिसमें उत्पादन का कोई भी साधन बेकार नहीं होता, द्वारा उत्पादित उत्पादन को खरीदने के लिए कितनी मुद्रा की पूर्ति की आवश्यकता होती है। मुद्रा की इस पूर्ति को ही आदर्श पूर्ति कहा जाता है। इस पूर्ति के परिणामस्वरूप देश की उत्पाादन क्षमता का पूर्ण उपयोग करना संभव हो जाता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति में यदि मुद्रा की पूर्ति आदर्श पूर्ति से अधिक हो जाए तो मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी और कीमतें तेजी से बढ़ने लगेंगी। इसके विपरीत, यदि मुद्रा की पूर्ति आदर्श पूर्ति से कम होती है तो कीमतें घटने लगेंगी, मंदी छा जाएगी और चारों तरफ बेराजगारी फैल जाएगी। अत: मुद्रा की पूर्ति इतनी होनी चाहिए जिससे कि देश में उन सब वस्तुओं, जिनका उत्पादन किया है, को खरीदा जा सके ताकि मुद्रास्फीति या विस्फीति की स्थिति उत्पन्न न हो।

ध्यान रहे, कि मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन का कुल व्यय पर प्रभाव केवल तभी पड़ेगा यदि लोग मुद्रा को खर्च करेंगे न कि उसे नकद रूप में अपने पास रखेंगे। वास्तव में, मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन से लोगों की तरलता में भी परिवर्तन हो जाता है। लोग अपनी परिसंपत्तियों (Assets) को मौद्रिक, वित्तीय तथा वास्तविक पूँजी के रूप में अपने पास रखते हैं। मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन के फलस्वरूप लोगों की मौद्रिक परिसंपत्तियों में भी परिवर्तन

नोट

हो जाता है। यदि मौद्रिक परिसंपत्तियों में परिवर्तन के कारण लोग अधिक धन वास्तविक परिसंपत्तियों, जैसे—मकान, कार, TV सेट, इत्यादि पर खर्च करना चाहेंगे तो कुल व्यय, और इसके साथ ही राष्ट्रीय आय, में वृद्धि होगी। इसके विपरीत, यदि लोग अपनी मुद्रा को वित्तीय परिसंपत्तियों, जैसे—शेर, प्रतिभूतियाँ आदि पर खर्च करना चाहेंगे तो इनकी कीमतें बढ़ेंगी और ब्याज की दर घटेगी। ब्याज की निम्न दर निवेश को प्रोत्साहित करेगी और राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी। किंतु यदि लोग अपनी बढ़ी हुई मौद्रिक परिसंपत्तियों को तरल रूप में रखना पसंद करेंगे तो कुल व्यय में कोई परिवर्तन नहीं होगा और न ही राष्ट्रीय आय में कोई परिवर्तन होगा। अत: केवल मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन होने से ही कीमत स्थिरता या पूर्ण रोजगार का उद्देश्य प्राप्त नहीं हो सकता। लोगों की मुद्रा के लिए माँग की गणना करना भी उतना ही आवश्यक है।

मुख्य बिंदु (Key Points)

- **मुद्रा पूर्ति (Money Supply)**—यह अर्थव्यवस्था में उपलब्ध मुद्रा की मात्रा को दर्शाती है। यह एक स्टॉक अवधारणा है जो एक निर्दिष्ट समय पर मापी जाती है।
- **मुद्रा पूर्ति के संघटक (Components of Money Supply)**—(*i*) करेंसी (*ii*) माँग जमा।
- **भारत में प्रयोग होने वाले मौद्रिक समुच्चय (Monetary Aggregates used in India)**—पुराने माप के अनुसार यह; M_1, M_2, M_3 एवं M_4 है। नयी माप के अनुसार यह NM_2, NM_3, L_1, L_2 एवं L_3 है।
- **मुद्रा पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारक (Factors Influencing Money Supply)**—(*i*) मौद्रिक आधार का आकार (*ii*) नकदी तथा माँग जमा का अनुपात (*iii*) चलन की गति।
- **मुद्रा गुणक (Money Multiplier)**—यह मुद्रा पूर्ति में परिवर्तन एवं मौद्रिक आधार परिवर्तन का अनुपात है।
- **उच्च शक्ति मुद्रा (High Powered Money)**—यह वो मुद्रा है जो केंद्रीय बैंक या सरकार द्वारा निर्गमित की जाती है और जनता तथा वाणिज्यिक बैंकों द्वारा अपने पास रखी जाती है।
- **साख गुणक (Credit Multiplier)**—यह कुल जमा में परिवर्तन एवं प्राथमिक जमा में परिवर्तन का अनुपात है।
- **माँग जमा (Demand Deposits)**—यह बैंकों के पास लोगों के द्वारा रखी गयी जमा राशि है जिसको किसी भी समय चेक के माध्यम से निकाला जा सकता है।
- **प्राथमिक जमा (Primary Deposits)**—लोगों द्वारा बैंकों में नकद रूप में जमा की गयी राशि को प्राथमिक जमा कहा जाता है।
- **व्युत्पन्न अथवा द्वितीयक जमा (Derivative or Secondary Deposits)**—व्युत्पन्न जमा प्राथमिक जमा के परिणामस्वरूप होती है क्योंकि वाणिज्यिक बैंक प्राथमिक जमा का एक भाग नकद के रूप में रखकर द्वितीयक जमा का सृजन करते हैं।
- **नकद आरक्षित अनुपात (Cash Reserve Ratio)**—कुल जमा का वह भाग जो वाणिज्यिक बैंक अपने पास रखते हैं उसको नकद आरक्षित अनुपात कहा जाता है।
- **अत्यधिक आरक्षित जमा (Excess Reserves)**—आवश्यक नकद आरक्षित अनुपात से बैंकों के पास रहने वाले अधिक नकद अनुपात को अत्यधिक आरक्षित जमा कहा जाता है।
- **साख सृजन की सीमाएँ (Limitations of Credit Creation)**—(*i*) नकद आरक्षित अनुपात: नकद आरक्षित अनुपात के अधिक होने से साख सृजन की मात्रा कम होगी। (*ii*) प्राथमिक जमा की मात्रा: अधिक प्राथमिक जमा अधिक साख सृजन क्षमता को दर्शाता है। (*iii*) लोगों की बैंकिंग आदतें : लोगों द्वारा अधिक सेवाओं के उपयोग से साख सृजन अधिक होता है। (*iv*) केंद्रीय बैंक की साख नीति : केंद्रीय बैंक की सस्ती

नोट

साख नीति अधिक साख सृजन सुविधा प्रदान करती है। (*v*) अन्य बैंकों की साख नीति: यदि सभी बैंक एकजुटता से कार्य करेंगे तो साख सृजन क्षमता में वृद्धि होगी। (*vi*) जमाकर्ताओं का विश्वास (*vii*) अच्छे उधार लेने वालों की उपलब्धता (*viii*) व्यापारिक एवं औद्योगिक अवस्थाएँ।

- **व्यापारिक बैंकों की साख निर्माण करने की शक्ति का सीमांकन करने वाले दो मुख्य मापक (Two Principal Parameters that Delimit the Credit Creation Capacity of the Commercial Banks)**–(*i*) वाणिज्यिक बैंकों का नकद आरक्षण (*ii*) केंद्रीय बैंक का नकद आरक्षण अनुपात।

17.12 सारांश (Summary)

- मुद्रा की चलन गति (Velocity of Money) की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। इसका अभिप्राय है कि मुद्रा की एक इकाई (जैसे एक रुपए का नोट या सिक्का) को कितनी बार, विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग किया जाता है। मुद्रा की चलन गति को यदि प्रति इकाई समयावधि या एक प्रवाह धारणा के रूप में मापा जाए तो यह भी मुद्रा पूर्ति की एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक होती है।

17.13 शब्दकोश (Keywords)

- समझ-बूझ (Discretion) – विवेक।
- अमौद्रिक (Non-monetized) – जो मुद्रा न हो।

17.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मुद्रा गुणक से आप क्या समझते हैं?
2. साख सृजन की सीमाओं का वर्णन कीजिए।
3. मुद्रा अर्थव्यवस्था में कैसे प्रचलित होती है?
4. क्या अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति केंद्रीय बैंक की इच्छा पर निर्भर करती है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. कुल जोड़	2. लाभ	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. सही।		

17.15 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010।

2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010।

नोट

इकाई–18: आई एस-एल एम विश्लेषण
(IS-LM Analysis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

18.1 IS वक्र और इसकी व्युत्पत्ति (उत्पाद बाज़ार संतुलन)
[IS Curve and Its Derivation (Product Market Equilibrium)]

18.2 LM वक्र एवं इसकी व्युत्पत्ति (मुद्रा बाजार संतुलन)
[LM Curve and Its Derivation (Money Market Equilibrium)]

18.3 सारांश (Summary)

18.4 शब्दकोश (Keywords)

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- IS वक्र की व्युत्पत्ति जानने हेतु।
- L M वक्र की उत्पत्ति जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

अब हम संतुलन GDP ब्याज की दर के एक साथ निर्धारण का विश्लेषण करेंगे। संतुलन ब्याज की दर से अलग संतुलन GDP समष्टि अर्थव्यवस्था संतुलन का केवल एक आंशिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। ब्याज की दर निवेश के स्तर को प्रभावित करती है इसलिए वास्तविक GDP के स्तर को भी। इसी भाँति GDP का स्तर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की माँग के जरिए ब्याज की दर को प्रभावित करता है। जब ब्याज की दर में वृद्धि हो रही हो तब निवेश में विशेष वृद्धि के फलस्वरूप, एक अर्थव्यवस्था GDP के स्तर को विविध सीमा तक बढ़ा नहीं सकती। इसी भाँति मुद्रा पूर्ति में वृद्धि के विस्तार (Extent of Increase in Money Supply) की सीमा तक ब्याज की दर को कम नहीं किया जा सकता क्योंकि मुद्रा पूर्ति में वृद्धि (निम्न ब्याज दर तथा उच्च निवेश के जरिए) तथा उच्च GDP मुद्रा की माँग में वृद्धि करती है, जिसका अर्थ है ब्याज की दर में वृद्धि। अतएव **परंपरावादी/क्लासिकी** विचारधारा कि ब्याज की दर एक वास्तविक घटना (Real Phenomenon) है और यह केवल बचत तथा निवेश द्वारा निर्धारित होती है। और **जे०एम० केन्ज** विचारधारा की यह एक मौद्रिक घटना (Monetary Phenomenon) है और इसका निर्धारण मुद्रा की भाग और पूर्ति द्वारा होता है, इन दोनों की विचारधाराओं को चुनौती दी गई है। **जे आर हिक्स** तथा **हेन्सन** (J.R. Hicks and Hansen) ने आई **एस-एल एम** (IS-LM) विश्लेषण द्वारा नए विचार का प्रतिपादन किया

नोट

है जो वास्तविक क्षेत्र तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों को एकीकृत करता है। ब्याज की दर तथा वास्तविक GDP का एक साथ निर्धारण और AD वक्र की वैकल्पिक व्युत्पत्ति (Alternative Derivation of AD Curve) आई एस-एल एम विश्लेषण का मूलाधार (Cornerstone) है। वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर के निर्धारण में **जे०आर०हिक्स** तथा **हेन्सन** चूँकि वास्तविक तथा मौद्रिक क्षेत्र दोनों को संश्लेषित (Synthesise) करते हैं, इसलिए उनके दृष्टिकोण को **'हिक्स-हेन्सन संश्लेषण'** (Hicks-Hansen Synthesis) कहा जाता है। IS तथा LM वक्र के संतुलन का अर्थ है मुद्रा की माँग और पूर्ति के बीच समानता एवं बचत तथा निवेश के बीच समानता द्वारा संतुलन ब्याज की दर तथा वास्तविक GDP के संतुलन स्तर पर निर्धारण। ब्याज के निर्धारण का यह दृष्टिकोण ब्याज दर निर्धारण का आधुनिक सिद्धांत कहलाता है। वर्तमान अध्याय यह व्याख्या करता है कि आई एस तथा एल एम (IS-LM) वक्र कैसे व्युत्पन्न (Derive) किए जाते हैं और संतुलित वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर का निर्धारण कैसे होता है। इसके अतिरिक्त आई एस-एल एम विश्लेषण से हम समग्र माँग वक्र (Aggregate Demand Curve) भी व्युत्पन्न करते हैं और इस बात पर ध्यान देंगे कि आई एस अथवा एल एम में खिसकाव (Shift) समग्र माँग वक्र में खिसकाव कैसे लाता है।

नोट्स ब्याज की दर निवेश के स्तर को प्रभावित करती है।

18.1 IS वक्र और इसकी व्युत्पत्ति (उत्पाद बाज़ार संतुलन) (IS Curve an Its Derivation (Product Market Equilibrium))

IS वक्र ब्याज की दर और वास्तविक GDP के उस संयोग को प्रकट करता है जो बचत (S) तथा निवेश (I) के बीच समानता स्थापित करता है। **लिप्सी** तथा **क्रिस्टल** के अनुसार **"IS वक्र ब्याज की दर एवं वास्तविक GDP का संयोजन बिंदु है जो इच्छित व्यय एवं उत्पाद अथवा क्षरण एवं समावेश समानता की एकरूपता है। यह सरकारी व्यय, निर्यात, एवं स्वचालित उपभोग तथा दी हुई कर दरें और दिए हुए कीमत स्तर के मूल्यों के लिए खींचा जाता है।"** (The IS curve is the locus of interest rate and level of GDP that are consistent with equality between desired spending and output, or what is the same thing, injection and leakages. It is drawn for given values of government spending, exports, and autonomous consumption as well as for given tax rates and a given price level.–**Lipsey** and **Chrystal**)। अतएव IS वक्र अथवा IS फलन वस्तु बाजार संतुलन का संकेत देता है।

IS वक्र की व्युत्पत्ति में दो अवस्थाएँ आती हैं। पहली अवस्था में निवेश तथा ब्याज की दर में संबंध निवेश माँग फलन (Investment Demand Function) द्वारा स्थापित होता है और दूसरी अवस्था में हम यह व्याख्या करेंगे कि निवेश व्यय में परिवर्तन किस प्रकार वास्तविक GDP को प्रभावित करता है। ब्याज की दर तथा वास्तविक GDP को जोड़ कर वस्तु बाजार में हम संतुलन स्थापित करेंगे।

I. निवेश माँग फलन (The Investment Demand Function)

ब्याज दर (r) तथा निवेश (I) में संबंध (Relationship between r and I)

इससे अभिप्राय निवेश और ब्याज की दर के बीच विपरीत संबंध है। ब्याज की ऊँची दर पर, निवेश की वांछित दर कम और ब्याज की नीची दर पर, निवेश की वांछित दर अधिक होगी। निवेश और ब्याज की दर के बीच कार्यात्मक संबंध निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है:

नोट

$$I = I_a - br,\ b > 0$$

[यहाँ I : निवेश: I_a : स्वायत्त निवेश; r : ब्याज की दर; b : ब्याज की दर से निवेश व्यय की अनुक्रियाशील (Responsiveness)]

उपरोक्त निवेश फलन प्रकट करता है कि ब्याज की नीची दर का अर्थ है अधिक निवेश अथवा इस का उलट भी सही है (Vice-Versa)।

चित्र 18.1 में, II_1 निवेश माँग वक्र है जो निवेश और ब्याज की दर के बीच ऋणात्मक संबंध को प्रकट करता है। ब्याज की कम दर Or_1 पर, निवेश व्यय OI_0 है और ऊँची ब्याज दर Or पर निवेश व्यय OI है। यदि निवेश के स्वायत्त घटक (Autonomous Component) I_a में परिवर्तन आता है, तब निवेश माँग वक्र में खिसकाव आता है। I_a में वृद्धि II_1 में वृद्धि I_a में वृद्धि II_1 वक्र को दाईं और खिसका देगी और इसमें (I_a) कमी II_1 को बाईं ओर खिसका देगी।

क्या आप जानते हैं	ब्याज की दर में परिवर्तन, निवेश व्यय में परिवर्तन द्वारा, वास्तविक GDP को प्रभावित करता है।

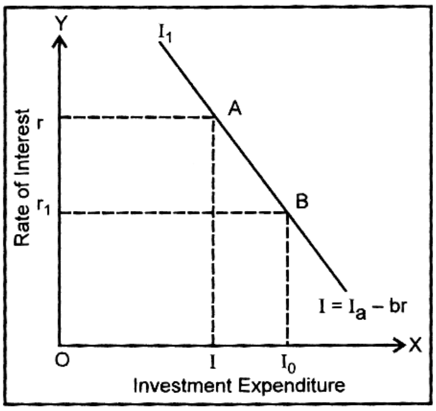

चित्र 18.1

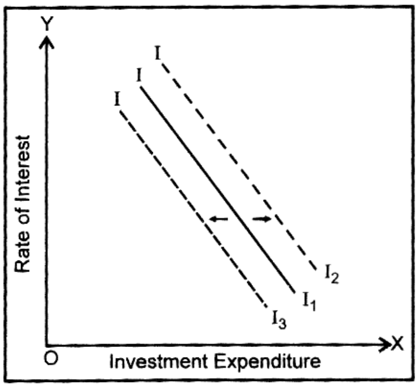

चित्र 18.2

चित्र 18.2 प्रकट करता है कि स्वायत्त निवेश में परिवर्तन के परिणामस्वरूप निवेश माँग फलन में खिसकाव आता है। स्वायत्त निवेश में वृद्धि निवेश वक्र II_1 को खिसका कर II_2 कर देगी और स्वायत्त निवेश में कमी निवेश वक्र II_1 को खिसका कर II_3 कर देगी।

II. जब 'r' में परिवर्तन होता है तब कैसे निवेश कुल व्यय तथा ळक्च के स्तर को प्रभावित करता है (How Investment Impacts Aggregate Expenditure and the Level of GDP when 'r' happens to Change?)

निवेश व्यय में परिवर्तन के कारण कुल व्यय में विविध सीमा तक परिवर्तन होते हैं। निवेश गुणक सिद्धांत के अनुसार यदि ब्याज की दर (r) स्थिर रहे तो I में परिवर्तन कुल व्यय (AE) तथा GDP में परिवर्तन का कारण बन सकता है। किंतु यदि ब्याज की दर (r) स्थिर न रहे (जैसाकि IS-LM मॉडल में) तब निवेश गुणक की प्रक्रिया उतनी सरल नहीं बनी रहेगी। चित्र 18.3 में दिखाया गया है कि कैसे ब्याज दर, (r) में परिवर्तन I को प्रभावित करता है तथा तदनुसार कुल व्यय AE तथा GDP के स्तर को प्रभावित करता है।

चित्र 3 के भाग (A) तथा भाग (B) ब्याज दर में परिवर्तन के साथ संतुलित वास्तविक GDP तथा निवेश व्यय के संबंध को प्रकट करते हैं। प्रारंभिक संतुलन बिंदु E पर है जहाँ AE = Y (भाग A) और S =I (भाग B)। में निवेश व्यय में II से I_1I_1 वृद्धि होने पर, भाग A में कुल व्यय वक्र AE से सरक कर AE_1 हो जाता है। इसके अनुसार, नया संतुलित GDP स्तर OY_1 होना चाहिए जहाँ AE_1 = Y और S = I_1I_1। परंतु GDP स्तर में वृद्धि मुद्रा की माँग में वृद्धि करती है तथा तदनुसार r में वृद्धि होती है ब्याज दर में वृद्धि की स्थिति में, निवेश व्यय कम हो जाता है एवं इसके फलस्वरूप निवेश वक्र I_1I_1 से I_2I_2 को पीछे की ओर खिसकता है। इसके अनुसार, भाग A में, वास्तविक कुल व्यय बढ़ कर AE_1 की बजाए, AE_2 हो जाता है। वास्तविक GDP, OY_1 के बजाए, OY_2 हो जाता है। ब्याज की ऊँची दर निवेश व्यय को कम कर देती है जो आगे कुल व्यय को कम कर देती है। यदि ब्याज की दर गिरती है तो इसके विपरीत होगा। अतएव ब्याज की दर में परिवर्तन, निवेश व्यय में परिवर्तन द्वारा, वास्तविक GDP को प्रभावित करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. आई.एस.एल.एम. विश्लेषण से हम .... माँग वक्र भी व्युत्पन्न करते हैं।
2. निवेश व्यय में परिवर्तन के कारण कुल व्यय में विविध सीमा तक .... होते हैं।

III. एक ओर r तथा GDP के विभिन्न स्तरों तथा दूसरी ओर S तथा I में समानता के बीच संबंध: IS वक्र (Relationship between different levels of r and GDP on the one hand and quality between S and I on the other: IS Curve)

हम देखते हैं कि 'r' के प्रत्येक स्तर के अनुरूप GDP का संतुलित स्तर होता है जो बचत (S) तथा निवेश (I) के बीच उसी के सदृश समानता बताता है। आपको इस संबंध में निश्चित होना चाहिए कि 'r' के उच्च स्तर का कार्य GDP का निम्न स्तर है और वचत (S) तथा निवेश (I) अनुरूप समानता है। दूसरी और 'r' के निम्न स्तर का अर्थ GDP का उच्च स्तर है (जो कि 1 तथा AE के उच्च स्तर के माध्यम से होता है) तथा उसके सदृश S तथा I के बीच समानता का होना है।

चित्र 18.4 (B) में IS वक्र को दर्शाया गया है जिसका

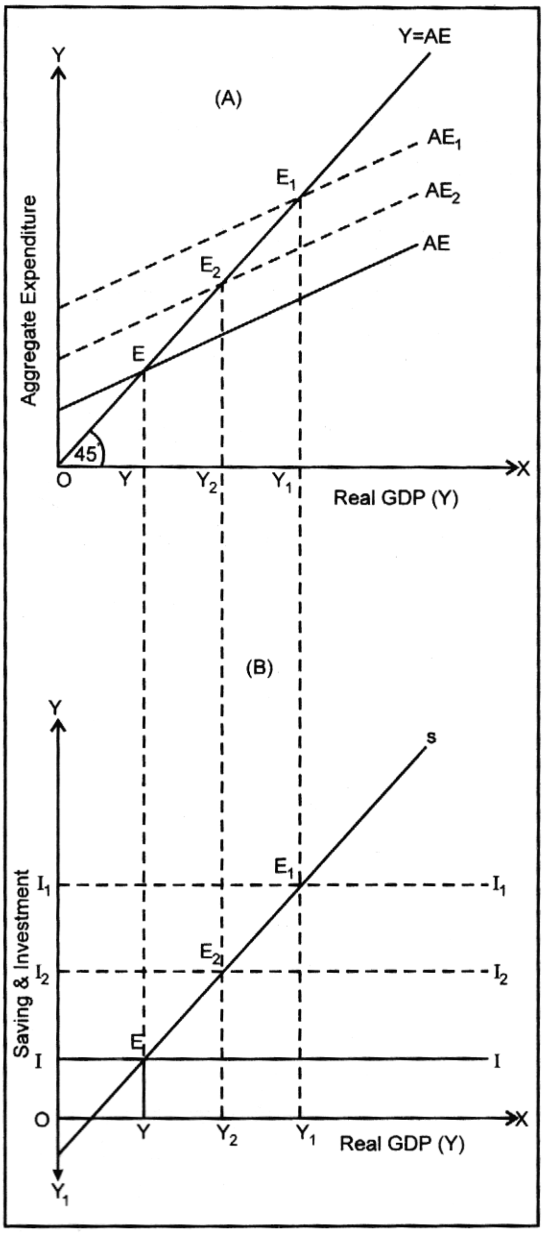

चित्र 18.3

नोट

चित्र 4(A) से व्युत्पन्न किया गया है। IS वक्र वास्तविक GDP एवं ब्याज दर के उस संयोजन को दर्शाता है जहाँ अर्थव्यवस्था के इच्छित व्यय कुल उत्पाद के बराबर है। भाग-B में दिए हुए ब्याज दर Or पर संतुलित वास्तविक GDP स्तर OY है जिसका भाग A में AE रेखा एवं समग्र उत्पाद रेखा को बराबर करके निर्धारण किया गया है। वास्तविक GDP एवं ब्याज दर के इस संयोजन (OY, Or) को भाग B में A में बिंदु द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार भाग B में B बिंदु OY_1 वास्तविक GDP स्तर एवं Or_1 ब्याज दर संयोजन है। Or_2 ब्याज दर पर वास्तविक GDP स्तर OY_2 है जिसे भाग B में C बिंदु द्वारा दर्शाया गया है वास्तविक GDP एवं ब्याज दर के ये सभी संयोजन बिंदु (जैसे A,B,C को) जोड़ने से हमें IS वक्र मिलता है। अत: IS वक्र पर स्थित प्रत्येक बिंदु वस्तु बाजार में संतुलन को दर्शाता है।

जो बिंदु IS वक्र के बाईं या दाईं ओर स्थित हैं, वे वस्तु बाजार में असंतुलन को प्रकट करते हैं। यदि हम बिंदु M को लें। (चित्र 4B में) यह IS वक्र से दाईं ओर है। इस बिंदु से ज्ञात होता है कि भाग A में AE तथा Y के बीच असंतुलन है। अर्थात कुल उत्पादन कुल व्यय से अधिक है अथवा बचत निवेश से अधिक है। ($Y > AE, \Rightarrow S > I$)। इसी भाँति IS वक्र के बाईं ओर कोई बिंदु, जैसे बिंदु N, GDP और ब्याज दर के उस संयोग का संकेत देता है जहाँ कुल व्यय कुल उत्पाद से अधिक है तथा निवेश बचत से अधिक ($AE > Y, \Rightarrow I > S$)।

IS वक्र का ढलान (Slope of IS Curve)

IS वक्र वास्तविक GDP स्तर एवं ब्याज दर के संयोजन से व्युत्पन्न होता है। इसका ढलान बाएँ से दाएँ नीचे की ओर होता है। इसका अर्थ यह है कि ऊँची ब्याज की दर कम निवेश व्यय के कारण वास्तविक GDP को कम करती है एवं कम ब्याज की दर अधिक निवेश के कारण वास्तविक GDP में वृद्धि लाती है। IS वक्र का चपटा (Flatter) होना या गहरा (Steeper) होना इस बात पर निर्भर करता है कि निवेश ब्याज दर परिवर्तन से कितना संवेदनशील है एवं गुणक का मूल्य कितना है। यदि ब्याज दर के एक निर्दिष्ट परिवर्तन से निवेश ज्यादा संवेदनशील है तो IS वक्र चपटा होगा। एवं यदि ब्याज दर के एक निर्दिष्ट परिवर्तन से निवेश कम संवेदनशील है तो IS वक्र गहरा होगा। गुणक का मूल्य भी IS वक्र के चपटे होने और गहरे होने का निर्धारण करता है। अधिक गुणक मूल्य की स्थिति में, निवेश में एक निर्दिष्ट परिवर्तन के कारण, AE की संवेदनशीलता अधिक होती है। (एक दी हुई ब्याज दर पर)। इसके कारण AE वक्र चपटा होता है जो IS वक्र के चपटा होने का उत्तरदायी है। इस सदृश गुणक मूल्य के कम

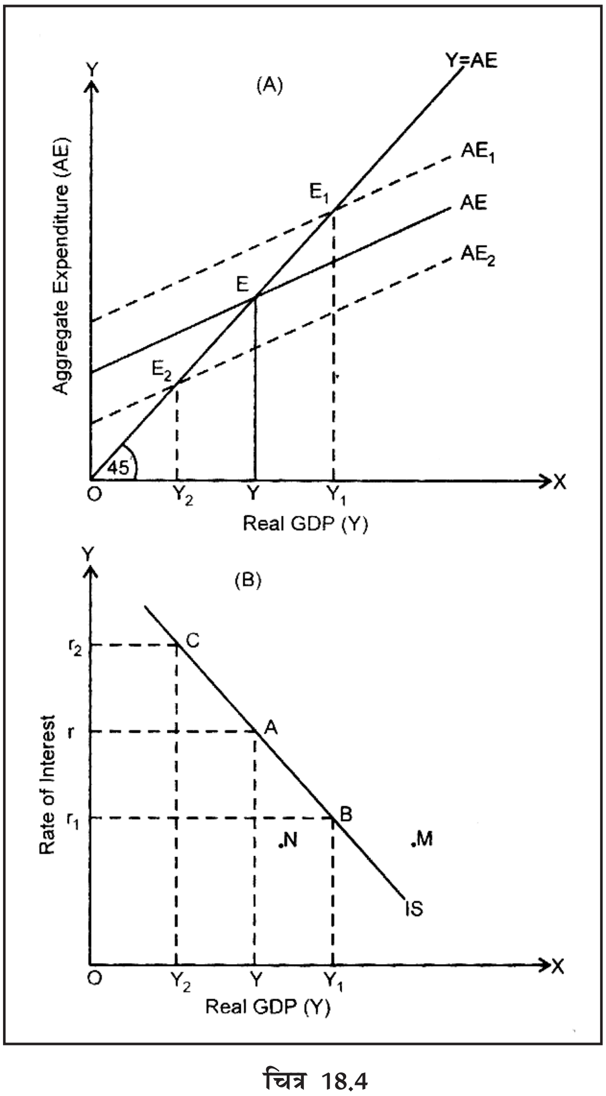

चित्र 18.4

होने की स्थिति में AE का वक्र गहरा होता है जिसके कारण IS वक्र भी सापेक्षत: गहरा होता है।

नोट

चित्र 18.5 में, IS वक्र को ऋणात्मक ढाल वाला दिखलाया गया है। गुणक के ऊँचे मूल्य के लिए अथवा ब्याज दर संवेदनशील निवेश के लिए IS वक्र चपटा (Flatter) है जैसे IS_1। गुणक के निम्न मूल्य के लिए या असंवेदनशील (Insensitive) निवेश के लिए IS वक्र गहरा (Steeper) है जैसे कि IS_2।

IS वक्र के ढलान को प्रभावित करने वाले दो प्राचल (Two Parameters Impacting Slope of IS Curve)

(*i*) **'r' के प्रति I की संवेदनशीलता** (Sensitivity of I to r): 'r' के प्रति I की संवेदनशीलता जितनी अधिक होती है, अर्थात् ब्याज दर में परिवर्तन के प्रति निवेश की जितनी अधिक अनुक्रियाशीलता (Responsiveness) होती है IS वक्र उतना ही अधिक चपटा होता है और इसके विपरीत भी।

(*ii*) **गुणक का मूल्य** (Value of Multiplier): गुणक का मूल्य जितना अधिक होता है अर्थात् निवेश में वृद्धि के कारण समग्र व्यय (AE) में उतनी ही अधिक वृद्धि होती है।

IS वक्र में खिसकाव (Shift in IS Curve)

IS वक्र में खिसकाव कुल व्यय के किसी स्वायत्त घटक में परिवर्तन के कारण होता है। दो क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में यह स्वायत्त उपभोग व्यय अथवा स्वायत्त निवेश व्यय के परिवर्तन के कारण हो सकता है। स्वायत्त निवेश व्यय में वृद्धि IS वक्र के बाईं ओर सरका देती है। इसका कारण सरल है। स्वायत्त निवेश व्यय में वृद्धि AE वक्र को ऊपर की ओर समानांतर खिसका देती है। AE वक्र का ऊपर की ओर खिसकाव IS वक्र को दाईं ओर सरका देता है।

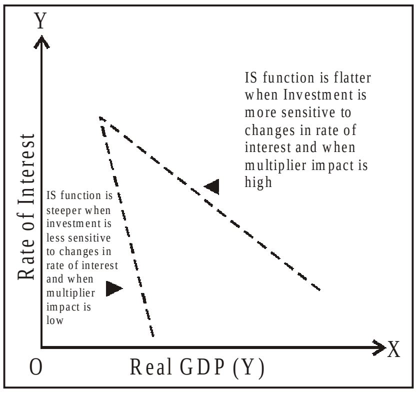

चित्र 18.5

चित्र 18.6 का (B) भाग प्रकट करता है कि IS वक्र IS से सरक कर IS_1 और IS से सरककर IS_2 हो जाता है। बहिर्जन्य (Exogenous) व्यय में वृद्धि (सरकार द्वारा किया गया स्वायत्त निवेश) AE रेखा को (भाग A में) ऊपर AE_1 पर सरका देती है। इसके परिणामस्वरूप, (ब्याज की समान दर Or पर) IS वक्र IS से सरककर IS_1 हो जाता है (भाग B में)। स्वायत्त व्यय के कम होने से AE वक्र नीचे के ओर AE से सरककर (भाग A में) AE_2 हो जाता है। इसके फलस्वरूप, IS वक्र पीछे की ओर सरककर (भाग B में) IS से IS_2 हो जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. यदि निवेश के स्वायत्त घटक Ia में परिवर्तन आता है, तब निवेश माँग वक्र में आता है–

(अ) खिसकाव	(ब) झुकाव
(स) बदलाव	(द) इनमें से कोई नहीं।

4. जब 'r' में परिवर्तन होता है तब कैसे निवेश कुल व्यय तथा .... के स्तर को प्रभावित करता है?

(अ) PGP	(ब) GDP
(स) ADP	(द) इनमें से कोई नहीं।

नोट

5. यदि ब्याज की दर (r) स्थिर न रहे (जैसा कि IS-LM मॉडल में) तब निवेश गुणक की प्रक्रिया उतनी नहीं बनी रहेगी–

(अ) सरल (ब) कठिन
(स) अस्थिर (द) इनमें से कोई नहीं।

6. IS वक्र वास्तविक GDP स्तर एवं ब्याज दर के संयोजन से होता है–

(अ) उत्पन्न (ब) व्युत्पन्न
(स) संपन्न (द) इनमें से कोई नहीं।

18.2 LM वक्र एवं इसकी व्युत्पत्ति (मुद्रा बाजार संतुलन)

(LM Curve and Its Derivation (Money Market Equilibrium)

LM वक्र वास्तविक GDP (Y) तथा ब्याज की दर (r) के विभिन्न संयोगों को प्रकट करती है जो मुद्रा की माँग (M) तथा मुद्रा की पूर्ति (L) के बीच समानता स्थापित करती है। अतएव यह वास्तविक GDP और ब्याज की बाजार दर के बीच संबंध तथा मुद्रा बाज़ार में संतुलन को दिखलाती है। **लिप्सी** तथा **क्रिस्टल** के अनुसार, **"LM वक्र, दी हुई मुद्रा पूर्ति तथा दी गई कीमत स्तर के लिए, GDP तथा ब्याज दर के संयोगों को प्रकट करती है, जो मुद्रा माँग तथा मुद्रा पूर्ति की समानता के साथ अपरिवर्तनशील है।"** (The LM curve plots combinations of GDP and the interest rate, for a given money supply and given price level, that are consistent with the equality of money demand and money supply–**Lipsey** and **Chrystal**)

LM वक्र की व्युत्पत्ति (Derivation) तीनों संबंधों के अध्ययन को आवश्यक बना देती है: (*i*) हम मुद्रा की माँग तथा ब्याज की दर के बीच संबंध स्थापित करते हैं। (*ii*) हम इस बात की व्याख्या करते हैं कि कैसे मुद्रा की माँग में परिवर्तन के द्वारा GDP में परिवर्तन ब्याज की दर को प्रभावित करता है। (*iii*) हम एक ओर 'r' के विभिन्न मूल्यों तक GDP के बीच संबंध स्थापित करते हैं तथा दूसरी ओर मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति के बीच समानता स्थापित करते हैं।

(*i*) मुद्रा की माँग तथा ब्याज की दर (Demand for money and Rate of Interest): मुद्रा की माँग से अभिप्राय लोगों द्वारा वास्तविक शेष (Real Balances) की माँग है। वास्तविक शेष का अर्थ मुद्रा शेष (Money Balances) अथवा नाममात्र शेष (Normal Balances) जिनका कीमत स्तर में होने वाली परिवर्तनों के साथ समायोजन किया जाता है। अत: जब कीमत स्तर दुगुना हो जाता है तब लोग पहले दुगुनी मात्रा में मुद्रा को अपने पास रखते हैं जिससे उनके वास्तविक शेष (Real Balances) (अथवा क्रय शक्ति) स्थिर बने रहें। अर्थव्यवस्था में वास्तविक शेष की माँग दो कारकों पर निर्भर करती है: (*i*) GDP का स्तर तथा (*ii*) ब्याज की दर। GDP का स्तर वास्तविक शेष का स्पष्ट निर्धारक है, क्योंकि वस्तुओं तथा

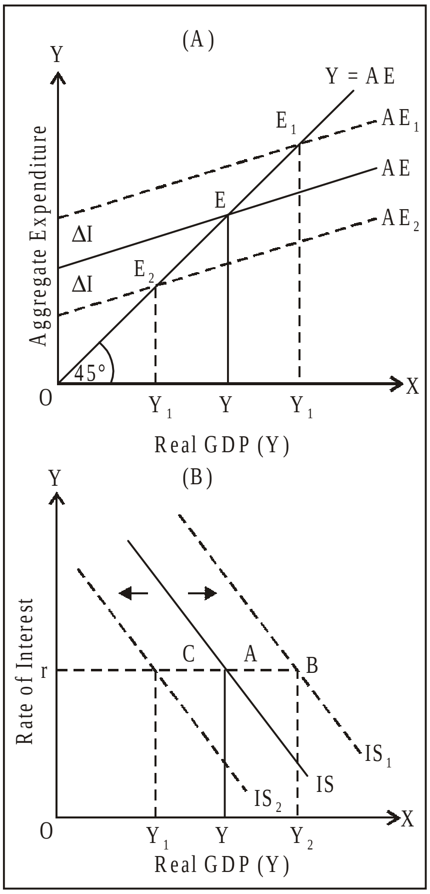

चित्र 18.6

सेवाओं को खरीदने के लिए लोग अपने पास मुद्रा रखते हैं। GDP के उच्च स्तर का अर्थ वास्तविक शेष की उच्च माँग है और इसके विपरीत भी। **ब्याज दर का अर्थ मुद्रा को अपने पास रखने की अवसर लागत** (Opportunity Cost) है। क्योंकि जब आप एक निश्चित राशि अपने पास नकद के रूप में रखते हो तो आपको ब्याज के रूप में प्राप्त होने वाली उस आय से वंचित रहना पड़ता है जो आपको प्राप्त हो सकती थी यदि इस राशि को आपने बॉण्डस् खरीदने हेतु निवेश किया होता। स्पष्टत: ब्याज (r) की ऊँची दर का निहितार्थ नकद शेष रखने की उच्च अवसर लागत है। अन्य शब्दों में, नकद शेष की माँग का एक निश्चित GDP स्तर पर ब्याज की दर (r) से विपरीत संबंध (Inversely related) होता है।

वास्तविक शेष की माँग के संदर्भ में 'r' तथा GDP के प्रभाव को चित्र 18.7 में दर्शाया गया है।

रेखा L1 यह दर्शाती है कि मुद्रा की माँग का 'r' के साथ विपरीत संबंध होता है। GDP के एक निश्चित स्तर पर उच्च 'r' का अर्थ मुद्रा की कम माँग है (और इसके विपरीत)। अत: जब $r = Or_1$ तब मुद्रा की माँग = OK और जब 'r' घट कर or_2 हो जाता है तब मुद्रा की माँग बढ़कर OK_1 हो जाती है। जब 'r' स्थिर रहता है, तथा GDP में वृद्धि होती है, तब L_1– रेखा सरक कर L_2 हो जाती है, इसका अर्थ 'r' के एक निश्चित स्तर पर मुद्रा की माँग में वृद्धि का होना है। अत: यद्यपि $'r' = Or_2$ तथपि मुद्रा की माँग OK_1 से बढ़कर OK_2 हो जाती है तब GDP में वृद्धि होती है जैसा कि L– रेखा के L_1 से L_2 को खिसकाव द्वारा दिखाया गया है।

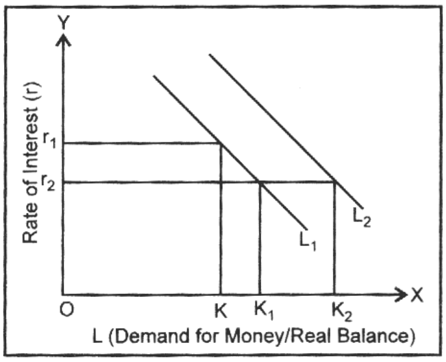

चित्र 18.7

(I) GDP परिवर्तन का ब्याज दर प्रभाव (Impact of GDP Changes on Rates of Interest)

अब हम जान चुके हैं कि वास्तविक GDP में परिवर्तनों का मुद्रा हैं कि ब्याज की दर का निर्धारण मुद्रा की माँग तथा पूर्ति द्वारा होता है। यह तथ्य कि GDP का स्तर की माँग पर प्रभाव डालता है तथा मुद्रा की माँग ब्याज दर को प्रभावित करती है, इस सब का निहितार्थ GDP, ब्याज दर तथा मुद्रा की माँग के बीच अंतर-संबंध की स्थिति का पाया जाना है। चित्र 18.8 में इस अंतर-संबंध की क्रियाशीलता को दिखाया गया है।

नोट: मुद्रा की पूर्ति (रेखा M) को स्थिर दिखाया गया है क्योंकि इसका निर्धारण मौद्रिक अधिकारियों द्वारा स्वतंत्र रूप से (Autonomously) किया जाता है। यह अर्थव्यवस्था में वास्तविक शेष (Real Balance) की पूर्ति को दर्शाता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि कीमत स्तर स्थिर बना रहता है।

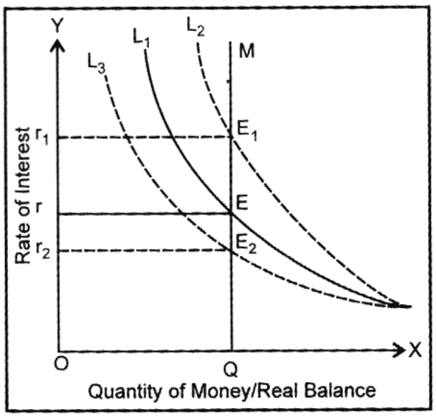

चित्र 18.8

एक निश्चित मुद्रा की माँग (L) तथा मुद्रा की पूर्ति (M) पर संतुलित ब्याज की दर (Or) उस बिंदु पर निर्धारित होती है जहाँ L = M।

GDP में वृद्धि होने पर मुद्रा की माँग बढ़ती है, फलस्वरूप मुद्रा की माँग का वक्र L_1 से ऊपर की ओर खिसक कर L_2 बन जाता है। इसके फलस्वरूप ब्याज की दर Or से बढ़कर Or_1 हो जाती है। इसी भाँति, यदि GDP में कमी होती है तो मुद्रा की माँग में भी कमी हो जाएगी, जिसके फलस्वरूप मुद्रा की माँग का वक्र L_1 से पीछे की ओर

नोट

खिसक कर L_3 बन जाता है। फलस्वरूप ब्याज की दर Or से घटकर Or_2 हो जाती है। अत: GDP में परिवर्तन, मुद्रा की माँग में परिवर्तन के जरिए ब्याज की दर में परिवर्तन का कारण बनता है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि GDP में होने वाले परिवर्तन का प्रभाव केवल मुद्रा की लेन-देन की माँग (Transaction Demand) पर पड़ता है मुद्रा की सट्टे के लिए माँग (Speculative Demand) पर नहीं। हम जानते हैं कि मुद्रा की लेन-देन की माँग का 'r' से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता है; तब भला GDP में परिवर्तन होने से 'r' क्यों प्रभावित होता है? इसके लिए दिया गया तर्क इस प्रकार है: जब मुद्रा की लेन-देन की माँग बढ़ती है (GDP में वृद्धि के कारण) तब मुद्रा कहाँ से आती है, क्योंकि हमारी यह मान्यता है की मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहती है। (जैसाकि चित्र में खड़ी (ऊर्ध्वाधर) रेखा (Vertical Straight Line) द्वारा दिखाया जाता है)? लेन-देन की माँग का दबाव सट्टे हेतु मुद्रा के निवेश (Speculative Investment of Money) पर दबाव डालता है। बढ़ रही लेन-देन की माँग को पूरा करने के लिए लोग अपनी प्रतिभूतियों/बॉण्ड्स को बेच देते हैं। बॉण्ड्स की बिक्री में वृद्धि उनकी कीमत को गिरा देती है, **तदनुसार ब्याज की दर बढ़ने लगती है। अत: GDP में वृद्धि-लेन-देन के लिए मुद्रा की माँग में वृद्धि-प्रतिभूतियों/बॉण्ड्स को बेचने का दबाव, जिससे लेन-देन के प्रयोजन हेतु नकद शेष (Cash Balances) को बढ़ाया जा सके-बॉण्ड्स की कीमत में गिरावट-ब्याज दर में वृद्धि।**

(II) एक ओर 'r' तथा GDP के विभिन्न स्तरों के बीच संबंध तथा दूसरी ओर L तथा M के बीच समानता: LM वक्र (Relationship between different levels of r and GDP on the one hand and Equality between L and M on the other: LM Curve)

चूँकि वास्तविक GDP में परिवर्तन के कारण मुद्रा माँग तथा ब्याज की दर में परिवर्तन होता है, GDP के प्रत्येक स्तर के लिए ब्याज की दर वह होनी चाहिए जो मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति में समानता लाए, यह मानते हुए कि कीमत स्तर और संपत्ति स्तर समान रहते हैं। ब्याज दर और वास्तविक GDP के विभिन्न संयोगों को मिला देने से हम LM वक्र प्राप्त कर लेते हैं। चित्र 18.9 मुद्रा बाजार संतुलन से LM वक्र की प्राप्ति/व्युत्पत्ति को प्रकट करता है।

चित्र 9 का भाग (A) GDP के विभिन्न स्तर पर मुद्रा बाजार संतुलन को प्रकट करता है। L का उच्च स्तर (मुद्रा की माँग) GDP के उच्च स्तर के अनुरूप है। भाग (B) विभिन्न GDP स्तरों तथा ब्याज की दर को मिलाता है जो कि मुद्रा की माँग तथा मुद्रा की पूर्ति के बीच समानता बनाए रखता है।

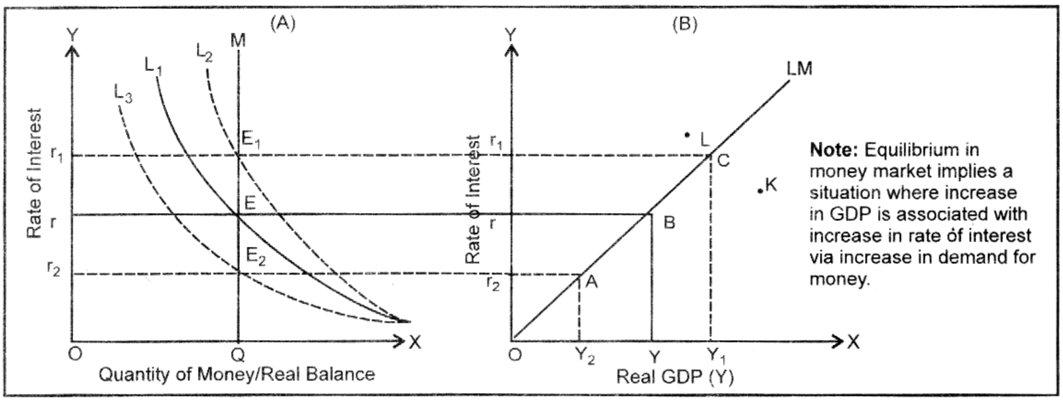

चित्र 18.9

चित्र 18.9 का भाग (A) GDP के विभिन्न स्तर पर मुद्रा बाजार संतुलन को प्रकट करता है। M_d का ऊँचा स्तर GDP के ऊँचे स्तर के कारण है। भाग (B) विभिन्न GDP स्तरों तथा ब्याज की दर को मिलाता है और LM वक्र प्रदान करता है। GDP के OY स्तर पर (भाग B में) ब्याज की दर Or है जहाँ $L_1 = M$ (भाग A)। GDP का OY स्तर तथा Or ब्याज दर का संयोग भाग B में बिंदु B प्रदान करता है। भाग B में GDP का स्तर जैसे ही OY से OY_1

नोट

बढ़ता है, मुद्रा माँग में वृद्धि होती है जो मुद्रा वक्र को ऊपर की ओर L_1 से L_2 बढ़ा देती है और समरूप ब्याज की दर (भाग A में) Or से बढ़कर Or_1 हो जाती है। OY_1 वास्तविक GDP तथा Or_1 ब्याज दर का संयोग भाग B में बिंदु C प्रदान करता है। इसी भाँति जैसे ही वास्तविक GDP स्तर OY से OY_2 गिरता है, तब मुद्रा माँग वक्र के नीचे की ओर सरकने अर्थात् L_1 से L_2 होने पर, ब्याज की दर घट कर Or से Or_2 हो जाती है। Or_2 ब्याज की दर तथा OY_2 वास्तविक GDP भाग B में बिंदु A प्रदान करता है। A,B,C आदि वास्तविक GDP तथा ब्याज के ऐसे संयोगों को मिला देने से हमें (भाग B में) LM वक्र प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह वक्र GDP तथा ब्याज की दर के संयोगों को प्रस्तुत करता है जो मुद्रा माँग तथा मुद्रा पूर्ति को आपस में बराबर करते हैं। इसका निहितार्थ मुद्रा बाज़ार में संतुलन का होना है।

मुद्रा बाजार में असंतुलन तब होगा जब मुद्रा के लिए माँग मुद्रा की पूर्ति के बराबर नहीं है। ऐसे बिंदु LM वक्र के या तो बाईं ओर अथवा दाईं ओर होते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 18.9 (B) में बिंदु K वास्तविक GDP तथा ब्याज दर के उस संयोग को बतलाता है जहाँ मुद्रा के लिए माँग मुद्रा की पूर्ति से अधिक है, (L >M) में। चित्र 18.9 (A) ये इसी भाँति बिंदु L जो LM वक्र के बाईं ओर स्थित है, वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर के उस संयोग को प्रकट करता है जहाँ मुद्रा की पूर्ति मुद्रा के लिए माँग से अधिक है (M > L)। अतएव LM वक्र के दाईं ओर कोई भी बिंदु उस मुद्रा बाजार में असंतुलन को प्रकट करता है जहाँ मुद्रा के लिए माँग, मुद्रा की पूर्ति से अधिक है और LM वक्र के बाईं ओर कोई भी बिंदु मुद्रा बाज़ार में असंतुलन को प्रकट करता है जहाँ मुद्रा के माँग, मुद्रा की पूर्ति से अधिक है और LM वक्र के बाईं ओर कोई भी बिंदु मुद्रा बाजार में असंतुलन को प्रकट करता है जहाँ मुद्रा पूर्ति, मुद्रा, माँग से अधिक है।

LM वक्र का ढलान (Slope of LM Curve)

LM वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर होता है जो वास्तविक GDP और ब्याज की दर के बीच धनात्मक संबंध को प्रकट करता है। वास्तविक GDP के ऊँचे स्तर का अर्थ है ब्याज की ऊँची दर और नीचे स्तर का अभिप्राय है ब्याज की नीची दर। GDP के स्तर में जैसे-जैसे वृद्धि होती है मुद्रा माँग बढ़ती जाती है। दी हुई मुद्रा की पूर्ति पर, मुद्रा के लिए अधिक माँग का अर्थ है कि ब्याज की ऊँची दर। वास्तविक GDP के गिरने के साथ, ब्याज की दर गिरती है। निम्न GDP का अर्थ है मुद्रा के लिए कम माँग। यदि मुद्रा की पूर्ति दी हुई है मुद्रा के लिए कम माँग का अर्थ है कम ब्याज की दर।

LM वक्र का चपटापन तथा गहरापन वास्तविक GDP के परिवर्तन से मुद्रा माँग की संवेदनशीलता (Sensitivity) और मुद्रा की माँग में परिवर्तन के कारण ब्याज की दर की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है। यदि मुद्रा के लिए माँग में परिवर्तन का अनुपात वास्तविक GDP में परिवर्तन से अधिक है, तब LM वक्र गहरा (Steeper) होना चाहिए, और यदि मुद्रा माँग में परिवर्तन का अनुपात वास्तविक GDP में परिवर्तन से कम है तब LM वक्र चपटा (Flatter) होना चाहिए। यदि मुद्रा के लिए माँग में परिवर्तन से ब्याज की दर अनुक्रियाशीलता (Responsiveness) कम है, तब LM वक्र गहरा और यदि यह अधिक है तब LM वक्र चपटा होना चाहिए।

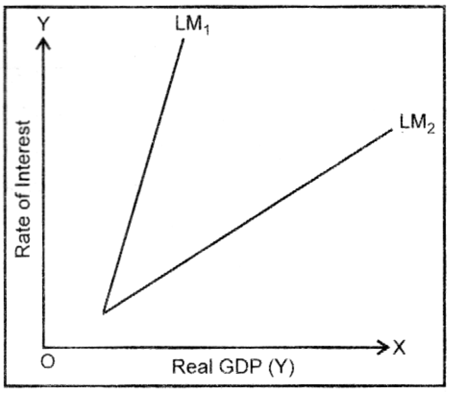

चित्र 18.10

चित्र 18.10 में, LM वक्र के सापेक्षिक चपटेपन तथा गहरेपन को दिखाया गया है। LM_1 वक्र LM_2 की तुलना में सापेक्षतया गहरा है और LM_2 वक्र सापेक्षतया चपटा है। LM_1 के मामले में, मुद्रा माँग वास्तविक GDP में परिवर्तन से अधिक संवेदनशील है और मुद्रा के लिए माँग में परिवर्तन से ब्याज की दर कम संवेदनशील

नोट

है। LM_2 के मामले में मुद्रा माँग वास्तविक GDP में परिवर्तन से कम संवेदनशील है और ब्याज की दर में परिवर्तन से अधिक संवेदनशील है।

टास्क IS वक्र और इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

LM वक्र में खिसकाव (Shift in LM Curve)

LM वक्र खींचते समय यह मान्यता ली जाती है कि कीमत स्तर तथा मुद्रा की पूर्ति स्थिर रहते हैं। यदि इनमें से कोई भी मान्यता हटा दी जाए तो LM वक्र में खिसकाव आ जाएगा। हम मुद्रा की पूर्ति पर ध्यान केंद्रित करते हैं। हम यह देखना चाहेंगे कि कैसे मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि या कमी के फलस्वरूप LM वक्र खिसकता है। इसे चित्र 11(A तथा B) द्वारा दिखाया गया है।

LM वक्र के ढलान को प्रभावित करने वाले दो प्राचल

(Two Parameters Impacting Slope of LM Curve)

1. **GDP में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा-माँग की संवेदनशीलता:** GDP में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा मांग की संवेदनशीलता जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक LM रेखा गहरी होगी और इसके विपरीत भी। क्योंकि GDP में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा-माँग की अधिक संवेदनशीलता का अर्थ L वक्र का दायीं ओर अधिक खिसकाव है। इसका अर्थ GDP में एक निश्चित परिवर्तन के कारण r में अधिक वृद्धि तथा LM रेखा का गहरापन है।

नोट: यहाँ GDP में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा माँग की अधिक संवेदनशीलता का निहितार्थ उच्च सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (Marginal propensity to Consume-MPC) की स्थिति है, क्योंकि केवल लेन-देन के सौदों (Transaction) की माँग के लिए GDP में वृद्धि के फलस्वरूप मुद्रा की माँग बढ़ती है न कि सट्टा प्रयोजन के लिए।

2. **'r' में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा-माँग की संवेदनशीलता:** r में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा-माँग की संवेदनशीलता से अभिप्राय L वक्र के ढलान से है। स्पष्टत: L- वक्र की ढलान का LM वक्र की ढलान पर प्रभाव पड़ता है। r में परिवर्तन के प्रति मुद्रा-माँग की संवेदनशीलता जितनी अधिक होती है उतना ही L वक्र चपटा होता है। L वक्र जितना चपटा होता है उतनी ही कम r में बदली होती है; L वक्र के किसी समस्तरीय खिसकाव के लिए। (GDP में परिवर्तन के कारण; निस्संदेह, r में जितने कम परिवर्तन होंगे उतनी ही LM वक्र चपटा होगा।) संक्षेप में, r में परिवर्तनों के प्रति मुद्रा माँग की जितनी अधिक संवेदनशीलता होगी उतना LM वक्र चपटा होगा तथा इसके विपरीत भी।

नोट: L वक्र की ढलान के संबंध में मुद्रा माँग सट्टे (Speculative) प्रयोजन के लिए मुद्रा की माँग है क्योंकि केवल सट्टा प्रयोजन के लिए मुद्रा की माँग ही r से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित है, न कि लेन-देन के सौदों (Transaction) की माँग के लिए।

चित्र 18.11 के भाग (A) में बिंदु E पर मुद्रा बाजार का आरंभिक संतुलन है, जहाँ वास्तविक शेष की पूर्ति वास्तविक शेष की माँग के बराबर है। भाग A में बिंदु E के अनुरूप भाग में बिंदु E* मुद्रा बाजार के संतुलन को प्रकट करता है जो कि ब्याज की संतुलन दर r_1 तथा GDP (= Y_1) के एक निश्चित स्तर से सुसंगत है। जब मुद्रा की पूर्ति बढ़ती है तब M– रेखा M_1 से M_2 को खिसकती है। अन्य बातें स्थिर रहने पर इसका अर्थ ब्याज की संतुलन दर का r_1 से

नोट

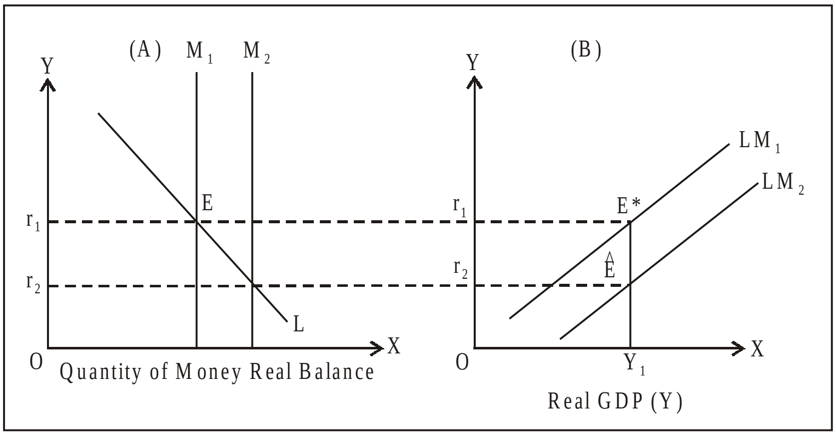

चित्र 18.11

r_2 तक गिरना है। यह एक ऐसी स्थिति है जहाँ निम्न संतुलन ब्याज दर पायी जाती है और जो GDP के उसी स्तर के अनुरूप है। इस स्थिति को भाग B में E बिंदु द्वारा दिखाया गया है। तदनुसार LM वक्र दायी ओर (LM_1 से LM_2) खिसकता है ताकि E बिंदु से गुजर सके। मुद्रा पूर्ति में वृद्धि **एक ऐसी स्थिति का सृजन करती है जहाँ, GDP के प्रत्येक स्तर पर, निम्न (Lower) ब्याज दर बाजार में प्रचलित होती है जिसे LM वक्र के दायीं ओर खिसकने के रूप में दिखाया गया है।** इस भाँति, जब मुद्रा पूर्ति में कमी होती है तथा M- रेखा बायीं ओर को खिसकती है, तब ब्याज दर को GDP के प्रत्येक स्तर के अनुरूप बढ़ना चाहिए, अर्थात् LM वक्र का बायीं ओर को खिसकना।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. हम मुद्रा की माँग तथा ब्याज की दर के बीच संबंध स्थापित करते हैं।
8. वास्तविक GDP में परिवर्तनों का मुद्रा की माँग पर प्रभाव पड़ता है।
9. GDP में वृद्धि होने पर मुद्रा की माँग बढ़ती है।
10. GDP में परिवर्तन के कारण मुद्रा माँग तथा ब्याज की दर में परिवर्तन नहीं होता है।

18.3 सारांश (Summary)

- वर्तमान अध्याय यह व्याख्या करता है कि आई एस तथा एल एम (IS-LM) वक्र कैसे व्युत्पन्न (Derive) किए जाते हैं और संतुलित वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर का निर्धारण कैसे होता है। इसके अतिरिक्त आई एस–एल एम विश्लेषण से हम समग्र माँग वक्र (Aggregate Demand Curve) भी C युत्पन्न करते हैं और इस बात पर ध्यान देंगे कि आई एस अथवा एल एम में खिसकाव (Shift) समग्र माँग वक्र में खिसकाव कैसे लाता है।

18.4 शब्दकोश (Keywords)

- व्युत्पत्ति (Derivation) – उत्पत्ति एवं विकास।
- संतुलन (Equilibrium) – साम्य।

नोट

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. IS वक्र और इसकी व्युत्पत्ति का वर्णन कीजिए।
2. LM वक्र और इसकी व्युत्पत्ति को परिभाषित कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. समग्र	2. परिवर्तन	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. सही	10. गलत।		

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी** : एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010

नोट

इकाई–19: वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन (Simultaneous Equilibrium in Product and Money Market)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
19.1 वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन (Simultaneous Equilibrium in Product and Money Market)
19.2 संतुलन की प्राप्ति कैसे होगी? (How would Equilibrium be Achieved?)
19.3 सारांश (Summary)
19.4 शब्दकोश (Keywords)
19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन जानने हेतु।
- 'संतुलन की प्राप्ति कैसे होगी' का अध्ययन करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

एक अर्थव्यवस्था **स्वचालित समन्वय प्रक्रिया** (Automatic Adjustment Process) द्वारा असंतुलन से संतुलन में आ सकती है। समन्वय प्रक्रिया वास्तविक GDP या ब्याज की दर अथवा दोनों में परिवर्तन ला सकती है। किसी असंतुलन बिंदु पर या तो वस्तु के लिए माँग-आधिक्य (Excess Demand) या मुद्रा के लिए माँग आधिक्य अथवा वस्तु के लिए पूर्ति आधिक्य (Excess Supply) या मुद्रा के लिए पूर्ति आधिक्य या दोनों के लिए आधिक्य हो सकता है।

19.1 वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन (Simultaneous Equilibrium in Product and Money Market)

IS तथा LM फलनों को बराबर करने से वस्तु तथा मुद्रा दोनों बाजारों में एक साथ संतुलन प्राप्त हो जाता है। वस्तु बाजार में संतुलन के अनुरूप IS फलन वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर (r) के विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है। मुद्रा बाजार के संतुलन के अनुरूप LM फलन वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर (r) के विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है। चित्र 19.1 में बिंदु E पर वस्तु तथा मुद्रा दोनों बाजारों में एक साथ संतुलन प्राप्त किया गया है जहाँ

नोट

IS वक्र LM वक्र को काट रहा है। अन्य शब्दों में IS तथा LM वक्र के बीच समानता (Equality) वास्तविक GDP तथा ब्याज दर के उस एक संयोग को प्रकट करती है जो वस्तु बाज़ार तथा मुद्रा दोनों को स्पष्ट करता है। OY आय तथा Or ब्याज की दर वह संयोग है जो IS तथा LM फलनों को बराबर करता है। IS और LM के बीच संतुलन वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन को व्यक्त करता है।

> *नोट्स* IS तथा LM फलनों को बराबर करने से वस्तु तथा मुद्रा दोनों बाजारों में एक साथ संतुलन प्राप्त हो जाता है।

असंतुलन (Disequilibrium)

E बिंदु के अतिरिक्त कोई बिंदु वस्तु बाजार अथवा मुद्रा बाजार अथवा दोनों में संतुलन प्रकट करता है। चित्र 19.2 में IS वक्र पर स्थित सभी बिंदु जैसे A, B (E) बिंदु के अतिरिक्त जहाँ IS = LM) वस्तु बाजार में संतुलन परंतु मुद्रा बाजार में असंतुलन प्रकट करते हैं। A,B जैसे सभी बिंदु ब्याज दर तथा वास्तविक GDP के उन विभिन्न संयोग को प्रकट करते हैं। जो कुल व्यय और कुल उत्पाद या बचत तथा निवेश को बराबर करते हैं। इसी भाँति चित्र 19.2 में LM वक्र पर स्थित M, N जैसे बिंदु में (E बिंदु के अतिरिक्त जहाँ IS = LM) मुद्रा बाजार में संतुलन को, परंतु वस्तु बाजार में असंतुलन को, व्यक्त करते हैं। LM वक्र पर सभी बिंदु वास्तविक GDP और ब्याज दर के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करते हैं जो मुद्रा के लिए माँग और मुद्रा की पूर्ति को बराबर करते हैं। जो बिंदु न तो LM वक्र पर और न ही IS वक्र पर स्थित हैं, वे वस्तु तथा मुद्रा दोनों बाजारों में असंतुलन का संकेत देते हैं।

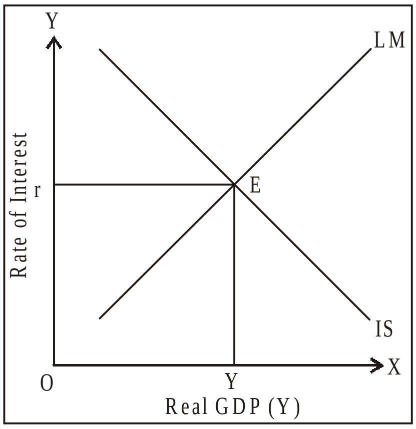

चित्र 19.1

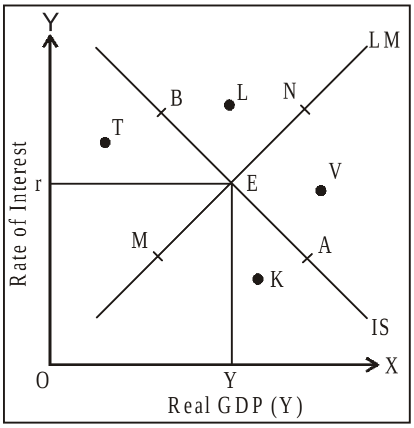

चित्र 19.2

मान लो , यदि हम T बिंदु को लेते हैं। जो IS वक्र के बाईं ओर स्थित है, यह T बिंदु वास्तविक GDP तथा ब्याज के दर के एक उस संयोग को प्रकट करता है जिसमें कुल व्यय कुल उत्पाद से अधिक है, जिसका अभिप्राय है निवेश बचत से अधिक है (AE > Y, I > S)। अर्थात IS वक्र के बाईं ओर स्थित कोई भी बिंदु बतलाता है कि AE > Y और I > S। IS वक्र के दाईं ओर स्थित बिंदु (जैसे V)वास्तविक GDP तथा ब्याज दर के उन संयोगों को प्रकट करता है जहाँ कुल उत्पादन कुल व्यय से अधिक है अथवा निवेश से अधिक है। (Y > AE, ⇒ S > I)। इस प्रकार LM वक्र के दाईं ओर स्थित कोई भी बिंदु (जैसे K) वास्तविक GDP तथा ब्याज दर के उन संयोगों को बतलाता है जहाँ मुद्रा माँग मुद्रा पूर्ति से अधिक है। (L > M) । इसी भाँति LM वक्र के बाईं ओर स्थित कोई भी बिंदु (जैसे L) वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर के उन संयोगों को प्रकट करता है जहाँ मुद्रा की पूर्ति माँग से अधिक है। (M >L)। अतएव वे सभी बिंदु जो IS तथा LM वक्र पर स्थित नहीं है, या तो वस्तु बाजार में अथवा मुद्रा बाजार में अथवा दोनों में असंतुलन प्रकट करते हैं।

नोट

क्या आप जानते हैं एक अर्थव्यवस्था स्वचालित समन्वय प्रक्रिया द्वारा असंतुलन से संतुलन में आ सकती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. समन्वय प्रक्रिया वास्तविक ब्याज GDP या ब्याज की दर अथवा दोनों में .... ला सकती है।
2. निवेश व्यय घटेगा जिसका अर्थ है–स्तर में कई गुणा अधिक .... होना।

19.2 संतुलन की प्राप्ति कैसे होगी? (How would Equilibrium be Achieved?)

एक अर्थव्यवस्था **स्वचालित समन्वय प्रक्रिया** (Automatic Adjustment Process) द्वारा असंतुलन से संतुलन में आ सकती है। समन्वय प्रक्रिया वास्तविक GDP या ब्याज की दर अथवा दोनों में परिवर्तन ला सकती है। किसी असंतुलन बिंदु पर या तो वस्तु के लिए माँग-आधिक्य (Excess Demand) या मुद्रा के लिए माँग आधिक्य अथवा वस्तु के लिए पूर्ति आधिक्य (Excess Supply) या मुद्रा के लिए पूर्ति आधिक्य या दोनों के लिए आधिक्य हो सकता है। वस्तु के लिए आधिक्य माँग GDP के स्तर को बढ़ाती है तथा अभावी माँग (Deficient Demand) GDP को कम करती है। इसी भाँति, मुद्रा के लिए आधिक्य माँग ब्याज की दर को बढ़ाती है और मुद्रा के लिए अभावी माँग ब्याज की दर को कम करती है। वास्तविक GDP पर ब्याज की दर में परिवर्तन का प्रभाव, और ब्याज की दर पर वास्तविक GDP में परिवर्तन का प्रभाव अर्थव्यवस्था को असंतुलन से वापस संतुलन में ले आता है।

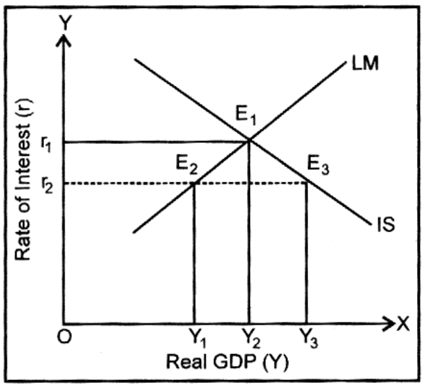

चित्र 19.3

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. निवेश गुणक की प्रक्रिया के कारण वृद्धि होगी–

   (अ) आय में (ब) व्यय में
   (स) लाभ में (द) हानि में

4. आप के उच्च स्तर का अर्थ उच्च .... का होना है।

   (अ) माँग (ब) मुद्रा माँग
   (स) मुद्रा (द) लाभ

5. वस्तु के लिए आधिक्य माँग बढ़ाती है–

   (अ) GDP का स्तर (ब) PDP का स्तर
   (स) ADP का स्तर (द) CD का स्तर

6. IS और LM के बीच संतुलन वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ व्यक्त करता है–

   (अ) संतुलन (ब) असंतुलन
   (स) लाभ (द) हानि

नोट

चित्र 19.3 में बिंदु $\mathbf{E_1}$ पर एक साथ संतुलन को दिखाया गया जहाँ वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार दोनों मिलते हैं। मान लो कि चालू आय स्तर $\mathbf{Y_2}$ की अपेक्षा $\mathbf{Y_1}$ है। इसका अर्थ एक ऐसी स्थिति है जिसमें मुद्रा की माँग घट गई है तथा मुद्रा बाजार में संतुलन ब्याज दर (r_2) निम्न स्तर पर है जो कि **LM** वक्र पर स्थित बिंदु $\mathbf{E_2}$ के अनुरूप है। अब जबकि ब्याज दर घट गई है अर्थव्यवस्था में अधिक निवेश व्यय की योजना बनायी जाएगी। निवेश गुणक की प्रक्रिया के कारण आय में वृद्धि होगी। अब अर्थव्यवस्था बिंदु $\mathbf{E_3}$ को खिसक जाएगी तथा आय बढ़ कर $\mathbf{Y_3}$ हो जाएगा। किंतु आय के उच्च स्तर का अर्थ उच्च मुद्रा माँग का होना है तथा उसके अनुरूप मुद्रा बाजार में उच्च ब्याज दर संतुलन का पाया जाना है। तदनुसार निवेश व्यय घटेगा जिसका अर्थ यह स्तर में कई गुणा अधिक गिरावट का होना है। समायोजन की यह प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि अर्थव्यवस्था अपने आरंभिक संतुलन बिंदु $\mathbf{E_1}$ पर नहीं पहुँच जाती, जहाँ वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार दोनों एक साथ संतुलित हो जाते हैं अर्थात् r_1 ब्याज दर का संतुलन स्तर तथा $\mathbf{Y_2}$ आय का संतुलन स्तर।

IS तथा LM वक्र में खिसकाव तथा संतुलन में परिवर्तन

(Shift in the IS and LM Curve and Change in Equilibrium)

वास्तविक तथा मौद्रिक क्षेत्रों के संतुलन में परिवर्तन तब होगा जब यदि IS वक्र तथा LM वक्र अथवा दोनों में खिसकाव होगा। जैसे कि हमने पहले व्यक्त किया है कि कुल व्यय के स्वायत्त घटक में वृद्धि के कारण IS वक्र का खिसकाव दाईं ओर होता है। कुल व्यय के स्वायत्त घटक में कमी के कारण IS वक्र का खिसकाव बाईं ओर होता है। यदि LM वक्र दिया हुआ है, तब IS वक्र के दाईं ओर खिसकाव के कारण वास्तविक GDP और ब्याज की दर के संयोग से उच्च संतुलन आता है। यदि IS वक्र का खिसकाव बाईं ओर होता है तब इसके कारण वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर के संयोग से निम्न संतुलन आता है। मुद्रा पूर्ति में वृद्धि के कारण LM वक्र का खिसकाव दाईं ओर होता है और मुद्रा पूर्ति में कमी के कारण LM वक्र का खिसकाव बाईं ओर होता है। दिए हुए IS वक्र पर LM वक्र के दाईं ओर खिसकने के कारण वास्तविक GDP में वृद्धि होती है ब्याज की दर घटती है और LM वक्र के बाईं ओर खिसकने के कारण वास्तविक GDP घटता है ब्याज की दर बढ़ती है। चित्र 19.4 (A) प्रकट करता है कि IS वक्र में खिसकाव के कारण वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर में परिवर्तन आता है। प्रारंभिक संतुलन को बिंदु *E* पर प्रकट किया गया है जहाँ IS = LM। निवेश व्यय में जैसे ही वृद्धि होती है IS वक्र खिसक कर IS, हो जाता है। नया संतुलन बिंदु E_1 पर है। संतुलन बिंदु E_{1d} के अनुरूप वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर क्रमशः OY_1 तथा Or_1 हैं जो प्रारंभिक वास्तविक GDP तथा प्रारंभिक ब्याज की दर से अधिक है। स्वायत्त निवेश के कम होने से IS वक्र सरककर IS से IS_2 हो जाती है। संतुलन भी बिंदु E से सरककर E_2 हो जाता है। इसके अनुरूप वास्तविक GDP स्तर OY_2 और ब्याज की दर Or_2 है जो प्रारंभिक वास्तविक GDP तथा प्रारंभिक ब्याज की दर से कम है।

> *टास्क* 'वस्तु तथा मुद्रा में एक साथ संतुलन' पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

चित्र 19.4 (B) प्रकट करता है कि LM वक्र में खिसकाव किस प्रकार वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर को प्रभावित करता है। प्रारंभिक संतुलन बिंदु E पर है। मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होने से LM वक्र सरक कर LM_1 हो जाती है। नया संतुलन बिंदु E_1 है जो OY_1 के बराबर GDP के उच्च स्तर को और Or_2 के बराबर ब्याज दर के निम्न स्तर को व्यक्त करता है मुद्रा पूर्ति के कम होने से LM वक्र सरक कर LM_2 हो जाती है। संतुलन सरक कर बिंदु E_2 पर आ जाता है जो निम्न GDP स्तर OY_2 तथा उच्च ब्याज दर Or_1 को व्यक्त करता है।

नोट

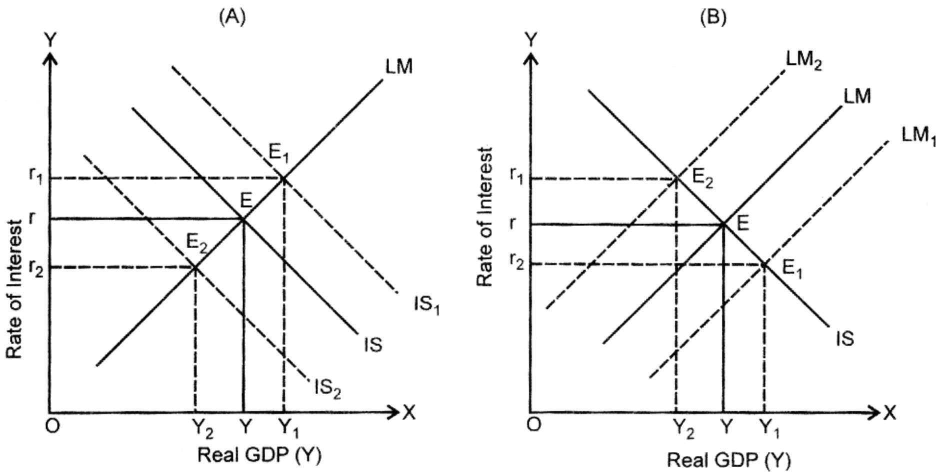

चित्र 19.4

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. यदि LM वक्र दिया हुआ है, तब IS वक्र के दाईं ओर खिसकाव के कारण वास्तविक GDP और ब्याज की दर के संयोग से उच्च संतुलन आता है।
8. दिए हुए IS वक्र पर LM वक्र के दाईं ओर खिसकने के कारण वास्तविक GDP में वृद्धि होती है।
9. एक अर्थव्यवस्था स्वचालित समन्वय प्रक्रिया द्वारा असंतुलन से संतुलन में आ सकती है।
10. समन्वय प्रक्रिया वास्तविक GDP या ब्याज की दर अथवा दोनों में परिवर्तन ला सकती है।

19.3 सारांश (Summary)

- वास्तविक तथा मौद्रिक क्षेत्रों के संतुलन में परिवर्तन तब होगा जब यदि IS वक्र तथा LM वक्र अथवा दोनों में खिसकाव होगा। जैसे कि हमने पहले व्यक्त किया है कि कुल व्यय के स्वायत्त घटक में वृद्धि के कारण IS वक्र का खिसकाव दाईं ओर होता है। कुल व्यय के स्वायत्त घटक में कमी के कारण IS वक्र का खिसकाव बाईं ओर होता है।

19.4 शब्दकोश (Keywords)

- पूर्ति आधिक्य (Excess Supply) – अधिक आपूर्ति।
- माँग आधिक्य (Excess Demand) – माँग की अधिकता।

19.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन का विवेचन कीजिए।
2. 'संतुलन की प्राप्ति कैसे होगी?' पर टिप्पणी लिखिए।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. परिवर्तन	2. गिरावट	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. सही	10. सही।		

19.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–20: IS-LM फ्रेमवर्क में विभिन्न कारकों के तहत मौद्रिक नीतियों का प्रभाव

(Effects of Monetary Policies under different cases in IS-LM Framework)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 IS-LM मॉडल से समग्र/कुल माँग वक्र की व्युत्पत्ति
(Derivation of Aggregate Demand Curve from IS-LM Model)

20.2 कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतंत्र यदि मुद्रा पूर्ति में स्वायत्त परिवर्तन हो तो क्या होता है?
[What happens if there is autonomous Change in Money Supply, Independent of Change in Price Level?]

20.3 सारांश (Summary)

20.4 शब्दकोश (Keywords)

20.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

20.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- IS-LM मॉडल से समग्र माँग वक्र की व्युत्पत्ति जानने हेतु।
- कीमत स्तर में परिवर्तन का अध्ययन करने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

IS और LM के बीच दिए संतुलन पर, यदि कमीत स्तर में वृद्धि होती है, LM वक्र बाईं ओर सरकता है और कीमत स्तर में कमी होती है तब LM वक्र दाईं ओर सरकता है। इसका कारण यह है कि कीमत स्तर में वृद्धि से वास्तविक मुद्रा पूर्ति कम होती है। मुद्रा पूर्ति के कम होने से LM वक्र बाईं ओर सरकता है। LM वक्र के बाईं ओर सरकने से मौद्रिक तथा वास्तविक क्षेत्रों के प्रारंभिक संतुलन में बाधा आती है।

नोट

20.1 IS-LM मॉडल से समग्र/कुल माँग वक्र की व्युत्पत्ति (Derivation of Aggregate Demand Curve from IS-LM Model)

अध्याय 10 में हमने बताया था कि समग्र माँग वक्र वास्तविक GDP तथा कीमत स्तर के संयोगों के जोड़ से मिलता है। इसका ढलान नीचे की ओर होता है जिसका अभिप्राय है कीमत स्तर तथा वास्तविक GDP के बीच विपरीत संबंध। IS-LM मॉडल AD वक्र व्युत्पन्न करने की एक वैकल्पिक तकनीक प्रस्तुत करता है। यह तभी संभव होता है यदि हम LM वक्र पर कीमत स्तर में परिवर्तन के प्रभाव की अनुमति दें। IS और LM के बीच दिए संतुलन पर, यदि कमीत स्तर में वृद्धि होती है, LM वक्र बाईं ओर सरकता है और कीमत स्तर में कमी होती है तब LM वक्र दाईं ओर सरकता है। इसका कारण यह है कि कीमत स्तर में वृद्धि से वास्तविक मुद्रा पूर्ति कम होती है। मुद्रा पूर्ति के कम होने से LM वक्र बाईं ओर सरकता है। LM वक्र के बाईं ओर सरकने से मौद्रिक तथा वास्तविक क्षेत्रों के प्रारंभिक संतुलन में बाधा आती है। वास्तविक GDP के निम्न स्तर तथा ब्याज की दर के उच्च स्तर से एक नया संतुलन प्राप्त होता है। इसी भाँति, कीमत स्तर में गिरावट से LM वक्र के दाईं ओर सरकने के कारण, उच्च GDP स्तर तथा निम्न ब्याज दर के साथ, नया संतुलन स्थापित होता है। यदि विभिन्न कीमत स्तरों तथा वास्तविक GDP को मिला दें तब हमें AD वक्र प्राप्त हो जाता है। IS-LM संतुलन से व्युत्पन्न AD वक्र को चित्र 20.1 द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

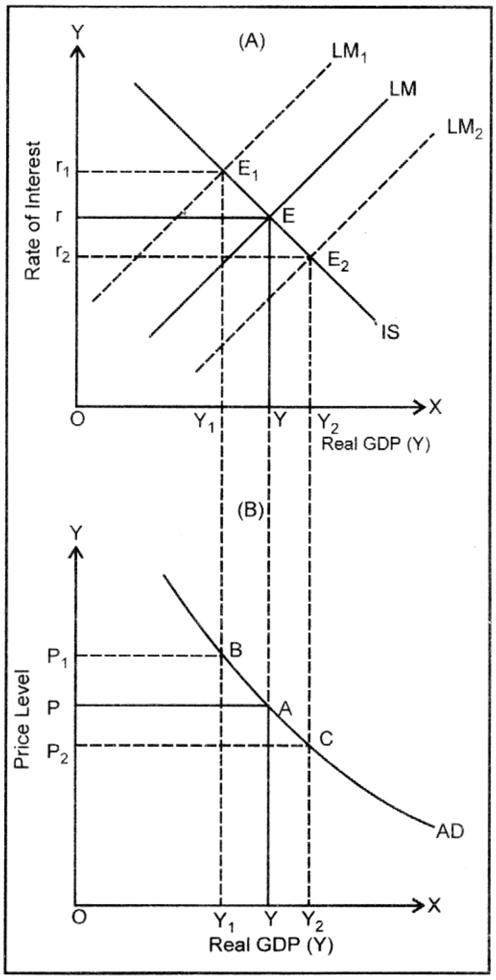

चित्र 20.1

> नोट्स समग्र माँग वक्र वास्तविक GDP तथा कीमत स्तर के संयोगों के जोड़ से मिलता है।

चित्र 20.1(A) में मुद्रा तथा वस्तु बाजार में प्रारंभिक संतुलन बिंदु E पर प्रकट किया गया है जहाँ IS वक्र LM वक्र को काटता है। इसके अनुसार संतुलित वास्तविक GDP स्तर OY है और ब्याज की दर Or है। OY वास्तविक GDP के अनुरूप कीमत स्तर OP है जो चित्र 20.1 के भाग (B) में बिंदु A द्वारा दिखलाया गया है। कीमत स्तर में जैसे ही वृद्धि होती है, LM वक्र सरक कर LM_1हो जाता है। नया संतुलन बिंदु E_1 है जहाँ IS वक्र LM_1 वक्र को काटता है। नए संतुलन के अनुरूप निम्न वास्तविक GDP OY_1 के बराबर है और ऊँची ब्याज की दर Or_1 के बराबर है। निम्न GDP (= OY_1) तथा ऊँची कीमत OP_1 को चित्र के भाग (B) में बिंदु B द्वारा प्रकट किया गया

है। कीमत स्तर में कमी होने के साथ, LM वक्र सरक कर LM_2 हो जाता है जिसके अनुसार उच्च वास्तविक GDP OY_2 के और कम ब्याज दर Or_2 के बराबर हो जाती है। उच्च वास्तविक GDP = (OY_2) तथा निम्न कीमत स्तर OP_2 के संयोग को चित्र के भाग B में बिंदु C द्वारा प्रकट किया गया है। A,B तथा C बिंदुओं को मिला देने से हमें AD वक्र प्राप्त हो जाता है जिसका ढलान नीचे की ओर है इसका कीमत स्तर से विपरीत संबंध है।

AD वक्र का ढलान IS तथा LM वक्र के ढलान पर निर्भर करता है जो आगे ब्याज की दर, ब्याज की दर में परिवर्तन से निवेश की संवेदनशीलता, गुणक गुणांक तथा वास्तविक GDP में परिवर्तन के मुद्रा माँग की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है।

> *क्या आप जानते हैं* वास्तविक GDP के निम्न स्तर तथा ब्याज की दर के उच्च स्तर से एक नया संतुलन प्राप्त होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. मुद्रा पूर्ति के कम होने से LM वक्र .... सरकता है।
2. IS-LM मॉडल AD वक्र व्युत्पन्न करने की एक .... प्रस्तुत करता है।

20.2 कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतंत्र यदि मुद्रा पूर्ति में स्वायत्त परिवर्तन हो तो क्या होता है? (What happens if there is autonomous Change in Money Supply Independent of Change in Price Level?)

कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतंत्र मुद्रा पूर्ति में स्वायत परिवर्तन से अभिप्राय उस स्थिति से है जिसमें मुद्रा की पूर्ति प्रचलित कीमत स्तर पर बढ़ती या घटती है। ऐसी स्थिति में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि या कमी के अनुरूप LM वक्र क्रमशः दाईं या बाईं ओर सरकेगा। किंतु कीमत स्तर स्थिर रहता है, LM वक्र के सरकरने से AD सरकेगा: LM वक्र के दाईं ओर सरकने (मुद्रा पूर्ति में वृद्धि के कारण, कीमत स्तर के स्थिर रहने पर) से AD वक्र दायीं ओर को खिसकेगा: LM वक्र के बायीं ओर सरकने (मुद्रा पूर्ति में कमी के कारण, कीमत स्तर के स्थिर रहने पर) से AD वक्र बायीं ओर को खिसकेगा। इन स्थितियों को चित्र 20.2 में दिखाया गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. यदि विभिन्न कीमत स्तरों तथा वास्तविक GDP को मिला दें तब हमें प्राप्त हो जाता है–

   (अ) AD वक्र (ब) GDP वक्र
   (स) CD वक्र (द) इनमें से कोई नहीं।

4. वास्तविक GDP के निम्न स्तर तथा ब्याज की दर के उच्च स्तर से एक प्राप्त होता है–

   (अ) संतुलन (ब) नया संतुलन
   (स) असंतुलन (द) इनमें से कोई नहीं।

नोट

5. LM वक्र के बाईं ओर सरकने से मौद्रिक तथा वास्तविक क्षेत्रों के प्रारंभिक संतुलन में आती है–

(अ) बाधा (ब) ब्याज
(स) कीमत (द) इनमें से कोई नहीं।

6. वास्तविक GDP तथा कीमत स्तर के संयोगों के जोड़ से मिलता है–

(अ) वक्र (ब) समग्र माँग वक्र
(स) माँग वक्र (द) इनमें से कोई नहीं।

टास्क IS-LM मॉडल से कुल माँग वक्र की व्युत्पत्ति के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

आरंभिक संतुलन बिंदु E से, LM वक्र का LM_1 को सरकना (प्रचलित कीमत स्तर पर मुद्रा पूर्ति में वृद्धि के कारण) संतुलित GDP को Y से बढ़ा कर Y_1 कर देता है (चित्र 20.2A) इसी के अनुरूप (चित्र 20.2B) बिंदु A सरक कर बिंदु C हो जाता है जो वास्तविक GDP या AD में वृद्धि दर्शाता है, जबकि कीमत स्तर P पर स्थिर रहता है। इस प्रकार AD वक्र सरक कर AD_1 हो जाता है जिसका अर्थ प्रचलित कीमत स्तर पर समग्र माँग का उच्च स्तर है। इसी प्रकार, LM वक्र का सरक कर LM_2 होना (प्रचलित कीमत स्तर पर मुद्रा पूर्ति में कमी के कारण)संतुलित GDP को Y से घटाकर Y_2 कर देता है। (चित्र 17A) जिसका निहितार्थ बिंदु A से B बिंदु का सदृश सरकना है। (चित्र 17B) अर्थात् वास्तविक GDP अथवा AD में कमी का होना है, जबकि कीमत स्तर P पर स्थिर रहता है। अत: AD वक्र सरक कर AD_2 हो जाता है।

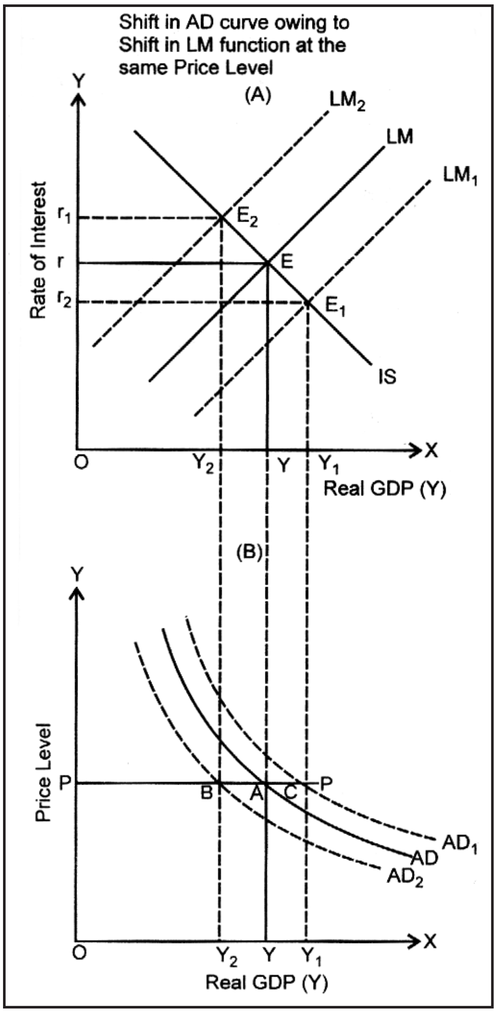

चित्र 20.2

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. कीमत स्तर में गिरावट से LM वक्र के दाईं ओर सरकने के कारण, उच्च GDP स्तर तथा निम्न ब्याज के साथ, नया संतुलन स्थापित होता है।
8. वास्तविक GDP अथवा AD में कमी का होना है, जबकि कीमत स्तर P पर अस्थिर रहता है।
9. AD वक्र का ढलान IS तथा LM वक्र के ढलान पर निर्भर करता है।
10. कीमत स्तर में जैसे ही वृद्धि होती है, LM वक्र सरक कर AM_1 हो जाता है।

20.3 सारांश (Summary)

नोट

- **AD वक्र का ढलान IS तथा LM वक्र के ढलान पर निर्भर करता है जो आगे ब्याज की दर, ब्याज की दर में परिवर्तन से निवेश की संवेदनशीलता, गुणक गुणांक तथा वास्तविक GDP में परिवर्तन के मुद्रा माँग की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है।**

20.4 शब्दकोश (Keywords)

- समग्र (Aggregate) – कुल।
- वक्र (Curve) – टेढ़ा।

20.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. IS-LM मॉडल से समग्र माँग वक्र की व्युत्पत्ति का वर्णन कीजिए।
2. कीमत स्तर में परिवर्तन से स्वतंत्र यदि मुद्रा पूर्ति में स्वायत्त परिवर्तन हो तो क्या होता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. बाईं ओर	2. वैकल्पिक तकनीक	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. गलत
9. सही	10. गलत।		

20.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी** : एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010

3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ** : एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–21: IS-LM फ्रेमवर्क में विभिन्न कारकों के तहत वित्तीय नीतियों का प्रभाव
(Effects of Fiscal Policies under different cases in IS-LM Frame-work)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति (Monetary and Fiscal Policy)

21.2 मौद्रिक नीति तथा समग्र माँग (Monetary Policy and AD)

21.3 मौद्रिक नीति तथा AD वक्र में खिसकाव (Monetary Policy and Shift in the AD Curve)

21.4 राजकोषीय नीति तथा AD वक्र का सरकना (Fiscal Policy and Shift in the AD Curve)

21.5 सारांश (Summary)

21.6 शब्दकोश (Keywords)

21.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति जानने हेतु।
- मौद्रिक नीति तथा समग्र माँग जानने हेतु।
- मौद्रिक नीति तथा AD वक्र में खिसकाव जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

हम एक ऐसी स्थिति का अध्ययन करते हैं जिसमें मौद्रिक अधिकारी, मौद्रिक नीति के उपकरण के रूप में ब्याज की दर (मुद्रा पूर्ति की अपेक्षा) का निर्धारण करते हैं। जब ब्याज की दर में कमी की जाती है तो यह विस्तारात्मक (Expansionary) मौद्रिक नीति का संकेत होता है और जब ब्याज की दर में वृद्धि की जाती है तो यह संकुचनात्मक (Contractionary) मौद्रिक नीति का संकेत होता है। IS-LM मॉडल से हम जान चुके हैं कि 'r' में वृद्धि मुद्रा पूर्ति में कमी से संबंधित है जबकि 'r' में कमी का संबंध मुद्रा पूर्ति में वृद्धि से है। अत: जब 'r' को बढ़ाया जाता है तब यह अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति में संकुचन का संकेत देता है जब 'r' को घटाया जाता है तब यह मुद्रा पूर्ति में विस्तार का संकेत होता है।

21.1 मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति (Monetary and Fiscal Policy)

नोट

मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के प्रभाव का अध्ययन करने में IS-LM मॉडल का प्रयोग किया जा सकता है। आर्थिक स्थिरता को प्राप्त करने हेतु हम इस बात का विवेचन करेंगे कि कैसे मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति AD के स्तर को प्रभावित करती है (IS-LM मॉडल के संदर्भ में)।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. मौद्रिक अधिकारी, मौद्रिक नीति के उपकरण के रूप में ब्याज की दर का .... करते हैं।
2. मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होने से LM वक्र .... ओर को सरकता है।

21.2 मौद्रिक नीति तथा समग्र माँग (Monetary Policy and AD)

हम एक ऐसी स्थिति का अध्ययन करते हैं जिसमें मौद्रिक अधिकारी, मौद्रिक नीति के उपकरण के रूप में ब्याज की दर (मुद्रा पूर्ति की अपेक्षा) का निर्धारण करते हैं। जब ब्याज की दर में कमी की जाती है तो यह विस्तारात्मक (Expansionary) मौद्रिक नीति का संकेत होता है और जब ब्याज की दर में वृद्धि की जाती है तो यह संकुचनात्मक (Contractionary) मौद्रिक नीति का संकेत होता है। IS-LM मॉडल से हम जान चुके हैं कि 'r' में वृद्धि मुद्रा पूर्ति में कमी से संबंधित है जबकि 'r' में कमी का संबंध मुद्रा पूर्ति में वृद्धि से है। अत: जब 'r' को बढ़ाया जाता है तब यह अर्थव्यवस्था में मुद्रा पूर्ति में संकुचन का संकेत देता है जब 'r' को घटाया जाता है तब यह मुद्रा पूर्ति में विस्तार का संकेत होता है। मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होने से LM वक्र दायीं ओर को सरकता है तथा निश्चित कीमत स्तर पर यह AD वक्र को दायीं ओर खिसकाता है। इसी भाँति मुद्रा पूर्ति में कमी LM वक्र को बायीं ओर सरकाती है तथा निश्चित कीमत स्तर पर यह AD वक्र को बायीं ओर खिसकाता है। नि:संदेह, जब AD दायीं ओर सरकता है तब वास्तविक GDP में वृद्धि होती है और जब यह बायीं ओर सरकता है तब वास्तविक GDP में कमी होती है। इन स्थितियों को चित्र 17 में दिखाया गया है।

नोट्स मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होने से LM वक्र दाईं ओर सरकता है तथा निश्चित कीमत स्तर पर यह AD वक्र को दाईं ओर खिसकाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. जब AD बाईं ओर सरकता है तब वास्तविक GDP में होती है–
   (अ) कमी (ब) अधिकता
   (स) वृद्धि (द) इनमें से कोई नहीं।
4. संकुचनात्मक राजकोषीय नीति में, IS वक्र सरकता है–
   (अ) पीछे की ओर (ब) आगे की ओर
   (स) ऊपर की ओर (द) नीचे की ओर।
5. निवेश माँग फलन से अभिप्राय निवेश तथा ब्याज की दर के बीच .... संबंध से है।
   (अ) अनुकूल (ब) विपरीत
   (स) घनिष्ठ (द) इनमें से कोई नहीं।

नोट

6. कुल व्यय के स्वायत्त घटकों में से किसी में भी परिवर्तन होने से IS वक्र में आता है–

(अ) रुकावट (ब) खिसकाव

(स) रिसाव (द) इनमें से कोई नहीं।

21.3 मौद्रिक नीति तथा AD वक्र में खिसकाव

(Monetary Policy and Shift in the AD Curve)

ब्याज की दर में Or से Or_2 तक की कमी LM वक्र को LM_1 तक खिसकाती है (चित्र 21.1 का भाग A)। निश्चित IS वक्र पर LM वक्र के खिसकने से AD वक्र, AD से AD_1 तक दायीं ओर खिसक जाता है, जबकि कीमत स्तर OP स्थिर रहती है। (भाग B)। इसी भाँति ब्याज दर में वृद्धि LM वक्र को LM_2 तक खिसकाती है जो आगे AD वक्र को AD_2 तक खिसकाती है। अत: ब्याज दर में परिवर्तन के फलस्वरूप AD वक्र खिसकता है तथा आर्थिक स्थिरता लाने में सहायक होता है।

क्या आप जानते हैं सरकार की राजकोषीय नीति में परिवर्तन से भी AD वक्र में खिसकाव आता है।

21.4 राजकोषीय नीति तथा AD वक्र का सरकना

(Fiscal Policy and Shift in the AD Curve)

सरकार की राजकोषीय नीति (सरकार की कर, व्यय तथा ऋण संबंधी नीति) में परिवर्तन से भी AD वक्र (IS वक्र में परिवर्तन द्वारा) में खिसकाव आता है। विस्तारात्मक राजकोषीय नीति (कर दर कम करना और सार्वजनिक व्यय को बढ़ाना।) IS वक्र को दाईं ओर सरकाती है जो आगे AD वक्र को (वास्तविक GDP में वृद्धि द्वारा) प्रचलित कीमत स्तर पर दाईं ओर सरका देता है। इसी प्रकार, संकुचनात्मक राजकोषीय नीति (ऊँची कर दर और कम सार्वजनिक व्यय) में, IS वक्र पीछे की ओर सरकता है जो आगे AD वक्र को बाईं ओर सरकाता है। चित्र 18 इन स्थितियों की व्याख्या करता है। चित्र 21.1 का भाग B में प्रारंभिक संतुलन को बिंदु E पर प्रकट किया गया है जहाँ IS = LM। सरकार की विस्तारात्मक (Expansionary) राजकोषीय नीति से, IS वक्र सरक कर IS_1 हो जाता है। नया संतुलन वास्तविक GDP स्तर OY_1 है। जबकि प्रचलित कीमत स्तर तथा स्थिर मुद्रा पूर्ति पर AD सरक कर AD_1 हो जाती है। नि: संदेह, ब्याज दर बढ़ कर Or_1 हो जाती है जो कि सरकार द्वारा अपनायी विस्तारात्मक राजकोषीय नीति के विरुद्ध है। ऐसी स्थिति में मौद्रिक अधिकारी मुद्रा पूर्ति में

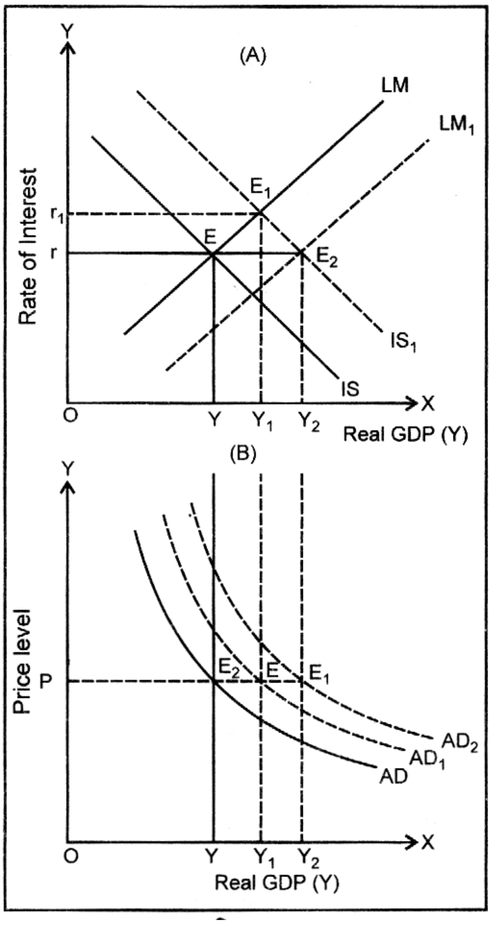

चित्र 21.1

नोट

वृद्धि की अनुमति दे सकता है जिसके फलस्वरूप LM वक्र सरक कर LM_1 हो जाती है तथा ब्याज दर लौट कर अपने आरंभिक स्तर Or पर टिक जाती है। LM वक्र के सरकने का अर्थ AD वक्र का सरक कर AD_2 हो जाना है। आरंभिक ब्याज दर Or के अनुरूप IS-LM संतुलन E_2 पर स्थापित होता है और E_1 द्वारा AD का स्तर दर्शाया जाता है जो कि प्रचलित कीमत स्तर OP के अनुरूप है। वास्तविक GDP बढ़कर OY_2 हो जाती है। अत: यदि मौद्रिक अधिकारी ब्याज दर को इसके आरंभिक स्तर पर बनाए रखने हेतु मुद्रा पूर्ति में वृद्धि करता है। (सरकारी व्यय में वृद्धि से पूर्व जो वह अपनी विस्तारात्मक राजकोषीय नीति को पूरक प्रयास के रूप में करता है) तो अर्थव्यवस्था में उच्च AD तथा वास्तविक GDP (अपरिवर्तित कीमत स्तर के साथ) पाया जाएगा बशर्ते कि ब्याज दर को वैसे ही छोड़ दिया जाए। सरकार की यदि संकुचनात्मक (Contractionary) राजकोषीय नीति अपनाती है, तो इसके विपरीत होगा।

टास्क मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

मुख्य बिंदु (Key Points)

- **IS वक्र** (IS Curve) : यह ब्याज की दर और वास्तविक GDP के संयोग को प्रकट करता है जो बचत तथा निवेश और कुल व्यय तथा कुल उत्पादन में समानता लाता है।
- **IS वक्र को व्युत्पन्न करने के कदम** (Steps to Derive IS Curve) (*i*) निवेश तथा ब्याज की दर के बीच संबंध, (*ii*) निवेश व्यय और वास्तविक GDP के बीच संबंध।
- **निवेश माँग फलन** (Investment Demand Function): इससे अभिप्राय निवेश तथा ब्याज की दर के बीच विपरीत संबंध से है।
- **IS वक्र का ढलान** (Slope of IS Curve) : IS वक्र का ढलान नीचे की ओर होता है जो ब्याज की दर और वास्तविक GDP के बीच ऋणात्मक संबंध को व्यक्त करता है। ब्याज की दर में परिवर्तन से वास्तविक GDP में परिवर्तन का अनुपात लेकर इसे मापा जाता है।
- **IS वक्र में खिसकाव** (Shift in the IS Curve) : कुल व्यय के स्वायत्त घटकों में से किसी में भी परिवर्तन होने से IS वक्र में खिसकाव आता है।
- **LM वक्र** (LM Curve) : यह वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर के उन विभिन्न संयोगों को प्रकट करता है जो मुद्रा की माँग और मुद्रा की पूर्ति में समानता लाते हैं।
- **LM वक्र को व्युत्पन्न करने के कदम** (Steps to Derive LM Curve) : (*i*) मुद्रा माँग, ब्याज की दर तथा वास्तविक GDP के बीच संबंध, (*ii*) मुद्रा माँग तथा पूर्ति के बीच समानता।
- **LM वक्र का ढलान** (Slope of LM Curve) : यह ऊपर की ओर ढलान वाला होता है जो वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर के बीच धनात्मक संबंध का संकेत देता है। इसको ब्याज की दर में परिवर्तन तथा वास्तविक GDP में परिवर्तन के अनुपात द्वारा मापा जाता है।
- **LM वक्र में खिसकाव** (Shift in LM Curve) : LM वक्र में खिसकाव मुद्रा के लिए माँग अथवा मुद्रा की पूर्ति में परिवर्तन के कारण होता है।
- **वस्तु तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन** (Simultaneous Equilibrium in Product and Money Market) : वस्तु बाजार तथा मुद्रा बाजार में एक साथ संतुलन उस बिंदु पर होता है जहाँ IS वक्र और LM

नोट

वक्र एक दूसरे को काटते हैं। यह वास्तविक GDP तथा ब्याज की दर के संयोग को प्रकट करता है जो उत्पाद की माँग तथा पूर्ति और वस्तु की माँग तथा पूर्ति को बराबर करता है।

- **AD की व्युत्पत्ति** (Derivation of AD) : IS-LM मॉडल AD वक्र की व्युत्पत्ति में सहायक होता है। कीमत स्तर में वृद्धि के फलस्वरूप वास्तविक मुद्रा पूर्ति घटती है जिसका अर्थ LM वक्र का पीछे की ओर खिसकना है तथा इसके अनुरूप संतुलित वास्तविक GDP का निम्न स्तर जिसका अर्थ AD का निम्न स्तर है। अतः AD की व्युत्पत्ति कीमत स्तर तथा वास्तविक GDP के बीच विपरीत संबंध का परिणाम है।
- **मौद्रिक नीति तथा AD** (Monetary Policy and AD) : विस्तारात्मक मौद्रिक नीति के कारण LM वक्र दाईं ओर को खिसकता है। इसका निहितार्थ प्रचलित कीमत स्तर पर AD का आगे (Forward) को सरकना है।
- **राजकोषीय नीति तथा AD** (Fiscal Policy and AD) : विस्तारात्मक राजकोषीय नीति के कारण IS वक्र दाईं ओर को खिसकता है। इसका निहितार्थ प्रचलित कीमत स्तर पर AD का आगे (Forward) को सरकना है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. IS-LM मॉडल AD वक्र की व्युत्पत्ति में सहायक होता है।
8. कीमत स्मर में वृद्धि के फलस्वरूप वास्तविक मुद्रा पूर्ति घटती है।
9. AD की व्युत्पत्ति कीमत स्तर तथा वास्तविक GDP के बीच विपरीत संबंध का परिणाम है।
10. विस्तारात्मक मौद्रिक नीति के कारण LM वक्र बाईं ओर खिसकता है।

21.5 सारांश (Summary)

- इसी भाँति मुद्रा पूर्ति में कमी LM वक्र को बायीं ओर सरकाती है तथा निश्चित कीमत स्तर पर यह AD वक्र को बायीं ओर खिसकाता है। निःसंदेह, जब AD दायीं ओर सरकता है तब वास्तविक GDP में वृद्धि होती है और जब यह बायीं ओर सरकता है तब वास्तविक GDP में कमी होती है।

21.6 शब्दकोश (Keywords)

- राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) – वित्तीय नीति।
- मौद्रिक (Monetary) – मुद्रा संबंधी।

21.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति को परिभाषित कीजिए।
2. मौद्रिक नीति तथा समग्र माँग को स्पष्ट कीजिए।
3. मौद्रिक नीति तथा वक्र में खिसकाव से आप क्या समझते हैं
4. राजकोषीय नीति तथा AD वक्र के सरकने से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

नोट

1. निर्धारण	2. दाईं	3. (अ)	4. (अ)
5. (ब)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. सही	10. गलत।		

21.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010

नोट

इकाई–22: स्फीति
(Inflation)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22 .1 स्फीति (Inflation)

22 .2 स्फीति के प्रकार (Types of Inflation)

22 .3 स्फीति अंतराल (Inflationary Gap)

22 .4 स्फीति के प्रभाव (Effects of Inflation)

22 .5 स्फीति का नियंत्रण (Control of Inflation)

22.6 सारांश (Summary)

22.7 शब्दकोश (Keywords)

22.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

22.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- स्फीति को जानने हेतु
- स्फीति अंतराल जानने हेतु।
- स्फीति के प्रभाव जानने हेतु।
- स्फीति का नियंत्रण जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

लोगों को वस्तुओं व सेवाओं को खरीदने के योग्य बनाने की मुद्रा की शक्ति इसे मूल्य प्रदान करती है। इस प्रकार मुद्रा का मूल्य वस्तुओं व सेवाओं पर मुद्रा के अधिकार को प्रकट करता है। इसे मुद्रा की क्रय शक्ति के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन मूल्य स्तर के परिवर्तन में प्रकट (reflected) होता है। जैसा कि परिमाण सिद्धांत के पिछले अध्याय में समझाया जा चुका है, मुद्रा का मूल्य और सामान्य मूल्य स्तर प्रतिलोमत: संबंधित (inversely related) है। मुद्रा के मूल्य के घटने अथवा बढ़ने के साथ सामान्य मूल्य स्तर क्रमश: बढ़ता या घटता है। इसके अनुसार, स्फीति अथवा अपस्फीति की स्थिति उत्पन्न होती है। चूँकि मूल्य का यह परिवर्तन उन सभी लोगों को प्रभावित करता है, जो मुद्रा की सहायता से सौदे करते हैं, अत: स्फीति और अपस्फीति की घटना को समझना महत्त्वपूर्ण होगा।

22.1 स्फीति (Inflation)

स्फीति शब्द अनेक भावों में प्रयुक्त होता रहा है। इस शब्द की सामान्य रूप से स्वीकृत, सूक्ष्म (precise) और वैज्ञानिक (scientific) परिभाषा देना बहुत कठिन है। जब पूर्णतया स्वर्ण–चाँदी से समर्थित प्रतिनिधि पत्र मुद्रा प्रचलन में होती थी, तो स्फीति को ऐसी स्थिति समझा जाता था, जिसमें प्रचलन में मुद्रा की मात्रा इसे समर्थित करते हुए कोषों की मात्रा से अधिक होती थी। धीरे-धीरे स्फीति की इस धारणा को छोड़ दिया गया और स्फीति को उस स्थिति के रूप में जाना जाने लगा, जिसमें प्रचलन में मुद्रा की मात्रा उत्पादन में वृद्धि की तुलना में तेजी से बढ़कर निरंतर मूल्य वृद्धि का कारण बनती थी। *कॉलबोर्न* (Coulbourn) का भी यही अर्थ है, जब वे स्फीति को "बहुत कम वस्तुओं के पीछे बहुत अधिक मुद्रा' के रूप में परिभाषित करते हैं। केमरर (Kemmerer) भी यह विचार करते हैं कि स्फीति तब विद्यमान होगी, जब देश में मुद्रा की मात्रा वस्तुओं व सेवाओं की भौतिक मात्रा से अधिक होती है। इसीलिए, परिणाम विचारधारा के अनुसार, मुद्रा की मात्रा मुद्रा के मूल्य में कमी द्वारा मूल्यों की वृद्धि के लिए उत्तरदायी है। मुद्रा के परिमाण सिद्धांत पर आधारित यह परिभाषा प्रयोग में तब तक जारी रही, जब 1930 दशक की महान मंदी ने मुद्रा के परिमाण सिद्धांत की सीमाओं को उद्घाटित कर दिया। *कीन्स* (*Keynes*) की क्रांति के परिणामस्वरूप इस परिभाषा को तद्नुसार बदल दिया गया। कीन्स के समकालीन अर्थशास्त्री *पीगू* (*Pigou*) ने स्फीति को मुद्रा आय के परिवर्तनों के संबंध में परिभाषित किया है। उनके विचार में, जब मुद्रा आय अर्जन क्रिया से अधिक अनुपात में बढ़ रही होती है, तो स्फीति बनी रहती है।

कीन्स ने स्फीति की धारणा को पूर्ण रोजगार की घटना से जोड़ दिया। पीगु के समान, कीन्स ने स्फीति को मूल्य स्तर की वृद्धि से संबंध किया है, जो पूर्ण रोजगार की स्थिति के बाद अस्तित्व में आती है। उनके अनुसार, **स्फीति का संबंध मूल्य स्तर में उस वृद्धि से है जो पूर्ण रोजगार स्तर प्राप्त होने के बाद होती है।** मूल्य वृद्धि की इस स्थिति में, अर्थव्यवस्था में उत्पादन नहीं बढ़ेगा।

कीन्स ने इस स्फीति को उत्पादन में वृद्धि के साथ हुई मूल्यों में वृद्धि से अलग समझा है। यदि एक अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार स्तर के नीचे काम कर रही होती है, तो बड़ी संख्या में बेरोजगार लोग और अप्रयुक्त संसाधन मौजूद होते हैं। इस स्थिति में, मुद्रा के विस्तार के परिणामस्वरूप माँग में वृद्धि प्रणाली में न केवल मूल्य स्तर को, बल्कि उत्पादन की मात्रा को भी बढ़ाएगा। मूल्य स्तर की इस वृद्धि को **संस्फीति (reflation)** अथवा **आंशिक स्फीति** के वर्ग में रखा जाता है। संस्फीति की स्थिति में मूल्य धीमी और स्थिर गति से बढ़ते हैं। क्योंकि मूल्यों की वृद्धि का प्रभाव उत्पादन की वृद्धि से समाप्त हो जाता है। सामान्यतया, जितनी अधिक बेरोजगारी होती है, मुद्रा पूर्ति में वृद्धि का मूल्यों की अपेक्षा उत्पादन को बढ़ाना अधिक संभावनीय है।

नोट्स केमरर के अनुसार, स्फीति तब विद्यमान होगी जब देश में मुद्रा की मात्रा वस्तुओं व सेवाओं की भौतिक मात्रा से अधिक होती है।

कीन्स के अनुसार, पूर्ण रोजगार की अवस्था तक मूल्यों की आरंभिक वृद्धि देश के लिए वांछनीय है, क्योंकि इससे उत्पादन और रोजगार में भी वृद्धि होती है। यह अर्थव्यवस्था को मंदी के गंभीर परिणामों से मुक्त करती है। यह सरकार द्वारा लिए गए सुविचारित प्रति अपस्फीतिकारी उपायों (deliberate anti-deflationary measures) द्वारा संभव है, जब मूल्य गिरकर न्यूनतम सीमा पर पहुँच जाते हैं। संभव है, पूर्ण रोजगार स्तर के बाद मूल्यों में वृद्धि अर्थव्यवस्था के लिए अच्छी न हो, क्योंकि उत्पादन अथवा रोजगार में कोई अनुरूप वृद्धि नहीं होती। यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि **स्फीति** शब्द भारत जैसी एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए प्रयुक्त हो सकता है, जहाँ मूल्यों की स्फीतिकारी वृद्धि के साथ मनुष्यों व संसाधनों की बेरोजगारी विद्यमान होती है। यह पूँजी, भूमि, तंत्र (machinery), मूलभूत ढाँचे (infrastructure) की सीमित मात्रा और तकनीकी जानकारी के अभाव आदि अड़चनों

नोट

के होने के कारण होता है। इन अड़चनों के कारण, संभव है, एक निश्चित अवस्था के परे मूल्य स्तर में वृद्धि उत्पादन में वृद्धि प्रेरित न करे, हालांकि देश ने पूर्ण रोजगार की अवस्था प्राप्त न की हो।

यह ध्यान देने की बात है कि 'स्फीति' शब्द का भारत जैसे विकासशील देश के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जहाँ मूल्यों की स्फीतिकारी वृद्धि के साथ मनुष्यों व पदार्थों की बेरोजगारी विद्यमान होती है। टेक्सटाइल, टेक्सटाइल मशीन, इस्पात, टायर, ट्रेक्टर व्यापारिक वाहन, सामान्य अभियांत्रिकी (general engineering), आदि उद्योग कुछ उदाहरण रहे हैं। यह पूँजी, भूमि, तन्त्र (Machinary), मूलभूत ढाँचे (Infrastructure) की सीमित मात्रा तथा तकनीकि ज्ञान के अभाव जैसी अड़चनों के कारण हुआ है। इन अड़चनों के कारण, एक सीमा के बाद मूल्य स्तर में वृद्धि के परिणामस्वरूप उत्पादन का बढ़ना जरूरी नहीं है, जबकि देश ने पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त नहीं की है। बढ़ती हुई स्थिरता (या बेरोजगारी) के साथ बढ़ती हुई स्फीति की समस्या को स्थिर स्फीति (stagnation या slumpflation) के नाम से अक्सर जाना जाता है।

स्थिर स्फीति शब्द तेल मूल्यों की वृद्धि, व्यापार की प्रतिकूल शर्तों, श्रम शक्ति की वृद्धि, मजदूरी ढ़ाँचे में दृढ़ता (rigidity in wage structure) के कारण 1970 दशक में आर्थिक साहित्य में जोड़ा गया है। यह स्थिर तथा स्फीति का संयोग है, जहां स्थिर शब्द स्थिरता से तथा स्फीति शब्द मुद्रा स्फीति से लिया गया है। स्थिर स्फीति को स्फीतिकारी मंदी भी कहा जाता है क्योंकि यहाँ मंदी के साथ स्फीति की ऊँची दर पाई जाती है। यह स्फीति उत्पन्न करती हुई वस्तु बाजार में अतिरेक माँग के साथ अर्थव्यवस्था में बरोजागारी उत्पन्न करती हुई श्रम की कम माँग के कारण से है।

इस अध्याय में की गई व्याख्या से यह स्पष्ट है कि स्फीति का अर्थ विभिन्न अर्थशास्त्रियों के लिए, इसके लिए उत्तरदायी कारणों के संबंध में ही अलग-अलग बात हो सकती है। जहाँ तक अंतिम परिणामों का संबंध है, इनका लगभग एक ही मतलब है, अर्थात सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि।

एक अर्थव्यवस्था जो वृद्धि की आवश्यक दर की अपेक्षा अधिक तेजी से विकसित होने का प्रयास करती है, उसे स्फीति का सामना करना होगा। जब वर्तमान मूल्य स्तर पर, सरकार अर्थव्यवस्था द्वारा बंटित (released) संसाधनों से अधिक लेने का निर्णय लेती है, तो परिणाम स्फीति हो सकता है। देश स्फीति से पीड़ित हो सकता है, जब अर्थव्यवस्था के विभिन्न वर्ग उत्पादकता की वृद्धि की अपेक्षा तेजी से अपने सापेक्षिक आय अंशों को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। यह तब भी आ सकती है, यदि संभावनाओं के कारण वस्तुओं व सेवाओं की माँग अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पादन विस्तार करने की अपेक्षा तेजी से बढ़ती है।

क्या आप जानते हैं स्फीति का संबंध मूल्य स्तर में उस वृद्धि से है जो पूर्ण रोजगार स्तर प्राप्त होने के बाद होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. स्फीति पूर्ण रोजगार के पश्चात् मुद्राओं के सामान्य स्तर में .... और भारी वृद्धि है।
2. स्फीति की आरंभिक अवस्था में, मूल्य बहुत कम दर पर .... हैं।

22.2 स्फीति के प्रकार (Types of Inflation)

स्फीति पूर्ण रोजगार के पश्चात मुद्राओं के सामान्य स्तर में लगातार और भारी वृद्धि है। अर्थव्यवस्था के मूल्य स्तर

में एक वर्ष में मात्र 0.2 या 0.3 प्रतिशत की वृद्धि स्फीति के रूप में वर्णन करने के योग्य नहीं हो सकती है, क्योंकि यह पर्याप्त नहीं है। इसी प्रकार, एक वर्ष जिसकी एक तिमाही में मूल्य स्तर 2 प्रतिशत से बढ़ जाएँ और दूसरी तिमाही में 3 प्रतिशत से गिर जाएँ, तीसरी तिमाही में 4 प्रतिशत से बढ़ जाएँ और फिर चौथी तिमाही में 5 प्रतिशत से गिर जाएँ तो इसका मुश्किल से एक स्फीतिकारी काल के रूप में वर्णन किया जा सकता है। फिर लगभग सभी वस्तुओं को मूल्य में वृद्धि अनुभव करनी चाहिए। कुछ वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि, जबकि अन्य वस्तुओं के मूल्य में गिरावट हो, तो इसे कठिनाई से स्फीति के रूप में पुकारने के योग्य माना जाएगा।

स्फीति के सूक्ष्म अर्थ को समझने के बाद, विभिन्न आधारों पर स्फीति के अलग-अलग प्रकारों को जानना महत्त्वपूर्ण है।

1. स्फीति की दर के आधार पर (On Basis of Rate of Inflation)

मूल्य वृद्धि की प्रबलता के आधार पर, स्फीति को तीन प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात् (क) रेंगती हुई स्फीति, (ख) दौड़ती हुई स्फीति और (ग) अति स्फीति

(क) रेंगती हुई स्फीति (Creeping Inflation)–स्फीति की आरंभिक अवस्था में, मूल्य बहुत कम दर पर बढ़ते हैं। मुद्रा की इस मंद दर को **रेंगती** हुई **स्फीति** माना जा सकता है। यद्यपि इसका परिमाण बताना कठिन है, कुछ अर्थशास्त्रियों ने 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक की स्फीति को रेंगती हुई स्फीति के रूप में बताया है[1]। अनेक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, मूल्य स्तर में मंद वृद्धि आर्थिक वृद्धि के लिए आवश्यक स्थिति है। धीमी दर पर बढ़ते हुए मूल्य निवेश के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं। ये अर्थव्यवस्था को **प्रगतिरोध जाल (stagnation trap)** में गिरने से बचा देंगे।

(ख) दौड़ती हुई स्फीति (Running Inflation)–यदि मंद रेंगती हुई स्फीति को लंबे समय तक अनियंत्रित रहने दिया जाए, तो मूल्य स्तर में वृद्धि समय के साथ अधिक प्रभावपूर्ण और भयप्रद (more marked and allarming) बन जाती है। यह **दौड़ती हुई स्फीति** का स्वरूप धारण कर लेती है। ऐसी अवस्था में, मूल्य लगभग 8 से 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष जैसे तेज दर से बढ़ते हैं। दौड़ती हुई स्फीति एक चेतावनी संकेत (warning signal) है। इस अवस्था में स्फीतिकारी प्रवृत्तियों (inflationary tendencies) को रोकने के लिए उपयुक्त आवश्यक उपाय जरूरी है। यदि समय पर ये कदम नहीं उठाए जाते, तो दौड़ती हुई स्फीति बचत क्षमता और इस प्रकार दीर्घ कालीन निवेश कार्यक्रमों में कमी द्वारा अर्थव्यवस्था उन्मूलन कर सकती है।

(ग) अति स्फीति (Hyper Inflation)–जब मौद्रिक प्राधिकारी दौड़ती हुई स्फीति पर नियंत्रण खो बैठते हैं तो यह अति स्फीति का परिणाम होती है। यह स्फीति की अंतिम अवस्था है, जहाँ मूल्य स्तर बढ़ सकने की कोई सीमा नहीं होती। इस अवस्था में, मूल्य अत्यधिक तीव्र दर से बढ़ते हैं। इस प्रकार की स्फीति को **सरपट या छलांग स्फीति** भी माना जाता है।

अति स्फीति में, लोग मूल्यों के और बढ़ने की आशा करते हैं, इसलिए, वे स्फीति से अभिज्ञ (conscious) बन जाते हैं, और मुद्रा को बहुत तेजदर से व्यय करते हैं, जिससे प्रचलन वेग बढ़ जाता है। चूँकि लोग बचत की लागत पर उपभोग पर खर्च करते हैं, अतः बचत से उधार (राशि) अति स्फीति का नियंत्रण करने के लिए आवश्यक गैर-स्फीतिकारी स्रोतों की पूर्ति करने में असफल रहता है। सरकार को घाटे की वित्त व्यवस्था (deficit financing) का सहारा लेना पड़ता है, जो फिर स्फीतिकारी है।

अति स्फीति से हर कीमत पर बच कर रहना चाहिए। यह आर्थिक प्रक्रिया में विशाल विकार उत्पन्न करती है। यह वर्तमान सामाजिक और आर्थिक प्रक्रिया की असली उत्तरजीवता (very survival) को संकट में भी डाल सकती है, जिससे अन्याय और असंतोष का व्यापक अनुभव उत्पन्न होता है।

अतिस्फीति का सबसे बुरा रूप अंतर्युद्ध के कालों के दौरान देखा गया था। मूल्य वृद्धि डगमगा रही थी, जब तक यह युद्ध पूर्व स्तर की दस लाख गुना नहीं हो गई। रात-रात में आय और संपत्ति के सभी रूपों ने अपना मूल्य खो दिया। इस स्फीति ने जर्मनी में हजारों और लाखों लोगों को बरबाद कर दिया, यहाँ तक कि जर्मन के मध्यम वर्ग का भी सत्यानाश कर दिया।

नोट

2. नियंत्रण की मात्रा के आधार पर (On Basis of Degree of Control)

नियंत्रण की मात्रा के आधार पर, स्फीति को खुली और दमित स्फीति में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) खुली स्फीति (Open Inflation)–स्फीति को खुला कहा जाता है, **जब मूल्य बिना किसी अवरोध (रोक) और नियंत्रण के लगातार बढ़ते हैं।** मिल्टन फ्रीडमैन (Milton Friedman) के शब्दों में, यह "एक स्फीतिकारी प्रक्रिया है, जिसमें सरकारी मूल्य नियंत्रण अथवा मिलती-जुलती तकनीकों द्वारा बिना रोके, मूल्यों को बढ़ने दिया जाता है।" यह अंत में अतिस्फीति में समाप्त हो सकती है। ए.सी.एल. डे (A.C.L. Dey) के अनुसार, खुली स्फीति कुछ ऐसे परिवर्तन से आरंभ होती है, जिसे वर्तमान मूल्यों पर उपलब्ध हो सकने वाली संपूर्ण माँग को संतुष्ट करना असंभव बनाकर आरंभिक मूल्य वृद्धि का परिणाम होती है। मूल्यों में और वृद्धि सौदेबाजों की प्रतिक्रियाओं से प्रेरित होता है।

(ख) दमित स्फीति (Suppressed Inflation)–इस प्रकार की स्फीति के अंतर्गत, यद्यपि मूल्य स्तर के बढ़ने की स्थितियाँ होती है, किंतु मूल्य नियंत्रण और नियंत्रित वितरण (rationing) जैसी सरकार नीतियों के प्रयोग द्वारा मूल्य स्तर को बढ़ने नहीं दिया जाता। कुछ असाधारण स्थितियों, जहाँ भविष्य के लिए कोई स्फीतिकारी दबाव निर्मित नहीं हो रहा होता, को छोड़कर ज्योंही नियंत्रण उपाय उठा लिए जाते हैं, मूल्य बढ़ सकते हैं। दमित स्फीति के दो तात्पर्य है, यानी उपभोक्ता व्यय का स्थान और माँग का विचलन।

जब मौजूदा मूल्य वृद्धि को रोकने के लिए नीतियाँ कार्यान्वित की जाती है, तो दमित स्फीति उपभोग व्यय में स्थगन प्रेरित करती है। युद्धकाल के दौरान, मूल्य वृद्धि के प्रतिकूल प्रभावों को टालने के लिए सरकार वितरण नियंत्रण और अन्य नियंत्रणों का सहारा लेती है। फलस्वरूप, उपभोक्ता और फर्में बचतें एकत्र करती हैं, क्योंकि वे उन वस्तुओं को खरीदने में असमर्थ हैं, जिन्हें वे वर्तमान मूल्यों व आय स्तरों पर चाहते हैं। सौदेबाजों की माँग (pent up demand) उन वांछित वस्तुओं व सेवाओं को खरीदने से पूरा होती है, जब भी वे उपलब्ध होती हैं। नियंत्रण का लंबा समय (pent up) माँग को इतना अधिक बढ़ा देता है कि नियंत्रण अप्रभावी (ineffective) हो जाता है और काला बाजार (black market) उत्पन्न होता है। अतः दमित स्फीति के अंतर्गत, मूल्य अस्थायी रूप से बढ़ने से रोके जाते हैं, यद्यपि मूल्यों को ऊपर उठाती हुई ज्वालामुखी शक्तियाँ मौजूद होती है। वे किसी भी क्षण फट सकती हैं, यदि उन्हें ऐसा करने का अवसर प्राप्त होता है, जिसका परिणाम खुली अति स्फीति होती हैं।

दमित स्फीति के कारण एक प्रकार की वस्तुओं से दूसरे प्रकार की वस्तुओं में **माँग का विचलन** भी हो सकता है। चूँकि प्रत्येक वस्तु का राशन और नियंत्रण करना संभव नहीं है, अतः बचत की गई अतिरेक मुद्रा अनियंत्रित और गैर-राशनवाली वस्तुओं पर खर्च हो सकती है। कुछ स्थितियों में, यह व्यय को उन मार्गों में भी विचलित कर सकता है, जो अनुत्पादी समझे (unproductive) जाते हैं।

दमित स्फीति के अनेक खतरे हैं, **पहला,** यह प्रशासनिक समस्याएँ उत्पन्न करती है, विशेष रूप से जब प्रशासन अयोग्य और भ्रष्ट होता है, जिसके परिणामस्वरूप काला बाजारी (black marketing) होती है। **दूसरा,** यह देश के उत्पादक संसाधनों का स्थिर मूल्य की आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न करने वाले उद्योगों से अनावश्यक वस्तुएँ उत्पन्न करने वाले उद्योगों (जिनके मूल्य नियंत्रित नहीं किए जाते), में अनार्थिक विचलन प्रेरित करता है। **अंत में,** नियंत्रण फुरसत (leisure) के आकर्षण को बढ़ाते हैं। जब कोई व्यक्ति अपनी वर्तमान आय से उन सभी वस्तुओं को मुक्त रूप से खरीद नहीं सकता, जिन्हें वह खरीदना चाहता है, तो इसके उत्पादन में कमी और स्फीति उत्पन्न होगी।

3. कारणों के आधार पर (On Basis of Causes)

कारणाों के आधार पर स्फीति पाँच प्रकार ही है।

(क) खास स्फीति (Credit Inflation)–बैंक ग्राहकों के प्राथमिक जमाओं (primary deposits) तथा बैंक द्वारा दिए गए ऋणों व उधारों (loans and advances) से उत्पन्न व्युत्पन्न जमाओं (derivative doposits) के आधार पर

नोट

साख सृजन करते हैं। उत्पादन में वृद्धि के बिना साख मुद्रा का विस्तार मुद्रा पूर्ति करके **साख स्फीति** उत्पन्न करती है।

(ख) चल मुद्रा स्फीति (Currency Inflation)–चल मुद्रा के अत्यधिक प्रवाह से उत्पन्न स्फीति चल मुद्रा स्फीति कहलाती है। यह तब पाई जाती है, जब वस्तुओं व सेवाओं की खरीदने के लिए अनुकूल न्यायसंगत माँग के बिना सरकार अधिक चल मुद्रा जारी करती है।

(ग) घाटा प्रेरित स्फीति (Deficit Induced Inflation)–जब सरकार का व्यय इसकी आगम से अधिक होता, तो यह अंतर घाटे की वित्त व्यवस्था से भरा जाता है। इससे मुद्रा पूर्ति में वृद्धि उत्पन्न होगी, चाहें इस उद्देश्य के लिए कुछ भी तकनीक अपनाई जाए। मूल्यों में वृद्धि का परिणाम होने वाली इस प्रकार की स्फीति **बजट स्फीति** कहलाती है।

(घ) माँग प्रेरित स्फीति (Demand Pull Inflation)–स्फीति का सबसे सामान्य और महत्त्वपूर्ण कारण स्थिर अथवा कम तेजी से बढ़ती हुई वस्तुओं व सेवाओं के ऊपर सदा बढ़ने वाली माँग का दबाव है। पूर्ति स्थिर रहने पर, सामूहिक माँग में वृद्धि मूल्यों को ऊपर उठा देगी। माँग प्रेरित स्फीति तब उत्पन्न होती है, जब वर्तमान मूल्यों पर उपलब्ध पूर्ति की अपेक्षा अतिरेक माँग होती है। यह चित्र 22.1 में स्पष्ट किया गया है। यहाँ X-अक्ष आय अथवा उत्पादन को दर्शाता है, जबकि Y-अक्ष मूल्य स्तर को मापता है। सामूहिक पूर्ति वक्र दाईं तरफ ऊपर की ओर बढ़ता है, जब तक यह पूर्ण रोजगार स्तर के OF उत्पादन पर लंबवत नहीं हो जाता, चूँकि माँग में वृद्धि होने से सामूहिक माँग वक्र D_1 से D_2, D_3, D_4 और D_5 ऊपर की ओर खिसकता है। मूल्य स्तर OP_1 से OP_2, OP_3, OP_4 और OP_5 बढ़ जाता है। यह देखा जाता है कि आरंभ में मूल्य और उत्पादन दोनों बढ़ते हैं। एक बार सामूहिक पूर्ति वक्र के C बिंदु पर पूर्ण रोजगार स्तर प्राप्त करने पर, सामूहिक माँग में D_4 व D_5 तक और वृद्धि केवल मूल्य स्तर से बढ़ाएगी। इसे **माँग प्रेरित स्फीति** के रूप में जाना जाता है। माँग पक्ष स्फीतिकारी दबाव के लिए विभिन्न कारक उत्तरदायी हैं।

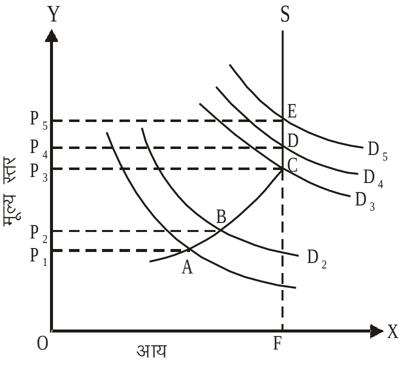

चित्र 22.1

स्फीति का मुख्य स्रोत **मुद्रा की मात्रा में वृद्धि** है। माँग जमाओं में वृद्धि और बैंकों द्वारा साख के विस्तार के परिणाम स्वरूप मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होती है, जिससे आय का स्तर बढ़ जाता है। (प्रयोज्य) आय में वृद्धि उपभोग व्यय में वृद्धि उत्पन्न करती है। ऐसी वृद्धि वस्तुओं का मूल्य बढ़ाती है। मुद्रा पूर्ति तब भी बढ़ सकती है, जब सरकार केंद्रीय बैंक और वाणित्य बैंकों से उधार द्वारा अपने आर्थिक विकास योजनाओं की वित्त व्यवस्था के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था (deficit financing) का सहारा लेती है। सामूहिक माँग में विस्तार **तेजी से बढ़ते हुए निजी व्यापारिक व्ययों** अथवा युद्ध या आर्थिक विकास के लिए **बढ़ते हुए सरकारी व्यय** के परिणाम स्वरूप हो सकता है। भारी-भरकम व्यय वास्तविक उत्पादन की पूर्ति में अनुकूल वृद्धि के बिना विशाल मुद्रा आय और इस प्रकार मांग उत्पन्न करेंगे। यह स्पष्टतया स्वभाव में स्फीतिकारी है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, अभूतपूर्व पैमाने (unprecedented scale) पर सरकारी व्यय बढ़ने के कारण, विश्व के लगभग सभी देशों को माँग प्रेरित स्फीति का सामना करना पड़ा।

इसके अतिरिक्त बढ़ी हुई माँग के लिए घरेलू वस्तुओं व सेवाओं पर **विदेशी व्यय** एक अन्य उत्तरदायी कारक है। यह कारक उस देश के लिए महत्त्वपूर्ण है, जो निर्यात अतिरेक (export surplus) बनाए रखता है। परंतु, यदि उत्पन्न आय आयातों पर प्रयुक्त होती है या संचित कर ली जाती है, तो इसका अर्थव्यवस्था पर स्फीतिकारी प्रभाव नहीं होगा।

नोट

(ङ) लागतजन्य स्फीति (Cost Push Inflation)– लागतजन्य स्फीति तब उत्पन्न होती है, जब कच्चे मालों, मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्यों अथवा मजदूरियों में वृद्धि के कारण उद्योग की उत्पादन लागतें बढ़ जाती हैं। इसके कारण उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि होगी। जब उत्पादन लागत बढ़ती है, तो सामूहिक पूर्ति वक्र, यह दिखाते हुए कि प्रचलित मूल्यों पर कम मात्रा की पूर्ति होती है, बाई ओर खिसक गया है। पूर्ति वक्रों का S_1 से S_2, S_3 और S_4 पर नीचे खिसकाव चित्र 22.2 में प्रदर्शित किया गया है। सामूहिक माँग वक्र को स्थिर मानते हुए, पूर्ति में कमी मूल्य स्तर को क्रमशः OP_1 से OP_2, OP_3 व OP_4 ऊपर की ओर उठा देती है। लागतों में ऊपर की ओर गति (upward movement) के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं।

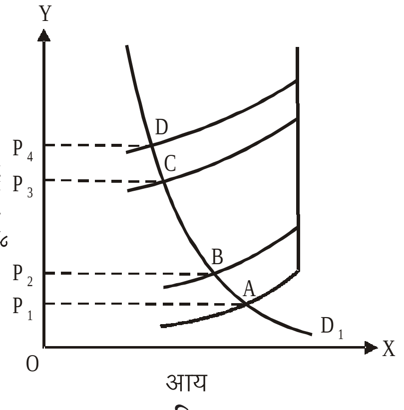

चित्र 22.2

(*i*) ऊँची मजदूरी दरें (Higher Wage Rates)–शक्तिशाली व्यापार संघों (trade unions) के विकास के साथ, श्रमिक सफलतापूर्वक अपने लिए ऊँची मजदूरियाँ प्राप्त कर लेते हैं। ये मजदूरियाँ उनकी उत्पादकता में वृद्धि से भी अधिक हो सकती हैं। जब फर्मों को पता लगता है कि उनकी श्रमिक लागत बढ़ रही है, तो वे ऊँची लागत को बचाने के लिए मूल्य बढ़ा देती है। वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि निर्वाह की ऊँची लागत (higher cost of living) अथवा वास्तविक मजदूरियों में कमी प्रेरित करती है। इस कमी को निष्प्रभावित (neutralise) करने के लिए श्रमिक अपनी मजदूरियों में और वृद्धि की माँग करते हैं। किसी भी स्थिति में मूल्यों में वृद्धि का अंतिम भार उपभोक्ता को वहन करना पड़ता है। मजदूरी दरों में वृद्धि और फलस्वरूप मूल्यों में वृद्धि का सिलसिला अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव (मजदूरी-मूल्य कुंडली–wage- price spiral) बना देता है, जिसे **मजदूरी जन्य स्फीति** कहा जाता है। ऐसी स्फीति अपूर्णतया प्रतियोगी (imperfectly competitive) श्रमिक बाजार में पाई जाती है जहाँ श्रमिक असंगठित होता है अथवा शक्तिशाली प्राधिकारियों उत्पादकों द्वारा दमित किया जाता है, वहाँ (यह स्फीति) संभव नहीं है।

(*ii*) लाभ की ऊँची मात्राएँ (Higher Profit Margins)–एकाधिकारी (monoplists) उत्पादकों, जमाखोरों और सट्टबाजों द्वारा लाभ की ऊँची मात्राएं नियत करने से भी लागत को बढ़ाया जा सकता है। वे किसी लागत वृद्धि की क्षतिपूर्ति के लिए पर्याप्त से अधिक मूल्यों को बढ़ाने की स्थिति में होते हैं। बाजार में अन्य लोग एकाधिकारियों की दया पर होते हैं और उनके पास उन्हें (मूल्यों को) निश्चित मान लेने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता। चूँकि माँग पूर्ति से अधिक होती है, अतः उत्पादकों को लाभ होता है। परंतु, पूर्णतया प्रतियोगी बाजार में लाभजन्य स्फीति की संभावना वर्जित कर दी जाती है। यह कृषि उत्पादों के बाजार के लिए सत्य है। किंतु, जब कृषि उत्पादनों के मूल्य सरकार द्वारा निश्चित किए जाते हैं, तो संगठित किसान लॉबी का उस मूल्य पर कुछ नियंत्रण हो सकता है, जिस पर यह कृषि उपज को बेचती है। भारत में कृषक लॉबी सरकार पर उप मूल्यों को सुनिश्चित रखने के लिए सरकार को विवश करने में काफी हद तक अवश्य सफल हुई, जो **लाभजन्य स्फीति** का मूल कारण बना। लाभजन्य स्फीति, मजदूरी जन्य स्फीति के परिणामस्वरूप भी हो सकती है। लाभजन्य स्फीति को नीचे लाना अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि इसके लिए केवल उत्पादकों द्वारा विक्रय मूल्य में कमी करने की आवश्यकता होती है। परंतु, एक बार कभी समाप्त न होने वाली मजदूरी-मूल्य कुंडली (wage-price spiral) के प्रकट होने पर, मजदूर-मूल्य स्फीति को हटाना कठिन है।

(*iii*) ऊँचे कर (Higher Taxes)–सरकार विविधतापूर्ण करों को प्रस्तुत करके और वर्तमान करों, विशेष रूप से उत्पाद शुल्क (Excise Duties) व विक्रय करों, जैसे अप्रत्यक्ष करों की दरों को बढ़ाकर लागत को बढ़ा सकती है। उत्पादक वस्तुओं के मूल्यों को बढ़ाकर करों के भार को उपभोक्ताओं पर डाल देते हैं।

नोट

(*iv*) मूलभूत आगतों की उपलब्धता व मूल्य (Availability and prices of Basic Inputs)–जब अनुकूल और मूलभूत कच्चे माल तथा अन्य आगतों का अभाव हो जाता है, तो उनके मूल्य एकाएक बढ़ जाते हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण आगतें सरकार अथवा अन्य प्राधिकारियों द्वारा नियंत्रित की जाती हैं। उनके मूल्य पूर्ति संगठनों द्वारा संचालित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, कच्चे तेल का मूल्य पैट्रोलियम निर्यातक देश संगठन (OPEC) द्वारा निर्धारित किया जाता है। चूँकि अनेक उद्योगों के लिए तेल एक मूलभूत आगत का रूप धारण करता है, OPEC द्वारा इसके मूल्य में निरंतर वृद्धि (upward revisions) इन सभी उद्योगों को प्रभावित करता है। इसलिए, एक मूलभूत आगत के मूल्यों में वृद्धि मूल्यों के सामान्य स्तर को बढ़ाने के लिए काफी है और अर्थव्यवस्था में लागत जन्य स्फीति का स्रोत हो सकता है।

(*v*) अन्य कारक (Other Factors)–अपर्याप्त, अत्यधिक, अनियमित वर्षा अथवा बाढ़, सूखा, अकाल इत्यादि अन्य प्राकृतिक संकटों के कारण कृषि उत्पादन में कमी सामूहिक पूर्ति को घटा देती है। और कृषि वस्तुओं का मूल्य बढ़ा देती है। इसी प्रकार, हड़ताल, तालाबंदी, बिजली पूर्ति के बिगड़ जाने से औद्योगिक उत्पादन गिर जाता है। सरकार की घरेलू या विदेशी नीति पूर्ति वक्र के ऊपर खिसक सकती है, जिसके परिणामस्वरूप मूल्यों में उर्ध्वगामी प्रवृत्ति (आरंभ) हो जाती है।

माँग प्रेरित और लागतजन्य स्फीति अंतर्सबंधित (inter-related) है और अर्थव्यवस्था में एक साथ रहती है। साधनों के मूल्यों में वृद्धि लागतजन्य स्फीति उत्पन्न करती है। लागतजन्य स्फीति तब भी सफल हो सकती है, जब माँग बढ़ना बंद हो जाती है। परंतु, यह (तब तक) बनी नहीं रह सकती, जब तक अतिरेक माँग न हो। दूसरी ओर, माँग प्रेरित स्फीति अंतिम वस्तुओं की माँग में वृद्धि के परिणामस्वरूप होती है, जो उनके मूल्यों में वृद्धि उत्पन्न करती है। ये मूल्य वृद्धियाँ उत्पादन के साधनों की माँग को बढ़ा सकती है, जो फिर साधन मूल्यों को बढ़ा सकती है। माँग प्रेरित स्फीति और लागतजन्य स्फीति एक साथ विद्यमान हो सकती है। दोनों में से, लागत जन्य स्फीति बदतर हैं, क्योंकि इसे मौद्रिक व राजकोषीय उपायों द्वारा भी नियंत्रित किया जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. अर्थशास्त्रियों के अनुसार मूल्य स्तर में मंद वृद्धि आर्थिक वृद्धि के लिए है–

   (अ) आवश्यक स्थिति (ब) अनावश्यक स्थिति
   (स) अनुकूल स्थिति (द) प्रतिकूल स्थिति।

4. जब मौद्रिक प्राधिकारी दौड़ती हुई स्फीति पर नियंत्रण खो बैठते हैं तो यह अतिस्फीति का होती है–

   (अ) कुपरिणाम (ब) परिणाम
   (स) अवस्था (द) अंतिम अवस्था।

5. अतिस्फीति का सबसे बुरा रूप देखा गया था–

   (अ) अंतर्युद्ध के कालों के दौरान (ब) मंदी के दौरान
   (स) वृद्धि के दौरान (द) इनमें से कोई नहीं।

6. दमित स्फीति के कारण एक प्रकार की वस्तुओं से दूसरे प्रकार की वस्तुओं में हो सकता है–

   (अ) विचलन (ब) माँग का विचलन
   (स) नियंत्रण (द) माँग नियंत्रण।

22.3 स्फीति अंतराल (Inflationary Gap)

कींस की माँग प्रेरित स्फीति को स्फीति अंतराल के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसका संबंध पूर्ण रोजगार

नोट

स्तर पर उपलब्ध उत्पादन की अपेक्षा सामूहिक माँग के अतिरेक से है। यदि वर्तमान मूल्यों के स्तर पर वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हों, (तो) यह अंतराल समाप्त हो जाएगा।

चित्र 22.3 में स्फीति अंतराल समझाया गया है। इस चित्र में, X-अक्ष सकल राष्ट्रीय उत्पाद अथवा अर्थव्यवस्था की आय को दर्शाता है। Y-अक्ष उपभोग व्यय (C), निजी निवेश व्यय (I) और सरकारी व्यय (G) में समाए हुए कुल व्यय को प्रस्तुत करता है। चित्र में, अर्थव्यवस्था E बिंदु पर साम्य में होती है, जहाँ वस्तुओं व सेवाओं की कुल पूर्ति (OY_f आय) कुल व्यय (C + I + G) द्वारा प्रतिबिंबित उनकी माँग के बराबर होता है। (C + I + G) वक्र 45° अंश की रेखा को E बिंदु पर प्रतिच्छेद करता है। यह वर्तमान पूर्व-स्फीति मूल्यों पर पूर्ण रोजगार आय को भी चित्रित करता है। आय के इस स्तर पर, (कोई) अतिरेक माँग नहीं है।

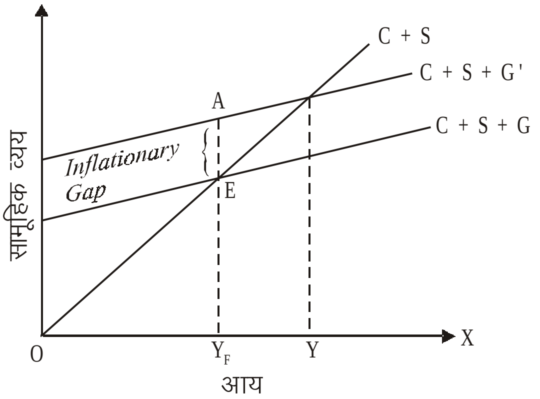

चित्र 22.3

अब मान लीजिए कि युद्ध या विकास जैसे कारणों से EA मात्रा के बराबर सरकारी व्यय बढ़ने की वजह से सामूहिक माँग वक्र ऊपर खिसक जाता है। नया सामूहिक व्यय (C + I + G') तक बढ़ जाता है, (जिसके) परिणाम स्वरूप सरकारी व्यय में वृद्धि की राशि के बराबर EA की अतिरेक माँग हो जाती है। चूँकि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार पर काम कर रही होती है, (अत:) EA की इस अतिरेक माँग को मिटाया नहीं जा सकता। सामूहिक माँग और पूर्ण रोजगार स्तर पर उपलब्ध पूर्ति के बीच यह अंतराल स्फीति अंतराल कहलाता है, जो मूल्यों को ऊपर उठाता है। नया सामूहिक व्यय AY_f है, जबकि वर्तमान मूल्यों पर राष्ट्रीय आय OY_f है। OY_f उत्पादन के लिए मौद्रिक माँग EY_f नहीं, बल्कि AY_f है। यहाँ EA स्फीति अंतराल है, जो (इसलिए) पाया जाता है, क्योंकि वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन की अपेक्षा व्यय अधिक तेजी से बढ़ता है। अत:, व्यय को ऊँचे मूल्य स्तर पर उत्पादन के मुद्रा के समान करने के लिए मूल्य बढ़ते हैं। जब तक लोगों के पास प्रयोज्य आय की मात्रा उनके पास (रखी) वस्तुओं की मात्रा से अधिक होती है, स्फीति काल प्रकट होगा।

स्फीतिकारी अंतराल सरकार द्वारा अतिरिक्त व्यय के कारण उत्पन्न होता है। युद्ध के दौरान अथवा आर्थिक विकास के समय के दौरान स्फीतिकारी अंतराल को दूर करने के लिए सरकारी व्यय में कमी वांछनीय नहीं है। स्फीतिकारी अंतराल को (इस प्रकार) पूरा किया जा सकता है–

(*i*) प्रभावपूर्ण माँग को कम करने के लिए समाज द्वारा स्वैच्छिक बचत में वृद्धि;

(*ii*) C + I को सरकारी व्यय में वृद्धि के बराबर राशि के कम करने के लिए, कर प्रणाली का प्रयोग करके लोगों के पास अतिरेक क्रय शक्ति का सफाया करना;

(*iii*) अतिरेक माँग को पूरा करने के लिए वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को बढ़ाना, यद्यपि अप्रयुक्त संसाधनों की कमी के कारण यहाँ थोड़ी गुंजाइश है।

22.4 स्फीति के प्रभाव (Effects of Inflation)

अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मत है कि मंद स्फीति न केवल वांछनीय है, बल्कि आर्थिक वृद्धि के लिए एक आवश्यक शर्त भी है। यह विशेष रूप से भारत जैसे अविकसित देशों के लिए सत्य है, जहाँ मानव शक्ति बेरोजगार है। और संसाधनों को एकत्र करने में मदद देती है, जो अन्यथा उपलब्ध नहीं होगी। जब स्फीति सरपट दौड़ती है

और अति स्फीति का रूप धारण कर लेती है, तो संपूर्ण अर्थव्यवस्था बिगड़ जाती है। ऐसी स्थिति में, योजना प्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है और आर्थिक विकास की प्रक्रिया रुक सकती है। स्फीति के प्रभावों को तीन शीर्षकों में अध्ययन किया जा सकता है।

1. उत्पादन और आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव (Effects on Production and Economic Activities)

रेंगती हुई तरह की स्फीति का उत्पादन, रोजगार और इस प्रकार आर्थिक क्रियाओं पर शक्ति वर्धक प्रभाव हो सकता है। माँग की कमी से पीड़ित अर्थव्यवस्थों के लिए बढ़े हुए व्यय से उत्पादन को बढ़ाने और रोजगार उत्पन्न करने के लिए उद्योगों के पहिए अच्छी तरह से चिकनाए होते हैं। मूल्यों के बढ़ने के कारण बढ़ी हुई लाभ मात्राएँ फर्मों को और निवेश करने के लिए प्रेरित करते हैं, जिसके कारण बेकार मानव शक्ति और अप्रयुक्त साधनों को रोजगार मिल सकता है। इसके परिणामस्वरूप अधिक आय उत्पन्न होगी, जिससे माँग में वृद्धि प्रेरित होगी। किसी भी स्थिति में कम से कम शुरू-शुरू में स्थिर आय वर्ग के लोगों की हानियां शेष समुदाय के लाभों से कम होती है। श्रमिकों का रोजगार उन्हें बेहतर भी बना सकता है।

समय के साथ, जब स्फीति किसी सीमा के बाहर चली जाती है तो यह आर्थिक प्रणाली में अव्यवस्था (chaos) उत्पन्न कर देती है। यह उत्पादन में कमी और बेरोजगारी में वृद्धि का परिणाम बन सकती है, क्योंकि भविष्य में अधिक लाभ कमाने के लिए, फर्में उत्पादन करने की बजाय संचय करना लाभप्रद समझती हैं। उन मजदूरों की कटु श्रमिक हड़तालों के कारण उत्पादन में बाधा भी आ सकती है, जिनकी वास्तविक आय स्फीति काल में गिर गई थी। कभी-कभी ज्यादा लाभ प्राप्त करने के लिए उत्पादक उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं की गुणवत्ता भी गिरा सकते हैं।

2. आय वितरण पर प्रभाव (Effects on Distribution of Income)

स्फीति समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्रभावित नहीं करती। कुछ लोग स्फीति से लाभ प्राप्त करते हैं, अन्य लोगों को हानि पहुँचती है, लोगों को कितनी बुरी तरह से हानि पहुंचती है, (यह) आय व संपत्ति की (उस) राशि पर निर्भर करता है, जो स्फीति उनसे छीन लेती है। यदि सभी मूल्य उसी दिशा में और उसी हद तक बढ़े होते, (तो) स्फीति के प्रभावों पर ध्यान नहीं दिया होता। यदि वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य में वृद्धि, जैसे 20 प्रतिशत, को मजदूरियों, किराया, लाभ, इत्यादि में आनुपातिक वृद्धि द्वारा बराबर कर दिया जाता है, तो लोगों की क्रयशक्ति और इसलिए जीवनस्तर अप्रभावित रहता। व्यवहार में, सभी मूल्य एक ही दर से परिवर्तित नहीं होते। अतः, स्फीति कुछ (लोगों) को लाभ और अन्य (लोगों) को हानि पहुँचाती है। समाज के विभिन्न वर्गों पर स्फीति के प्रभावों को अब समझाया जा सकता है।

(क) उत्पादक (Producers)—यहाँ उत्पादकों के वर्ग, में निर्माता, व्यापारी और किसान शामिल होते हैं। वे सभी स्फीति काल के दौरान लाभ प्राप्त करते हैं। वस्तुओं के मूल्य उत्पादन लागत की अपेक्षा अधिक तेज दर से बढ़ते हैं। वस्तुओं के मूल्यों की वृद्धि और मजदूरियों, ब्याज, किराया, बीमा किश्तों, इत्यादि आगतों के मूल्यों की वृद्धि के बीच हमेशा एक समय अंतराल होता है। इसलिए, उनकी लाभ मात्राएँ (profit margins) बढ़ जाती है। उत्पादक और व्यापारी भी वस्तुओं की कृत्रिम कमी उत्पन्न करके विशाल लाभ पैदा करते हैं। (जिसके) कारण और मूल्य वृद्धि होती है। विक्रय अतिरेक (marketable surplus) के साथ बड़े किसानों को भी मूल्य वृद्धि से लाभ होता है, विशेषकर वे किसान जो स्फीति संवेदी फसलें (inflation sensitive Crops) उगाते हैं। समान्यतया, इन फसलों के मूल्य निर्मित वस्तुओं के मूल्यों की अपेक्षा तेजी से बढ़ते हैं। कृषि वस्तुओं की बेलोचदार माँग किसानों को वस्तुएं संचय करने को प्रेरित करती है, जिससे उन्हें भविष्य में ऊंचे मूल्य पर बेचा जाए। जीवन निर्वाह खेती में लगे छोटे किसान स्फीति से अधिक प्रभावित नहीं होते।

लगातार मूल्य स्तर बढ़ने से उत्पन्न अनिश्चितता के कारण स्फीति सट्टे की क्रियाओं को प्रोत्साहन देती है। अधिक

नोट

लाभों को कमाने के लिए उत्पादक और व्यापारी भी मुद्रा को उत्पादन क्रियाओं में निवेश करने की बजाए सट्टे की क्रियाओं में लगे रहते हैं। इस प्रकार, स्फीति काल में उत्पादक विशाल लाभ प्राप्त करते हैं।

(ख) ऋणी और ऋणदाता (Debtors and Creditors)–ऋणी वे (लोग) हैं, जो मुद्रा उधार लेते हैं और उसका भविष्य में उस पर (आए) ब्याज के साथ पुनर्भुगतान करते हैं। स्फीति के परिणामस्वरूप ऋणी लाभ उठाते हैं, क्योंकि मुद्रा का वास्तविक मूल्य, जिसे वे लौटते हैं, स्फीति के कारण गिर जाता है। इसके अलावा, वे स्फीति के दौरान पुनर्भुगतान द्वारा वस्तुओं व सेवाओं के रूप में कम त्याग करते है, क्योंकि स्फीति मुद्रा का मूल्य और इस प्रकार क्रयशक्ति गिरा देती है। इसे एक सरल उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए, निहित आज 10% प्र.व. ब्याज की दर से 100 रुपए उधार लेता है। यदि एक वर्ष बाद, ऋण व ब्याज के लौटाने के समय अर्थव्यवस्था में स्फीति होती है, तो 100 रु. की मूल राशि तथा 10 रु. की ब्याज राशि दोनों का वास्तविक मूल्य गिर जाता है। यदि उधार ब्याज मुक्त होता है, तो भी 100 रु. उधार लेने के समय की अपेक्षा स्फीति के समय कम मूल्यवान होता है। वस्तुएं जो वह उधार लेने के समय 100 रु. में खरीद सकता था, उसे 100 रु. से अधिक की लागत पड़ेगी, जब स्फीति घटित हो जाती है। इस प्रकार, बढ़ते हुए मूल्य ऋणियों को लाभ प्रदान करते हैं। इसके विपरीत, ऋणदाता स्फीति के कारण हानि उठाते हैं, क्योंकि उन्होंने जो (राशि) उधार दी थी, वे (उसकी) अपेक्षा कम क्रयशक्ति वापस प्राप्त करते हैं।

(ग) निवेशक (Investors)–स्फीति के कारण अंशों (shares) के निवेशक सामान्यतया लाभ प्राप्त करते है। स्फीति के दौरान, फर्मे विशाल लाभ उत्पन्न करती है। इसलिए अंश धारक एक ओर लाभांश अर्जित करते हैं। दूसरी ओर, अंशों के मूल्यों में वृद्धि होने के कारण, वे पूँजीगत लाभ भी प्राप्त कर सकते हैं।

स्थिर ब्याज देने वाले बाण्ड (bonds) और ऋणपत्र (debentures) के निवेशकों को हानि पहुँचती है, क्योंकि स्फीति के दौरान ऐसे निवेश से वास्तविक आय गिर जाती है। जब स्फीति तीव्र (प्रचंड) होती है, तो मुद्रा का मूल्य गिरने के कारण कठिनाई से अर्जित बचतें पूर्णतया मिट जाती है। छोटे निवेशकों को सबसे ज्यादा क्षति पहुँचती है, जो अपनी बचतें सावधि जमाओं (fixed deposits) अथवा बचत बैंक खातों, भविष्यनिधियों और बीमा योजनाओं में रखते हैं। यही कारण है, कि लोग उपभोक्ता वस्तुओं में खर्च करना अधिक पसंद करते हैं। वे बचत करने में अनिच्छुक (reluctant) होते हैं। गिरी हुई बचतों से, पूँजी निर्माण और ऋण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप, उत्पादी आर्थिक क्रियाओं में निवेश को धक्का (set back) सहना पड़ता है। इसकी भारत जैसे अल्पविकसित देश के आर्थिक विकास पर गंभीर प्रतिक्रिया होगी, जहाँ बचतों का तीन चौथाई से अधिक भाग गृहस्थ क्षेत्र में उत्पन्न होता है।

(घ) स्थिर आय कमाने वाला वर्ग (Fixed Income Earning Class):–मजदूरी, वेतन प्राप्त करने वाले तथा स्थिर आय वाले अन्य व्यक्तियों को स्फीति से गंभीर रूप से चोट पहुँचती है। अन्य व्यक्तियों में पेंशन भोगी, स्थिर ब्याज व किराया प्राप्त करने वाले शामिल होते हैं। उनकी मुद्रा आय लगभग स्थिर रहता है, जबकि (उन) वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य, जिन्हें वे खरीदने का विचार करते हैं, बहुत तेजी से बढ़ रहे होते हैं (1) चूँकि उनकी कमाई की क्रयशक्ति गिर जाती है, अतः उन्हें हानि पहुँचती है। वार्षिक वृद्धियों (annual increments) अथवा महंगाई और अन्य भत्तों के असमयोचित (untimely) भुगतान द्वारा वेतनों में वृद्धि बढ़ते हुए मूल्यों के साथ कदम मिलाने में असफल रहती है।

विशाल संगठित क्षेत्र में नियुक्त (employed) श्रमिक शक्तिशाली मजदूर संघों (trade unions) के जरिए प्रबंध को मजदूरियां बढ़ाने में समर्थ हो सकते हैं। परंतु, लघु क्षेत्र में नियुक्त श्रमिक ऐसा करने में असमर्थ हैं, क्योंकि वे या तो असंगठित और अशिक्षित होते हैं अथवा उनके संघ बहुत कमजोर होते हैं। वे मजदूरी अनुबंधों (wage contracts) वृद्धि शर्त (escalation clause) निश्चित करने में असमर्थ होते हैं, ताकि (वे) मूल्य वृद्धि के कारण अपनी वास्तविक आय में हुई काट के लिए मालिक (employer) को श्रमिकों की क्षति पूर्ति करने के लिए मजबूर कर सके।

3. अन्य प्रभाव (Other Effects)

स्फीति के अन्य प्रभावों का इस प्रकार सार प्रस्तुत किया जा सकता है–

(*i*) स्फीति आर्थिक क्रियाओं में अनिश्चितता उत्पन्न करती है। उद्यमी व्यापारिक जोखिमों को उठाना नापसंद करते हैं। परिणामस्वरूप, वे वास्तविक संपत्ति और सट्टे में निवेश करते हैं। इसलिए, उत्पादन प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है।

(*ii*) संसाधनों का (कम लाभ उत्पन्न करने वाली) आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन से (लाभ प्रवृत) विलास वस्तुओं के उद्योगों में विचलन होता है, जिसके परिणामस्वरूप आम व्यक्ति के लिए आवश्यक उपभोग का अभाव हो जाता है। फलस्वरूप, इन वस्तुओं के मूल्य और ऊपर खिसक जाते हैं।

(*iii*) उच्च लागत अर्थव्यवस्था अंतर्राष्ट्रीय बाजार में देश के प्रतियोगी आधार को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं। बढ़ती हुई माँग (परिणामस्वरूप माँग प्रेरित स्फीति) और/अथवा बढ़ते मूल्यों के कारण, निर्यात की मात्रा गिर जाती है। इसलिए, **स्फीति (माँग प्रेरित या लागत जन्य) से विदेशी व्यापार प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है।** लोग घरेलू चल मुद्रा (domestic currency) से विश्वास खो देते हैं। और अपने हित को सुरक्षित रखने के लिए अपेक्षाकृत स्थिर विदेशी मुद्रा के लिए दौड़ते हैं।

(*iv*) **(माँग प्रेरित) स्फीति के कारण, निजी निवेश कई गुना बढ़ जाता है। वास्तविक पूँजी निवेश से पूँजी निर्माण प्रेरित होता है।** निवेशक अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए वस्तुओं का संचय करना प्रारंभ कर देते हैं, जिससे कालाबाजारी उत्पन्न होती है। भूमंडलीकरण (globalisation) और खुली द्वार नीति (open door policy) के साथ विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रोत्साहित होता है।

(*v*) **सरकार की कर आगम बढ़ती है, जिससे बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय का प्रबंध होता है।** इसके अलावा, सार्वजनिक ऋण का वास्तविक भार कम हो जाता है।

टास्क स्फीति अंतराल के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. मंद स्फीति न केवल वांछनीय है, बल्कि आर्थिक वृद्धि के लिए एक आवश्यक शर्त भी है।
8. स्फीति अंतराल सरकार द्वारा अतिरिक्त व्यय के कारण उत्पन्न नहीं होता है।
9. स्फीति के कारण अंशों के निवेशक सामान्यतया लाभ प्राप्त करते हैं।
10. जीवन निर्वाह खेती में लगे छोटे किसान स्फीति से अधिक प्रभावित नहीं होते।

22.5 स्फीति का नियंत्रण (Control of Inflation)

स्फीति को बहुत शुरू में ही नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है, अन्यथा यह अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से बरबाद कर देती है, (जब) एक बार यह अति स्फीति का रूप प्राप्त कर लेती है। स्फीति के अनर्थ परिणामों को

नोट

टालने के लिए विभिन्न प्रति-स्फीतिकारी उपायों (anti-inflationary measures) सुझाए जाते हैं। इनमें से अधिकतर उपाय वस्तुओं व सेवाओं की सामूहिक माँग को कम करने की चेष्टा करते हैं। इन उपायों को मौद्रिक उपाय, राजकोषीय उपाय और अन्य उपाय नामक तीन वर्गों में समझाया जा सकता है।

1. मौद्रिक उपाय (Monetary Measures)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के समय में स्फीति की वृद्धि ने मौद्रिक नीति की शक्ति में विश्वास पुनर्जीवित कर दिया, हालांकि यह मंदी को नियंत्रित करने में कींस द्वारा अप्रभावपूर्ण साबित की गई थी। मौद्रिक नीति देश के केंद्रीय बैंक की नीति है, जो कि सर्वोच्च मौद्रिक सत्ता है। मौद्रिक उपाय अर्थव्यवस्था में मुद्रा को नियंत्रित करने का प्रयास करते हैं। स्फीति को रोकने के लिए चल मुद्रा की मात्रा में वृद्धि को टाल देना चाहिए। यदि काले धन की अधिकता है, तो ऊँची मूल्य की चल मुद्रा निरस्त कर देनी चाहिए। पुरानी चल मुद्रा के बदले में नई चल मुद्रा भी जारी की जा सकती है। बैंक जमाएँ, जो साख सृजन को शक्ति देती हैं, मुद्रा पूर्ति का बड़ा भाग बनती है। इसलिए, मौद्रिक उपायों का मुख्य संबंध बैंक ऋण का नियंत्रण करना होना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए केंद्रीय बैंक विभिन्न मात्रात्मक (quantitative) तथा गुणात्मक (चयनात्मक) नियंत्रण उपायों का प्रयोग करता है। बैंक दर नीति, खुले बाजार की क्रियाएँ और परिवर्तन रक्षित कोष अनुपात, जैसे परिमाणात्मक नियंत्रक उपाय ऋण की लागत और उपलब्धता को प्रभावित करते हैं।

केंद्रीय बैंक **बैंक दर** (bank rate) को बढ़ाकर आसानी से (बाजार) ब्याज दरों को ऊपर उठाकर निवेश को कम आकर्षक बना सकता है। अतिरेक माँग को दबाकर मूल्यों में स्फीतिकारी वृद्धि रोकी जा सकती है। बैंक दर नीति प्रभावकारी होती है, यदि बैंकों के पास कोषों के अन्य स्रोतों की सरल पहुँच न हो। **खुले बाजार की क्रियाओं** (open market operations) के अंतर्गत सरकारी प्रतिभूतियों की बिक्री द्वारा, मुद्रा पूर्ति को कम किया जा सकता है। यह उपाय बैंक दर नीति से बेहतर है, क्योंकि यह मुद्रा पूर्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। परंतु, इसके साख नियंत्रण और इस प्रकार स्फीति नियंत्रण करने की सफलता इन प्रतिभूतियों की आकर्षकता और संगठित मुद्रा बाजार के अस्तित्व पर निर्भर करता है। **परिवर्तनशील रक्षित कोष आवश्यकताएँ** (variable reserve requirements) स्फीति को रोकने का सबसे अधिक प्रभावशाली उपाय है, किंतु यह कड़े प्रभावों के कारण प्रायः प्रयुक्त नहीं होता। नकद निधि अनुपात को बढ़ाकर, केंद्रीय बैंक (उस) ऋण की मात्रा को कम कर सकता है, जिसका बैंक सृजन कर सकते हैं।

चयनात्मक नियंत्रण उपायों में, उपभोक्तावाद (consumerism) के उदित होने से, **उपभोक्ता साख का नियंत्रण** बहुत सामान्य बन गया है। स्फीति के समय, चयनात्मक आधार पर तत्काल अदायगियों को बढ़ाकर और भुगतान काल को कम करके उपभोक्ता साख सुविधाएँ काटी जाती हैं। केंद्रीय बैंक प्रयोजनों के अनुसार ऋणों के लिए ऊँची **सीमांत अपेक्षाएँ** (margin requirement) निश्चित कर सकता है। अनुचित मौद्रिक प्रसार (undue monetary expansion) को सीमित करने के लिए **निदेश** (directives), **नैतिक आग्रह** (moral suasion), **प्रचार** (publicity), **प्रत्यक्ष कार्यवाही** (direct action) इत्यादि के अतिरिक्त ये चयनात्मक नियंत्रण उपाय प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

मौद्रिक उपायों की प्रभावशीलता केंद्रीय बैंक द्वारा प्रयोग किए गए नियंत्रण की मात्रा तथा वाणिज्य बैंकों व मुद्रा बाजार के अन्य घटकों द्वारा बढ़ाए सहयोग की मात्रा पर निर्भर करता है। भारत जैसे विकासशील देश में, इनमें से अधिकांश कारकों का अभाव है। इसलिए यहाँ मौद्रिक नीति कम महत्त्वपूर्ण होगी। इसके अतिरिक्त, जब स्फीति (युद्ध अथवा विकास योजनाओं की वित्त व्यवस्था के लिए) मुद्रित मुद्रा के प्रसार के कारण होती है, तो राजकोषीय उपाय अधिक उपयोगी होंगे, जिसकी ओर हम अब मुड़ते हैं।

2. राजकोषीय उपाय (Fiscal Measures)

नोट

चूँकि विश्व की लगभग प्रत्येक अर्थव्यवस्था में सरकारी व्यय सामूहिक व्यय का एक महत्त्वपूर्ण भाग बन गया है, अत: सरकार मुद्रा पूर्ति और इसलिए स्फीति को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकती है। अर्थव्यवस्था में से अत्यधिक क्रय शक्ति का सफाया करने (mop up) करने के लिए निम्नलिखित प्रति-स्फीतिकारी राजकोषीय उपायों का प्रयोग किया जा सकता है।

(क) सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)–मूल्य वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए, सरकार अपना व्यय कम कर सकती है। यह उपाय बाजार से सार्वजनिक मुद्रा और इसलिए वस्तुओं व सेवाओं की माँग को कम करेगा। सार्वजनिक व्यय में कटौती को एक प्रति-स्फीतिकारी शस्त्र के रूप में सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए। सरकार के सुरक्षा अथवा विकासात्मक व्यय को घटाना लगभग आत्मघाती (suicidal) है। इसके अलावा, विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत परियोजनाओं को छोड़ देने का कोई लाभ नहीं है। अत: सरकार को अनावश्यक व्यय को न्यूनतम रखना चाहिए।

(ख) कर प्रणाली (Taxation)–कर लोगों के हाथ में प्रयोज्य आय की मात्रा निर्धारित करते हैं। नए करों का आरोपण और करों में दरों की वृद्धि एक ओर लोगों की क्रय शक्ति कम करता है, दूसरी ओर, यह स्फीति का सामना करने के लिए सरकार के लिए संसाधन उत्पन्न करता है। इस प्रकार, प्रति-स्फीतिकारी कर प्रणाली का उद्देश्य प्रयोज्य आय कम करना होना चाहिए, जो कि अन्यथा उपभोग पर खर्च की जाती है। सरकार द्वार प्राप्त कर आगम (tax revenue) आवश्यकता व्यय बनाए रखने के लिए प्रयोग की जानी चाहिए।

सरकार को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों का अच्छा संयोग प्रयोग करना चाहिए। आय कर, संपत्ति कर, व्ययकर, इत्यादि प्रत्यक्ष कर प्रयोज्य आय को कम करते हैं और माँग पर दबाव डालते हैं। अप्रत्यक्ष कर व्यापक विस्तार के अतिरिक्त लाभ के साथ समान प्रभाव भी उत्पन्न कर सकते हैं। परंतु, अप्रत्यक्ष कर स्थिर आय अर्जकों (fixed income earners) के ऊपर बहुत अधिक पड़ते हैं, जिन्हें पहले ही स्फीति से कड़ी हानि पहुँच चुकी होती है। उत्पाद शुल्क और विलास वस्तुओं पर अन्य मिलते-जुलते कर आरोपित करके इसे विभेदीकृत प्रभाव (discriminating effect) को ठीक किया जा सकता है। ये वस्तुएँ अर्थव्यवस्था में केवल उच्च आय वर्गों द्वारा उपभोग की जाती है। परंतु, अप्रत्यक्ष कर उपयुक्त नहीं है, क्योंकि ये वस्तुओं के मूल्यों को बढ़ाकर लागत जन्य स्फीति को बढ़ाते हैं।

(ग) सार्वजनिक उधार और ऋण (Public Borrowing and Debt)–कर के समान सार्वजनिक ऋण का मुख्य उद्देश्य लोगों की अत्यधिक क्रय शक्ति को घटा देना है, जो यदि स्वतंत्र छोड़ दी जाती है, तो माँग पर उर्ध्वमुखी दबाव (upward pressure) डालेगी। यदि स्वैच्छिक उधार (voluntary borrowing) वांछित परिणाम उत्पन्न नहीं करता, तो सरकार अनिवार्य उधार (compulsory borrowing) का सहारा ले सकती है। अनिवार्य बचतों का एक रूप, अनिवार्य ऋण नार्वे, बेल्जियम और हॉलैण्ड में प्रयोग किए जा चुके हैं।

स्फीति के दौरान मुद्रा प्रसार की वृद्धि को रोकने के लिए, सरकार को अपने किसी पिछले ऋण का वापस भुगतान टाल देना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यदि संभव हो, तो लोगों की वर्तमान क्रय शक्ति को कम करने के लिए कर्मचारियों के वेतन के भाग को स्थगित कर देना चाहिए। जब स्फीति समाप्त हो जाती है अथवा अर्थव्यवस्था में मंदी की आशा हो, तो स्थगित क्रय शक्ति निकाली जा सकती है। इसी प्रकार, स्फीति के दौरान वेतन संशोधन बकाया (pay revision arrears) का नगद भुगतान करने की बजाए उन्हें भविष्य निधि खातों में स्थानांतरित कर देना चाहिए। शांति काल के दौरान सामान्यतया अनिवार्य बचतें और स्थगित भुगतानों को टाल देना चाहिए।

3. अन्य उपाय (Other Measures)

स्फीति का विरोध करने के लिए मौद्रिक व राजकोषीय उपायों को पूरा करने के लिए विभिन्न अमौद्रिक उपाय अपनाने चाहिए।

नोट

(क) मूल्य नियंत्रण और वितरण नियंत्रण (Price Control and Rationing)—यह मूल्य वृद्धि को नियंत्रित करने का एक लोकप्रिय प्रत्यक्ष उपाय है। मूल्य नियंत्रण का अर्थ कानूनी उच्च सीमा की स्थापना करना है, जिसके परे विशेष वस्तुओं के मूल्य बढ़ने नहीं दिए जाते। दूसरी ओर, वितरण नियंत्रण का कार्य मूल्य स्थिरता में सहायक स्थितियों को उत्पन्न करने के लिए अल्प पूर्ति की वस्तुओं को लोगों में न्याय संगत तरीके से वितरित करना है। मूल्य नियंत्रण व वितरण नियंत्रण सामान्यतया साथ-साथ चलते हैं। परंतु, इस तरह के प्रति स्फीतिकारी उपायों को लागू करना कठिन है। अकुशल और भ्रष्ट प्रशासन के कारण ये नियंत्रण, नियंत्रण में रखी वस्तुओं में काला बाजारी प्रेरित कर सकते हैं। इसके अलावा, पर्याप्त संख्या में आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की वितरण नियंत्रण प्रणाली (rationing system) के अंतर्गत व्यवस्था करने की व्यवहारिक कठिनाई के कारण वितरण नियंत्रण की उपयोगिता सीमित है। ये उपाय उपभोक्ताओं की स्वतंत्रता और कल्याण को भी सीमित करते हैं।

युद्ध के दौरान मूल्य नियंत्रण संभवत: सबसे प्रभावपूर्ण उपाय हैं, जब स्फीति को रोकने के अन्य उपाय बेकार हो जाते हैं। अनेक देशों ने द्वितीय विश्व के दौरान मूल्य नियंत्रण अपनाया और इसे युद्ध के बाद के समय में जारी रखा! इस युद्ध काल के दौरान, प्रचण्ड स्फीति के फलस्वरूप अनेक आवश्यकताएँ अर्थव्यवस्था के कमज़ोर वर्गों की पहुँच से बाहर चली गई। उनके मूल्यों में और वृद्धि की आशाओं के कारण व्यापारियों और मुनाफाखोरों ने इन वस्तुओं की जमाखोरी की। स्फीति से पीड़ितों को केवल मूल्य नियंत्रण राहत दिला सका।

(ख) मजदूरी नीति (Wage Policy)—ऊँची मजदूरियाँ ऊँची लागतों और अंत में ऊँचे मूल्य प्रेरित करते हैं, (जिसके) परिणामस्वरूप लागत जन्य स्फीति उत्पन्न होती है। यह सलाह दी जाती है। कि मजदूरियाँ, वेतन और लाभ मात्राएँ, इत्यादि आय **अवरोधन (income freeze)** के जरिए नियंत्रित की जानी चाहिए। **मजदूरी अवरोधन (wage freeze)** व्यापारियों द्वारा समर्थित की जाती है। वे किसी (ऐसे) उपाय का समर्थन नहीं करते, जो उनके लाभों को प्रभावित कर सकता है।

22.6 सारांश (Summary)

- कीन्स ने स्फीति की धारणा को पूर्ण रोजगार की घटना से जोड़ दिया। पीगु के समान, कीन्स ने स्फीति को मूल्य स्तर की वृद्धि से संबंध किया है, जो पूर्ण रोजगार की स्थिति के बाद अस्तित्व में आती है। उनके अनुसार, **स्फीति का संबंध मूल्य स्तर में उस वृद्धि से है जो पूर्ण रोजगार स्तर प्राप्त होने के बाद होती है।** मूल्य वृद्धि की इस स्थिति में, अर्थव्यवस्था में उत्पादन नहीं बढ़ेगा।

22.7 शब्दकोश (Keywords)

- सूक्ष्म (Precise) – विशिष्ट।
- प्रतिलोमत: (Inversely) – विपरीतत:।
- संस्फीति (Reflation) – आंशिक स्फीति।

22.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. स्फीति से क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कीजिए।
2. स्फीति कितने प्रकार की होती है? बताइए।
3. स्फीति अंतराल से आप क्या समझते हैं?
4. 'स्फीति का नियंत्रण' पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment) **नोट**

1. लगातार
2. बढ़ते
3. (अ)
4. (ब)
5. (अ)
6. (ब)
7. सही
8. गलत
9. सही
10. सही।

22.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–23: फिलिप्स वक्र विश्लेषण (Phillips curve Analysis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 फिलिप्स वक्र : बेरोजगारी और स्फीति में संबंध
(The Phillips Curve : Relation between unemployment and Inflation)

23.2 फ्रीडमैन का विचार : दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र
(Friedman's View : The Long-run Phillips Curve)

23.3 विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ और फिलिप्स वक्र (Rational Expectations and the Phillips Curve)

23.4 फिलिप्स वक्र नीति विषयक निहित तत्त्व (Policy Implications of the Phillips Curve)

23.5 सारांश (Summary)

23.6 शब्दकोश (Keywords)

23.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

23.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- बेरोजगारी और स्फीति में संबंध जानने हेतु।
- दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र जानने हेतु।
- विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ और फिलिप्स वक्र जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

कई अर्थशास्त्रियों ने बेरोजगारी की दर और कीमतों के स्तर में परिवर्तन की दर अथवा स्फीति दर के बीच विनिमय की स्थिति तक फिलिप्स विश्लेषण को बढ़ाया है। वे इस मान्यता को लेते हैं कि जब श्रम उत्पादकता से अधिक तेजी से मजदूरी बढ़ेगी तो कीमतों में परिवर्तन होगा। यदि मुद्रा मजदूरी की वृद्धि दर श्रम उत्पादकता की वृद्धि दर से अधिक हो तो कीमतें बढ़ेंगी और विलोमश: भी। लेकिन यदि श्रम उत्पादकता दर मुद्रा मजदूरी दरों के समान बढ़ती है तो कीमतें नहीं बढ़ेंगी।

23.1 फिलिप्स वक्र : बेरोजगारी और स्फीति में संबंध

नोट

(The Phillips Curve : Relation between unemployment and Inflation)

फिलिप्स वक्र बेरोजगारी की दर तथा मुद्रा मजदूरी परिवर्तनों की दर में संबंध का निरीक्षण करता है। इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री ए. डब्ल्यू. फिलिप्स ने सर्वप्रथम इसे पहचाना था, इसीलिए इसे फिलिप्स वक्र कहते हैं। यह वक्र बताता है कि बेरोजगारी की दर और मुद्रा मजदूरी बढ़ने की दर के बीच विपरीत संबंध होता है। अपने विश्लेषण को इंग्लैण्ड के आंकड़ों पर आधारित करके उसने यह अनुभवजन्य निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि जब बेरोजगारी बहुत होती है, तो मुद्रा मजदूरी दरों के बढ़ने की दर नीची होती है। ऐसा इस कारण कि ''जब श्रम के लिए मांग कम होती है और बेरोजगारी अधिक तो श्रमिक चालू दरों से कम पर अपनी सेवाएं देने के लिए तैयार नहीं होते हैं।'' इसके विपरीत जब बेरोजगारी कम होती है तो मुद्रा मजदूरी दरों में वृद्धि की दर ऊंची होती है। इसका कारण यह है कि ''जब श्रम के लिए अधिक मांग होती है और बेरोजगारी बहुत कम होते हैं, तो हमें आशा रखनी चाहिए कि मालिक बहुत जल्दी-जल्दी मजदूरी दरें बढ़ाएंगे।''

मुद्रा मजदूरी दर और बेरोजगारी के बीच इस विपरीत संबंध को प्रभावित करने वाला दूसरा कारण है व्यापार क्रिया की प्रकृति। बढ़ती व्यापार क्रिया की अवधि में जब श्रम की बढ़ती मांग के साथ बेरोजगारी गिर रही होगी तो मालिक मजदूरी बढ़ा देंगे। इसके विपरीत घटती व्यापार क्रिया की अवधि में जब श्रम के लिए मांग गिर रही होगी और बेरोजगारी बढ़ रही होगी तो मालिक मजदूरी बढ़ाने को तैयार नहीं होते। बल्कि, वे मजदूरी घटायेंगे। लेकिन मजदूर एवं संघ इन अवधियों में मजदूरी की कटौती को मानने के लिए तैयार नहीं होंगे। परिणामस्वरूप, मालिक मजदूरों को हटाने के लिए बाध्य होंगे। इस प्रकार, जब श्रम बाजार मंद होती है तो मजदूरियों में थोड़ी कटौती, बेरोजगारी में अधिक वृद्धि लायेगी।

फिलिप्स ने उपर्युक्त तर्कों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि बेरोजगारी की दरों और मुद्रा मजदूरियों में परिवर्तन के बीच संबंध चित्र में दिखाने पर अति अरेखीय (non-linear) होगा। ऐसा वक्र फिलिप्स वक्र के नाम से जाना जाता है।

चित्र 23.1 में *PC* वक्र फिलिप्स वक्र है। यह अनुलम्ब अक्ष पर मुद्रा-मजदूरी दर में प्रतिशत परिवर्तनों (*W*) और क्षैतिज अक्ष पर बेरोजगारी की दर (*V*) का संबंध बतलाता है। यह वक्र मूल बिंदु के उन्नतोदर है जो दर्शाता है कि जब बेरोजगारी की दर गिरती है तो मुद्रा मजदूरी में होने वाला प्रतिशत परिवर्तन बढ़ जाता है। चित्र में, जब मुद्रा मजदूरी दर 2% है तो बेरोजगारी दर 3% है। लेकिन जब मजदूरी दर बढ़कर 4% होती है तो बेरोजगारी दर कम होकर 2% हो जाती है। इस प्रकार मुद्रा मजदूरी में परिवर्तन की दर और बेरोजगारी की दर के बीच विनिमय होता है। इसका अर्थ है कि जब मजदूरी दर ऊंची होती है तो बेरोजगारी दर कम होती है और विलोमशः भी।

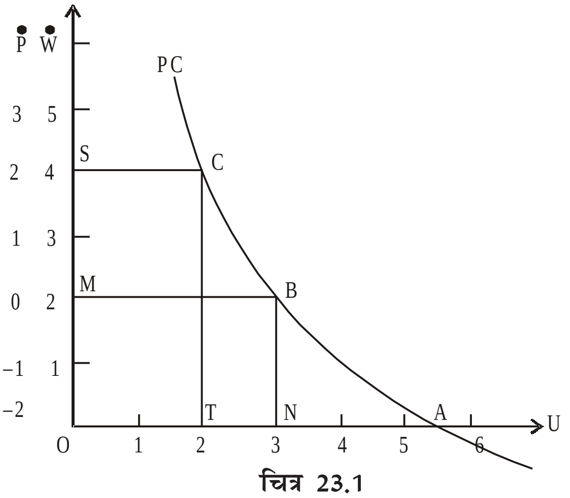

चित्र 23.1

मूल फिलिप्स वक्र एक निरीक्षित सांख्यिकीय संबंध था जिसे अधिक मांग द्वारा असंतुलन में श्रम बाजार के व्यवहार के परिणाम के रूप में लिप्सी (Lipsey) ने सैद्धांतिक रूप से वर्णित किया था।

कई अर्थशास्त्रियों ने बेरोजगारी की दर और कीमतों के स्तर में परिवर्तन की दर अथवा स्फीति दर के बीच विनिमय की स्थिति तक फिलिप्स विश्लेषण को बढ़ाया है। वे इस मान्यता को लेते हैं कि जब श्रम उत्पादकता से अधिक तेजी से मजदूरी बढ़ेगी तो कीमतों में

नोट

परिवर्तन होगा। यदि मुद्रा मजदूरी की वृद्धि दर श्रम उत्पादकता की वृद्धि दर से अधिक हो तो कीमतें बढ़ेंगी और विलोमशः भी। लेकिन यदि श्रम उत्पादकता दर मुद्रा मजदूरी दरों के समान बढ़ती है तो कीमतें नहीं बढ़ेंगी।

स्फीति दर और बेरोजगारी दर के बीच का यह विनिमय (trade-off) चित्र 23.2 में वर्णित किया गया है। यहां स्फीति दर (p) को मुद्रा मजदूरियों में परिवर्तन की दर (w) के साथ लिया गया है। मान लें कि श्रम उत्पादकता 2% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ती है और यदि मुद्रा मजदूरी भी 2% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ती है तो कीमत-स्तर स्थिर रहेगा। इस प्रकार, *PC* वक्र पर *B* बिंदु मुद्रा मजदूरियों में प्रतिशत परिवर्तन *(M)* और 3 प्रतिशत की बेरोजगारी दर *(N)* अनुलंब अक्ष पर शून्य (0) प्रतिशत स्फीति दर (p) पर बराबर होते हैं। अब मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था *B* बिंदु पर कार्य कर रही है। यदि अब समस्त मांग बढ़ाई जाती है तो यह बेरोजगारी दर को *OT* (2%) पर कम करती है और मजदूरी दर की प्रतिवर्ष *OS* (4%) तक बढ़ाती है। यदि श्रम उत्पादकता 2% प्रतिवर्ष पर बढ़ती रहती है तो कीमत-स्तर भी चित्र में *OS* पर 2% की दर से बढ़ेगा। अब अर्थव्यवस्था *C* बिंदु पर कार्य करती है। *B* बिंदु *C* बिंदु को अर्थव्यवस्था के परिवर्तन से बेरोजगारी *T* 2% बिंदु तक कम हो जाती है। यदि *B* और *C* बिंदुओं को मिलाया जाता है तो *PC* फिलिप्स वक्र का निर्माण होता है। इस प्रकार, मुद्रा मजदूरी दर में वृद्धि जब श्रम उत्पादकता से अधिक होगी तो वह स्फीति लाएगी। स्फीति को रोकने के लिए, मजदूरी वृद्धि को श्रम उत्पादकता के स्तर *(OM)* पर रखने के लिए बेरोजगारी की *ON* दर सहन करनी ही पड़ेगी।

> *नोट्स* जब श्रम के लिए माँग कम होती है और बेरोजगारी अधिक तो श्रमिक चालू दरों से कम पर अपनी सेवाएँ देने के लिए तैयार नहीं होते हैं।

PC वक्र की आकृति आगे यह सुझाव भी देती है कि जब बेरोजगारी की दर $5\frac{1}{2}$% से कम (अर्थात् *A* बिंदु के बाईं ओर) है तो श्रम की मांग श्रम की पूर्ति से अधिक है और इससे मुद्रा मजदूरी दरें बढ़ती हैं। दूसरी ओर, जब बेरोजगारी दर $5\frac{1}{2}$% से अधिक है (*A* बिंदु के दाई ओर) तो श्रम की पूर्ति श्रम की मांग से अधिक है जो मजदूरी दरों को कम करती है। तात्पर्य यह कि बेरोजगारी की *OA* दर पर जो $5\frac{1}{2}$% प्रतिवर्ष है, मजदूरी दरें स्थिर रहेंगी।

यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि *PC* 'परंपरागत' (Conventional) या मूल नीचे को ढाल फिलिप्स वक्र है जो बेरोजगारी की दर और मजदूरियों में परिवर्तन की दर के बीच एक स्थिर और विपरीत संबंध को प्रकट करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. फिलिप्स वक्र बेरोजगारी की दर तथा .... परिवर्तनों की दर में संबंध का निरीक्षण करता है।
2. जब बेरोजगारी बहुत होती है, तो मुद्रा मजदूरी दरों के बढ़ने की दर .... होती है।

23.2 फ्रीडमैन का विचार : दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र (Friedman's View : The long-run Phillips Curve)

अर्थशास्त्रियों ने फिलिप्स वक्र की आलोचना की है और कई जगह पर संशोधन भी किया है। उनका मत है कि फिलिप्स वक्र अल्पकाल से संबंध रखता है और स्थिर नहीं रहता। यह स्फीति की प्रत्याशाओं में परिवर्तनों के साथ सरक जाता है। दीर्घकाल में स्फीति और रोजगार के बीच विनिमय (trade-off) नहीं होता है। इन मतों की स्थापना फ्रीडमैन तथा फैल्प्स (Friedman and Phelps) ने की है और उनका सिद्धांत "त्वरणवादी" (accelerationist) या "अनुकूलित प्रत्याशाएं" (adaptive expectations) परिकल्पना के नाम से प्रसिद्ध है।

फ्रीडमैन के अनुसार स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय का वर्णन करने के लिए एक स्थिर नीचे दाईं ओर ढालू फिलिप्स वक्र मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, यह संबंध एक अल्पकालीन घटना है। परंतु कई चर होते हैं जिनके कारण फिलिप्स वक्र दीर्घकाल में सरकता है। इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चर (variable) स्फीति की प्रत्याशित दर है। जब तक स्फीति की वास्तविक दर और प्रत्याशित दर के बीच अंतर है तब तक नीचे दाईं ओर ढालू फिलिप्स वक्र होगा। परंतु जब यह अंतर दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है तो फिलिप्स वक्र अनुलंब (vertical) हो जाता है। इसकी व्याख्या करने के लिए फ्रीडमैन '*बेरोजगारी की प्राकृतिक* दर' (Natural rate of unemployment) की धारणा को प्रस्तुत करता है। यह बेरोजगारी की वह दर है जिस पर अर्थव्यवस्था प्रायः अपनी संरचना त्रुटियों के कारण टिकती है। यह वह बेरोजगारी दर है जिसके नीचे स्फीति दर बढ़ती है और जिसके ऊपर स्फीति दर घटती है। इस दर पर, स्फीति दर की प्रवृत्ति न तो बढ़ने की और न ही घटने की होती है। इस प्रकार, बेरोजगारी की प्राकृतिक दर को बेरोजगारी की ऐसी दर के रूप में परिभाषित किया जाता है। जिस पर स्फीति की वास्तविक दर और स्फीति की प्रत्याशित दर बराबर होती है। अतः यह बेरोजगारी की एक *संतुलन* दर है जिस ओर अर्थव्यवस्था दीर्घकाल में जाती है। दीर्घकाल में, बेराजगारी की प्राकृतिक दर पर फिलिप्स वक्र एक अनुलंब रेखा होती है। यह प्राकृतिक या संतुलित बेरोजगारी दर हर समय के लिए निश्चित नहीं होती। बल्कि यह अर्थव्यवस्था के भीतर वस्तु बाजारों और श्रम की अनेक संरचनात्मक विशेषताओं द्वारा निर्धारित होती है। ये न्यूनतम मजदूरी नियम, अपर्याप्त रोजगार सूचना, मानव-शक्ति प्रशिक्षण में कमियां, श्रम गतिशीलता की लागतें एवं अन्य बाजार अपूर्णताएं हो सकती हैं। लेकिन जिस कारण से फिलिप्स वक्र दीर्घकाल में शिफ्ट करता है वह स्फीति की प्रत्याशित दर है। इसका संबंध इस बात से है कि श्रम किस सीमा तक ठीक-ठीक स्फीति पूर्वानुमान लगाता है और वह मजदूरियों को पूर्वानुमान के अनुसार अनुकूल कर सकता है।

मान लें कि अर्थव्यवस्था स्फीति की 2 प्रतिशत की मंद दर पर चल रही है और बेरोजगारी की प्राकृतिक दर *(N)* 3% है। चित्र 23.3 में अल्पकालीन फिलिप्स वक्र SPC_1 के *A* बिंदु पर, लोग भविष्य में स्फीति की यही दर रहने की आशा करते हैं। अब मान लें कि सरकार बेरोजगारी की दर को 3 प्रतिशत से 2 प्रतिशत कम करने के लिए समस्त मांग बढ़ाने हेतु मौद्रिक-राजकोषीय प्रोग्राम अपनाती है। समस्त मांग में वृद्धि 2 प्रतिशत की बेरोजगारी दर के अनुरूप स्फीति दर को 4 प्रतिशत बढ़ायेगी। जब वास्तविक स्फीति दर (4%) प्रत्याशित स्फीति दर (2%) से अधिक होती है तो अर्थव्यवस्था SPC_1 वक्र पर *A* बिंदु से *B* बिंदु पर जाती है और बेरोजगारी दर अस्थायी रूप से 2 प्रतिशत तक गिरती है। यह इसलिए होता है कि श्रमिक ठगा गया है। वह 2 प्रतिशत की स्फीति दर की आशा रखता था जिस पर उसकी मजदूरी मांग आधारित थी। लेकिन अंत में श्रमिक यह समझने लगते हैं कि स्फीति की वास्तविक दर 4 प्रतिशत है जो अब स्फीति की उनकी प्रत्याशित दर बन जाती है। जब एक बार ऐसा होता है तो अल्पकालीन फिलिप्स वक्र SPC_1, दाईं और SPC_2 पर शिफ्ट कर जाता है। अब श्रमिक स्फीति की 4 प्रतिशत की ऊंची प्रत्याशित दर के कारण मुद्रा मजदूरियों में वृद्धि की मांग करते हैं। वे ऊंची मजदूरियों की मांग करते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि वर्त्तमान मुद्रा मजदूरी वास्तविक अर्थों में अपर्याप्त है। दूसरे शब्दों में, वे ऊंची कीमतों के साथ रहना चाहते हैं। और वास्तविक मजदूरियों में गिरावट को दूर करना चाहते हैं। परिणामस्वरूप वास्तविक श्रम लागतें बढ़ेंगी, फर्में मजदूरों को हटायेंगी और SPC_1 वक्र के SPC_2 वक्र में बदलने के साथ बेरोजगारी *B* बिंदु (2%) से *C* बिंदु (3%) को बढ़ेगी। *C* बिंदु पर बेरोजगारी की प्राकृतिक दर पुनः स्थापित हो जाती है जो दोनों वास्तविक और प्रत्याशित स्फीति की ऊंची दर (4%) है।

यदि सरकार का 2 प्रतिशत का बेरोजगारी-स्तर कायम रखने के निश्चय है तो वह केवल स्फीति की ऊंची दरों की लागत पर ऐसा कर सकती है। SPC_1 वक्र पर *C* बिंदु से समस्त मांग में वृद्धि द्वारा बेरोजगारी को एक बार पुनः 2 प्रतिशत तक घटाया जा सकता है, जब तक हम *D* बिंदु पर नहीं पहुंचते हैं। *D* बिंदु पर 6 प्रतिशत स्फीति और 2 प्रतिशत बेरोजगारी के साथ मजदूरों के लिए स्फीति की प्रत्याशित दर 4 प्रतिशत है। ज्योंही वे 6 प्रतिशत स्फीति दर की नई परिस्थितियों में अपनी प्रत्याशाओं को व्यवस्थित करते हैं तो अल्पकालीन फिलिप्स वक्र पुनः ऊपर SPC_3 पर शिफ्ट कर जाता है और बेरोजगारी *E* बिंदु पर 3 प्रतिशत की अपनी प्राकृतिक दर पर पुनः बढ़ जाएगी। यदि *A*,

नोट

C और *E* बिंदुओं को मिलाया जाता है तो बेरोजगारी की प्राकृतिक दर पर एक अनुलंब दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र *LPC* खींचा जाता है। वक्र पर बेरोजगारी और स्फीति के बीच विनिमय (trade-off) नहीं होता है बल्कि *A*, *C* और *E* बिंदुओं पर स्फीति की कई दरों में से कोई एक दर 3 प्रतिशत की प्राकृतिक बेरोजगारी दर के साथ मेल खाती है। बेरोजगारी दर में इसकी प्राकृतिक दर के नीचे कोई भी कटौती तेजी से बढ़ रही और अंत में एक विस्फोट स्फीति लायेगी। लेकिन यह केवल अस्थायी तौर से संभव है जब तक कि श्रमिक स्फीति दर का कम या अधिक अनुमान लगाते हैं। दीर्घकाल में, अर्थव्यवस्था प्राकृतिक बेरोजगारी दर पर स्थापित होने के लिए बाध्य होगी।

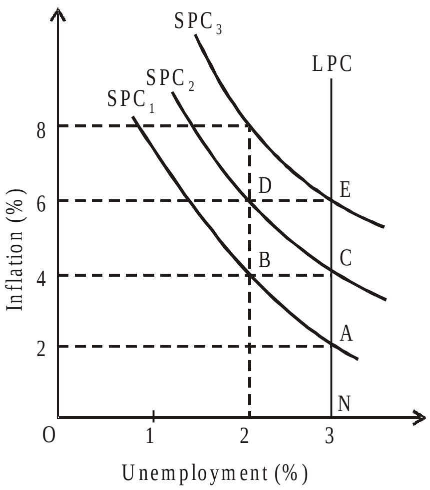

चित्र 23.2

इसलिए, अल्पकाल के सिवाय बेरोजगारी और स्फीति के बीच विनिमय नहीं होता है। इसका कारण यह है कि स्फीतिकारी प्रत्याशाएं भूतकाल में स्फीति में क्या हुआ है, इसके अनुसार संशोधित की जाती है। इसलिए जब स्फीति की वास्तविक दर चित्र 23.2 में 4 प्रतिशत तक बढ़ती है तो श्रमिक कुछ समय तक 2 प्रतिशत स्फीति की आशा लगाये रखते हैं और केवल दीर्घकाल में वे 2 प्रतिशत से ऊपर 4 प्रतिशत तक अपनी प्रत्याशाएं संशोधित करते हैं। क्योंकि वे अपने को प्रत्याशाओं के अनुकूल करते हैं इसलिए इसे अनुकूलित प्रत्याशा परिकल्पना'' (adaptive expectations hypothesis) भी कहा जाता है। इस परिकल्पना के अनुसार स्फीति की प्रत्याशित दर सदैव वास्तविक दर के पीछे रह जाती है। परंतु यदि वास्तविक दर स्थिर रहती है तो प्रत्याशित दर अंत में इसके बराबर होगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्फीति और बेरोजगारी के बीच अल्पकालीन विनिमय होता है परंतु दोनों के बीच दीर्घकालीन विनिमय नहीं होता है जब तक कि एक निरंतर बढ़ती स्फीति दर सहन नहीं की जाती है।

आलोचनाएं (Criticisms)

निम्न आधारों पर फ्रीडमैन की त्वरणवादी परिकल्पना की आलोचनाएं की गई हैं।

1. अनुलंब दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र स्फीति की सतत (steady) दर से संबंधित दर है। परंतु यह सही विचार नहीं है क्योंकि बिना सतत अवस्था को पहुंचने की प्रवृत्ति के, अर्थव्यवस्था सदैव असंतुलित स्थितियों की श्रेणियों से होकर गुजरती है। ऐसी स्थिति में, प्रत्याशाएं वर्ष-प्रतिवर्ष विफल हो सकती हैं।
2. फ्रीडमैन कोई नया सिद्धांत नहीं देता है कि प्रत्याशाएं कैसे बनाई जाती हैं जो सैद्धांतिक और सांख्यिकीय पक्षपातों से स्वतंत्र होंगी। इससे उसकी स्थिति अस्पष्ट रहती है।
3. अनुलंब दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र से अभिप्राय है कि सभी प्रत्याशाएं संतुष्ट हैं और लोग भविष्य की स्फीति दरों का सही-सही अनुमान करते हैं। आलोचकों का कहना है कि लोग स्फीति दरों का सही-सही अनुमान नहीं कर पाते हैं, विशेष रूप से, जब कुछ कीमतों का दूसरों से अधिक तेजी से बढ़ना लगभग निश्चित होता है। भविष्य की अनिश्चितताओं के कारण पूर्ति और मांग के बीच असंतुलन होना और बेरोजगारी की दर में वृद्धि होना निश्चित होता है। बेरोजगारी को खत्म करना तो दूर की बात है थोड़ी-सी इसे बेहद खराब स्थिति में पहुंचा सकता है।
4. अपने एक लेख में फ्रीडमैन स्वयं इस संभावना को स्वीकार करता है कि दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र बिल्कुल अनुलंब नहीं हो सकता, बल्कि स्फीति की बढ़ती मात्राओं के साथ नीचे दाईं ओर झुकता हो सकता है जो बढ़ती हुई बेरोजगारी लायेगा।

5. कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि बेरोजगारी की ऊंची दर पर मजदूरी दरें नहीं बढ़ी हैं।
6. यह विश्वास किया जाता है कि मजदूरों में मुद्रा-भ्रांति (money illusion) होती है। वे अपनी वास्तविक मजदूरी दरों की उपेक्षा अपनी मुद्रा मजदूरी दरों में वृद्धि पर अधिक चिंतित रहते हैं।
7. कुछ अर्थशास्त्री समझते हैं कि बेरोजगारी की प्राकृतिक दर एक छलावा मात्र है क्योंकि फ्रीडमैन ने उसकी कोई स्पष्ट परिभाषा देने का प्रयत्न नहीं किया है।
8. सॉल हाइमान (Saul Hyman) ने अनुमान लगाया है कि दीर्घकाल फिलिप्स वक्र अनुलंब नहीं होता बल्कि ऋणात्मक रूप से ढालू होता है। हाइमान का मत है कि यदि हम स्फीति दर में वृद्धि स्वीकार करने को तैयार हैं तो बेरोजगारी की दर स्थायी रूप से घटाई जा सकती है।

क्या आप जानते हैं स्फीति और बेरोजगारी के बीच अल्पकालीन विनिमय होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. मुद्रा मजदूरी दर और बेरोजगारी के बीच इस विपरीत संबंध को प्रभावित करने वाला दूसरा कारण है–
   (अ) व्यापार क्रिया की प्रकृति (ब) श्रम
   (स) मुद्रा (द) इनमें से कोई नहीं।
4. बढ़ती व्यापार क्रिया की अवधि में जब श्रम की बढ़ती माँग के साथ बेरोजगारी गिर रही होगी तो मालिक बढ़ा देंगे–
   (अ) मजदूरी (ब) श्रम
   (स) समय (द) इनमें से कोई नहीं।
5. यदि श्रम उत्पादकता दर मुद्रा मजदूरी दरों के समान बढ़ती है तो .... नहीं बढ़ेंगी।
   (अ) श्रम की दरें (ब) कीमतें
   (स) मजदूरी की दरें (द) इनमें से कोई नहीं।
6. जब तक स्फीति की वास्तविक दर और प्रत्याशित दर के बीच अंतर है तब तक दाईं ओर होगा–
   (अ) ढालू फिलिप्स वक्र (ब) वक्र
   (स) श्रम (द) इनमें से कोई नहीं।

23.3 विवेकपूर्ण प्रत्याशाएं और फिलिप्स वक्र (Rational Expectations and the Phillips Curve)

फ्रीडमैन द्वारा प्रतिपादित फिलिप्स वक्र की त्वरित परिकल्पना (accelerationist hypothesis) में बेरोजगारी और स्फीति के बीच अल्पकालीन विनिमय (trade-off) तो है परंतु दीर्घकालीन विनिमय नहीं है। इसका कारण यह है कि स्फीतिकारी प्रत्याशाएं स्फीति की पिछली प्रवृत्ति पर आधारित होती हैं जिनकी भविष्यवाणी एकदम सही नहीं की जा सकती है। क्योंकि स्फीति की संभावित दर उसकी वास्तविक दर से हमेशा पीछे रहती है इसलिए हमेशा एक अवलोकित (observed) त्रुटि पाई जाती है। स्फीति की संभावित दर को वास्तविक दर से समायोजित करने के लिए

नोट

प्रथम अवधि में अवलोकित त्रुटि के कुछ अनुपात को जोड़कर पहली अवधि में होने वाली स्फीति के अनुभव अनुसार इसकी संभावित दर का पुनरीक्षण किया जाता है।

विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं से संबद्ध अर्थशास्त्रियों ने दीर्घावधि के दौरान भी स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय रहने की संभावना से इंकार किया है। उनके अनुसार, फ्रीडमैन के इस कथन में अंतर्निहित यह धारणा अवास्तविक है कि कीमत प्रत्याशाएं मुख्य रूप से पिछली स्फीति के अनुभव के आधार पर ही बनाई जाती हैं। जब लोग अपनी कीमत प्रत्याशाओं को इस मान्यता के आधार पर रखते हैं तो वे अविवेकी होते हैं। यदि वे बढ़ती हुई कीमतों के दौरान ऐसा सोचते हैं तो यह पायेंगे कि वे गलत थे। परंतु विवेकपूर्ण लोग ऐसी गलती नहीं करेंगे। बल्कि वे भावी स्फीति की अपेक्षाकृत अधिक सही भविष्यवाणी करने में समस्त उपलब्ध सूचना का प्रयोग करेंगे। फिलिप्स वक्र के संबंध में विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं का विचार चित्र 23.3 में प्रस्तुत किया गया है। मान लीजिए कि बेरोजगारी की दर 3 प्रतिशत और स्फीति की दर 2 प्रतिशत है। हम SPC_1 वक्र पर बिंदु A से प्रारंभ करते हैं। बेरोजगारी कम करने के लिए सरकार मुद्रा पूर्ति की दर बढ़ा देती है, जिससे कीमतें बढ़नी शुरू हो जाती हैं। रेटक्स परिकल्पना के अनुसार, फर्मों को कीमतों के सामान्य स्तर की बजाय अपने उद्योग की कीमतों के बारे में अपेक्षाकृत अधिक सूचना उपलब्ध है। उनका यह सोचना मात्र एक भूल है कि कीमतों में वृद्धि उनकी वस्तुओं की मांग में वृद्धि के कारण हुई है। इसके परिणामस्वरूप, उत्पादन बढ़ाने के लिए वह अधिक वर्करों को रोजगार पर लगाते हैं। जिससे बेरोजगारी कम हो जाती है। वर्कर भी कीमतों में वृद्धि को अपने उद्योग से संबंधित मानने की भूल करते हैं। परंतु जब श्रमिकों की मांग बढ़ती है तो मजदूरी बढ़ती है और वर्कर मौद्रिक मजदूरी की वृद्धि को वास्तविक मजदूरी की वृद्धि मान लेते हैं। इस तरह अर्थव्यवस्था अल्पकालीन फिलिप्स वक्र SPC_1 पर A बिंदु से B बिंदु पर ऊपर की ओर चलती है। परंतु जल्दी ही वर्कर और फर्में यह पाते हैं कि सभी उद्योगों में कीमतों और मजदूरियों की वृद्धि हो गई है। फर्में यह भी पाती हैं कि उनकी लागतें बढ़ गई हैं। स्फीति दर में 4 प्रतिशत वृद्धि के साथ ही वर्कर यह महसूस करते हैं कि उनकी वास्तविक मजदूरियां कम हो गई हैं और वे मजदूरी बढ़ाने के लिए दबाव डालते हैं। इस प्रकार, सरकार की मुद्रा नीति के कारण अर्थव्यवस्था में स्फीति की दर बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप, SPC_2 वक्र पर यह बिंदु B से C की ओर चला जाता है जहां बेरोजगारी दर 3 प्रतिशत है जो सरकार द्वारा विस्तारक मौद्रिक नीति अपनाने से पहले के बराबर है।

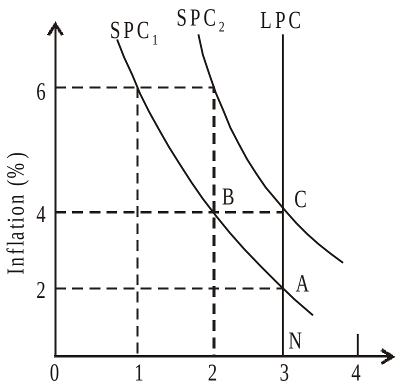

चित्र 23.3

जब सरकार दोबारा मुद्रा-स्फीति बढ़ाकर बेरोजगारी कम करने का फिर प्रयास करती है तो वह उन कर्मचारियों तथा फर्मों को मूर्ख नहीं बना सकती जो अब अर्थव्यवस्था में लागतों व कीमतों की गतिविधियों पर नजर रखेंगे। यदि फर्में अपनी वस्तुओं की लागतों के साथ-साथ कीमतों में वृद्धि की आशा करती हैं तो वे अपना उत्पादन बढ़ाने की चेष्टा नहीं करेंगी जैसाकि SPC_1 वक्र के मामले में हुआ। जहां तक वर्करों का प्रश्न है, श्रम संगठन अर्थव्यवस्था में बढ़ती हुई कीमतों के अनुसार मजदूरी बढ़ाने की मांग करेंगे। जब सरकार मौद्रिक प्रसारण (अथवा राजकोषीय) नीति को चालू रखती है तो वर्करों और फर्मों को इसकी आदत हो जाती है। उनका अनुभव ही उनकी प्रत्याशाएं बन जाता है। अतः सरकार जब दोबारा इस तरह की नीति अपनाती है तो फर्में अपनी वस्तुओं की कीमतें, प्रत्याशित स्फीति को बेअसर करने के लिए बढ़ा देती हैं ताकि उत्पादन तथा रोजगार पर इसका प्रभाव न पड़े। इसी प्रकार, स्फीति की प्रत्याशा में वर्कर अधिक वेतन की मांग करते हैं और फर्में अधिक नौकरियां नहीं देती हैं। दूसरे शब्दों में, फर्में तथा वर्कर मजदूरी समझौतों तथा कीमत-नीतियों में अपनी प्रत्याशाएं बना लेते हैं ताकि बेरोजगारी की वास्तविक दर तथा प्राकृतिक दर में, यहां तक कि अल्पकाल में भी, कोई अंतर न रह जाए।

नोट

टास्क दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. दीर्घकाल में स्फीति और रोजगार के बीच विनिमय नहीं होता है।
8. दीर्घकाल में, बेरोजगारी की प्राकृतिक दर पर फिलिप्स वक्र एक अनुलंब रेखा होती है।
9. अल्पकाल के सिवाय बेरोजगारी और स्फीति के बीच विनिमय होता है।
10. दीर्घकाल में, अर्थव्यवस्था प्राकृतिक बेरोजगारी दर पर स्थापित होने के लिए बाध्य नहीं होगी।

23.4 फिलिप्स वक्र नीति विषयक निहित तत्त्व (Policy Implications of the Phillips Curve)

फिलिप्स वक्र के नीति संबंधी निहित तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं। यह सुझाव देता है कि बेरोजगारी के ऊंचे स्तरों के बिना, स्फीति को रोकने के लिए मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां किस सीमा तक प्रयोग में लाई जा सकती हैं। दूसरे शब्दों में, यह अधिकारी वर्ग का इस संबंध में मार्गदर्शन करता है कि जब बेरोजगारी का स्तर दिया हुआ हो, तो स्फीति की कितनी दर सहन की जा सकती है। इस मतलब के लिए, फिलिप्स वक्र की सही स्थिति जानना आवश्यक है। जैसा कि चित्र 23.4 में दिखाया गया है, यदि वक्र PC_1 है जहां बिंदु E पर श्रम की उत्पादकता तथा मजदूरी दर बराबर है, तो पूर्णरोजगार तथा कीमत स्थिरता संभव होगी। फिर बिंदु के बाईं ओर एक वक्र (चित्र में नहीं दिखाया गया है) यह बताता है कि पूर्ण रोजगार और कीमत स्थिरता संगत नीति उद्देश्य हैं। इसका मतलब है कि स्फीति के नीचे स्तर को बेरोजगारी के नीचे स्तर से विनिमय (trade-off) किया जा सकता है। दूसरी ओर, यदि वक्र PC है जैसा चित्र में दिखाया गया है जो यह बताता है कि अधिकारियों को कीमत स्थिरता और अधिक बेरोजगारी में से किसी एक को चुनना होगा। इस प्रकार, फिलिप्स वक्र की स्थिति को देखकर अधिकारी यह निर्णय कर सकते हैं कि किस प्रकार की मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां अपनाई जाएं। उदाहरणार्थ, यदि अधिकारी यह देखें कि चित्र 23.4 की स्फीति दर P_2 बेरोजगारी की U_1 दर से मेल नहीं खाती, तो वे ऐसी मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियां अपनाएंगे जो फिलिप्स वक्र PC को बाईं ओर सरकाकर PC_1 वक्र की स्थिति पर ला दें। इससे बेरोजगारी के उसी U_1 स्तर और अपेक्षाकृत नीची स्फीति दर P_1 के बीच श्रेष्ठ विनिमय उपलब्ध होगा।

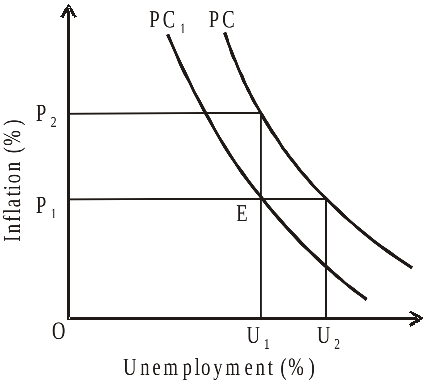

चित्र 23.4

बेरोजगारी की प्राकृतिक दर की व्याख्या करते हुए फ्रीडमैन ने लक्ष्य किया था कि सार्वजनिक नीति के बेरोजगारी के स्तर को प्रभावित करने की गुंजाइश फिलिप्स वक्र के अनुरूप रहते हुए केवल अल्पकालीन में है। उसने अनुलंब फिलिप्स वक्र के कारण इस संभावना को अस्वीकार कर दिया कि बेरोजगारी की दीर्घकालीन दर प्रभावित हो सकती है। परंतु अर्थशास्त्री फ्रीडमैन से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि श्रम बाजार नीतियों के माध्यम से बेरोजगारी की प्राकृतिक दर घटाई जा सकती है जिसके परिणामस्वरूप श्रम बाजार अधिक दक्ष बनाया जा सकता है। अतः दीर्घकालीन अनुलंब फिलिप्स वक्र को बाईं ओर सरकाकर बेरोजगारी की प्राकृतिक दर घटाई जा सकती है।

नोट

परंतु फिलिप्स वक्र के नीति विषयक निहित तत्त्व उतने सरल नहीं हैं जितने वे प्रतीत होते हैं। जब अधिकारी ऐसी स्फीति की दर के संबंध में निर्णय करने लगते हैं जो बेरोजगारी की विशिष्ट दर से मेल खाती हो, तो उन्हें अनेक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार स्फीति और बेरोजगारी में विनिमय की समस्या प्रतिबंधों के अंतर्गत चुनाव करने की समस्या है। इसे चित्र 23.5 में दिखाया गया है। प्रतिबंध है दिया हुआ फिलिप्स वक्र *PC* तथा उदासीनता वक्र $I_1, I_1, I_2, I_2, I_3, I_3, I', I'$ जो अधिकारियों के बेरोजगारी और स्फीति के बीच चुनाव को प्रकट करते हैं। उदासीनता वक्र मूल बिंदु के नतोदर (concave) होते हैं क्योंकि यदि अधिकारी बेरोजगारी को घटाना चाहते हैं तो उन्हें स्फीति बढ़ानी होगी और यदि बेरोजगारी को बढ़ाना चाहते हैं तो स्फीति घटानी होगी। इसलिए ये वक्र ऋणात्मक उपयोगिता को व्यक्त करते हैं। परंतु I_1I_1 वक्र की अपेक्ष I_1I_2 वक्र सार्वजनिक कल्याण के अधिक ऊँचे कल्याण-स्तर को व्यक्त करता है। इसका कारण यह है ऊंचे वक्र की अपेक्षा नीचे वक्र पर कोई भी बिंदु बेरोजगारी और स्फीति की नीची दर को व्यक्त करता है। इष्टतम विनिमय बिंदु *E* है जहां उदासीनता वक्र I_2I_2 फिलिप्स वक्र *PC* को स्पर्श करता है जहां स्फीति की *OA* दर तथा बेरोजगारी की *OB* दर में विनिमय है। परंतु यदि अधिकारी ऐसी मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियां अपनाएं जिनसे वे स्फीति को घटाना और बेरोजगारी को बढ़ाना चाहें, तो उदासीनता वक्र *I'I'* हो जाएगा। यह *I'I'* वक्र फिलिप्स वक्र *PC* को *F* बिंदु पर स्पर्श करता है और *OC* स्फीति तथा *OD* बेरोजगारी विनिमय हो जाता है।

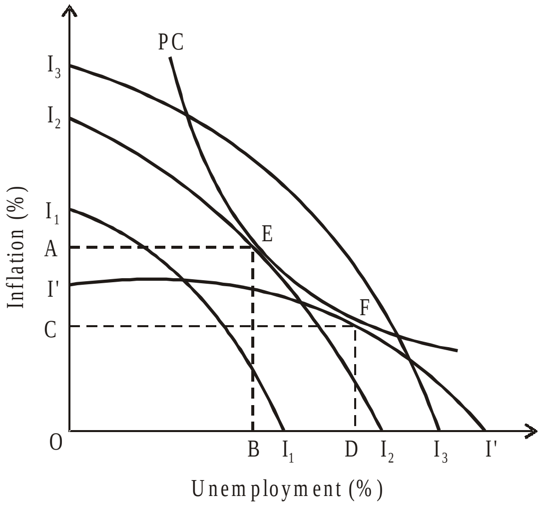

चित्र 23.5

कुछ अर्थशात्रियों ने यह सुझाया है कि स्फीति तथा बेरोजगारी के निरीक्षण मूल्यों पर आधारित फिलिप्स वक्र के गिर्द एक फंदा (लूप) या परिक्रमापथ (चक्कर) होता है। इसे चित्र 23.6 में दिखाया गया है। व्यापार चक्र में विस्तार के प्रारंभिक चरण में बेरोजगारी-स्फीति लूप में घटती स्फीति और बढ़ता उत्पादन पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि विस्तारशील मुद्रा अथवा राजकोषीय नीति के परिणामस्वरूप मांगाधिक्य स्फीति आ जाती है। चक्र के इस चरण में, स्फीति तथा बेरोजगारी के बीच फिलिप्स वक्र द्वारा सुझाया गया सामान्य संबंध बना रहता है। इसे *PC* वक्र के नीचे से तीरों की गति द्वारा दिखाया गया है, जब बेरोजगारी की दर गिरती है और स्फीति की दर बढ़ती है। यदि समस्त मांग का बढ़ना जारी रहता है और स्फीतिकारी दबाव तेजी पकड़ जाते हैं तो बिंदुकित लूप फिलिप्स वक्र को *A* बिंदु पर पार कर जाता है। महंगी मुद्रा अथवा राजकोषीय नीति अपनाने से समस्त मांग गिर जाएगी। परंतु कीमतों में वृद्धि की प्रत्याशाएं मजदूरी में वृद्धि ला देंगी और स्फीति की पिछली दर ही बनी रहेगी। इसलिए बेरोजगारी बढ़ेगी और कीमतें नहीं घटेंगी। यह बात फिलिप्स वक्र के दाएं स्थित लूप के ऊपरी भाग से प्रकट होती है। परंतु जब अधिक मांग नियंत्रित हो जाती है और उत्पादन बढ़ता है तो बेरोजगारी

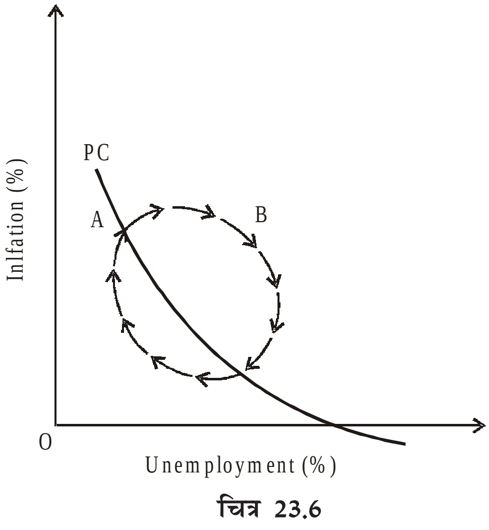

चित्र 23.6

की दर गिरने के साथ-साथ बिंदु *B* से स्फीति की दर गिरने लगती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विस्तारशील मुद्रा अथवा राजकोषीय नीति के कारण व्यापार चक्र के प्रारंभिक चक्र में फिलिप्स वक्र के निष्कर्ष ठीक बैठते हैं। परंतु निम्नवर्ती चरण में स्फीति तथा बेरोजगारी के बीच विनिमय फिलिप्स वक्र के प्रतिकूल जाता है।

जॉनसन नहीं मानता कि आर्थिक नीति बनाने में फिलिप्स वक्र का व्यवहार हो सकता है। इसके दो कारण हैं–'एक ओर तो फिलिप्स वक्र-श्रम बाजार में समायोजन की क्रियाविधि का केवल सांख्यिकीय विवरण प्रस्तुत करता है और आर्थिक गत्यात्मकता के सरल मॉडल पर टिका है जिसके पीछे कोई सामान्य तथा सुपरीक्षित मौद्रिक सिद्धांत नहीं है दूसरी ओर, यह वक्र आर्थिक उतार-चढ़ाव और बदलती स्फीति दरों की अवधियों के संयोग में श्रम-बाजार के व्यवहार का वर्णन करता है जबकि ये ऐसी स्थितियां हैं जिन्होंने संभवत: श्रम-बाजार को ही प्रभावित किया। इसलिए यह संदेह ठीक ही है कि यदि आर्थिक नीति द्वारा अर्थव्यवस्था को इस वक्र के किसी बिंदु पर कीलने का प्रयत्न किया जाए तो क्या यह वक्र अपनी आकृति बनाए रखेगा या नहीं।''

23.5 सारांश (Summary)

- फ्रीडमैन के अनुसार स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय का वर्णन करने के लिए एक स्थिर नीचे दाईं ओर ढालू फिलिप्स वक्र मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, यह संबंध एक अल्पकालीन घटना है। परंतु कई चर होते हैं जिनके कारण फिलिप्स वक्र दीर्घकाल में सरकता है। इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चर (variable) स्फीति की प्रत्याशित दर है। जब तक स्फीति की वास्तविक दर और प्रत्याशित दर के बीच अंतर है तब तक नीचे दाईं ओर ढालू फिलिप्स वक्र होगा। परंतु जब यह अंतर दीर्घकाल में समाप्त हो जाता है तो फिलिप्स वक्र अनुलंब (vertical) हो जाता है।

23.6 शब्दकोश (Keywords)

- बेरोजगारी (Unemployment) – रोजगार रहित।
- दीर्घकालीन (Long-run) – लंबी अवधि वाला।

23.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. फिलिप्स वक्र के अनुसार बेरोजगारी और स्फीति में संबंध बताइए।
2. दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र पर फ्रीडमैन के विचार व्यक्त कीजिए।
3. 'विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ और फिलिप्स वक्र' पर टिप्पणी लिखिए।
4. फिलिप्स वक्र नीति विषयक निहित तत्त्व क्या हैं? बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. मुद्रा मजदूरी	2. नीची	3. (अ)	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. गलत।		

23.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–24: व्यापार चक्र : परिभाषा एवं प्रकार (Trade Cycles : Meaning and Types)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 चक्रों के प्रकार (Types of Cycles)

24.2 व्यापार-चक्र की अवस्थाएँ (Phases of a Trade Cycle)

24.3 व्यापार-चक्र संबंधी सिद्धांत (Theories of Business Cycles)

24.4 हाट्रे का व्यापार-चक्र का मुद्रा सिद्धांत (Hawtrey's Monetary Theory of the Trade Cycle)

24.5 सैम्यूल्सन का व्यापार-चक्र मॉडल (Samuelson's Trade Cycle Model)

24.6 हिक्स का व्यापार-चक्र सिद्धांत (Hicks's Theory of Trade Cycle)

24.7 सारांश (Summary)

24.8 शब्दकोश (Keywords)

24.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

24.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- व्यापार चक्रों के प्रकार जानने हेतु।
- व्यापार चक्र की अवस्थाएँ जानने हेतु।
- व्यापार चक्र संबंधी सिद्धांत जानने हेतु।
- हिक्स का व्यापार चक्र सिद्धांत जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यापार-चक्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अंग है। यह चक्रीय तेजियों तथा मंदियों के विषय से संबंधित है। व्यापार-चक्र में कुल रोजगार, आय, उत्पादन तथा कीमत-स्तर में तरंग की तरह (wave-like) उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने 'व्यापार-चक्र' को विविध रूपों में परिभाषित किया है। प्रो. हैवर्लर की दी हुई परिभाषा बहुत सरल है। उसके अनुसार, "व्यापार-चक्र को सामान्य अर्थ में यों परिभाषित किया जा सकता है कि यह अच्छे तथा बुरे व्यापार की समृद्धि तथा मंदी की अवधियों का अदल-बदल है।" अपनी पुस्तक (Treatise of Money) में केंज़ द्वारा दी गई परिभाषा अधिक स्पष्ट है–"व्यापार-चक्र अच्छे व्यापार की उन अवधियों से निर्मित

नोट

है जिनकी विशिष्टता बढ़ती कीमतें तथा कम बेरोजगार प्रतिशतता है और जो अवधियाँ गिरती कीमतों तथा ऊँची बेरोज़गार प्रतिशतता से युक्त बुरे व्यापार की अवधियों के साथ अदल-बदल करती हैं।" प्रो. एस्टे के अनुसार, "चक्रीय उतार चढ़ाव की विशिष्टता विस्तार तथा संकुचन की तरंगों का अदल-बदल है। उनकी कोई नियत लय नहीं होती, परंतु वे इस अर्थ में चक्रीय होते हैं कि संकुचन तथा विस्तार की अवस्थाएँ अक्सर तथा पर्याप्त रूप से मिलते-जुलते ढंग पर बार-बार आती हैं।" व्यापार-चक्रों की स्थिति में लक्ष्य करने की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कोई भी चक्र एकरूप, बारंबार तथा विस्तार से युक्त पूर्णरूप से नियमित नहीं होता अर्थात ऐसा नहीं होता कि उत्पादन के एक शिखर स्तर से दूसरे तक पहुँचने में हमेशा एक ही समय लगे और उत्पादन तथा रोजगार का स्तर ऊपर तथा नीचे के मोड़ बिंदुओं के बीच हमेशा एक ही अनुपात में विचरण करे। परंतु इस तरह के चक्र कभी घटित नहीं हुए। इस प्रकार व्यापार-चक्र कुल रोजगार आय, उत्पादन तथा कीमत स्तरों में आवर्ती उतार-चढ़ाव होते हैं।

24.1 चक्रों के प्रकार (Types of Cycles)

व्यापार-चक्रों को सामान्यत: निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जाता है।

(1) **अल्प किचिन चक्र (The short Kitchin Cycle)**–इसे लघु-चक्र भी कहते हैं, जो लगभग 40 मास की अवधि का होता है। यह ब्रिटिश अर्थशास्त्री जोसेफ किचिन (Joseph Kitchin) के नाम पर प्रसिद्ध है जिसने 1923 में बड़े तथा छोटे चक्र के बीच भेद प्रस्तुत किया। वह अपने शोध के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बड़ा चक्र 40 मास के दो या तीन चक्रों का होता है।

(2) **दीर्घ जुग्लर चक्र (The long Juglar cycle)**–इस चक्र को बड़ा चक्र भी कहते हैं। इसे इस प्रकार परिभाषित किया जाता है। "यह अनुक्रमिक (successive) संकटों के बीच व्यापार क्रिया का उतार-चढ़ाव होता है।" 1862 में फ्रांसीसी अर्थशास्त्री क्लीमेंट जुग्लर (Clement Juglar) ने यह बताया कि समृद्धि, संकट तथा परिसमापन (Liquidation) की अवधियाँ हमेशा एक ही क्रम में एक दूसरी के बाद आती है। पाश्चात्य अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जुग्लर चक्र की अवधि औसतन साढ़े नौ वर्ष होती है।

(3) **अति दीर्घ कोंद्रातीफ चक्र (The very long Kondratieff cycle)**–1925 में रूसी अर्थशास्त्री कोन्द्रातीफ इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि चक्रों की अति दीर्घ तरंगें होती हैं जिनकी अवधि 50 वर्ष से अधिक होती है और जो छ: जुग्लर चक्रों की बनी होती है। बहुत ही लंबे चक्र को कोंद्रातीफ तरंगें कहा जाने लगा है।

(4) **भवन संबंधी चक्र (Building Cycle)**–इस प्रकार के चक्र वे हैं जो भवनों के निर्माण से संबंध रखते हैं और जिनकी अवधि बहुत अधिक नियमित होती है। इनकी अवधि बड़े चक्रों की अवधि से दुगुनी और औसतन 18 वर्ष होती है। इस तरह के चक्र वारन (Warren) तथा पियर्सन (Pearson) नामक दो अमरीकी अर्थशास्त्रियों के नाम से संबद्ध हैं, जो World Price and the Building Industry (1937) नामक पुस्तक में प्रस्तुत निष्कर्ष पर पहुँचे थे।

(5) **कुज़नेट्स चक्र (Kuznets Cycle)**–प्रसिद्ध अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो. साइमन कुज़नेट्स ने 16-22 वर्ष के दीर्घकालीन उतार-चढ़ाव (secular swing) नामक एक प्रकार के चक्रों की प्रस्थापना की; जिसे ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि वह 7-11 वर्ष के चक्र को अपेक्षाकृत महत्वहीन बना देता है। इसे कुज़नेट्स चक्र कहा जाने लगा है।

नोट्स व्यापार-चक्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अंग है। यह चक्रीय तेजियों तथा मंदियों के विषय से संबंधित है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. व्यापार-चक्र अच्छे तथा बुरे व्यापार की समृद्धि तथा मंदी की अवधियों का .... है।
2. व्यापार-चक्र कुल रोजगार आय, उत्पादन तथा कीमत स्तरों में आवर्ती .... होती हैं।

24.2 व्यापार-चक्र की अवस्थाएँ (Phases of a Trade Cycle)

एक विशिष्ट चक्र सामान्यत: चार अवस्थाओं में विभक्त होता है–

1. विस्तार अथवा समृद्धि अथवा उत्कर्ष (upswing)
2. सुस्ती (recession) अथवा ऊपरी मोड़ बिंदु;
3. संकुचन अथवा मंदी अथवा अपकर्ष (downswing); और
4. पुनरुन्नयन (revival) अथवा पुनरुत्थान (recovery) अथवा निचला मोड़ बिंदु।

विभिन्न चक्रों की स्थिति में ये अवस्थाएँ आवर्ती (recurring) तथा एकरूप होती है परंतु किसी भी अवस्था का निश्चित कालक्रम अथवा काल अंतराल (time interval) नहीं होता। जैसा कि पीगू ने लक्ष्य किया है, चक्र भले ही जुड़वाँ न हो परंतु वे एक ही परिवार के होते हैं। परिवारों की भाँति उनकी सामान्य विशिष्टताएँ होती हैं जिनका वर्णन किया जा सकता है। गर्त (trough) अथवा नीचे के बिंदु से शुरू होकर, चक्र पुनरुत्थान एवं समृद्धि की अवस्था में से गुजरता है, शिखर पर चढ़ता है, सुस्ती एवं मंदी की अवस्था के माध्यम से गिरता है और गर्त तक पहुँचता है। इसे चित्र 24.1 में दिखाया गया है।

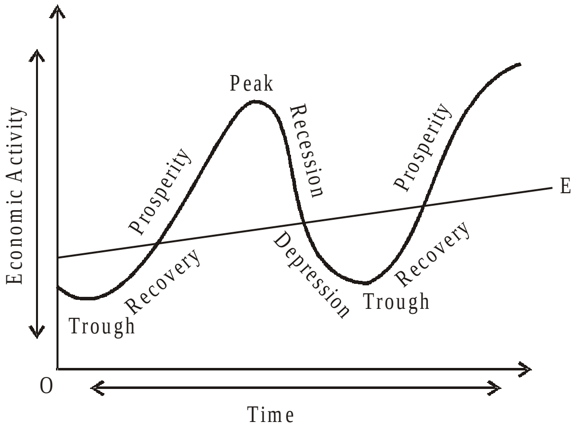

चित्र 24.1

हम आगे व्यापार-चक्र की इन विशिष्टताओं का वर्णन करते हैं।

पुनरुत्थान (Recovery)

हम पहले उस स्थिति को लेते हैं, जब कुछ दिन मंदी रह चुकी हो और पुनरुत्थान अवस्था अथवा निचला मोड़ बिंदु शुरू होता है।' आरंभकारी शक्तियाँ' (originating forces) अथवा 'प्रारंभक' (starters) बाह्यजात (exogenous) अथवा अंतर्जात (endogenous) शक्तियाँ होती हैं। मान लीजिए कि अर्ध-टिकाऊ वस्तुएँ घिस जाती हैं और परिणामत: यह आवश्यक हो जाता है कि अर्थव्यवस्था में उन्हें स्थानापन्न किया जाए। इससे माँग बढ़ती है इस बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए निवेश तथा रोजगार बढ़ते हैं। उद्योग का पुनरुत्थान प्रारंभ हो जाता है। संबंध पूँजी वस्तु उद्योगों में भी पुनरुत्थान शुरू होता है। जब एक बार शुरू हो जाता है, तो पुनरुन्नयन की प्रक्रिया संचयी बन जाती है। परिणामत: अर्थव्यवस्था में रोजगार, आय तथा उत्पादन के स्तर धीरे-धीरे बढ़ते हैं। पुनरुत्थान-अवस्था की प्रारंभिक अवस्थाओं में अर्थव्यवस्था में पर्याप्त अतिरिक्त अथवा अप्रयुक्त क्षमता होती है जिसे कुल लागत में आनुपातिक वृद्धि हुए बिना ही उत्पादन बढ़ता है। "परंतु ज्यों-ज्यों समय बीतता है, त्यों-त्यों उत्पादन कम लोचदार होता जाता है। बढ़ती लागतों के साथ अड़चनें आने लगती हैं, वितरण में अधिक कठिनाई होती है और हो सकता है कि 'प्लांटों' का विस्तार करना पड़े–इन स्थितियों में कीमतें बढ़ती हैं।" लाभ में वृद्धि होती है। व्यापार-प्रत्याशाओं

में सुधार होता है। इष्टतम स्थिति रहती है। निवेश को प्रोत्साहन मिलता है, जो बैंक ऋणों के लिए माँग को बढ़ाता है। इससे साख विस्तार होता है। इस प्रकार निवेश, रोजगार, उत्पादन, आय तथा कीमतों में वृद्धि की संचयी प्रक्रिया स्वयं अपना पोषण करती है और आत्म-समर्थक बन जाती है। अंत में पुनरुत्थान समृद्धि अवस्था में कदम रखता है।

समृद्धि (Prosperity)

समृद्धि अवस्था में माँग, उत्पादन, रोजगार तथा आय ऊँचे स्तर पर होते हैं। वे कीमतें बढ़ाते हैं परंतु मजदूरी, वेतन, ब्याज दरें, किराया तथा दर, कीमतों में वृद्धि के अनुपात में नहीं बढ़ते हैं। कीमतों तथा लागतों के अंतर से लाभ की मात्रा बढ़ जाती है। लाभ की वृद्धि तथा उसके जारी रहने की संभावना सामान्य रूप से स्टॉक-बाजार मूल्यों में तेजी से वृद्धि करती है। "सुधरती प्रत्याशाओं के प्रभावों में सभी प्रतिभूतियाँ, जिनमें बाँड भी शामिल हैं, बढ़ते हैं। विशिष्ट परिवर्तन स्टॉकों में होता है। अपेक्षाकृत अधिक लाभ की प्रत्याशाएँ निवेश को और बढ़ाती हैं। उदार बैंक-साख निवेश को सहायता देती है। इस तरह के निवेश अधिकांशतः बैंक स्थिर पूँजी, 'प्लांट', संभार तथा मशीनरी में होते हैं। वे उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग बढाकर तथा कीमत स्तर को और बढ़ाकर आर्थिक क्रिया में पर्याप्त विस्तार करते हैं। इससे परचून तथा थोक विक्रेताओं तथा निर्माणकर्ताओं को प्रोत्साहन मिलता है कि वे अपने भंडारों में वृद्धि करें। इस तरह से विस्तार प्रक्रिया तब तक संचयी तथा आत्म-समर्थ बनी रहती है जब तक अर्थव्यवस्था उत्पादन के उस ऊँचे स्तर पर नहीं पहुँचती जिसे शिखर (peak) अथवा तेजी (boom) कहते हैं।

समृद्धि अथवा शिखर अर्थव्यवस्था को अति पूर्ण रोजगार स्तर पर पहुँचा सकता है। और कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि ला सकता है। यह समृद्धि अवस्था के अंत तथा सुस्ती के प्रारंभ का लक्षण है। सुस्ती के बीज तेजी के भीतर आर्थिक ढाँचे में तनावों के रूप में विद्यमान रहते हैं, जो विस्तारकारी पथ पर नियंत्रण का काम करते हैं। वे ये हैं– (*i*) श्रम तथा कच्चे माल इत्यादि की दुर्लभता जिससे कीमतों की सापेक्षता में लागतें बढ़ती हैं; (*ii*) पूँजी की दुलर्भता के कारण ब्याज दरों में वृद्धि; और (*iii*) जब आय बढ़ती है, तो बढ़ती कीमतों तथा उपभोग की स्थिर प्रवृति के कारण उपभोग का न बढ़ सकना। पहला कारक लाभ-सीमाओं को घटाता है। दूसरा कारक निवेशों को महँगा बनाता है और पहले के साथ मिलकर व्यापार-प्रत्याशाओं को घटाता है। तीसरे कारक का परिणाम यह होता है कि भंडारों का अंबार लग जाता है, जो प्रकट करता है कि विक्रय अथवा उपभोग उत्पादन से पीछे रह जाता है। ये शक्तियाँ संचयी तथा आत्म-समर्थक बन जाती हैं। उद्यमी, व्यापारी तथा व्यवसायी बहुत सतर्क हो जाते हैं और अतिआशावाद का स्थान निराशावाद ले लेता है। यह ऊपरी मोड़ बिंदु का प्रारंभ है।

सस्ती (Recession)

जब 'शिखर' से, जो थोड़ी अवधि का होता है, नीचे की ओर गति होती है तो सुस्ती शुरू हो जाती है। "यह मोड़ की उस अवधि को लक्ष्य करती है जिसमें संकुचन लाने वाली शक्तियाँ अंततः विस्तार की शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेती हैं। इसके बाह्य चिह्न ये हैं–स्टॉक बाजार में परिसमापन (liquidation), बैंकिंग प्रणाली में तनाव तथा ऋणों का कुछ परिसमापन, और कीमतों में पतन का प्रारंभ।" परिणामतः लाभ-सीमाएँ और घट जाती हैं क्योंकि लागतें कीमतों से आगे बढ़ने लगती है। कुछ फर्में बंद हो जाती हैं। अन्य फर्में उत्पादन घटा देती हैं और संचित स्टॉकों को बेचने का प्रयत्न करती है। निवेश, रोजगार आय तथा माँग गिर जाती हैं। यह प्रक्रिया संचयी बन जाती है।

सस्ती हल्की या तेज हो सकती है। तेज सस्ती से आकस्मिक स्फोटात्मक स्थिति आ सकती है, जो बैंक प्रणाली अथवा स्टॉक एक्सचेंज से उत्पन्न होती है और आतंक (panic) अथवा संकट (crisis) छा जाता है। "जब संकट, और अधिक विशिष्ट रूप से आतंक, छा ही जाता है, तो यह विश्वास के अंत तथा तरलता के लिए आकस्मिक माँगों से संबद्ध प्रतीत होता है। यह संकट अपने आप में किसी कौतुकपूर्ण तथा आकस्मिक असफलता के कारण भी आ सकता है। कोई फर्म अथवा बैंक अथवा निगम घोषणा कर देता है कि वह अपना कर्ज़ा चुकाने में असमर्थ है। यह घोषणा अन्य फर्मों तथा बैंकों को ऐसे समय में कमजोर बनाती है, जब आर्थिक ढाँचे में धन की कमी के

नोट

अशुभ लक्षण प्रकट होने लगते हैं; और फिर, इससे आतंक की ऐसी लहर छा जाती है कि वित्तीय संस्थाओं से पैसा निकलवाने की भागदौड़ पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है ......। सन् 1873, 1893, 1907 में संयुक्त राज्य अमेरिका को इसी तरह का अनुभव प्राप्त हुआ था।" एम. डब्ल्यू. ली के शब्दों में, "जब एक बार सस्ती शुरू हो जाती है तो वह अपने आप जंगल की आग की तरह भड़कने लगती है, और जब एक बार चल पड़ती है तो स्वयं अपना सैन्य दल तैयार कर लेती है और अपनी विध्वंसकारी क्षमता को आंतरिक प्रोत्साहन देती है।"

मंदी (Depression)

जब आर्थिक क्रिया में व्यापक ह्रास होता है तो सुस्ती, मंदी में विलीन हो जाती है। वस्तुओं तथा सेवाओं के उत्पादन, रोजगार, आय, माँग तथा कीमतों में पर्याप्त कमी हो जाती है। आर्थिक क्रिया में व्यापक ह्रास के परिणामस्वरूप बैंक जमा गिर जाती है, साख विस्तार रुक जाता है क्योंकि व्यापारी लोग उधार लेने को तैयार नहीं होते। बैंक दर बहुत गिर जाती है। प्रो. एस्टे (Estey) के अनुसार, "सक्रिय क्रय-शक्ति का यह गिरना कीमतों में कम होने की आधारभूत पृष्ठभूमि है, जो उत्पादन के सामान्य (व्यापक) ह्रास के बावजूद मंदी को लक्ष्य करती है।" इस प्रकार, मंदी को विशिष्टता प्रदान करने वाले तत्त्व ये हैं–सामूहिक बेरोजगारी, कीमतों, लाभों, मजदूरी, ब्याज दर, उपभोग, व्यय, निवेश, बैंक जमा तथा ऋणों में सामान्य पतन; फैक्टरियाँ बंद हो जाती हैं; और सब प्रकार का निर्माण–पूँजीगत वस्तुओं तथा भवन आदि का–एकदम रुक जाता है। ये शक्तियाँ संचयी तथा आत्मसमर्थक है और अर्थव्यवस्था गर्त में पहुँच जाती है।

हो सकती है मंदी या गत अल्पजीवी हो और यह भी हो सकता है कि वह पर्याप्त समय तल पर ही रहे। परंतु कभी न कभी सीमाकारी (limiting) शक्तियाँ गति में आ जाती हैं, जो संकुचन अवस्था का अंत करने लगती हैं और पुनरुत्थान का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इस प्रकार चक्र पूर्ण हो जाता है।

क्या आप जानते हैं ज्यों-ज्यों समय बीतता है, त्यों-त्यों उत्पादन कम लोचदार होता है।

24.3 व्यापार-चक्र संबंधी सिद्धांत (Theories of Business Cycles)

उन अनेक साधनों तथा परिस्थितियों के कारण, जो चक्रीय उतार-चढ़ाव के मूल में निहित रहते हैं, व्यापार-चक्र का व्यवहार निर्धारित करना कठिन है। उन्हें स्पष्ट करने के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अनेक सिद्धांत सामने आए हैं। कुछ तो बाह्यजात कारणों को और दूसरे अंतर्जात कारणों को चक्रों के लिए उत्तरदायी मानते हैं। कुछ अर्थशास्त्री तो व्यापार-चक्र सिद्धांतों का मुद्रा तथा गैर-मुद्रा सिद्धांतों में वर्गीकरण करते हैं, जबकि दूसरे उन्हें वास्तविक, मनोवैज्ञानिक, मौद्रिक और उन सिद्धांतों में, जो व्यय, बचत तथा निवेश में संबंध रखते हैं, विभक्त करते हैं। पर हम अगले दो अध्यायों में चक्रों के तीन आधुनिक महत्त्वपूर्ण मॉडलों–सैम्यूल्सन माडल, हिक्स माडल तथा काल्डर मॉडल की चर्चा करेंगे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. व्यापार-चक्र पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का है–

   (अ) अंग (ब) प्रत्यंग

   (स) त्याग (द) विषय।

4. विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने 'व्यापार-चक्र' को विविध रूपों में किया है–
   (अ) उद्घाटित (ब) परिभाषित
   (स) संभासित (द) इनमें से कोई नहीं।
5. पाश्चात्य अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जुग्लर चक्र की अवधि औसतन होती है–
   (अ) साढ़े नौ वर्ष (ब) साढ़े सात वर्ष
   (स) साढ़े बारह वर्ष (द) साढ़े पाँच वर्ष।
6. भवन संबंधी चक्रों की अवधि बहुत अधिक होती है–
   (अ) अनियमित (ब) नियमित
   (स) दीर्घ (द) लघु।

24.4 हाट्रे का व्यापार-चक्र का मुद्रा सिद्धांत (Hawtrey's Monetary Theory of the Trade Cycle)

प्रो. आर. जी. हाट्रे (R.G. Hawtrey) के अनुसार, "व्यापार चक्र एक नितांत मौद्रिक समस्या है।" यह व्यापारियों की ओर से मुद्रा की माँग प्रवाह में होने वाले परिवर्तन हैं जिनके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में समृद्धि तथा मंदी आती है। उसका मत है कि हड़ताल, बाढ़, भूकंप, सूखा, युद्ध आदि गैर-मौद्रिक कारण, बहुत हुआ तो, आंशिक मंदी तो ला सकते हैं, चढ़ाव लाते हैं, जिनसे आगे, उत्पादकों तथा व्यापारियों की ओर से मुद्रा की माँग के प्रवाह में परिवर्तन होते हैं। आज के युग में बैंक साख ही भुगतान का प्रमुख साधन है। बैंकिंग-प्रणाली ही ब्याज की दर को घटा या बढ़ाकर अथवा प्रतिभूतियों को खरीदकर या सौदागरों के हाथ बेचकर साख को बढ़ाती या घटाती है। इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा का प्रवाह बढ़ या घट जाता है और इस प्रकार अर्थव्यवस्था में समृद्धि अथवा मंदी आ जाती है।

व्यापार चक्र की प्रसार अवस्था तब शुरू होती है जब बैंक उधार-सुविधाओं को बढ़ा देता है। ब्याज की उधार देने की दर घटाकर या प्रतिभूतियाँ खरीदकर ये उधार-सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। इनसे सौदागरों तथा उत्पादकों को उधार लेने को प्रोत्साहन मिलता है। इसका कारण यह है कि वे ब्याज दर में परिवर्तनों के प्रति बहुत सचेत होते हैं इसलिए ऋण सस्ती दर पर मिलने लगता है, तो वे अपना स्टॉक या माल बढ़ाने के लिए बैंकों से उधार लेते हैं। इसके लिए वे उत्पादकों को बड़े आर्डर देते हैं जो आगे उस बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए उत्पादन के अधिक साधन काम में लगाते हैं। परिणामतः, उत्पादन के साधनों के स्वामियों की मौद्रिक आय बढ़ जाती है जिससे वस्तुओं पर व्यय बढ़ जाता है। सौदागर देखते हैं कि उनका स्टॉक खत्म होता जा रहा है। वे उत्पादकों को अधिक आर्डर देते हैं। इससे उत्पादक सक्रियता, आय, परिव्यय, माँग में वृद्धि होती है और सौदागरों का स्टॉक और कम हो जाता है। हाट्रे के अनुसार, "बढ़ रही सक्रियता का मतलब है बढ़ रही माँग और बढ़ रही माँग का मतलब है बढ़ रही सक्रियता। एक दुष्चक्र, उत्पादक सक्रियता का प्रसार शुरू हो जाता है।"

ज्यों-ज्यों प्रसार की संचयी प्रक्रिया चलती है, त्यों-त्यों उत्पादक कीमतें बढ़ाने लगते हैं। ऊँची कीमतों से व्यापारियों को अधिक उधार लेने की प्रेरणा मिलती है, ताकि वे और अधिक लाभ कमाने के लिए और भी अधिक स्टॉक रोक सकें। इस प्रकार, आशावादिता उधार लेने को प्रोत्साहन देती है, उधार लेने से विक्रय बढ़ते हैं और विक्रय से आशावादिता बढ़ती है।

हाट्रे का कहना है कि समृद्धि निरंतर नहीं चलती रह सकती। जब बैंक ऋण का प्रसार रोक देते हैं तो समृद्धि समाप्त हो जाती है। बैंक और उधार देने से इसलिए इंकार कर देते हैं कि उनके नकदी कोष रिक्त हो जाते हैं और जो मुद्रा परिचलन में होती है उसे उपभोक्ता नकदी धारणों के रूप में खपा लेते हैं। दूसरा कारण यह है कि जब घरेलू वस्तुओं की कीमतें बहुत बढ़ जाती हैं जिनके परिणामस्वरूप निर्यात की तुलना में आयात बढ़ जाते हैं, तो विदेशों को सोना

नोट

निर्यात करना पड़ता है। इन कारणों से विवश होकर बैंकों को ब्याज की दरें बढ़ानी पड़ती हैं और वे उधार देने से इंकार कर देते हैं। बल्कि वे व्यापारी समुदाय को कर्जा चुकाने के लिए कहते हैं। इससे व्यापारिक मंदी की आवश्यकता शुरू हो जाती है।

बैंकों का कर्जा चुकाने के लिए व्यापारी अपना माल बेचने लगते हैं। इससे कीमतों के गिरने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। व्यापारी लोग उत्पादकों को दिए गए अपने आर्डर भी कैंसल कर देते हैं। माँग गिर जाने के कारण, उत्पादक अपनी उत्पादन सक्रियता घटा देते हैं। इससे आगे, उत्पादन के साधनों की माँग गिर जाती है। बेरोजगारी फैलती है। आय गिर जाती है। गिरती हुई माँग, कीमतें एवं आय–ये सभी मंदी के सूचक हैं। बैंकों का कर्जा चुकाने में असमर्थ कुछ फर्में दिवालिया हो जाती हैं और इस प्रकार बैंकों को मजबूर कर देती हैं कि वे अपनी साख में और संकुचन करें। इस प्रकार समस्त प्रक्रिया संचयी बन जाती है और अर्थव्यवस्था को मंदी में धकेल देती है।

हाट्रे के अनुसार, पुनरुत्थान की प्रक्रिया बहुत धीमे तथा रुक-रुक कर चलती है। जब मंदी चलती रहती है तो जो भी कीमत मिले उसी पर व्यापारी अपना स्टॉक बेचकर बैंकों का कर्जा चुकाते हैं। परिणामत: बैंकों की रिजर्वों में मुद्रा आने लगती है और बैंकों के कोष बढ़ते हैं। यद्यपि बैंक-दर बहुत कम होती है, फिर भी साख गतिरोध (credit deadlock) बना रहता है जो आर्थिक सक्रियता में निराशावाद के कारण व्यापारियों को बैंकों से उधार से लेने से रोके रखता है। केंद्रीय बैंक इस गतिरोध को सस्ती मुद्रा नीति अपनाकर समाप्त कर सकता है, जो अंतत: अर्थव्यवस्था में पुनरुत्थान लाएगा।

आलोचनाएँ (Criticisms)

फ्रीडमैन (Friedman) जैसे मुद्रा-सिद्धान्तियों ने हाट्रे के सिद्धांत का समर्थन किया है। परंतु अधिकाँश अर्थशास्त्रियों ने उसकी इस बात पर आलोचना की है कि उसने चक्रीय उतार-चढ़ावों की व्याख्या करने में मौद्रिक साधनों पर अतिबल दिया है और गैर-मौद्रिक साधनों की उपेक्षा की है। जिन बातों पर हाट्रे के सिद्धात की आलोचना की गई है, उनमें से कुछ की चर्चा नीचे की जा रही है।

1. साख प्रसार या संकुचन तेजी अथवा मंदी नहीं ला सकता (Expansion or Contraction of Credit cannot bring Boom or Depression)–इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि साख का प्रसार होने से व्यापार क्रिया का विस्तार होता है। परंतु हाट्रे मानता है कि साख प्रसार से तेजी आती है। यह ठीक नहीं है क्योंकि तेजी का कारण साख प्रसार नहीं है। जैसा कि पीगू ने लक्ष्य किया है "बैंक मुद्रा पूर्ति में होने वाले परिवर्तन व्यापार चक्र का अंग है, कारण नहीं।" मंदी की अंतिम स्थिति में ऋण सुगमता से उपलब्ध होता है, परंतु फिर वह पुनरुत्थान लाने में असमर्थ रहता है। इसी प्रकार, साख-संकुचन मंदी नही ला सकता है। बहुत हुआ, तो वह मंदी के लिए स्थितियाँ मात्र उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार साख का प्रसार या संकुचन अर्थव्यवस्था में न तो तेजी और न ही मंदी ला सकता है।
2. समृद्धि अनंतकाल के लिए चलाई नहीं जा सकती और मंदी रोकी नहीं जा सकती (Prosperity cannot be continued and Depression cannot be delayed indefinitely)–हैबर्लर ने हाट्रे के इस तर्क की आलोचना की है कि "व्यापारिक तेजी के भंग के लिए सदा मौद्रिक कारण ही उत्तरदायी रहता है और यदि मुद्रा पूर्ति अनंत हो, तो अनिश्चित काल के लिए समृद्धि चलती रह सकती है और मंदी को रोका जा सकता है।" परंतु तथ्य यह है कि यदि देश में मुद्रा की पूर्ति अनंत भी हो, तो भी न तो समृद्धि को अनंतकाल के लिए चलाया जा सकता है और न ही मंदी को अनिश्चितकाल तक स्थगित किया जा सकता है।
3. व्यापारी केवल बैंक साख पर निर्भर नहीं (Traders not dependent only on Bank Credit)–हाट्रे ने अपने विश्लेषण में थोक-विक्रेता को जो कार्यभाग दिया है, उसकी आलोचना प्रो. हैम्बर्ग ने की है। हाट्रे के सिद्धांत में प्रमुख व्यक्ति व्यापारी या थोक विक्रेता हैं जो बैंकों से उधार लेता है और उत्थान या पतन लाना शुरू करता

नोट

है। वास्तव में व्यापारी केवल बैंक साख पर ही निर्भर नहीं करते बल्कि अपने संचित कोषों और निजी स्रोतों से उधार-ग्रहण द्वारा अपने व्यापार के लिए वित्त का प्रबंध करते हैं।

टास्क व्यापार-चक्र संबंधी सिद्धांत के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

24.5 सैम्यूल्सन का व्यापार-चक्र मॉडल (Samuelson's Trade Cycle Model)

प्रो. सैम्यूल्सन ने एक अवधि समयपश्चता (one period lag) *MPC* (α) और त्वरक (β) के विभिन्न मूल्य मानकर, पाँच विभिन्न प्रकार के व्यापार-चक्रों से संबंधित एक गुणक-त्वरक मॉडल निर्मित किया है। सैम्यूल्सन मॉडल यह है–

$$Y_t = G_t + C_t + I_t \qquad ...(i)$$

जहाँ Y_t राष्ट्रीय आय (Y) है, t समय पर जो कि सरकारी व्यय G_t, उपयोग व्यय $\boldsymbol{C}_t$ तथा प्रेरित निवेश I_t का कुल जोड़ है।

$$C_t = \alpha\, Y_{t-1} \qquad ...(ii)$$

$$I_t = \beta\,(C_t - C_{t-1}) \qquad ...(iii)$$

समीकरण (2) का समीकरण (3) में प्रतिस्थापित करने से हमें प्राप्त होता है–

$$I_t = \beta\,(\alpha\, Y_{t-1} - \alpha\, Y_{t-2})$$

$$I_t = \beta\, \alpha\, Y_{t-1} - \beta\, \alpha\, Y_{t-2} \qquad ...(iv)$$

$$G_t = 1 \qquad ...(v)$$

समीकरण (2), (4) और (5) को समीकरण (1) में प्रतिस्थापित करने से हमें प्राप्त होता है–

$$Y_t = 1 + \alpha\, Y_{t-1} + \beta\, \alpha\, Y_{t-1} - \beta\, \alpha\, Y_{t-2} \qquad ...(vi)$$

$$= 1 + \alpha\,(Y_{t-1} + \beta\, \alpha\, Y_{t-1}) - \beta\, \alpha\, Y_{t-2}$$

$$= 1 + \alpha\, (1 + \beta\,)\, Y_{t-1} - \beta\, \alpha\, Y_{t-2} \qquad ...(vii)$$

सैम्यूल्सन के अनुसार, "यदि हमें दो अवधियों की राष्ट्रीय आय ज्ञात हो, तो अगली अवधि की राष्ट्रीय आय, भारित जोड़ (weighted sum) लेकर, आसानी से निकाली जा सकती है। भार, निस्संदेह, सीमांत उपभोग प्रवृत्ति के साथ संबंध के चुने गए मूल्यों पर निर्भर करेंगे। यह मानकर कि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति का मूल्य शून्य से अधिक और एक से कम ($0 < \alpha < 1$) एवं त्वरक का मूल्य शून्य से अधिक ($\beta > 0$) है, सैम्यूल्सन पाँच प्रकार के चक्रीय उतार-चढ़ाव की व्याख्या करता है जिनका सारांश तालिका 1 में दिया गया है।"

स्थिति 1 सैम्यूल्सन के चक्रीय पथ (cycleless path) को व्यक्त करती है क्योंकि यह केवल गुणक प्रभाव पर आधारित है और त्वरक इसमें कोई कार्य नहीं करता। इसे चित्र 24.2 (A) में दिखाया गया है।

स्थिति 2 परिमंदित चक्रीय पथ (damped cyclical path) को व्यक्त करती है, जो स्थैतिक गुणक स्तर के गिर्द उतरता चढ़ता है और धीरे-धीरे उस स्तर तक बैठ जाता है जैसा कि चित्र 24.2 (B) में दिखाया गया है।

नोट

सैम्यूल्सन का परस्पर क्रिया मॉडल

स्थिति	*मूल्य*	*चक्र का व्यापार*
1.	$\alpha = .5, \beta = 0$	चक्रहीन पथ
2.	$\alpha = .5, \beta = 1$	परिमंदित उतार-चढ़ाव
3.	$\alpha = .5, \beta = 2$	स्थिर विस्तार के उतार-चढ़ाव
4.	$\alpha = .5, \beta = 3$	विस्फोटात्मक चक्र
5.	$\alpha = .5, \beta = 4$	चक्रहीन विस्फोटात्मक पथ

स्थिति 3 स्थिर विस्तार (constant amplitudes) वाले चक्रों को व्यक्त करती है, जो स्वयं के गुण-स्तर के गिर्द बार-बार घूमते हैं। यह स्थिति चित्र 24.2 (C) में दिखाई गयी है।

स्थिति 4 प्रति-परिमंदित (anti-damped) अथवा विस्फोटात्मक चक्रों (explosive cycles) को प्रकट करती है। इसके लिए देखिए चित्र 24.2 (D)।

स्थिति 5 चक्रहीन विस्फोटात्मक ऊपर जाता पथ (Cycleless explosive upward path) से संबंध रखती है, जो अंततः वृद्धि की चक्रवृद्धि ब्याज दर तक पहुँच जाती है, जैसा चित्र 24.2 (E) में दिखाया गया है।

जिन पाँच स्थितियों की ऊपर व्याख्या की गई है, उनमें से केवल तीन स्थितियों, नं. 2, 3, और 4 की ही प्रकृति चक्रीय है। परंतु उन्हें घटाकर केवल दो ही रख ली जा सकती हैं क्योंकि स्थिर विस्तार से संबंध रखने वाली स्थिति नं. 3 अनुभव में नहीं आई है। जहाँ तक परिमंदित चक्रों की स्थिति नं. 2 का संबंध है, ये यद्यपि नियमित रूप से तो नहीं, पर पिछली आधी शताब्दी में धीमें रूप से घटित होती रही हैं। "सामान्यतः युद्धकालीन अवधि के मुकाबले युद्धोत्तर अवधि में चक्र अपेक्षाकृत परिमंदित रहे हैं।" वे परिणाम हैं "ऐसे झटकों के–जिन्हें अव्यवस्थित झटके (erratic shocks) कहा जा सकता है–जो ऐसे बहिर्जात साधनों से उत्पन्न होते हैं, जैसे युद्ध, फसलों में परिवर्तन, आविष्कार, इत्यादि जिनके "पर्याप्त स्थिरता से आने की आशा की जा सकती है।" परंतु उनके परिमाण को मापना संभव नहीं।

विस्फोटात्मक चक्रों की स्थिति नं. 4 अतीत (past) में नहीं मिलती। उन चक्रों के अभाव का कारण उन बहिर्जात आर्थिक साधनों का परिणाम है, जो उतार-चढ़ाव को सीमित करते हैं। पर हिक्स ने मूल्यों की मान्यता लेकर व्यापार चक्र का मॉडल निर्मित किया है, जो शिखरों तथा तलों द्वारा नियंत्रित व्यापार चक्रों का प्रतिपादन करता है।

समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

गुणक तथा त्वरक की परस्पर क्रिया का बहुत बड़ा गुण यह है कि यह अकेले गुणक अथवा त्वरक की तुलना में राष्ट्रीय आय को बहुत अधिक तेजी से बढ़ाती है। यह न केवल व्यापार-चक्रों की व्याख्या के लिए बल्कि स्थिरीकरण नीति (stabilisation policy) के मार्गदर्शक के रूप में भी एक उपयोगी औजार है। जैसा प्रो. कुरिहारा ने लक्ष्य किया है," सीमांत उपभोग प्रवृत्ति (एक से कम होने) की धारणा पर आधारित गुणक विश्लेषण से मिलकर ही त्वरक नियम व्यापार चक्र विश्लेषण के उपयोगी औजार के रूप मे तथा व्यापार चक्र नीति के लाभदायक मार्ग दर्शक के रूप में काम करता है।" गुणक तथा त्वरक इकट्ठे मिलकर चक्रीय उतार-चढ़ाव उत्पन्न करते हैं। त्वरक का मूल्य (β) जितना ही अधिक होगा, **विस्फोटात्मक चक्र** की संभावना भी उतनी ही अधिक होगी। गुणक का मूल्य (α) जितना ही अधिक होगा, **चक्रहीन पथ** की संभावना उतनी ही अधिक होगी। हम प्रो. एस्टे (Prof. Estey) के साथ सहमत होते हुए निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं–"गुणक तथा त्वरक का संयोग चक्रीय उतार-चढ़ाव उत्पन्न करने की क्षमता रखता प्रतीत होता है। अकेला गुणक किसी भी दिए हुए प्रोत्साहन से कोई चक्र नहीं उत्पन्न करता बल्कि आय

के स्थिर स्तर तक, केवल धीमी वृद्धि प्रदान करता है, जिसे उपभोग की प्रवृत्ति निर्धारित करती है परंतु यदि त्वरण के नियम को प्रवर्तित कर दिया जाए, तो परिणाम यह होता है कि उतार-चढ़ाव का क्रम प्रारंभ हो जाता है, जिसे गुणक-स्तर कहा जा सकता है। त्वरक पहले कुल आय को इस स्तर से ऊपर ले जाता है, परंतु जैसे आय की वृद्धि की दर घटती है, त्वरक निम्न-मोड़ प्रवर्तित कर देता है जो कुल आय को गुणक स्तर से नीचे ले जाता है, तब फिर ऊपर, और इसी प्रकार क्रम चलता रहता है।

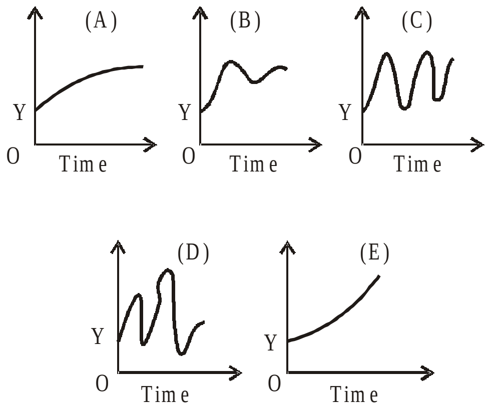

चित्र 24.2

सीमाएँ (Limitations)

गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया के इन प्रत्यक्ष उपयोगों के बावजूद प्रस्तुत विश्लेषण की अपनी सीमाएँ हैं।

1. सैम्यूल्सन ने जिन विभिन्न चक्रों की व्याख्या की है, उनकी अवधि की लंबाई के संबंध में वह मौन है।
2. प्रस्तुत विश्लेषण यह मान लेता है कि उपभोग की सीमांत प्रवृत्ति (α) तथा त्वरक (β) स्थिर हैं, परंतु वास्तव में वे आय के स्तर के साथ-साथ परिवर्तित होते हैं। अतः यह छोटे उतार-चढ़ावों के अध्ययन पर ही लागू हो सकता है।
3. प्रस्तुत मॉडल में जिन चक्रों की व्याख्या की गई है, वे प्रवृत्तिहीन अर्थव्यवस्था में स्थिर स्तर के गिर्द ही घूमते हैं। यह वास्तविक नहीं है, क्योंकि अर्थव्यवस्था प्रवृत्तिहीन (trendless) नहीं होती बल्कि वृद्धि की प्रक्रिया में रहती है। इसी का परिणाम है कि हिक्स ने वृद्धिशील अर्थव्यवस्था में व्यापार चक्र के अपने सिद्धांत का निर्माण किया।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. समृद्धि अवस्था में माँग, उत्पादन, रोजगार तथा आय ऊँचे स्तर पर होते हैं।
8. निवेश, रोजगार, उत्पादन, आय तथा कीमतों में वृद्धि की संचयी प्रक्रिया स्वयं अपना पोषण करती है।
9. जब 'शिखर' से, जो थोड़ी अवधि का होता है, नीचे की ओर गति होती है तो सस्ती शुरू हो जाती है।
10. जब आर्थिक क्रिया में व्यापक ह्रास होता है तो सुस्ती, तेजी में विलीन हो जाती है।

24.6 हिक्स का व्यापार-चक्र सिद्धांत (Hicks's Theory of trade Cycle)

प्रोफेसर जे. आर. हिक्स ने अपनी पुस्तक A Contribution to the Theory of the Trade Cycle में गुणक-त्वरक परस्पर-क्रिया के नियम के आधार पर अपना व्यापार चक्रों का सिद्धांत निर्मित किया है। उसके लिए "त्वरण का सिद्धांत तथा गुणक का सिद्धांत उतार-चढ़ाव के सिद्धांत के दो पक्ष हैं।" सैम्यूल्सन के मॉडल से भिन्न, जो लघु उतार-चढ़ाव के अध्ययन पर लागू होता है, हिक्स का मॉडल वृद्धि तथा गतिमान संतुलन की समस्या से संबंध रखता है।

नोट

मॉडल के तत्त्व (Ingredients of the Model)

हिक्स के व्यापार-चक्र मॉडल के तत्त्व ये हैं–वृद्धि की अभीष्ट दर, उपभोग फलन, स्वायत्त निवेश, प्रेरित-निवेश फलन तथा गुणक-त्वरक संबंध।

वृद्धि की अभीष्ट दर (Warranted rate of growth) वह दर है, जो अपने-आपको बनाए रखेगी। यह बचत-निवेश संतुलन के अनुरूप होती है। जब वास्तविक निवेश तथा वास्तविक बचत एक ही समान दर से हो रही हो तो कहा जाता है कि अर्थव्यवस्था अभीष्ट दर से वृद्धि कर रही है। हिक्स के अनुसार गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया ही है, जो अभीष्ट वृद्धि दर के गिर्द आर्थिक उतार-चढ़ाव का मार्ग प्रशस्त करती है।

उपभोग फलन $C_t = \alpha Y_{t-1}$ का रूप लेता है। अवधि t में उपभोग को पिछली अवधि $(t-1)$ की आय (Y) का फलन माना जाता है। इस प्रकार आय से उपभोग पीछे रह जाता है और गुणक को समयपश्चता संबंध (lagged relation) समझा जाता है।

स्वायत्त निवेश, उत्पादन के स्तर में परिवर्तनों से स्वतंत्र होता है, अत: यह अर्थव्यवस्था की वृद्धि से नहीं संबद्ध होता।

दूसरी ओर, प्रेरित निवेश उत्पादन के स्तर में परिवर्तनों पर निर्भर रहता है, अत: यह अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर का फलन होता है। हिक्स के मॉडल में त्वरक, प्रेरित निवेश पर आधारित है, जो गुणक के साथ मिलकर ऊपरी मोड़ (upturn) लाता है। हिक्स ने त्वरक को यों परिभाषित किया है कि यह प्रेरित निवेश का आय में वृद्धि से अनुपात है।

गुणक तथा त्वरक के स्थिर मूल्यों में दिए हुए होने पर 'लीवर प्रभाव' (leverage effect) ही आर्थिक उतार-चढ़ाव के लिए उत्तरदायी होता है।

मॉडल की मान्यताएँ (Assumptions of the Model)

व्यापार-चक्र का हिक्सीय सिद्धांत निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

1. हिक्स मान लेता है कि अर्थव्यवस्था प्रगतिशील है जिसमें स्वायत्त निवेश स्थिर दर से इस तरह बढ़ता है ताकि अर्थव्यवस्था गतिमान संतुलन में रहें।
2. बचत तथा निवेश गुणांक (co-efficients) काल पर्यन्त (over time) ऐसे ढंग से बदलते हैं कि संतुलन पथ से ऊपर की ओर विस्थापन (displacement) संतुलन से दूर समयपश्चता गति (lagged movement) ला देता है।
3. हिक्स मान लेता है कि गुणक तथा त्वरक के मूल्य स्थिर हैं।
4. अर्थव्यवस्था उत्पादन के पूर्ण रोजगार स्तर से आगे नहीं विस्तार कर सकती।

24.7 सारांश (Summary)

- हम पहले उस स्थिति को लेते हैं, जब कुछ दिन मंदी रह चुकी हो और पुनरुत्थान अवस्था अथवा निचला मोड़ बिंदु शुरू होता है।' आरंभकारी शक्तियाँ' (originating forces) अथवा 'प्रारंभक' (starters) बाह्यजात (exogenous) अथवा अंतर्जात (endogenous) शक्तियाँ होती हैं। मान लीजिए कि अर्ध-टिकाऊ वस्तुएँ घिस जाती हैं और परिणामत: यह आवश्यक हो जाता है कि अर्थव्यवस्था में उन्हें स्थानापन्न किया जाए। इससे माँग बढ़ती है इस बढ़ी हुई माँग को पूरा करने के लिए निवेश तथा रोजगार बढ़ते हैं। उद्योग का पुनरुत्थान प्रारंभ हो जाता है। संबंध पूँजी वस्तु उद्योगों में भी पुनरुत्थान शुरू होता है।

24.8 शब्दकोश (Keywords)

- पुनरुत्थान (Recovery) – पुनर्लाभ।
- तेजी (Boom) – तेज गति।

24.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. व्यापार-चक्र कितने प्रकार के होते हैं?
2. व्यापार-चक्र की अवस्थाएँ ज्ञात कीजिए।
3. हाट्रे का व्यापार चक्र का मुद्रा सिद्धांत लिखिए।
4. हिक्स का व्यापर चक्र सिद्धांत क्या है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. अदल-बदल	2. उतार-चढ़ाव	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. सही	10. गलत।		

24.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–25: अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया
(The Super-Multiplier of the Multiplier Accelerator Interaction)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया (The Super-Multiplier Or The Multiplier-Accelerator Interaction)

25.2 व्यापार-चक्रों में गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया का उपयोग (Use of Multiplier-Accelerator Interaction in Business Cycles)

25.3 सारांश (Summary)

25.4 शब्दकोश (Keywords)

25.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

25.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया जानने हेतु।
- व्यापार-चक्रों में गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया का उपयोग जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

गुणक और त्वरक का इकट्ठा प्रभाव **लीवर प्रभाव** (leverage effect) भी कहलाता है जो अर्थव्यवस्था को आय प्रजनन के बहुत ऊँचे या नीचे स्तर पर ले जा सकता है।

25.1 अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया
(The Super-Multiplier or the Multiplier Accelerator Interaction)

हिक्स ने आय पर प्रारंभिक निवेश का कुल प्रभाव मापने के लिए गुणक तथा त्वरक को गणितीय विधि से मिला दिया है और उसे **अतिगुणक** का नाम दिया है।

अतिगुणक को प्रेरित उपभोग (cY या $\Delta C/\Delta Y$ या MPC) और प्रेरित ($v\,Y$ या $\Delta I/\Delta Y$ या MPI) दोनों को जोड़कर निकाला जाता है। हिक्स निवेश को स्वायत्त निवेश और प्रेरित निवेश में बाँटता है ताकि निवेश $I = Ia + v\,Y$, जहाँ Ia स्वायत्त निवेश और $v\,Y$ प्रेरित निवेश है।

क्योंकि $$Y = C + I$$

इसलिए $$\Delta Y = c\Delta Y + \Delta Ia + v\,\Delta Y$$

$$\Delta Y - c\,\Delta Y - v\,\Delta Y = \Delta Ia$$

$$\Delta Y(1 - c - v) = \Delta Ia$$

$$\frac{\Delta \gamma}{\Delta Ia} = \frac{1}{1-c-v} = \frac{1}{s-v}$$

या $$Ks = \frac{1}{1-c-v} = \frac{1}{s-v}$$

नोट्स अतिगुणक बताता है कि यदि स्वायत्त निवेश में कोई प्रारंभिक वृद्धि होती है, तो आय में स्वायत्त निवेश की Ks गुणा वृद्धि हो जाएगी।

जहाँ Ks अतिगुणक है, c सीमांत उपभोग प्रवृत्ति है, v सीमांत निवेश प्रवृत्ति और s सीमांत बचत प्रवृत्ति ($s = 1 - c$) हैं।

अतिगुणक बताता है कि यदि स्वायत्त निवेश में कोई प्रारंभिक वृद्धि होती है, तो आय में स्वायत्त निवेश की Ks गुणा वृद्धि हो जाएगी। इस प्रकार, सामान्य रूप में अतिगुणक होगा,

$$\Delta Y = \frac{1}{1-c-v}\,\Delta\, Ia$$

$$= \text{Ks}\,\Delta\, Ia$$

अब हम उपर्युक्त समीकरण के रूप में गुणक तथा त्वरक के मिश्रित कार्यकरण की व्याख्या करते हैं। मान लीजिए कि $c = 0.5$, $v = 0.4$ और स्वायत्त निवेश में रुपये 100 करोड़ की वृद्धि होती है, तो समस्त आय में वृद्धि

$$\Delta Y = \times 100$$

$$\frac{1}{0.1} = \times 100 = 10 \times 100 = 1000.$$

यह दर्शाता है कि स्वायत्त निवेश में 100 करोड़ रुपये की वृद्धि ने आय को बढ़ाकर 100 करोड़ रुपये कर दिया है। साधारण गुणक ने आय को केवल बढ़ाकर 200 करोड़ रुपये कर दिया होता, यह मानकर कि

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. गुणक और त्वरक का इकट्ठा प्रभाव .... कहलाता है।
2. लीवर प्रभाव अर्थव्यवस्था को आय प्रजनन के बहुत ऊँचे या .... स्तर पर ले जा सकता है।

नोट

तालिका I : गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया

(रु. करोड़)

अवधि	*प्रारंभिक निवेश*	*प्रेरित उपभोग*	*प्रेरित निवेश*	*आय में वृद्धि*	*आय में कुल वृद्धि*
(t)		(c = 0.5)	(v = 0.4)	($\Delta Y = c + v$)	
(1)	*(2)*	*(3)*	*(4)*	*(5)*	*(6)*
0	0	0	0	0	0
$t + 1$	100	—	—	100	100
$t + 2$	100	50	40	90	190
$t + 3$	100	45	36	81	271
$t + 4$	100	40.5	32.4	72.9	3439
$t + 5$	100	36.45	29.16	65.61	40951
...	...	...	...	...	...
$t + n$	100	0	0	0	1,000

गुणक K का मूल्य 2 है, क्योंकि $MPC = 0.5$। परंतु गुणक ने त्वरक के साथ मिलकर ($Ks = 10$) आय को 1000 करोड़ रुपये पर बढ़ा दिया जो साधारण गुणक द्वारा वृद्धि से बहुत अधिक है।

तालिका II यह व्याख्या करती है कि किस प्रकार गुणक और त्वरक के मिश्रण द्वारा अतिगुणक का मूल्य $Ks = 10$ होने पर, आय प्रजनन की प्रक्रिया 100 करोड़ रुपये प्रारंभिक निवेश से 1000 करोड़ रुपये तक आय में वृद्धि ला देती है।

$t + 1$ अवधि में अर्थव्यवस्था में 100 करोड़ रुपये की मात्रा में स्थिर निवेश किया जाता है। परंतु तात्कालिक प्रेरित उपभोग अथवा निवेश नहीं होता। t + 2 अवधि में, अवधि $t + 1$ की 100 आय में से 50 का प्रेरित उपभोग होता है, क्योंकि सीमांत उपभोग प्रवृत्ति 0.5 है, जबकि आय 100 में से 40 का प्रेरित निवेश होता है क्योंकि ($v = 0.4$) । अवधि $t + 1$ से $t + 2$ तक आय में वृद्धि है 90 = (50 + 40) । विभिन्न अवधियों में आय में वृद्धि की इस प्रकार गणना की जा सकती है–$\Delta Y_{t+2} = c\Delta Y_{t+1} + t + v\,\Delta Y_{t+1} = 0.5 \times 100 + 0.4 \times 100 = 90$ । इसी प्रकार, अवधि $t + 3$ में आय में वृद्धि होगी: $\Delta Y_{t+3} = c\Delta Y_{t+2} + v\,\Delta Y_{t+2} = 0.5 \times 90 + 0.4 \times 90 = 45 + 36 = 81$। आय में कुल वृद्धि (स्तंभ 6) को जानने के लिए चालू अवधि में आय में वृद्धि (स्तंभ 5) पिछली अवधि में कुल आय में वृद्धि (स्तंभ 6) में जमा कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, अवधि $t + 2$ में कुल आय में वृद्धि जो 190 है (स्तंभ 6) उसे इस अवधि में आय में वृद्धि 90 (स्तंभ 5) को पिछली अवधि $t + 1$ में कुल आय में वृद्धि 100 (स्तंभ 6) में जमा करके प्राप्त किया गया है। इसी प्रकार, अवधि $t + 3$ में कुल आय में वृद्धि 271 = इस अवधि में आय में वृद्धि 81 जमा 190 अवधि $t + 2$ (स्तंभ 6) से। आय प्रजनन की यह संचयी प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक $t + n$ अवधि में प्रेरित उपभोग, प्रेरित निवेश और आय में वृद्धि घटते-घटते शून्य पर नहीं पहुँच जाते। यदि $t + 1$ अवधि से $t + n$ अवधि तक उपभोग, निवेश और आय में होने वाली वृद्धि को जोड़ें, तो कुल आय बढ़कर 1000 करोड़ रुपये हो जाती हैं, कुल उपभोग बढ़कर 500 करोड़ रुपये और कुल निवेश बढ़कर 400 करोड़, रुपये 100 करोड़ का प्रारंभिक निवेश होने पर।

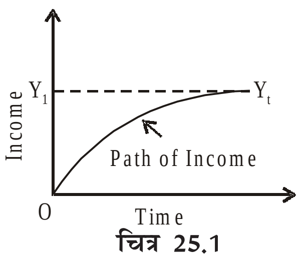

चित्र 25.1

नोट

चित्र 25.1 में आय का प्रावैगिक मार्ग दिखाया गया है। आय को अनुलंब अक्ष पर और समय को क्षैतिज अक्ष पर मापा गया है। OY_t वक्र अतिगुणक 10 होने पर आय का समय-पथ प्रकट करता है। समय के साथ यह वक्र बढ़ता है और आय के नये संतुलन स्तर OY_1 पर पहुँचता है और चपटा हो जाता है। यह दर्शाता है कि आय घटती दर से बढ़ती है।

क्या आप जानते हैं हिक्स ने आय पर प्रारंभिक निवेश का कुल प्रभाव मापने के लिए गुणक तथा त्वरक को गणितीय विधि से मिला दिया है और उसे अतिगुणक का नाम दिया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. आय को अनुलंब अक्ष पर और समय को मापा गया है–

   (अ) क्षैतिज अक्ष पर (ब) अक्षैतिज अक्ष पर

   (स) समांतर अक्ष पर (द) विषम अक्ष पर।

4. हिक्स निवेश को स्वायत्त निवेश और .... निवेश में बाँटता है।

   (अ) प्रेरित (ब) गुणक

   (स) अतिगुणक (द) इनमें से कोई नहीं।

5. t + 1अवधि में अर्थव्यवस्था में 100 करोड़ रुपए की मात्रा में किया जाता है–

   (अ) निवेश (ब) स्थिर निवेश

   (स) विनिवेश (द) इनमें से कोई नहीं।

6. अवधि t + 1 में आय में वृद्धि प्रारंभिक .... की मात्रा के बराबर होती है।

   (अ) निवेश (ब) विनिवेश

   (स) मुद्रा (द) इनमें से कोई नहीं।

25.2 व्यापार-चक्रों में गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया का उपयोग (Use of Multiplier Accelerator Interaction in Business Cycles)

MPC तथा त्वरक के विभिन्न मूल्यों के रहते हुए गुणक-त्वरक चक्रीय उतार-चढ़ाव के रूप में विभिन्न परिणाम दे सकता है। मान लीजिए कि $MPC = 0.5$ है और त्वरक-गुणांक (accelerator coefficient) 2 है। पूर्ववत धारणाओं तथा प्रारंभिक निवेश 100 करोड़ रुपये दिया हुआ होने पर हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि आय में किस तरह परिवर्तन होते हैं। तालिका III आय की प्रजनन की इस प्रक्रिया को स्पष्ट करती है।

टास्क अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

नोट

तालिका II : गुणक-त्वरक परस्परक्रिया

(रु. करोड़)

अवधि (1)	*प्रारंभिक निवेश* (2)	*प्रेरित उपभोग* ($c = 0.5$) (3)	*प्रेरित निवेश* ($v = 2$) (4)	*आय में वृद्धि* (2 + 3 + 4) (5)
$t + 0$	0	0	0	0
$t + 1$	100	—	—	100
$t + 2$	100	50	100	250
$t + 3$	100	125	150	375.00
$t + 4$	100	187.50	125	412.50
$t + 5$	100	206.25	37.50	343.75
$t + 6$	100	171.88	– 68.74	203.14
$t + 7$	100	101.57	– 140.62	60.95
$t + 8$	100	30.48	– 142.18	– 11.70
$t + 9$	100	– 5.48	– 72.66	21.49
$t + 10$	100	10.75	33.20	143.95

उपरोक्त तालिका यह प्रकट करती है कि अवधि $t + 1$ में आय में वृद्धि प्रारंभिक निवेश की मात्रा के बराबर होती है। आय में यह वृद्धि अवधि $t + 2$ में 50 करोड़ रुपये की उपभोग में वृद्धि (स्तंभ 3) लाती है, क्योंकि $MPC = 0.5$ है। उपभोग में यह वृद्धि 100 करोड़ रुपये का निवेश प्रेरित करती है, त्वरक गुणांक 2 होने पर 100 करोड़ रुपये $= 50 \times 2$ (स्तंभ 4), तथा आय रुपये 250 करोड़ तक बढ़ जाती है (स्तंभ 2 + 3 + 4 का जोड़ अर्थात् 100 + 50 + 100 = 250)। आय में यह वृद्धि पुन: उपभोग में 125 करोड़ रुपये की वृद्धि लाती है (स्तंभ 3) जो 250 करोड़ रुपये का आधा है क्योंकि $MPC = 0.5$। परंतु अवधि t में उपभोग पिछली अवधि की आय का फलन है। इसलिए $t + 3$ अवधि में उपभोग में वास्तविक वृद्धि, $t + 3$ अवधि और $t + 2$ अवधि में उपभोग के बीच का अंतर है, अर्थात् $125 – 50 = 75$। यदि उपभोग में इस वृद्धि (75 करोड़ रुपये) को त्वरक के मूल्य 2 से गुणा कर दे, तो प्रेरित निवेश $150 = 75 \times 2$ (स्तंभ 4) अवधि $t + 3$ में प्राप्त होता है। अत: अवधि $t + 3$ में स्तंभों 2 + 3 + 4 का जोड़ 375 करोड़ रुपये आय की वृद्धि प्रकट करता है। इसी प्रकार $t + 4$ अवधि में रुपये 412.50 करोड़ रुपये की आय का प्रजनन होता है। इस अवधि में आय में वृद्धि अधिकतम है जो व्यापार चक्र के शिखर को दर्शाती है। इसके बाद आय गिरना शुरू कर देती है जब तक कि वह $t + 8$ अवधि में तल अथवा अपकर्ष (trough) अर्थात् (–) 11.70 करोड़ रुपये पर नहीं पहुँच जाती है। अवधि $t + 9$ से वह फिर बढ़ने लगती है जो व्यापार चक्र की पुनरुत्थान (revival) अवस्था को प्रकट करती है। आय का यह व्यवहार पहले बढ़ना, फिर गिरना और फिर स्थिर विस्तार से बढ़ना, गुणक तथा त्वरक के मिश्रित कार्यकरण को दर्शाता है। पर, व्यापार चक्र का वास्तविक व्यवहार गुणक तथा त्वरक के मूल्यों पर निर्भर करता है, जैसा कि सैम्यूलसन ने अपने मॉडल में व्यक्त किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. अतिगुणक को प्रेरित उपभोग और प्रेरित दोनों को जोड़कर निकाला जाता है।
8. अतिगुणक बताता है कि यदि स्वायत्त निवेश में कोई प्रारंभिक वृद्धि होती है, तो आय में स्वायत्त निवेश Ks गुणा वृद्धि हो जाएगी।
9. t + 2 अवधि में, अवधि t + 1 की 100 आय में 50 का प्रेरित उपभोग नहीं होता है।
10. व्यापार-चक्र का वास्तविक व्यवहार गुणक तथा त्वरक के मूल्यों पर निर्भर करता है, जैसा कि सैम्यूल्सन ने अपने मॉडल में व्यक्त किया है।

25.3 सारांश (Summary)

- प्रो. कुरिहारा ने इस संबंध में लक्ष्य किया है कि इकाई से कम सीमांत उपभोग प्रवृत्ति इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करती है कि पूर्ण पतन (collapse) से पहले अथवा पूर्ण रोजगार की स्थिति से पहले संचयी प्रक्रिया क्यों समाप्त हो जाती है? हैनसन के अनुसार इसका कारण यह तथ्य है कि प्रत्येक अवधि में होने वाली आय की वृद्धि का बड़ा भाग प्रत्येक अगली अवधि में उपभोग पर नहीं व्यय होता। इससे अंत: प्रेरित निवेश की मात्रा में कमी होती है और जब इस तरह की कमी प्रेरित उपभोग में वृद्धि से बढ़ जाती है, तो आय में पतन शुरू हो जाता है। इस प्रकार, प्रो. हैनसन लिखता है, "यह तो बचत की सीमांत प्रवृत्ति ही है, जो तब भी विस्तार-प्रक्रिया को रोक देती है जब गुणक प्रक्रिया के शिखर पर त्वरक की प्रक्रिया द्वारा विस्तार को बढ़ाया जाता है।"

25.4 शब्दकोश (Keywords)

- गुणक (Multiplier) – गुणांक।
- परस्पर क्रिया (Interaction) – मेलजोल की क्रिया।

25.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अतिगुणक या गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया को परिभाषित कीजिए।
2. 'व्यापार चक्रों में गुणक-त्वरक परस्पर क्रिया का उपयोग' का उल्लेख कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. लीवर प्रभाव	2. नीचे	3. (अ)	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. सही।		

25.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : मोहन श्रीवास्तव, डीएनडी पब्लिकेशंस, 2010

नोट

इकाई–26: कालडर का व्यापार-चक्र सिद्धांत (Kaldor's Theory of Trade Cycle)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 कालडर का व्यापार-चक्र सिद्धांत (Kaldor's Theory of Trade Cycle)

26.2 स्थिरीकरण नीतियाँ या व्यापार-चक्रों को नियंत्रित करने के उपाय (Stabilisation Policies or Measures to Control Trade Cycle)

26.3 सारांश (Summary)

26.4 शब्दकोश (Keywords)

26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

26.6 संदर्भ-पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- कालडर का व्यापार-चक्र सिद्धांत जानने हेतु।
- स्थिरीकरण नीतियाँ जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यापारिक उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने के उपाय के रूप में मौद्रिक नीति एक देश के केंद्रीय बैंक द्वारा परिचालित की जाती है। केंद्रीय बैंक साख की मात्रा और गुणवत्ता को नियंत्रित करने के लिए अनेक उपाय अपनाता है। व्यापारिक बैंकों के रिजर्व बढ़ाने के लिए वह बैंक दर तथ बैंक की ब्याज दरें कम करता है। वह खुले बाजार में प्रतिभूतियाँ खरीदता है। वह कर्जों पर सीमा आवश्यकताएँ कम करता है और उपभोक्ताओं, व्यवसायियों, व्यापारियों आदि को अधिक उधार देने हेतु बैंकों को प्रोत्साहित करता है।

26.1 कालडर का व्यापार-चक्र सिद्धांत (Kaldor's Theory of Trade Cycle)

निकोलस कालडर ने बचत और निवेश की केन्जीय शब्दावली के आधार पर व्यापार-चक्र के मॉडल का निर्माण किया। उसके अनुसार चक्र दबावों का प्रभाव है जो अर्थव्यवस्था की नियोजित बचत और निवेश को समानता की ओर ले जाता है। वास्तव में, नियोजित बचत और निवेश का अंतर चक्र को लाता है। परंतु चक्र केवल तभी संभव है जब बचत और निवेश अरेखीय (non-linear) हों।

चित्र 26.1 (A) और (B) लीजिए जहाँ I से S संतुलन के आय-स्तर Y_0 पर समान हैं। परंतु प्रत्येक स्थिति एक

एकल (single) संतुलन स्थिति होती है। चित्र के भाग A में Y_0 के आगे जहाँ $I > S$ हैं अस्थिर संतुलन की स्थिति है क्योंकि ऐसी स्थिति असीमित प्रसार, पूर्ण रोजगार और अति स्फीति को लाएगी। दूसरी ओर, यदि $S > I$ तो यह स्थिति Y_0 के बाईं ओर नीचे की गति होने पर शून्य उत्पादन और रोजगार तथा अर्थव्यवस्था के पतन को लाती है, जैसा कि चित्र के भाग (B) भाग में दर्शाया गया है। कालडर रेखीय बचत और निवेश फलनों को छोड़ देता है क्योंकि ये चक्र को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। इनकी बजाय वह अरेखीय बचत और निवेश फलनों को अपनाता है।

नोट्स निकोलस कालडर ने बचत और निवेश की केन्ज़ीय शब्दावली के आधार पर व्यापार-चक्र के मॉडल का निर्माण किया।

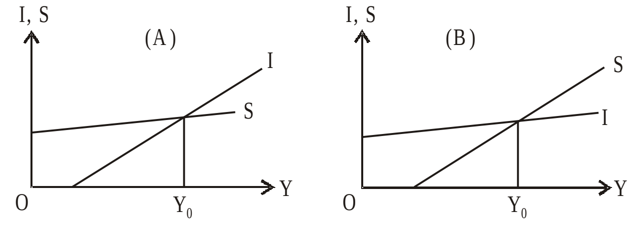

चित्र 26.1

एक अरेखीय निवेश फलन I को चित्र 26.2 में दर्शाया गया है। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था प्रसार अवस्था की ओर अग्रसर होती है, जिसे I वक्र के साथ-साथ बाईं ओर की गति द्वारा दिखाया गया है, जहाँ I वक्र लगभग सपाट है। इसका अभिप्राय है कि अन्य के निम्न स्तर पर अप्रयुक्त क्षमता है तथा शुद्ध निवेश है। परंतु शून्य प्रसार प्रारंभ हो जाता है तब संचित पूँजी का ऋणात्मक प्रभाव, उत्पादन एवं लाभ के ऊँचे स्वरों की अपेक्षा निवेश निर्णयों पर अधिक शक्तिशाली होता है। इसके विपरीत आय के ऊँचे स्तर पर जब अर्थव्यवस्था संकुचन अवस्था में प्रवेश करती है तो I वक्र फिर सपाट होता है और शुद्ध निवेश कम होता है क्योंकि लागत में बढ़ोतरी, बढ़ती हुई लागतें तथा उधार लेने की कठिनाइयों में वृद्धि उत्पादकों को और तेजी से प्रसार करने से रोकेगी। इससे उत्पादन में वृद्धि की दर धीमी पड़ जाती है। इसका तात्पर्य है कि वर्तमान पूँजी स्टॉक और क्षमता चालू उत्पादन से अधिक है। यह स्थिति निवेश को और कम करती है। अत: आय में गिरावट होती है तथा संचयी प्रभाव से अर्थव्यवस्था संकुचन की अवस्था में प्रवेश करती है।

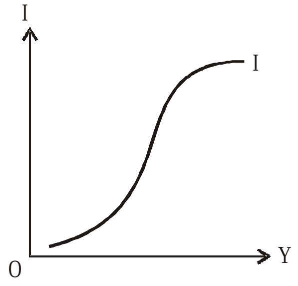

चित्र 26.2

क्या आप जानते हैं कालडर अपने व्यापार चक्र की प्रसार अवस्था को तीन अवस्थाओं में दर्शाता है।

इसी प्रकार अरेखीय बचत फलन चित्र 26.3 में दिखाया गया है। आय के बहुत नीचे स्तर पर बचत बहुत कम हो जाती है। तथा यह ऋणात्मक भी हो सकती है। इस प्रकार प्रसार की अवस्था के दौरान *MPS* अधिक होती है। आय के सामान्य स्तरों पर, बचत में वृद्धि कम दर से होगी। इसे S वक्र के मध्य भाग द्वारा दिखाया गया है। परंतु आय के बहुत ऊँचे स्तर पर बचतें बहुत अधिक होंगी तथा लोग अपनी आय का एक बड़ा भाग बचाएँगे।

चक्र तभी दिखाई देता है जब अरेखीय बचत और निवेश वक्र इकट्ठे लाए जाते हैं, जैसाकि चित्र 26.4 में। चित्र A,B, और C स्थितियों पर बहुसंतुलनों को दर्शता है। इनमें से A और B स्थिर स्थितियाँ हैं तथा C अस्थिर स्थिति है। C और B स्थितियों के बीच तथा A स्थिति के नीचे, $I > S$ यह आय के स्तर को ऊँचा करेगा। A और C स्थितियों के बीच और B स्थिति के ऊपर $S > I$ है, यह आय के स्तर को नीचा करेगी।

नोट

परन्तु A और B स्थितियां केवल अत्पकाल में स्थिर है। दीर्घकाल में ये स्थितियाँ अस्थिर होती हैं और चक्र का पथ दृष्टिगोचर होता है। इसके लिए कालडर ने पूँजी स्टॉक को एक अन्य चर के रूप में प्रयोग किया है जो बचत और निवेश के संबंधों पर प्रभाव डालता है। उसने बचत और निवेश दोनों को आय और पूँजी स्टॉक के फलन के रूप में लिया ताकि

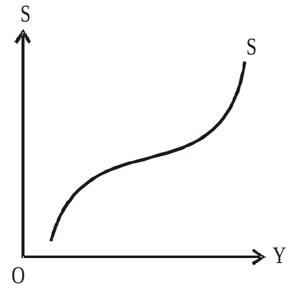

चित्र 26.3

$$S = f(Y, K)$$
$$I = f(Y, K)$$

$$\frac{dS}{IY} > 0, \quad \frac{dS}{dK} > 0$$
$$\frac{dI}{dY} > 0, \quad \frac{dI}{dK} < 0$$

और $$\frac{dI}{dY} > \frac{dS}{dY}$$

अर्थात, संकुचन अवस्था में *MPI* > *MPS*.

ऊपर के संबंध दर्शाते हैं कि *S* और *I* प्रत्यक्ष रूप में *Y* के साथ घनात्मक परिवतर्तित होते हैं। *S* सीधा *K* के साथ, और *I* विपरीत रूप में *K* के साथ परिवर्तित होता है। *MPI* > *MPS* संबंध अर्थव्यवस्था की स्थिरता को दर्शाता है जो इसे या तो प्रसार अथवा संकुचन की ओर ले जाएगा। चित्र 26.4 के अनुसार *A* और *B* की स्थितियाँ दीर्घकाल में 'स्विच बिंदु' हैं। ये वे बिंदु हैं जिन पर अर्थव्यवस्था अपनी दिशा या तो प्रसार अथवा संकुचन की ओर परिवर्तित करती है। बिंदु *C* दोनों दिशाओं की ओर अस्थिर होता है। जब बिंदु *C* और *B* नजदीक आते हैं तो चक्र की प्रसार अवस्था प्रारंभ होती है। जब वे मिलते हैं तो प्रसार समाप्त होता है और संकुचन शुरू होता है। इसके विपरीत जब बिंदु *C* और *A* नजदीक आते हैं तो संकुचन प्रारंभ होता है। जब वे मिलते हैं तो संकुचन समाप्त होता है और प्रसार शुरू होता है।

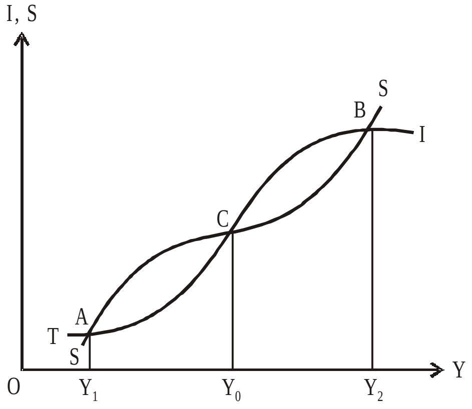

चित्र 26.4

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. नियोजित बचत और निवेश का अंतर .... को लाता है।
2. चक्र दबावों का .... है।

प्रसार अवस्था (Expansion Phase)

कालडर अपने व्यापार चक्र की प्रसार अवस्था को तीन अवस्थाओं में दर्शाता है। जैसा कि चित्र 26.5 में स्थिति Y_0 से प्रारंभ करने से अवस्था 1 जो कि चित्र 26.4 के समान है। मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था बिन्दु *C* पर संतुलन

में है। लेकिन यह अस्थिर संतुलन का बिन्दु है। *C* के ऊपर की ओर स्थानांतरण दर्शाता है कि $I > S$ जो अर्थव्यवस्था को प्रसार पथ की ओर ले जाती है। क्योंकि निवेश दर ऊँची है, इसलिए अर्थव्यवस्था का पूँजी स्टॉक तीव्र दर से बढ़ता है। लकिन पूँजी स्टॉक के बढ़ने से, पूँजी की सीमांत उत्पादकता कम होती है तथा निवेश चक्र नीचे की ओर शिफ्ट करता है। उसी समय जब अर्थव्यवस्था के पूँजी स्टाक में वृद्धि होती है तो यह अर्थव्यवस्था की आय में बढ़ोतरी करता है जिससे उसकी बचत बढ़ती है। अत: बचत वक्र ऊपर को शिफ्ट करता है। इस प्रकार निवेश वक्र *I* के नीचे की ओर शिफ्ट करने तथा बचत वक्र *S* के ऊपर की ओर शिफ्ट करने से बिंदु *C* बिन्दु *B* के पास आ जाता है जैसा कि चित्र की अवस्था 2 में दिखाया गया है। *I* वक्र के नीचे की ओर तथा *S* वक्र के ऊपर की ओर शिफ्ट करने की यह प्रक्रिया चलती रहती है जब तक कि दोनों वक्र एक दूसरे से स्पर्श नहीं करते तथा बिन्दु *C* और बिन्दु *B* मिलते नहीं हैं, जैसा चित्र की अवस्था 3 में दिखाया गया है। परंतु इस स्थिति में दोनों दिशाओं में $S > I$, इसलिए नीचे की दिशा में यह एक अस्थिर असंतुलन की स्थिति है। यह अर्थव्यवस्था को नीचे की ओर ले जाती है जब तक कि अवस्था 3 में बिन्दु *A* नहीं पहुँचता।

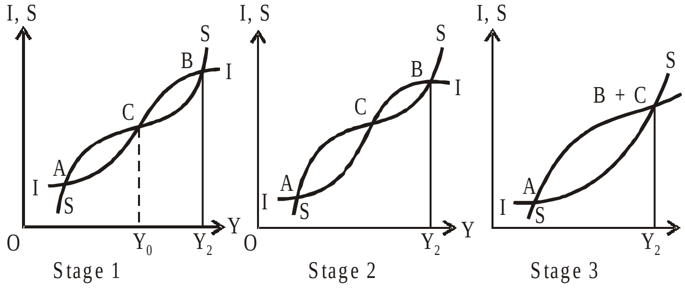

चित्र 26.5

संकुचन अवस्था (Contraction Phase)

व्यापार चक्र की संकुचन अवस्था को भी तीन अवस्थाओं में दिखाया गया है जैसा चित्र 26.6 में। हम स्थिति Y_1 से प्रारंभ करते हैं जो चित्र की अवस्था 26.4 में बिंदु A के साथ मेल खाती है। यह अल्पकालीन स्थिर संतुलन का बिंदु है लेकिन आय के बहुत निम्न स्तर का। परंतु आय के इतने नीचे स्तर पर दीर्घकाल में अप्रयुक्त क्षमता के कारण पूँजी स्टॉक कम होता है तथा निवेश वक्र I ऊपर को शिफ्ट करता है। साथ ही बचत कम हो जाती है जो बचत वक्र को नीचे की ओर शिफ्ट कर देती है। इस प्रकार, I वक्र के ऊपर की ओर शिफ्ट करने तथा S वक्र के नीचे की ओर शिफ्ट करने से A और C स्थितियाँ नजदीक आ जाती हैं जैसाकि चित्र की अवस्था 5 में दिखाया गया है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे चालू रहेगी जब तक कि I और S वक्र स्पर्श नहीं करते तथा स्थितियाँ A और C मिल नहीं जाती जैसा की चित्र में अवस्था 26.6 में दिखाया गया है। परंतु Y_1 आय स्तर पर $A + C$ की यह स्थिति ऊपर की दिशा में अस्थिर है क्योंकि $I > S$ यह प्रसारात्मक प्रक्रिया की ओर ले जाएगी जब तक कि अर्थव्यवस्था बिंदु B पर आय के ऊँचे स्तर Y_2 पर नहीं पहुँच जाती है। बिंदु B से I तथा S वक्र धीरे-धीरे, चित्र 26.5 अवस्था 1 में दिखाई गई स्थितियों पर पहुँच जाएँगे, और चक्रीय प्रक्रिया पुन: प्रारंभ हो जाती है। इस प्रकार, कालडर की चक्रीय आत्मजनक (Self-generating) है।

कालडर के अनुसार, वे शक्तियाँ जो नीचे की ओर मोड़ बिंदु लाती हैं वे उच्चस्तर पर निश्चित नहीं होतीं। तेजी अपने-आप ही निश्चित रूप से समाप्त हो जाएगी। परंतु मंदी स्थैतिक स्थिति में पड़ सकती है और वहीं रह सकती हैं जब तक कि बाह्य परिवर्तन (जैसे कि नए आविष्कारों की खोज या नई मार्किटों का खोलना) उसके बचाव पर नहीं आते।

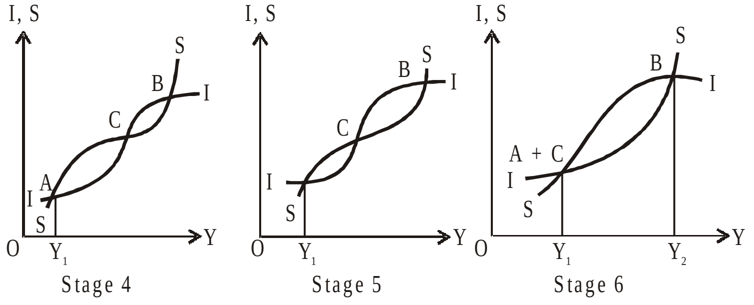

चित्र 26.6

फिर, कालडर के माडल में चक्र समान लंबाई और अवधि के आवश्यक तौर से नहीं होते हैं और न ही प्रसार और

नोट

संकुचन आवश्यक तौर से समरूपक होते हैं। वास्तव में, I और S वक्रों की ढलानों तथा चक्र की प्रत्येक अवस्था में वे किस दर से शिफ्ट करते हैं, इस पर निर्भर करते हैं।

कालडर अपने व्यापार चक्र सिद्धांत की व्याख्या करने में न तो त्वरण नियम और न ही मौद्रिक कारकों का प्रयोग करता है। साथ ही वह दर्शाता है कि किसी वृद्धि कारक के न होने पर कैसे एक व्यापार चक्र पाया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. चक्र केवल तभी संभव है जब बचत और निवेश हों–
   (अ) अरेखीय (ब) रेखीय
   (स) अधिक (द) कम।
4. कालडर रेखीय बचत और निवेश फलनों को छोड़ देता है क्योंकि ये चक्र को उत्पन्न करने में हैं–
   (अ) असमर्थ (ब) समर्थ
   (स) आगे (द) पीछे।
5. नियोजित बचत और निवेश का अंतर लाता है–
   (अ) कमी (ब) चक्र को
   (स) अधिरता (द) इनमें से कोई नहीं
6. चक्र तभी दिखाई देता है जब अरेखीय बचत और निवेश वक्र लाए जाते हैं–
   (अ) इकट्ठे (ब) अलग-अलग
   (स) तटस्थ (द) इनमें से कोई नहीं।

26.2 स्थिरीकरण नीतियाँ या व्यापार-चक्रों को नियंत्रित करने के उपाय (Stabilisation Policies or Measures to Control Trade Cycle)

एक अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने हेतु समय-समय पर अनेक उपाय सुझाए और कार्यान्वित किए जाते हैं। उनका उद्देश्य मंदियों और तेजियों के कुप्रभावों से बचने के लिए आर्थिक क्रिया का स्थिरीकरण करना होता है। इसके लिए निम्न तीन उपाय अपनाए जाते हैं–

1. मौद्रिक नीति (Monetary Policy)

व्यापारिक उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने के उपाय के रूप में मौद्रिक नीति एक देश के केंद्रीय बैंक द्वारा परिचालित की जाती है। केंद्रीय बैंक साख की मात्रा और गुणवत्ता को नियंत्रित करने के लिए अनेक उपाय अपनाता है। तेजी में मुद्रा-पूर्ति के प्रसार को नियंत्रित करने हेतु वह बैंक दर को बढ़ाता है, खुले बाजार में प्रतिभूतियों को बेचता है, रिजर्व अनुपात में वृद्धि करता है और अनेक चयनात्मक साख नियंत्रण उपाय जैसे सीमा आवश्यकताएँ बढ़ाना और उपभोक्ता साख को नियमन करना आदि, अपनाता है। अत: केंद्रीय बैंक महँगी मुद्रा नीति अपनाता है। व्यवसाय और व्यापार द्वारा उधार लेना महँगा, कठिन और चयनात्मक हो जाता है। इस प्रकार, अर्थव्यवस्था में मुद्रापूर्ति की अधिक मात्रा नियंत्रित करने के प्रयत्न किए जाते हैं।

मंदी अथवा सुस्ती को नियंत्रित करने के लिए, केंद्रीय बैंक सस्ती या सुगम (cheap or easy) मौद्रिक नीति अपनाता है। व्यापारिक बैंकों के रिजर्व बढ़ाने के लिए वह बैंक दर तथ बैंक की ब्याज दरें कम करता है। वह खुले बाजार में प्रतिभूतियाँ खरीदता है। वह कर्जों पर सीमा आवश्यकताएँ कम करता है और उपभोक्ताओं, व्यवसायियों, व्यापारियों आदि को अधिक उधार देने हेतु बैंकों को प्रोत्साहित करता है।

मौद्रिक नीति की सीमाएँ (Limitations of Monetary Policy)

परंतु मौद्रिक नीति तेजी और मंदी को नियंत्रित करने में अधिक प्रभावी नहीं होती है। यदि तेजी लागताधिक्य (cost-push) कारकों से होती है तो स्फीति, कुल माँग, उत्पादन आय और रोजगार को नियंत्रित करने में प्रभावी नहीं होगी। जहाँ तक मंदी का संबंध है, 1930 की महान मंदी का अनुभव बताता है कि जब व्यापारियों में निराशावादिता हो तो मौद्रिक नीति की सफलता बिल्कुल नहीं होती है। ऐसी स्थिति में, उनमें उधार लेने की प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं होती, यदि ब्याज दर बहुत कम भी हो। इसी प्रकार जिन उपभोक्ताओं की आमदनियों में कमी हो और जो बेरोजगार हों, वे अपने उपभोग व्यय कम कर देते हैं। ऐसी स्थिति में न तो केंद्रीय बैंक और न ही व्यापारिक बैंक व्यापारियों और उपभोक्ताओं को समस्त माँग बढ़ाने में प्रोत्साहित कर सकते हैं। इस प्रकार, आर्थिक उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने में मौद्रिक नीति की सफलता बिल्कुल सीमित होती है।

2. राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

अकेली मौद्रिक नीति व्यापार-चक्रों को नियंत्रित करने की क्षमता नहीं रखती है। इसलिए, उसे क्षतिपूरक (compensatory) राजकोषीय नीति के साथ जोड़ा जाता है। तेजी में राजकोषीय उपाय जैसे अत्यधिक सरकारी व्यय, व्यक्तिगत उपभोग व्यय तथा निजी और सार्वजनिक निवेश नियंत्रित करने के लिए बहुत प्रभावी होते हैं। दूसरी ओर, वे मंदी में सरकारी व्यय, व्यक्तिगत उपभोग व्यय तथा निजी और सार्वजनिक निवेश बढ़ाने में सहायक होते हैं।

तेजी के दौरान नीति (Policy during Boom)

तेजी में निम्न उपाय अपनाए जाते हैं। वस्तुओं और सेवा की माँग कम करने के लिए सरकार गैर-विकास क्रियाओं पर **अनावश्यक व्यय की कटौती** कर देती है। इससे निजी व्यय पर भी रोक लगती है, जो वस्तुओं और सेवाओं के लिए सरकारी माँग पर निर्भर करती है। लेकिन सरकारी व्यय में कटौती करना कठिन है। फिर, आवश्यक और अनावश्यक सरकारी व्यय में भेद करना संभव नहीं है। इसलिए, इस उपाय को कराधान द्वारा संपूरित किया जाता है। व्यक्तिगत व्यय को कम करने के लिए, सरकार व्यक्तिगत कंपनी और **वस्तु करों की दरों को बढ़ाती** है। जब सरकारी व्यय से आय अधिक होती है तो सरकार **आधिक्य** बजट (Surplus budget) की नीति अपनाती है। ऐसा या तो कर दरें बढ़ाकर या सरकारी व्यय कम करके या दोनों द्वारा किया जाता है। ये गुणक की विपरीत प्रक्रिया द्वारा आय और समस्त माँग को कम कर देते हैं।

एक अन्य राजकोषीय नीति जो प्राय: अपनायी जाती है वह जनता से अधिक उधार लेना है, जिसका प्रभाव जनता के पास मुद्रा की मात्रा कम करना है। फिर, सार्वजनिक ऋण का पुनर्भुगतान बंद कर देना चाहिए और जब अर्थव्यवस्था स्थिर हो जाए, तो किसी भविष्य की तिथि तक भुगतान स्थगित कर देना चाहिए।

टास्क कालडर का व्यापार चक्र सिद्धांत के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

मंदी के दौरान नीति (Policy During Depression)

मंदी के दौरान, सरकार सार्वजनिक व्यय में वृद्धि और करों में कटौती करती है तथा घाटे के बजट की नीति अपनाती है। ये उपाय समस्त माँग, उत्पादन, आय, रोजगार और कीमतों को बढ़ाते हैं। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि वस्तुओं और सेवाओं के लिए समस्त माँग बढ़ाती है और गुणक द्वारा आय में वृद्धि लाती है। सार्वजनिक व्यय सड़कों, नहरों, बांध, पार्क, स्कूल, अस्पताल और अन्य निर्माण कार्यों पर किए जाते हैं। वे श्रम और निजी निर्माण उद्योगों के लिए माँग उत्पन्न करते हैं और उनका पुनरुत्थान करने में सहायक होते हैं। सरकार भी उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के लिए माँग

नोट

को प्रोत्साहित करने के लिए बेरोजगारी बीमा और सामाजिक सुरक्षा जैसे उपायों पर अपना व्यय बढ़ाती है। बजट घाटों का वित्त प्रबंध करने के लिए सरकार द्वारा उधार लेना, बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के पास निष्क्रिय (idle) पड़ी हुई मुद्रा, निवेश योजनाओं में प्रयोग हो जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रतिचक्रीय राजकोषीय नीति की प्रभावशीलता नीति कार्य के सही समय पर लागू करने और सार्वजनिक निर्माण कार्यों की प्रकृति, मात्रा और आयोजन पर निर्भर करती है।

3. प्रत्यक्ष नियंत्रण (Direct Controls)

प्रत्यक्ष नियंत्रणों का उद्देश्य कीमत स्थिरता के लिए संसाधनों का सही आवंटन करना है। वे अर्थव्यवस्था के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को प्रभावित करने के लिए होते हैं। वे विशेष उपभोक्ताओं और उत्पादकों को प्रभावित करते हैं। वे राशनिंग, लाइसेंसिंग, कीमत और मजदूरी नियंत्रण, निर्यात कर, विनिमय नियंत्रण, अभ्यंश (कोटा), एकाधिकार नियंत्रण आदि के रूप में होते हैं। वे स्फीतिकारी दबावों से उत्पन्न होने वाली रुकावटों और कमियों को दूर करने के लिए अधिक प्रभावी होते हैं। परंतु उनकी सफलता एक कुशल और ईमानदार प्रशासन पर निर्भर करती है। अन्यथा, उनसे काला बाजारी, भ्रष्टाचार, लंबी कतारें, सट्टाबाजी आदि उत्पन्न होते हैं। इसलिए उनका प्रयोग केवल युद्ध, खराब फसलों और अत्यधिक स्फीति जैसे संकटों में ही करना चाहिए।

निष्कर्ष (Conclusion)

स्थिरीकरण नीति के अनेक उपायों में से कोई अकेला तरीका चक्रीय उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए सभी तरीकों का एक-साथ प्रयोग करना चाहिए। मौद्रिक नीति लागू करना आसान है परंतु वह कम प्रभावी है, क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में चक्रीय नीति और प्रत्यक्ष नियंत्रणों का प्रचलन करना कठिन है परंतु वे अधिक प्रभावी हैं। क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था में चक्रीय उतार-चढ़ाव विद्यमान रहते हैं, इसलिए उनका पूर्णरूप से समाप्त करना संभव नहीं है। कुछ उतार-चढ़ाव आर्थिक वृद्धि के लिए लाभदायक हो सकते हैं और अन्य अवांछनीय। स्थिरीकरण नीति को अवांछनीय उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करना चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. व्यापार चक्र की संकुचन अवस्था को तीन अवस्थाओं में दिखाया गया है।
8. कालडर के अनुसार वे शक्तियाँ जो नीचे की ओर मोड़ बिंदु लाती हैं, वे उच्चतर पर निश्चित नहीं होतीं।
9. जब अर्थव्यवस्था में पूँजी स्टॉक में वृद्धि होती है तो यह अर्थव्यवस्था की आय में कमी करता है।
10. मौद्रिक नीति तेजी और मंदी को नियंत्रित करने में अधिक प्रभावी होती है।

26.3 सारांश (Summary)

- व्यक्तिगत व्यय को कम करने के लिए, सरकार व्यक्तिगत कंपनी और **वस्तु करों की दरों को बढ़ाती** है। जब सरकारी व्यय से आय अधिक होती है तो सरकार **आधिक्य** बजट (Surplus budget) की नीति अपनाती है। ऐसा या तो कर दरें बढ़ाकर या सरकारी व्यय कम करके या दोनों द्वारा किया जाता है। ये गुणक की विपरीत प्रक्रिया द्वारा आय और समस्त माँग को कम कर देते हैं।

26.4 शब्दकोश (Keywords)

नोट

- व्यापार चक्र (Trade Cycle) – व्यापारिक-चक्र।
- एकल (Single)– एकाकी।

26.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. कालडर का व्यापार-चक्र सिद्धांत क्या है? समझाइए।
2. स्थिरीकरण नीतियाँ या व्यापार चक्रों को नियंत्रित करने के उपाय बताइए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. चक्र	2. प्रभाव	3. (अ)	4. (अ)
5. (ब)	6. (अ)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. गलत।		

26.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ :** एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–27: मौद्रिक नीति
(Monetary Policy)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 मौद्रिक नीति का अर्थ (Meaning of Monetary Policy)

27.2 मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Objectives or Goals of Monetary Policy)

27.3 मौद्रिक नीति के उपकरण (Instruments of Monetary Policy)

27.4 विस्तारक मौद्रिक नीति (Expansionary Monetary Policy)

27.5 प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति (Restrictive Monetary Policy)

27.6 विकासशील अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति की भूमिका (Role of Monetary Policy in a Developing Economy)

27.7 राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

27.8 सारांश (Summary)

27.9 शब्दकोश (Keywords)

27.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मौद्रिक नीति का अर्थ जानने हेतु।
- मौद्रिक नीति के उद्देश्य जानने हेतु।
- विस्तारक मौद्रिक नीति जानने हेतु।
- प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

मौद्रिक नीति केंद्रीय बैंक द्वारा अपनाए गए साख-नियंत्रण उपायों से संबंध रखती है। ये दो प्रकार के होते हैं–(*i*) मात्रात्मक (quantitative)–सामान्य अथवा अप्रत्यक्ष नियंत्रण; (*ii*) गुणात्मक (qualitative)–चयनात्मक अथवा प्रत्यक्ष नियंत्रण। प्रथम श्रेणी के अंतर्गत बैंक दर में परिवर्तन खुले बाजार के प्रचालन तथा परिवर्तनशील आरक्षण आवश्यकताएँ सम्मिलित रहती हैं। उनका उद्देश्य कमर्शियल बैंकों के माध्यम से अर्थव्यवस्था में साख के संपूर्ण स्तर

नोट

का नियमन (regulate) करना है। इनमें परिवर्तनशील सीमा आवश्यकताएँ तथा उपभोक्ता साख का नियमन शामिल रहते हैं।

27.1 मौद्रिक नीति का अर्थ (Meaning of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति का अर्थ एक देश के केंद्रीय बैंक द्वारा अपनाए गए साख नियंत्रण उपायों से है। **जोनसन** मौद्रिक नीति को इस प्रकार परिभाषित करता है–"सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केंद्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति को नियंत्रित करने के औजार के रूप में यह नीति है।"[1] **जी.के. शा** इसे "मुद्रा की मात्रा, प्राप्यता या लागत को परिवतर्तित करने के लिए मौद्रिक प्राधिकारी द्वारा कोई सचेत कार्य किया गया,"[2] परिभाषित करता है।

27.2 मौद्रिक नीति के उद्देश्य (Objectives of Goals of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं।

1. **पूर्ण रोजगार (Full Employment)**–पूर्ण रोजगार को मौद्रिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों में रखा गया है। यह एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है क्योंकि बेरोजगारी से न केवल संभावित उत्पादन की हानि होती है बल्कि इससे सामाजिक प्रतिष्ठा और आत्मसम्मान की भी हानि होती है। इनके अतिरिक्त यह गरीबी को उत्पन्न करती है। इसलिए, पूर्ण रोजगार प्राप्त करना परम आवश्यक होता है।

नोट्स सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति को नियंत्रित करने औजार के रूप में है मौद्रिक नीति।

2. **कीमत स्थिरता (Price Stability)**–कीमत स्तर में स्थिरता लाना मौद्रिक नीति का एक प्रमुख उद्देश्य है।

3. **आर्थिक वृद्धि (Economic Growth)**–हाल के वर्षों में मौद्रिक नीति के अत्यंत महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह रहा है कि अर्थव्यवस्था की तेजी से आर्थिक वृद्धि हो।

4. **भुगतान शेष (Balance of Payments)**–1950 के दशक से मौद्रिक-नीति का एक अन्य उद्देश्य यह रहा है कि भुगतान शेष संतुलन बनाए रखा जाए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. पूर्ण रोजगार को मौद्रिक नीति के प्रमुख .... में रखा गया है।
2. जब कीमतें बढ़ने लगती हैं और उन्हें रोकने की जरूरत होती है तो केंद्रीय बैंक .... बेचता है।

27.3 मौद्रिक नीति के उपकरण (Instruments of Monetary Policy)

मौद्रिक नीति केंद्रीय बैंक द्वारा अपनाए गए साख-नियंत्रण उपायों से संबंध रखती है। ये दो प्रकार के होते हैं– (*i*) मात्रात्मक (quantitative)–सामान्य अथवा अप्रत्यक्ष नियंत्रण; (*ii*) गुणात्मक (qualitative)–चयनात्मक अथवा प्रत्यक्ष नियंत्रण। प्रथम श्रेणी के अंतर्गत बैंक दर में परिवर्तन खुले बाजार के प्रचालन तथा परिवर्तनशील आरक्षण आवश्यकताएँ सम्मिलित रहती हैं। उनका उद्देश्य कमर्शियल बैंकों के माध्यम से अर्थव्यवस्था में साख के संपूर्ण स्तर का नियमन (regulate) करना है। इनमें परिवर्तनशील सीमा आवश्यकताएँ तथा उपभोक्ता साख का नियमन शामिल रहते हैं।

नोट

1. **बैंक दर नीति (Bank Rate Policy)**–बैंक दर, केंद्रीय बैंक द्वारा उधार देने की वह न्यूनतम दर है जिस पर वह विनिमय की प्रथम श्रेणी हुण्डियों तथा कमर्शियल बैंक द्वारा धारित सरकारी प्रतिभूतियों को पुनः बट्टा (rediscount) करता है। जब केंद्रीय बैंक देखता है कि अर्थव्यवस्था के भीतर स्फीतिकारी दबाव प्रकट होने शुरू हो गए हैं, तो वह बैंक-दर बढ़ा देता है। केंद्रीय बैंक से उधार लेना महँगा हो जाता है और कमर्शियल बैंक उससे अपेक्षाकृत कम उधार लेंगे। कमर्शियल बैंक आगे व्यापारियों को उधार देने की अपनी दरें बढ़ा देते हैं। इस कारण उधार लेने वाले कमर्शियल बैंकों से कम उधार लेंगे। साख का संकुचन होता है और कीमतें और आगे बढ़ने से रुक जाती हैं। इसके विपरीत, जब कीमतें गिर जाती हैं, तो केंद्रीय बैंक अपनी बैंक दर घटा देता है। कमर्शियल बैंकों को केंद्रीय बैंक से उधार लेना सस्ता रहता है, तब कमर्शियल बैंक भी अपनी उधार देने की दरें घटा देते हैं। इससे व्यापारियों को अधिक उधार लेने को प्रोत्साहन मिलता है। निवेश को प्रोत्साहन मिलता है। उत्पादन, रोजगार, आय तथा माँग बढ़ना शुरू करती हैं और कीमतों का गिरना रुक जाता है।

2. **खुले बाजार के प्रचालन (Open Market Operations)**–खुले बाजार के प्रचालन मुद्रा बाजार में केंद्रीय बैंक द्वारा प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय से संबंध रखते हैं। जब कीमतें बढ़ने लगती हैं और उन्हें रोकने की जरूरत होती है तो केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियाँ बेचता है। कमर्शियल बैंकों के आरक्षण (reserve) घट जाते हैं और वे व्यापारी वर्ग को और उधार देने की स्थिति में नहीं रह जाते। आगे निवेश हतोत्साहित होता है और कीमतों में वृद्धि रुक जाती है। इसके विपरीत, जब अर्थव्यवस्था में सुस्ती (recession) की शक्तियाँ शुरू होती हैं, तो केंद्रीय बैंक प्रतिभूतियाँ खरीदता है। कमर्शियल बैंकों के आरक्षण बढ़ जाते हैं। वे अधिक उधार देते हैं, निवेश, उत्पादन, रोजगार तथा माँग बढ़ जाती है और कीमतों का गिरना रुक जाता है।

3. **रिज़र्व अनुपातों में परिवर्तन (Changes in Reserve Ratios)**–इस औजार का सुझाव केन्ज़ ने अपनी पुस्तक Treatise of Money में दिया था और संयुक्त राज्य अमरीका पहला देश था जिसने इसे मौद्रिक तरीके के रूप में अपनाया। कानून के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपनी कुल जमा का कुछ प्रतिशत अपने तहखानों में रिजर्व कोष में और कुछ प्रतिशत केंद्रीय बैंक के पास रखना पड़ता है। जब कीमतें बढ़ने लगती हैं तो केंद्रीय बैंक रिजर्व अनुपात बढ़ा देता है। बैंकों को केंद्रीय बैंक के पास अधिक राशि रखनी पड़ती है। उनके आरक्षण घट जाते हैं और वे कम उधार देते हैं। निवेश, उत्पादन तथा रोजगार की मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत स्थिति में जब रिजर्व अनुपात घटाया जाता है, तो कमर्शियल बैंकों के आरक्षण बढ़ जाते हैं। वे अधिक उधार देते हैं और आर्थिक क्रिया पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

4. **चयनात्मक साख नियंत्रण (Selective Credit Control)**–विशिष्ट उद्देश्यों से विशेष प्रकार की साख को प्रभावित करने के लिए चयनात्मक साख नियंत्रण काम में लाये जाते हैं। अर्थव्यवस्था के भीतर सट्टा क्रियाओं को नियंत्रित करने के लिए वे सामान्यतः परिवर्तनशील सीमा आवश्यकताओं (Changing margin requirements) का रूप ले लेते हैं। जब अर्थव्यवस्था में अथवा विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ वस्तुओं में तेज सट्टा क्रिया होती है और कीमतें बढ़ना शुरू हो जाती हैं, तो केंद्रीय बैंक उन पर सीमा आवश्यकता बढ़ा देता है। परिणाम यह होता है कि उधार लेने वालों को विशिष्ट प्रतिभूतियों पर ऋण के रूप में कम मुद्रा दी जाती है। उदाहरणार्थ, सीमा आवश्यकता को बढ़ा कर 60 प्रतिशत कर देने का अर्थ है कि 10,000 रु. मूल्य की प्रतिभूतियों के प्राधिदाता (pledger) को उनके मूल्य का 40 प्रतिशत (4,000 रु.) ऋण के रूप में दिया जाएगा। विशिष्ट क्षेत्रों में सुस्ती की स्थिति में, केंद्रीय बैंक सीमा आवश्यकताएँ घटाकर उधार ग्रहण को प्रोत्साहन देता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रभावशाली विश्लेषणात्मक मौद्रिक नीति के लिए आवश्यक है कि बैंक दर, खुले बाजार के प्रचालन, रिजर्व अनुपात तथा विशिष्ट नियंत्रण उपायों को एक ही साथ अपनाया जाए। परंतु सभी मुद्रा सिद्धांतकारों ने स्वीकार किया हैं कि–(*i*) मंदी में जब व्यापार विश्वास अपनी क्षीणतम दशा में होता है, तब मौद्रिक नीति की सफलता शून्य होती है;

नोट

और (*ii*) स्फीति के विरुद्ध वह सफल रहती है। मुद्रावादियों का कहना है कि राजकोषीय नीति के मुकाबले मौद्रिक नीति में अपेक्षाकृत अधिक लचीलापन होता है। उसे शीघ्र कार्यान्वित किया जा सकता है।

क्या आप जानते हैं मौद्रिक नीति का अर्थ एक देश के केंद्रीय बैंक द्वारा अपनाए गए साख नियंत्रण उपायों से है।

27.4 विस्तारक मौद्रिक नीति (Expansionary Monetary Policy)

विस्तारक (या **सस्ती**) मौद्रिक नीति का उपयोग अवस्फीतिक अंतराल (deflationary gap) या मंदी या सुस्ती (recession) से निकलने के लिए होता है। जब वस्तुओं और सेवाओं की उपभोक्ता माँग और निवेश वस्तुओं की व्यवसाय माँग में गिरावट आती है तो अवस्फीतिक अंतराल प्रकट होता है। केंद्रीय बैंक विस्तारक मौद्रिक नीति प्रारंभ करता है जो साख बाजार की दशाओं को आसान बनाती है और समस्त माँग में ऊपर की ओर परिवर्तन लाती है। इस उद्देश्य के लिए, केंद्रीय बैंक खुले बाजार में सरकारी प्रतिभूतियाँ खरीदता है, सदस्य बैंकों की रिजर्व आवश्यकताएँ कम करता है, बट्टा दर कम करता है तथा चयनात्मक साख उपायों द्वारा उपभोक्ता और व्यवसाय साख को प्रोत्साहित करता है। इस उपायों द्वारा यह मुद्रा बाज़ार में साख की उपलब्धता और लागत को कम करता है और अर्थव्यवस्था में सुधार लाता है।

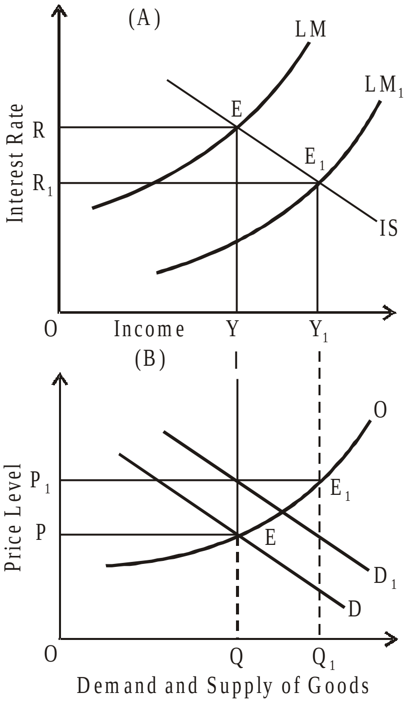

चित्र 27.1

विस्तारक मुद्रा नीति का चित्र 27.1 (*A*) और (*B*) द्वारा वर्णित किया गया है। जहाँ प्रारंभिक सुस्ती संतुलन *R*, *Y*, *P* और *Q* पर है। चित्र के भाग (*A*) में ब्याज दर *OR* पर अर्थव्यवस्था में पहले से ही अतिरिक्त मुद्रा पूर्ति होता है। मान लीजिए केंद्रीय बैंक की साख नीति के कारण अर्थव्यवस्थाओं में मुद्रा पूर्ति में वृद्धि होती है। यह *LM* वक्र को दाईं ओर LM_1 पर सरका देगी। यह आय को *OY* से OY_1 पर बढ़ाती है और समस्त माँग बढ़ती है तथा भाग (*B*) में भाग वक्र *D* ऊपर की ओर D_1 पर सरक जाता है। वस्तुओं और सेवाओं की माँग में वृद्धि के साथ, उत्पादन ऊँची कीमत स्तर OP_1 पर *OQ* से OQ_1 तक बढ़ता है। यदि विस्तारक मुद्रा नीति अच्छी तरह से काम करती है तो E_1 बिंदु पर संतुलन पूर्ण रोजगार स्तर पर हो सकता है। किंतु निम्न सीमाओं के कारण उस स्थिति में पहुँचने की संभावना नहीं होती है।

इसका क्षेत्र और सीमाएँ (Its Scope and Limitations)

1930 और 1940 के दशकों के दौरान यह विश्वास किया जाता था कि तेजी और स्फीति को नियंत्रित करने की अपेक्षा मंदी में समुत्थान (recovery) को प्रोत्साहित करने में मौद्रिक नीति की सफलता बहुत ही सीमित होती थी। यह धारणा महामंदी के अनुभवों और **केन्ज़** के General Theory के प्रकाशन से प्रकट हुई।

मुद्रावादियों का मत है कि केंद्रीय बैंक मंदी के दौरान सस्ती मुद्रा नीति द्वारा कमर्शियल बैंकों के रिज़र्व बढ़ा सकता है। वह प्रतिभूतियों को खरीदकर और ब्याज दर घटाकर ऐसा कर सकता है। परिणामस्वरूप, उधार लेने वालों को साख सुविधाएँ बढ़ाने से बैंकों की क्षमता बढ़ती है। किंतु महामंदी का अनुभव हमें बताता है कि तीव्र मंदी में जब

व्यवसायियों में निराशावादिता होती है तो व्यवहार में ऐसी नीति की सफलता शून्य होती है। ऐसी स्थिति में बैंक पुनरुत्थान (revival) लाने में असहाय होते हैं। चूँकि व्यवसाय क्रिया लगभग ठहराव की स्थिति में होती है इसलिए व्यवसायियों को मालसूचियाँ (inventories) बनाने के लिए उधार लेने की कोई प्रवृत्ति नहीं होती है, जबकि ब्याज दर बहुत कम होती है। चूँकि वे बैंकों से पहले की ली हुई अपनी मालसूचियों को ऋण लौटाकर घटाना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त, दीर्घकालीन पूँजी जरूरतों के लिए उधार लेने का सवाल मंदी में नही उठता है, जब व्यवसाय क्रिया पहले ही बहुत निम्न स्तर पर होती है। उपभोक्ताओं के साथ भी वही स्थिति होती है जो घटी हुई आय और बेरोजगारी से जूझ रहे होते हैं। अत: वे बैंक ऋणों द्वारा कोई टिकाऊ वस्तु खरीदना पसंद नहीं करते। इस प्रकार, सभी बैंक साख उपलब्ध करा सकते हैं लेकिन वे व्यवसायियों और उपभोक्ताओं को इसे स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। 1930 के दशक में, बहुत कम ब्याज दर और बैंकों के पास बिना उपयोग किये रिजर्वों की राशि, संसार की मंदी वाली अर्थव्यवस्थाओं पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाये।

"यह नहीं कहा जाता है कि तीव्र संकुचन के समय में सस्ती मुद्रा नीति बिना लाभकारी प्रभाव के होगी, बल्कि इसका अधिकतर प्रभाव खराब स्थिति को अधिक खराब स्थिति में पहुँचने से रोकने में होगा। परंतु अधोमुखी (downturn) व्यवसाय से जुड़ी प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति निश्चित रूप से अधोमुखी व्यवसाय को और खराब बना देगी–इसका परंपरावादी उदाहरण 1931 का मौद्रिक नीति थी जिसने महामंदी को गंभीर बनाने में अपना योगदान दिया. ...। दूसरी ओर, यदि साख अनुकूल शर्तों पर आसानी से उपलब्ध है तो स्पष्ट रूप से इसका स्थिरताकारी प्रभाव होगा। व्यवसाय की तरलता आवश्यकताएँ पूरी होने पर यह धीमी हो सकता है तथा शायद अधोमुखी की सीमा को घटा सकती है।"

परंतु 1930 और 1940 के दशकों में मौद्रिक नीति के पतन का क्या कारण था? महामंदी के दौरान और उसके बाद की कष्टकारक एवं मोह-भंग वाले अनुभवों के अतिरिक्त **केन्ज** की General Theory अधिक स्थिरता के औज़ार के रूप में मौद्रिक नीति में पतन का कारण बनी। **केन्ज** ने बताया कि अधिक लोच तरलता अधिमान अनुसूची (तरलता जाल) तीव्र मंदी के समय में मौद्रिक नीति को असहाय की स्थिति में प्रस्तुत करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. कीमत स्तर में स्थिरता लाना मौद्रिक नीति का एक है–

   (अ) प्रमुख उद्देश्य (ब) प्रमुख कार्य
   (स) योजना (द) इनमें से कोई नहीं।

4. पूर्ण रोजगार प्राप्त करना होता है–

   (अ) अनावश्यक (ब) परम आवश्यक
   (स) प्रमुख कार्य (द) इनमें से कोई नहीं।

5. विशिष्ट उद्देश्यों से विशेष प्रकार की साख को प्रभावित करने के लिए काम में लाए जाते हैं–

   (अ) चयनात्मक साख नियंत्रण (ब) उद्देश्य
   (स) विशिष्ट क्षेत्र (द) इनमें से कोई नहीं।

6. केंद्रीय बैंक विस्तारक मौद्रिक नीति प्रारंभ करता है जो साख बाजार की दशाओं को बनाती है–

   (अ) कठिन (ब) आसान
   (स) परिवर्तनशील (द) इनमें से कोई नहीं

27.5 प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति (Restrictive Monetary Policy)

नोट

समस्त माँग को कम करने के लिए बनाई गई मौद्रिक नीति प्रतिबंधात्मक (या **महँगी**) मौद्रिक नीति के नाम से जानी जाती है। इसका उपयोग स्फीतिकारी अंतराल से बाहर निकलने के लिए होता है। वस्तुओं और सेवाओं की उपभोक्ता माँग बढ़ने के कारण अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होते हैं और इसके कारण व्यवसाय निवेश में तेजी (boom) भी आती है। बैंक साख की लागत और उपलब्धता बढ़ाकर समस्त उपभोग और निवेश कम करने के लिए केंद्रीय बैंक प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति प्रारंभ करता है। खुला बाजार में सरकारी प्रतिभूतियों को बेचकर, सदस्य बैंकों की रिजर्व आवश्यकताएँ बढ़ाकर, बट्टा दर बढ़ाकर, और चयनात्मक उपायों द्वारा उपभोक्ता और व्यवसाय साख नियंत्रित करके, केंद्रीय बैंक ऐसा कर सकता है। इन उपायों द्वारा केंद्रीय बैंक खुले बाजार में साख की लागत और उपलब्धता बढ़ाता है और जिससे स्फीतिकारी दबावों को नियंत्रित करता है।

इसका क्षेत्र और सीमाएँ (Its Scope and Limitations)

परंतु मौद्रिक नीति का क्षेत्र स्फीति नियंत्रण में बहुत ही सीमित होता है। इसकी सीमाएँ निम्न हैं–

1. **मुद्रा के वेग में वृद्धि (Increase in Velocity of Money)**–स्फीति को रोकने में मौद्रिक नीति की प्रभाविता की एक महत्त्वपूर्ण सीमा है–जनता द्वारा रखी मुद्रा के वेग में वृद्धि। केंद्रीय बैंक महँगी मुद्रा की नीति द्वारा मुद्रा पूर्ति और मुद्रा की लागत को तो नियंत्रित कर सकता है परंतु उसके पास ऐसी कोई ताकत नहीं जिससे वह मुद्रा के वेग को रोक सके। जनता अपने पास विद्यमान मुद्रा पूर्ति को प्रभावशाली ढंग से प्रयोग में ला सकती है जिसके परिणामस्वरूप प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति असफल हो जाती है। अनेक तरीकों से ऐसा किया जा सकता है।

(क) कमर्शियल बैंकों के निवेशसूची समायोजन (Commercial Bank Portfolio Adjustments)–जब प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति चल रही होती है, तो कमर्शियल बैंक केंद्रीय बैंक को सरकारी प्रतिभूतियाँ बेचकर उधार लेने वालों की कर्जे की माँग पूरी करते हैं। इस तरह की नीति बैंकों द्वारा प्रतिभूतियों के रूप में रखी जमाओं को सक्रिय जमाओं में केवल बदल देती है। बैंक की निवेशसूचियों में पड़ी सरकारी प्रतिभूतियों को कर्जों के स्थान पर स्थानापन्न कर दिया जाता है। परंतु बैंकों की कुल जमाओं अथवा मुद्रा पूर्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता। पर, इससे कुल व्यय बढ़ जाता है, क्योंकि बैंक उधार लेने वालों को मुद्रा उधार देते हैं। इस प्रकार, केंद्रीय बैंक की प्रतिबंधात्मक मुद्रा की नीति अप्रभावी बन जाती है।

फिर, जब बैंक केंद्रीय बैंक को सरकारी प्रतिभूतियाँ बेचते हैं, तो बाजार में उनकी कीमतें गिर जाती हैं और उन पर ब्याज की दरें बढ़ जाती हैं। इससे बाजार में सामान्य ब्याज दर ढाँचा बढ़ जाएगा। परंतु प्रतिभूतियों की कीमतें गिरने से बैंकों को पूँजी हानियाँ होगी और वे उन्हें उठाना नहीं चाहेंगे। यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या बैंक यह आशा रखते हैं कि प्रतिभूति कीमतों में हुई गिरावट (या ब्याज दर में वृद्धि) अल्पकालिक है अथवा देर तक चलने वाली है। यदि बैंकों को यह आशा है कि प्रतिभूति कीमतों में हुई गिरावट थोड़े समय तक रहेगी तो वे उन्हें (प्रतिभूतियों को) पूँजी हानि पर बेचने की बजाय अपने पास रखना चाहेंगे। दूसरी ओर, यदि वे यह आशा रखते हैं कि प्रतिभूतियों की कीमतों में हुई गिरावट कुछ समय तक चलेगी तो वे ऊँची ब्याज दरों पर ग्राहकों को ऋण देने के लिए प्रतिभूतियाँ बेच देंगे और ऊँची ब्याज दरों पर ऋण देकर प्रतिभूतियों के विक्रय से हुई पूँजी-हानि को पूरा कर लेंगे। परंतु जब एक बार कर्जों के लिए माँग दब जाएगी, तो बैंक सरकारी प्रतिभूतियों को उससे कम कीमत पर वापिस खरीद सकेंगे जिस पर उन्होंने वे प्रतिभूतियाँ बेची थीं, और पुनः इस सौदे में लाभ में रहेंगे। इस प्रकार, कमर्शियल बैंकों की निवेश सूची समायोजन की नीति, महँगी मुद्रा की नीति के रहते भी, कुल मुद्रा पूर्ति का वेग बढ़ा देती है और परिणामस्वरूप महँगी मुद्रा की नीति अप्रभावी बनकर रह जाती है।

(ख) गैर-बैंक वित्तीय मध्यस्थों की भूमिका (Role of Non-Bank Financial Intermediaries)–*NBFIs* मौद्रिक नीति की मुद्रा पूर्ति नियंत्रित करने की क्षमता को दो तरह से रोकते हैं। *प्रथम*, वे कर्जे देने के लिए प्रतिभूतियाँ बेचते हैं और कमर्शियल बैंकों की भाँति उसी तरह मुद्रा का वेग बढ़ाते हैं जिसकी ऊपर व्याख्या की जा चुकी है। दूसरे,

नोट

महँगी मुद्रा की नीति के अंतर्गत प्रतिभूतियों पर ज्यों-ज्यों ब्याज दरें बढ़ती हैं, त्यों-त्यों बचतकर्ताओं से अधिक कोष प्राप्त करने के लिए वित्तीय मध्यस्थ अपने पास जमाओं पर ब्याज दरें बढ़ाते जाते हैं। इससे बचतकर्ताओं को प्रोत्साहन मिलता है कि वे अपनी निष्क्रिय मुद्रा इन मध्यस्थों को दे देते हैं जिससे उनकी उधार देने की क्षमता शक्ति और बढ़ जाती है। इस प्रकार ये मध्यस्थ मुद्रा का वेग बढ़ाने में सफल होते हैं जिसके परिणामस्वरूप महँगी प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति अक्षम बनकर रह जाती है।

(ग) उपलब्ध मुद्रा पूर्ति का बेहतर ढंग से प्रयोग करने के उपाय (Methods to Make Better Use of Available Money Supply)–निजी क्षेत्र ने उपलब्ध मुद्रा पूर्ति का बेहतर ढंग से प्रयोग करने के अनेक उपाय निकाल लिए हैं जो प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति को अप्रभावी बना देते हैं। ऐसे कुछ तरीके हैं जैसे विक्रय वित्त कंपनियों का निधियाँ संग्रह के बेहतर उपायों का विकास, कमर्शियल बैंकों की तुलना में *NBFIs* द्वारा जनता से अधिक ऊँची ब्याज-दरों पर कोष उधार लेना, आदि। कमर्शियल बैंकों के भिन्न स्रोतों से कोष प्राप्त करके, इस तरह की संस्थाएँ प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति के अंतर्गत भी, मुद्रा की उपलब्ध पूर्ति का वेग बढ़ाने में सफल हो जाती हैं।

2. विभेदक (Discriminatory)–महँगी मौद्रिक नीति के अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर विभेदक प्रभाव पड़ते हैं। यह कहा जाता है कि जो फर्में वित्त-व्यवस्था के आंतरिक स्रोतों पर निर्भर करती हैं, उन पर प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दूसरी ओर, केवल उन्हीं फर्मों पर प्रभाव पड़ता है जो निधियों के लिए बैंकिंग प्रणाली पर निर्भर करती हैं। विशेष रूप से महँगी मौद्रिक नीति के संबंध में यह समझा जाता है कि वह व्यापारियों के विरुद्ध कार्य करती है, क्योंकि वे साख लागतों में परिवर्तनों के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं जिसका कारण यह है कि वे साख जोखिम नहीं उठा सकते और आवासीय निर्माण तथा कुछ प्रकार के राज्य एवं स्थानीय सरकारी व्यय के विरुद्ध होते हैं। यह उनके व्यय को धीमा ही नहीं कर सकती बल्कि रोक भी सकती है।

3. साख बाजार पर खतरा (Threat to Credit Market)–यदि केंद्रीय बैंक, साख बाजार को सख्ती से नियंत्रित करता है और निवेशक ब्याज दरों में निरंतर वृद्धि की अपेक्षा रखते हैं तो यह साख बाजार के ऋण-योग कोषों को समाप्त कर सकता है। फलस्वरूप, प्रतिभूतियाँ बेची नहीं जा सकतीं और साख बाजार कार्यों को बंद कर सकता है।

4. NBFIs की शोधन-क्षमता को खतरा (Threat to Solvency of NBFIs)–प्रबल प्रतिबंधात्मक मौद्रिक नीति तेजी से बढ़ती ब्याज दरों के द्वारा बचत बैंकों और बचतों तथा ऋण संगठनों जैसे NBFIs की शोधन-क्षमता (solvency) पर खतरा पैदा कर सकती है। ऐसा इसलिए कि कमर्शियल बैंकों से भिन्न, वे अपने को तेजी से बढ़ती ब्याज दरों में संतुलित रखने की स्थिति में नहीं होते।

5. उधार लेने वालों और उधारदाताओं की प्रत्याशाओं का परिवर्तन (Changes of Expectations of Borroweres and Lenders)–बहुत मँहगी मौद्रिक नीति उधार लेने वालों और उधारदाताओं की प्रत्याशाओं को परिवर्तित कर सकती है। इसलिए वे साख बाजार स्थितियों में अपरिवर्तनीय परिवर्तन लाते हैं। ब्याज दरों में तीव्र वृद्धि प्रत्याशाओं को इतना परिवर्तित कर सकती है कि जब इस नीति को छोड़ भी दिया जाता है और एक विस्तारक मुद्रा नीति प्रारंभ की जाती है तब भी उधारदाता ब्याज दरों में पुनः वृद्धि होने के पूर्वानुमान के कारण दीर्घकालीन ऋण देने के लिए अनिच्छुक हो सकते हैं। दूसरी ओर, उधार लेने वाले भविष्य में ब्याज दरों में वृद्धि होने के पूर्वानुमान के कारण दीर्घकालीन कोषों को उधार ले सकते हैं यद्यपि उन्हें इसकी तात्कालिक जरूरत नहीं होती।

6. समय पश्चताएँ (Time Lags)–महँगी मौद्रिक नीति की प्रभाविता पर एक और महत्त्वपूर्ण सीमा यह है कि कार्यवाही की जरूरत और कार्यवाहियों का अभिज्ञान, निर्णय और प्रचालन में समय पश्चताएँ रहती हैं। चूँकि मौद्रिक अधिकारी इन समय पश्चताओं के कारण समय पर प्रतिबंधात्मक मौद्रिक उपायों का पालन नहीं कर पाते इसलिए मौद्रिक नीति बहुत धीरे काम करती है। अतः स्फीति को नियंत्रित करने में यह अधिक प्रभावकारी नहीं होती।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. मुद्रावादियों का मत है कि केंद्रीय बैंक मंदी के दौरान सस्ती नीति द्वारा कमर्शियल बैंकों के रिज़र्व बढ़ा सकता है।
8. पूर्ण रोजगार को मौद्रिक नीति के प्रमुख उद्देश्यों में नहीं रखा गया है।
9. स्फीति को रोकने में मौद्रिक नीति की प्रभाविता की एक महत्त्वपूर्ण सीमा है–जनता द्वारा रखी मुद्रा के वेग में वृद्धि।
10. जब बैंक केंद्रीय बैंक को सरकारी प्रतिभूतियाँ बेचते हैं तो बाजार में उनकी कीमतें उठ जाती हैं।

27.6 विकासशील अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति की भूमिका (Role of Monetary Policy in a Developing Economy)

एक विकासशील अर्थव्यवस्था में मौद्रिक नीति साख की लागत तथा प्राप्यता को प्रभावित करके, स्फीति पर नियंत्रण करके तथा भुगतान शेष संतुलन को कायम रखकर आर्थिक वृद्धि की दर को बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण काम करती है। अत: ऐसे देश में मौद्रिक नीति के मुख्य उद्देश्य स्फीति को नियंत्रित करने तथा कीमतों को स्थिर करने के लिए साख नियंत्रण करना विनिमय दर को स्थिर करना, भुगतान शेष में संतुलन प्राप्त करना तथा आर्थिक विकास बढ़ाना है।

1. स्फीतिकारी दबावों को नियंत्रित करना (To Control Inflationary Pressures)–विकास की प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाले स्फीतिकारी दबावों पर काबू पाने के लिए, मौद्रिक नीति को साख नियंत्रण के मात्रात्मक तथा गुणात्मक दोनों प्रकार के उपायों की आवश्यकता होती है। मौद्रिक नीति के उपकरणों में खुले बाजार प्रचालन (open market operations), अविकसित देशों में स्फीति को नियंत्रित करने में सफल नहीं हैं क्योंकि बिल मार्किट छोटा और अविकसित होता है। कमर्शियल बैंक लोचशील नकद-जमा (cash-deposit) अनुपात रखते हैं क्योंकि उन पर केंद्रीय बैंक का पूर्ण नियंत्रण नहीं होता। वे अपनी सापेक्षतया कम ब्याज दरों के कारण सरकारी प्रतिभूतियों में भी निवेश करने के अनिच्छुक होते हैं। इसके अतिरिक्त, सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश करने की बजाए वे अपने रिजर्वों को तरल रूप जैसे स्वर्ण, विदेशी मुद्रा और नकदी में रखना पसंद करते हैं। कमर्शियल बैंक भी केंद्रीय बैंक से उधार लेने या पुनर्बट्टा करते रहना नहीं चाहते।

बैंक दर नीति भी निम्न कारणों से ऐसे देशों में उतनी प्रभावकारी नहीं होती है–(*i*) बट्टे के बिलों की कमी; (*ii*) बिल मार्किट का संकुचित आकार; (*iii*) विशाल गैर-मौद्रीकृत क्षेत्र जहाँ वस्तु विनिमय होता है; (*iv*) देशी बैंकों का अस्तित्व जो केंद्रीय बैंक के साथ बिलों का बट्टा नहीं करते हैं; (*v*) विशाल नकद रिजर्व रखने की कमर्शियल बैंकों की प्रवृत्ति; और (*vi*) विशाल असंगठित मुद्रा बाजार का होना।

मौद्रिक नीति के उपकरण के रूप में परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात (Variable Reserve Ratio) का उपयोग LDCs में बैंक दर नीति और खुले बाजार प्रचालनों की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी होता है। चूँकि प्रतिभूतियों का बाजार बहुत छोटा है इसलिए खुले बाजार प्रचालन सफल नहीं हैं। परंतु केंद्रीय बैंक द्वारा परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात में वृद्धि या कमी प्रतिभूतियों की कीमतों पर बिना विपरीत प्रभाव डाले कमर्शियल बैंकों के पास उपलब्ध नकदी को बढ़ाते या घटा देते हैं। पुन:, कमर्शियल बैंक विशाल नकद रिजर्व रखते हैं जो केंद्रीय बैंक द्वारा घटाये नहीं जा सकते। परंतु नकद रिजर्व अनुपात को बढ़ाने से बैंकों की तरलता घटती है। LDCs में परिवर्तनशील रिजर्व अनुपात के उपयोग की कुछ सीमाएँ हैं–प्रथम चूँकि गैर-बैंकिंग वित्तीय मध्यस्थ केंद्रीय बैंक के पास जमाओं को नहीं रखते हैं इसलिए

नोट

वे इससे प्रभावित नहीं होते। द्वितीय वे बैंक जो अतिरिक्त तरलता नही रखते हैं, उनकी अपेक्षा जो इसे रखते हैं, अधिक प्रभावित होते हैं।

किंतु साख के आवंटन को प्रभावित करने और फलस्वरूप निवेश की पद्धति को प्रभावित करने में मात्रात्मक उपायों की अपेक्षा गुणात्मक साख नियंत्रण (qualitative control; measures) उपाय अधिक प्रभावकारी होते हैं। LDCs में कृषि, खादान, प्लांटेशन और उद्योग में उपलब्ध वैकल्पिक उत्पादकीय स्रोतों की अपेक्षा स्वर्ण, आभूषण, मालसूचियों, वास्तविक संपदा आदि में निवेश करने की प्रबल प्रवृत्ति पाई जाती है। ऐसे अनुत्पादकीय उद्देश्यों के लिए साख सुविधाओं को नियंत्रित तथा सीमित करने के लिए चयनात्मक साख नियंत्रण अधिक उपयुक्त होते हैं। वे खाद्यान्नों तथा कच्चे माल के विषय में सट्टा क्रियाओं को नियंत्रित करने में लाभदायक होते हैं। वे अर्थव्यवस्था में अनुभागीय स्फीतियों (sectional inflations) को रोकने में अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। वे आयातकर्ताओं के लिए विदेशी मुद्रा के बराबर अग्रिम राशि में जमा करना अनिवार्य बनाकर आयात के लिए माँग में कटौती करते हैं। इसका यह प्रभाव भी पड़ता है कि बैंकों के आरक्षण घट जाते हैं यहाँ तक कि इस प्रक्रिया में उनके जमा केंद्रीय बैंक को हस्तांतरित हो जाते हैं। चयनात्मक साख नियंत्रण उपाय निश्चित प्रकार के जमानत, उपभोक्ता साख नियमन और साख की राशनिंग की बजाए सीमा आवश्यकताओं के परिवर्तन के रूप में हो सकते हैं।

2. **कीमत स्थिरता प्राप्त करना (To achieve Price Stability)**–कीमत स्थिरता प्राप्त करने के लिए मौद्रिक नीति एक महत्त्वपूर्ण औजार है। यह मुद्रा माँग तथा पूर्ति में समुचित समायोजन (adjustment) लाती है। इन दोनों में असंतुलन, कीमत स्तर में प्रतिबिम्बित हो जाएगा। मुद्रा पूर्ति में कमी वृद्धि को रोक देगी, जबकि इसकी अधिकता स्फीति लाएगी। जब अर्थव्यवस्था विकास की ओर अग्रसर होती है तो कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि से तथा गैर–मौद्रिक क्षेत्र के मौद्रिक क्षेत्र में धीरे–धीरे परिवर्तित होने से मुद्रा की माँग बढ़ती है। इससे लेन–देन तथा सट्टा उद्देश्य के लिए मुद्रा की माँग भी बढ़ेगी। इसलिए मौद्रिक अधिकारी को स्फीति रोकने के लिए तथा कीमतों में स्थिरता लाने के लिए मुद्रा की पूर्ति को मुद्रा की माँग के अनुपात से अधिक बढ़ाना पड़ेगा।

3. **भुगतान-शेष घाटा कम करना (To Bridge BOP Deficit)**–ब्याज दर नीति के रूप में मौद्रिक नीति भुगतान शेष के घाटे को पूरा करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। विकास के नियोजित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को गंभीर भुगतान शेष की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। विद्युत, सिंचाई, परिवहन आदि जैसा बुनियादी ढांचा स्थापित करने, तथा लोहा और इस्पात, उर्वरक, रसायन आदि प्रत्यक्षत: उत्पादकीय क्रियाओं के लिए ऐसे देशों को पूँजी उपकरण, मशीनरी, कच्चामाल, पुर्जे और उपस्कर आयात करने पड़ते है। जिससे उनके निर्यात में वृद्धि होती है। परंतु उनके निर्यात गतिहीन होते हैं और स्फीति के कारण निर्यात की कीमतें भी ऊँची होती हैं। परिणामस्वरूप, आयात और निर्यात में अंतर उत्पन्न हो जाता है, जिससे भुगतान शेष असंतुलित हो जाता है। मौद्रिक नीति ऊँची ब्याज दर द्वारा भुगतान शेष के घाटे को कम करने में सहायक हो सकती है। ऊँची ब्याज दर निवेशों के अंतर-प्रवाह को प्रोत्साहन देकर भुगतान शेष के अंतर को कम करने में सहायक होती है।

4. **ब्याज दर नीति (Interest Rate Policy)**–एक विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए ऊँची ब्याज दर नीति अधिक बचत को प्रोत्साहित करती है, बैंकिंग आदतें विकसित करती है तथा अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण को तीव्रता प्रदान करती है, जो पूँजी निर्माण और आर्थिक वृद्धि के लिए आवश्यक है। ऊँची ब्याज दर नीति स्फीति को दूर करने वाली भी है क्योंकि यह सट्टे तथा करेन्सियों के लिए उधार लेने और निवेश करने को हतोत्साहित करती है। फिर, यह नीति दुर्लभ पूँजी संसाधनों के आवंटन को अधिक उत्पादकीय स्रोतों में बढ़ावा देती है। कुछ अर्थशास्त्री ऐसे देशों में नीची ब्याज दर नीति के समर्थक हैं क्योंकि ऊँची ब्याज दरें निवेश में बाधक होती हैं परंतु आनुभविक प्रमाण यह बताते हैं कि विकासशील देशों में व्यवसाय तथा उद्योग में निवेश ब्याज-बेलोच होते हैं क्योंकि निवेश की कुल लागत में ब्याज का बहुत कम अनुपात होता है। इन विपरीत मतों के बावजूद, मौद्रिक अधिकारी के लिए विभेदक (discriminatory) ब्याज दरों की नीति का अनुसरण करना उचित है। इस नीति के अनुसार, अनावश्यक

तथा अनुत्पादकीय प्रयोगों के लिए ऊँची ब्याज दरें और उत्पादकीय प्रयोगों के लिए नीची ब्याज दरें होनी चाहिए।

5. बैंकिंग और वित्तीय संस्थाएँ स्थापित करना (To Create Banking and Financial Institutions)–LDCs में मौद्रिक नीति का एक उद्देश्य पूँजी निर्माण के लिए बचतों को जुटाने, प्रवाहित करने और प्रोत्साहित करने के लिए बैंकिंग और वित्तीय संस्थाओं की स्थापना तथा विकास करना होता है। मौद्रिक अधिकारी को ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शाखा बैंकिंग की स्थापना को प्रोत्साहन देना चाहिए। ऐसी नीति गैर–मौद्रीकृति क्षेत्र के मुद्रीकरण में सहायक होगी और पूँजी निर्माण के लिए बचत और निवेश को प्रोत्साहित करेगी। यह मुद्रा और पूँजी बाजार को भी संगठित और विकसित करेगी। विकासोन्मुखी मौद्रिक नीति की सफलता के लिए ये आवश्यक हैं, जिसमें ऋण प्रबंध भी शामिल है।

ऋण प्रबंधन (Debt-Management)–एक विकासशील देश में सार्वजनिक ऋण का प्रबंधन करना मौद्रिक नीति के महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक है। इसका लक्ष्य है सरकारी बाँडों का उचित समय पर जारी करना, उनकी कीमतों को स्थिर करना और सार्वजनिक ऋण की सेवा लागत को न्यूनतम बनाना। ऋण–प्रबंधन का प्रधान लक्ष्य ऐसी स्थितियों को उत्पन्न करना है जिनमें सार्वजनिक ऋण वर्ष–प्रतिवर्ष बढ़ता जाए। ऐसे देशों में सार्वजनिक ऋण मुद्रा पूर्ति को नियंत्रित करने और विकास प्रोग्रामों को वित्त प्रदान करने के लिए आवश्यक होता है। किंतु सार्वजनिक ऋण अवश्य ही सस्ती दरों पर होना चाहिए। निम्न ब्याज दर सरकारी बांडों की कीमतें बढ़ाती और उन्हें लोगों के लिए अधिक आकर्षक बनाती है। वे ऋण का भार भी कम महसूस करते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)–इस प्रकार समुचित मौद्रिक नीति, जैसी कि ऊपर बताई गई है, स्फीति को नियंत्रित करने, भुगतान शेष अंतराल कम करने, पूँजी–निर्माण को प्रोत्साहित करने तथा आर्थिक वृद्धि को बढ़ाने में सहायक होती है।

LDCs में मौद्रिक नीति की सीमाएँ (Limitations of Monetary Policy in LDCs)

विकासशील देशों को अनुभव यह बतलाता है कि मौद्रिक नीति की ऐसे देशों में सीमित भूमिका होती है। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

1. **विशाल गैर–मुद्रीकृत क्षेत्र (Large Non-monetized Sector)**–ऐसे देशों में एक विशाल गैर–मुद्रीकृत क्षेत्र होता है जो मौद्रिक नीति की सफलता में बाधक होता है। अधिकतर लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं जहाँ वस्तु–विनिमय प्रणाली का प्रचलन होता है। परिणामस्वरूप, मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था के विस्तृत भाग को प्रभावित करने में असफल होती है।

2. **अविकसित मुद्रा और पूँजी बाजार (Undeveloped Money and Capital Markets)**–मुद्रा और पूँजी बाजार अविकसित होते हैं। इन बाजारों में बिलों, स्टॉकों एवं शेयरों का अभाव होता है जो मौद्रिक नीति की सफलता को सीमित करते हैं।

3. **बहुसंख्यक NBFIs (Large Number of NBFIs)**–ऐसे देशों में देशीय बैंकरों जैसे गैर-बैंक वित्तीय मध्यस्थ बड़े पैमाने पर कार्य करते हैं, परंतु ये मौद्रिक अधिकारी के नियंत्रण के अंतर्गत नहीं आते हैं। इस कारण भी ऐसे देशों में मौद्रिक नीति की प्रभाविता सीमित हो जाती है।

4. **अधिक तरलता (High Liquidity)**–कमर्शियल बैंकों के पास अधिक तरलता पाई जाती है जिससे वे केंद्रीय बैंक की साख नीति द्वारा प्रभावित नहीं होते। यह भी मौद्रिक नीति को कम, प्रभावशील बनाता है।

5. **विदेशी बैंक (Foreign Banks)**–लगभग सभी विकासशील देशों में विदेशी कमर्शियल बैंक विद्यमान होते हैं। वे भी विदेशी परिसंपत्तियाँ बेचकर तथा अपने मुख्य कार्यालयों से मुद्रा निकालकर मौद्रिक नीति को कम प्रभावशील बना देते हैं, जबकि देश का केंद्रीय बैंक महँगी मुद्रा नीति का अनुसरण कर रहा होता है।

6. **कम बैंक मुद्रा (Less Bank Money)**–ऐसे देशों में मौद्रिक नीति इसलिए भी सफल नहीं होती क्योंकि

नोट

बैंक-मुद्रा देश में कुल मुद्रा पूर्ति का एक छोटा-सा अनुपात होती है। जिसके परिणामस्वरूप, केंद्रीय बैंक प्रभावशाली रूप से साख नियंत्रण करने में असमर्थ होता है।

7. **बैंकों में मुद्रा जमा नहीं (Money not Deposited with Banks)**—समृद्ध लोग बैंकों में मुद्रा जमा नहीं करवाते परंतु उसे आभूषण, स्वर्ण, वास्तविक संपदा, सट्टे प्रदर्शनकारी उपभोग आदि पर प्रयोग करते हैं। ऐसी क्रियाएँ स्फीतिकारी दबावों को प्रोत्साहित करती हैं, क्योंकि ये मौद्रिक अधिकारी के नियंत्रण में नहीं आती हैं।

टास्क विस्तारक मौद्रिक नीति के संबंध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

27.7 राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

1. अर्थ (Meaning)

राजकोषीय नीति से अभिप्राय स्थिरीकरण या वृद्धि के लिए सरकार द्वारा कराधान और सार्वजनिक व्यय का प्रयोग है। "राजकोषीय नीति से हम सरकार के उन कार्यों का उल्लेख करते हैं जो सरकार की प्राप्तियों तथा व्ययों को प्रभावित करते हैं जिन्हें हम सामान्य रूप से सरकार की शुद्ध प्राप्तियाँ, उसके आधिक्य अथवा घाटे द्वारा मापित मान लेते हैं।" (By fiscal policy we refer to government actions affecting its receipts and expenditures which we ordinarily take as measured by the government's net receipts, its surplus or deficit) निजी उपभोग तथा निवेश में अवांछनीय (undesirable) परिवर्तनों को सरकार सार्वजनिक व्ययों तथा करों के प्रति-चक्रीय (anti-cyclical) परिवर्तनों द्वारा संतुलित कर सकती है। *आर्थर स्मिथीज* ने राजकोषीय नीति को इस प्रकार परिभाषित किया है, "यह ऐसी नीति है जिसके अंतर्गत सरकार अपने व्यय तथा राजस्व कार्यक्रमों को राष्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने और अनपेक्षित प्रभाव रोकने के लिए प्रयोग करती है।" (A policy under which the government uses its expenditure and revenue programmes to produce desirable effects and avoid undesirable effects on the national income, production and employment.) यद्यपि राजकोषीय नीति का अंतिम लक्ष्य अर्थव्यवस्था का दीर्घकालीन स्थिरीकरण है, फिर भी यह लक्ष्य केवल अल्पकालीन आर्थिक उतार-चढ़ावों को संभालने से ही पूरा हो सकता है। इस प्रसंग में *ओट्टो एक्स्टीन* ने राजकोषीय नीति को यों परिभाषित किया है कि यह "करों तथा व्ययों में परिवर्तन है जिनका लक्ष्य पूर्ण रोजगार तथा कीमत-स्तर स्थिरता के अल्पकालीन उद्देश्यों को पूरा करना है।"

(This refers to "changes in taxes and expenditures which aim at shortrun goals of full employment and price-level stability.")

2. राजकोषीय नीति के उद्देश्य (Objectives of Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति के निम्न उद्देश्य हैं—

1. पूर्ण रोजगार प्राप्त और कायम करना।
2. कीमत स्तर को स्थिर करना।
3. अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को स्थिर करना।
4. भुगतान शेष में संतुलन कायम करना।
5. अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास को बढ़ाना।

3. राजकोषीय नीति के औजार (Instruments of Fiscal Policy)

सरकारी व्यय तथा कराधान में परिवर्तन के माध्यम से राजकोषीय नीति प्रबलरूप से राष्ट्रीय आय, रोजगार, उत्पादन तथा कीमतों को प्रभावित करती है। मंदी के दौरान सार्वजनिक व्यय में वृद्धि वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए कुल माँग को बढ़ाती है और गुणक प्रक्रिया के मार्ग से आय में बड़ी वृद्धि करती है, जबकि करों में कमी का प्रभाव यह होता है कि प्रयोज्य आय बढ़ती है जिसके परिणामस्वरूप लोगों के उपभोग तथा निवेश व्यय बढ़ जाते हैं। दूसरी ओर, स्फीति के दौरान सार्वजनिक व्यय में होने वाली कमी कुल माँग, राष्ट्रीय आय, रोजगार, उत्पादन तथा कीमतों को घटा देती है, जबकि करों में वृद्धि प्रयोज्य (disposable) आय को घटाती है और परिणामस्वरूप उपभोग तथा निवेश व्ययों को कम कर देती है। इस प्रकार व्यय तथा कराधान कार्यक्रमों के युक्तियुक्त संयोग द्वारा सरकार अर्थव्यवस्था में अवस्फीतिकारी तथा स्फीतिकारी दबावों को नियंत्रित कर सकती है। अब हम रोजकोषीय नीति के विविध साधनों की चर्चा करेंगे।

1. बजट नीति (Budgetary Policy)–प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति (Contra-cyclical Fiscal Policy)

बजट राजकोषीय नीति का एक प्रमुख साधन है। बजट नीति सरकार की प्राप्तियों तथा व्ययों के परिमाण तथा संबंध पर नियंत्रण करती है। हम आगे उन सामान्य बजट नीतियों की चर्चा करते हैं, जो अर्थव्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए अपनाई जा सकती हैं–

(*i*) बजट घाटा (Budget Deficit)–मंदी में राजकोषीय नीति (Fiscal Policy under Depression)–घाटे का बजट मंदी पर काबू पाने का महत्त्वपूर्ण उपाय है। जब सरकारी व्यय उसकी प्राप्तियों से बढ़ जाता है तो राष्ट्रीय आय की धारा में उनसे अधिक मात्राएँ डाली जाती हैं जितनी कि उससे निकाली जाती हैं। घाटा सरकार के शुद्ध (net) व्यय को व्यक्त करता है, जो राष्ट्रीय आय को शुद्ध व्यय का गुणक गुणा (multiplier times) बढ़ाती है। यदि *MPC2/3* है तो गुणक 3 होगा और यदि सरकारी व्यय में 100 करोड़ रु. की शुद्ध वृद्धि होती है, तो वह राष्ट्रीय आय को बढ़ाकर 300 करोड़ रु. (100 × 3) पर पहुँचा देगी। इस प्रकार बजट-घाटा कुल माँग पर विस्तारक प्रभाव (expansionary effect) डालता है, भले ही राजकोषीय प्रक्रिया से सीमांत प्रवृत्तियाँ अपरिवर्तित अथवा प्रयोज्य प्राप्तियों का पुनर्वितरण हो। बजट का विस्तारक प्रभाव चित्र 27.1 में आरेखीय रूप से दिखाया गया है। *C* उपभोग फलन है। $C + I + G$, बजट प्रस्तुत करने से पहले उपभोग, निवेश तथा सरकारी व्यय (कुल व्यय फलन) को व्यक्त करता है। मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था में सरकारी व्यय *G* बढ़ाया जाता है। परिणामस्वरूप कुल व्यय फलन ऊपर की ओर सरक कर $C + I + G'$ पर पहुँच जाता है। आय *OY* से बढ़कर OY_1 हो जाती है, जबकि संतुलन स्थिति *E* से E_1 पर चली जाती है। सरकारी व्यय में वृद्धि $E_1B (= \Delta G)$ की अपेक्षा आय में वृद्धि $YY_1 + EA = E_1A$ अधिक है $BA (E_1A - E_1B)$ उपभोग में वृद्धि को व्यक्त करता है। इस प्रकार बजट घाटा हमेशा विस्तारक होता है क्योंकि वास्तविक सरकारी व्यय को मात्रा की अपेक्षा राष्ट्रीय आय में अधिक वृद्धि होती है। बजट घाटे के इस तरीके में करों को ज्यों-का-त्यों रखा जाता है।

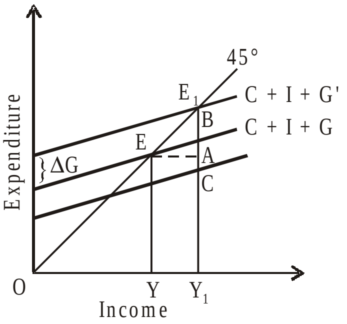

चित्र 27.2

बजट घाटा करों में कमी करके और बिना सरकारी व्यय में कमी किए भी प्राप्त किया जा सकता है। करों में कमी लोगों के हाथों में अपेक्षाकृत अधिक प्रयोज्य आय छोड़ देती है और इस प्रकार बढ़े हुए उपभोग व्यय को प्रेरित करती है। इसके परिणामस्वरूप आगे कुल माँग, उत्पादन आय तथा रोजगार में वृद्धि करती है। इसे चित्र 27.2 में स्पष्ट किया गया है, जहाँ *C* मूल उपभोग फलन है। मान लीजिए कि कर में *ET* मात्रा घटा दी जाती है। इससे उपभोग फलन ऊपर की ओर सरक *C'* पर पहुँच जाएगा और *OY* से बढ़कर आय OY_1 हो जाएगी।

पर, करों में कमी बढ़े हुए उपभोग व्यय के मार्ग से बहुत विस्तारक नहीं होती, क्योंकि हो सकता है कि कर-राहत

नोट

को उपभोग पर न व्यय किए जाए और उसे बचा लिया जाए। यदि व्यापार प्रत्याशाएँ नीची हों, तो हो सकता है कि व्यापारी भी अधिक निवेश न करें। इस तरह के खतरों से बचने के लिए सरकार को चाहिए कि वह करों में कमी के साथ बढ़े हुए सरकारी व्यय की नीति का अनुसरण करे। इसका गुणक प्रभाव उस अवस्था में कहीं अधिक होगा, जब हम यह भी मान लें कि कर-राहत के कारण कुछ उपभोग तथा निवेश व्यय भी बढ़ते हैं।

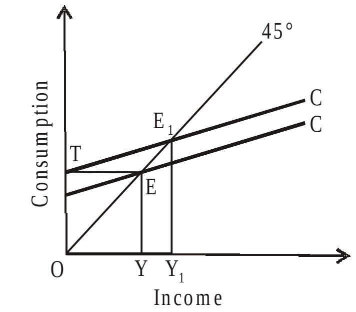

चित्र 27.3

(*ii*) बचत का बजट (Surplus budget)–तेजी में राजकोषीय नीति (Fiscal policy under boom)–बजट में बचत तब होती है, जब सरकारी व्यय राजस्व से बढ़ जाते हैं। अर्थव्यवस्था के भीतर स्फीतिकारी दबावों पर नियंत्रण करने के लिए बचत के बजट की नीति का अनुसरण किया जाता है। यह कराधान में वृद्धि अथवा सरकारी व्यय में कमी करने अथवा दोनों के माध्यम से हो सकता है। इससे आय तथा कुल माँग में कमी होगी, जो (कमी) कि बढ़े हुए करों के परिणामस्वरूप सरकारी अथवा/तथा निजी उपभोग व्यय में कमी का गुणक गुण (multiplier times) के बराबरी होगी। इसे चित्र 27.1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है जहाँ अर्थव्यवस्था E_1 पर प्रारंभिक संतुलन स्थिति में है। मान लीजिए कि सरकारी व्यय में ΔG मात्रा में कमी हो जाती है जिससे कुल व्यय फलन नीचे की ओर सरक कर $C + I + G$ पर आ जाता है। जब E नई संतुलन स्थिति है जो बताती है कि सरकारी व्यय में $E_1 B$ की कमी हो जाने के परिणामस्वरूप आय OY_1 से गिरकर OY हो गई है। आय में होने वाली कमी $Y_1Y = AE > E_1B$ जो व्यय में कमी हुई है, क्योंकि उपभोग में भी BA की कमी हो गई है।

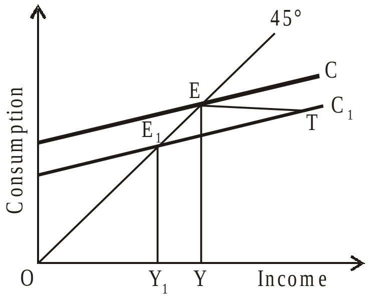

चित्र 27.4

जब करों में वृद्धि की जाती है तो सरकारी व्यय के रहते हुए भी बचत का बजट हो सकता है। बढ़े हुए कर लोगों की प्रायोज्य आय को घटाते हैं और उपभोग व्यय में कमी को प्रोत्साहन देते हैं। परिणाम यह होता है कि कुल माँग, उत्पादन, आय तथा रोजगार में कमी होती है। इसे चित्र 27.3 में स्पष्ट किया गया है। कर लगाने से पहले C उपभोग फलन है। मान लीजिए कि ET के बराबर कर लगाया गया है तो उपभोग फलन नीचे की ओर सरक कर C_1 पर आ जाता है। नई संतुलन स्थिति E_1 है। परिणामतः आय OY से गिरकर OY_1 हो जाती है।

(*iii* संतुलित बजट गुणक (Balanced Budget Multiplier)–एक अन्य विस्तारवादी राजकोषीय नीति है–संतुलित बजट। इस नीति में करों में वृद्धि तथा सरकारी व्यय में वृद्धि की मात्रा समान होती है। इसका परिणाम यह होता है कि शुद्ध राष्ट्रीय आय बढ़ती है। इसका कारण यह है कि कर लगाने के कारण उपभोग में कमी सरकारी व्यय के बराबर नहीं होती है।

2. क्षतिपूरक राजकोषीय नीति (Compensatory Fiscal Policy)

क्षतिपूरक राजकोषीय नीति का लक्ष्य, सार्वजनिक व्ययों तथा करों का जोड़-तोड़ करके, स्फीति तथा अवस्फीति के प्रति चिरकालिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध अर्थव्यवस्था की क्षतिपूर्ति करना है। इसलिए इसके लिए आवश्यक हो जाता है, कि किसी निश्चित समय पर सदा के लिए उपायों की बजाय दीर्घकाल पर्यंत राजकोषीय उपाय अपनाएँ जाएँ। जब अर्थव्यवस्था में अवस्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ हों तो सरकार को चाहिए कि घाटे के बजट तथा करो में कमी के माध्यम से अपने व्यय घटाए। निजी निवेश में कमी की क्षतिपूर्ति के लिए तथा अर्थव्यवस्था के भीतर प्रभावी माँग, रोजगार, उत्पादन और आय बढ़ाने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। दूसरी ओर, जब स्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ हो तो

सरकार को चाहिए कि बचत का बजट बनाकर और करों को बढ़ाकर अपने व्यय घटाए ताकि पूर्ण रोजगार स्तर पर अर्थव्यवस्था स्थिर बनाई जा सके। क्षतिपूरक राजकोषीय नीति के दो मार्ग हैं: (*i*) आभ्यंतरिक स्थिरीकारक (Built-in-Stabilisers); और (*ii*) स्वनिर्णयात्मक कार्य (discretionary action)।

(1) आभ्यंतरिक स्थिरीकारक (Built-in Stabilisers)–आभ्यंतरिक या स्थिरीकारक का अर्थ होता है सरकार की ओर से किसी योजना के बिना अर्थव्यवस्था के भीतर चक्रीय उतार-चढ़ावों की प्रतिक्रिया में व्ययों तथा करों का अपने आप समायोजन होना। इस व्यवस्था के अंतर्गत बजट में अपने-आप परिवर्तन होते हैं, इसलिए इसे स्वचालित स्थिरीकरण की तकनीक भी कहा जाता है। विविध स्वचालित (automatic) स्थिरीकारक ये हैं–निगमित लाभ कर, आय कर, उत्पादन कर, वृद्धावस्था (survivors) तथा बेरोजगारी बीमा और बेरोजगारी राहत भुगतान। स्वचालित स्थिरीकरण के साधनों के रूप में कर तथा व्यय राष्ट्रीय आय से संबंध हैं। कर-दरों का अपरिवर्तित ढांचा दिया होने पर, कर प्राप्तियाँ, राष्ट्रीय आय में गतियों के साथ, सीधे तौर से परिवर्तित करती हैं, जबकि सरकारी व्यय राष्ट्रीय आय में परिवर्तनों के साथ उलट तौर से बदलते हैं। व्यापार-चक्र की अधोगामी अवस्था (downward phase) में जब राष्ट्रीय आय गिरती है तो कर, जो राष्ट्रीय आय की प्रतिशतता पर आधारित हैं, अपने आप घट जाते हैं और परिणामस्वरूप कर-आय कम हो जाती है। इसके साथ, बेरोजगारी राहत तथा सामाजिक सुरक्षा हितों पर सरकारी व्यय अपने आप बढ़ जाते हैं। बजट में अपने आप घाटा होगा, जो अवस्फीतिकारी प्रवृत्तियों की रोकथाम करेगा। दूसरी ओर, व्यापार-चक्र की ऊर्ध्वगामी अवस्था (upward phase) में जब राष्ट्रीय आय तेजी से बढ़ती है, तो कर-दरों में वृद्धि होने पर कर-प्राप्ति अपने आप बढ़ जाएगी। साथ-ही-साथ, बेरोजगारी राहत तथा सामाजिक सुरक्षा हितों पर सरकारी व्यय अपने आप घट जाएँगे। ये दोनों शक्तियाँ अपने आप बचत का बजट निर्मित करेंगी और इस प्रकार स्फीतिकारी प्रवृत्तियाँ अपने आप नियंत्रित हो जाएँगी।

लाभ (Merits)

राजकोषीय उपाय के रूप में आभ्यंतरिक स्थिरीकारकों के कई लाभ हैं। प्रथम, जब निजी क्रय-शक्ति गिरती है तो आभ्यंतरिक स्थिरक उसके लिए गद्दे का काम करते हैं और अवस्फीतिकारी अवधि के दौरान लोगों की कठिनाइयों को कम करते हैं। दूसरे, वे राष्ट्र आय तथा उपभोग व्यय को नीचे स्तर पर गिरने से रोकते हैं। तीसरे, इस उपाय में बजटीय परिवर्तन स्वचालित होते रहते हैं और प्रशासनिक निर्णय लेने में देर नहीं होती। चौथे, राजकोषीय उपायों के गलत पूर्वानुमान तथा समय की गलतियों को स्वचालित स्थिरक न्यूनतम बना देते हैं। अंतिम, वे अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन राजकोषीय नीतियों का एकीकरण करते हैं।

सीमाएँ (Limitations)

पर स्वचालित क्षतिपूरक उपाय के रूप में आभ्यंतरिक स्थिरीकारक की प्रभावशीलता कर-प्राप्तियों की लोच, करों के स्तर तथा सार्जजनिक व्ययों के लचीलेपन पर निर्भर करती है। कर-प्राप्तियों की लोच जितनी अधिक होगी, स्फीतिकारी तथा अवस्फीतिकारी प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने में स्वचालित स्थिरक उतने ही अधिक प्रभावशाली होंगे। परंतु कर-प्राप्तियों की लोच इतनी अधिक नहीं होती कि अमरीका जैसे उन्नत देशों में भी यह स्वचालित स्थिरक का काम कर सके दूसरे, जब करों का स्तर नीचा हो तो अधोगति (downswing) के दौरान स्वचालित स्थिरक के रूप में कर-प्राप्तियों की ऊँची लोच भी बहुत महत्व नहीं रखती। तीसरे, आभ्यंतरिक स्थिरीकारक कर देने के बाद, व्यापार-आय स्थिरकों के और व्यापार-प्रत्याशाओं पर उपभोग व्यय के द्वितीयक प्रभावों पर नहीं विचार करते हैं। चौथे, यह उपाय स्थानीय निकायों, राज्य सरकारों तथा अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र के स्थिरीकारी प्रभाव के संबंध में मौन रहती। पाँचवें, वे व्यापार-चक्रों को समाप्त नहीं कर सकते हैं। वे केवल उनकी उग्रता को कम कर सकते हैं। छठे, उनके सुस्ती से पुनरुत्थान (recovery) के दौरान प्रभाव अनुकूल नहीं होते हैं। इसलिए अर्थशास्त्रियों ने सुझाव दिया है कि राजकोषीय नीति की स्वनिर्णयात्मक राजकोषीय नीति से आभ्यंतरिक स्थिरकों को अनुपूर्ति की जाए।

नोट

3. स्वनिर्णयात्मक राजकोषीय नीति (Discretionary Fiscal Policy)

स्वनिर्णयात्मक राजकोषीय नीति के लिए बजट में ऐसे कार्यों द्वारा ऐसे सोच-समझकर परिवर्तन लाने की आवश्यकता होती है जैसे कर-दरों अथवा सरकारी-व्यय अथवा दोनों में परिवर्तन करना। यह सामान्य तौर से तीन रूप लेता है। (*i*) करो में परिवर्तन, जबकि व्यय स्थिर रहता है; (*ii*) व्यय में परिवर्तन, जबकि कर स्थिर रहते हैं; (*iii*) व्यय तथा कर दोनों में एक साथ परिवर्तन।

प्रथम, जब करों में कटौती की जाती है जबकि सरकारी व्यय में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता, तो इस व्यापारिक और घरेलू क्षेत्र की प्रयोज्य आय में वृद्धि होती है। इससे निजी व्यय बढ़ता है। परंतु आय में वृद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि किसके करों में और कहाँ तक कटौती होती है और क्या करदाता कटौती को स्थायी या अस्थायी समझते हैं। यदि करों में कटौती से लाभ प्राप्त करने वाले उच्च मध्यम आय वर्ग के हैं तो समस्त माँग में अधिक वृद्धि होगी। यदि इसका संबंध निम्न आय वर्ग से है तो उनकी समस्त माँग में अधिक वृद्धि नहीं होगी। यदि व्यापारियों के पास निवेश करने की कोई प्रेरणा नहीं है तो करों में कटौती उन्हें निवेश करने के लिए प्रेरित नहीं करेगी। अंत में, यदि करदाता करों में कटौती को अस्थायी मानते हैं तो यह नीति कम प्रभावशाली होगी। इसलिए यह नीति करों में वृद्धि करके स्फीति को रोकने में अधिक प्रभावशाली है क्योंकि करों की उच्च दरों से व्यक्तियों और व्यवसायियों की प्रयोज्य आय में कमी होगी, जिससे समस्त माँग में कमी होगी। दूसरा, अवस्फीतिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए दूसरा तरीका अधिक उपयोगी है। कर दरों के अपरिवर्तित रहते हुए यदि सरकार वस्तुओं और सेवाओं पर अपना व्यय बढ़ा देती है तो समस्त माँग सरकारी व्यय में वृद्धि की पूर्ण राशि के बराबर बढ़ती है। दूसरी ओर, यदि सरकारी व्यय को स्फीति के दौरान कम कर दिया जाए तो यह अधिक प्रभावशाली नहीं होता क्योंकि अर्थव्यवस्था की व्यवसायिक प्रत्याशाएँ उच्च-व्यापार की होती हैं जिनकी प्रभावशाली माँग को कम करने की संभावना नहीं होती है। तीसरा तरीका स्फीतिकारी और अवस्फीतिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अन्य दोनों तरीकों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव और श्रेष्ठ है। स्फीति को रोकने के लिए कर बढ़ा दिया जाए और सरकारी व्यय घटा दिया जाए। दूसरी ओर मंदी का मुकाबला करने के लिए कर घटाए और सरकारी व्यय बढ़ाए जा सकते हैं।

सीमाएँ (Limitations)

स्वनिर्णयात्मक राजकोषीय नीति उचित समय तथा सही पूर्वानुमान पर निर्भर करती है। प्रथम, चक्र की उस अवस्था को जानने के लिए सही पूर्वानुमान आवश्यक है जिसमें से अर्थव्यवस्था गुजर रही है। तभी यह संभव है कि समुचित राजकोषीय कार्रवाई की जा सके। गलत पूर्वानुमान चक्रीय उतार-चढ़ावों को मंद करने की बजाए बढ़ा सकता है। वस्तुतः सही पूर्वानुमान करने के लिए अर्थशास्त्र एक पूर्ण विज्ञान नहीं है। परिणामस्वरूप राजकोषीय कार्रवाई हमेशा उसके बाद होती है, जब व्यापार चक्र में मोड़ बिंदु आ चुकते हैं। दूसरे, सार्वजनिक राजकोषीय नीति की दो समय पश्चताएँ (time lags) हैं। प्रथम, "निर्णय पश्चता" होती है जो समस्या के अध्ययन और निर्णय लेने में जो समय लगता है। उससे संबंद्ध है। इस प्रक्रिया में पाई जाने वाली पश्चता बहुत लंबी हो सकती है। दूसरे, जब एक बार निर्णय ले लिया जाता है तो "कार्यान्वयन पश्चता" होती है। इसमें वह व्यय पाया जाता है जो प्रोग्राम के कार्यान्वयन के लिए आबंटित किया जाता है। यू.एस.ए जैसे देश में यह दो से भी अधिक वर्ष ले सकती है और यू.के. जैसे देश में एक वर्ष से कम। तीसरे, कुछ सार्वजनिक परियोजनाएँ इतनी जटिल होती हैं कि उन पर सार्वजनिक व्यय बढ़ाने या कम करने के उद्देश्य से उनको धीमा या तेज करना संभव नहीं होता है।

27.8 सारांश (Summary)

- बावजूद कर दरों में परिवर्तनों की अपेक्षा सरकारी व्यय का ऊँचा गुणक प्रभाव होने पर व्यय की अपेक्षा कर परिवर्तन अधिक शीघ्रता से कार्यान्वित किया जा सकता है। इसलिए चक्रीय उतार–चढ़ावों को नियंत्रित करने के लिए श्रेष्ठता राजकोषीय उपाय के रूप में कराधान पर अधिक बल दिया जाने लगा है। इस प्रकार, जब

नोट

व्यापार-चक्र का मोड़ बिंदु पहले ही चालू हो तो स्वनिर्णयात्मक राजकोषीय नीति आभ्यंतरिक स्थिरकों को शक्ति प्रदान करती है, जैसा कि अमरीका जैसे उन्नत देशों का अनुभव है।

27.9 शब्दकोश (Keywords)

- राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) : वित्तीय नीति
- उद्देश्य (Goals) : लक्ष्य

27.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आप राजकोषीय नीति से क्या समझते हैं? स्वनिर्णयात्मक (discretionary) राजकोषीय नीति के तीन मुख्य प्रकारों में भेद कीजिए।
2. क्षतिपूरक राजकोषीय नीति की विवेचना करिए।
3. स्वचालित स्थिरीकरण की आलोचनात्मक व्याख्या करिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. उद्देश्यों	2. प्रतिभूतियाँ	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. गलत
9. सही	10. गलत।		

27.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ** : एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स** : एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी** : रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
4. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी** : एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–28: मण्डल मॉडल
(Mondel Model)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 आंतरिक और बाह्य संतुलन के लिए राजकोषीय-मौद्रिक नीति : मण्डल का मॉडल (Fiscal-Monetary Policy for Internal and External Balance: The Mundellian Model)

28.2 सारांश (Summary)

28.3 शब्दकोश (Keywords)

28.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

28.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- मण्डल के उद्देश्यों को जानने हेतु।
- मण्डल के मॉडल की आलोचनाएँ जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

बाह्य संतुलन के उद्देश्य में मौद्रिक नीति का और आंतरिक संतुलन के उद्देश्य में राजकोषीय नीति का आवंटन करना चाहिए। किंतु आवंटन नियम केवल तब कार्य कर सकता है यदि मौद्रिक और राजकोषीय नीति बिना दीर्घ पश्चता के निरंतर और अच्छी तरह से समायोजित की जा सके, इसके पहले कि उसका प्रभाव दृष्टिगोचर हो! आंतरिक और बाह्य स्थिरता के लिए मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के सफल प्रयोग का यह 'मण्डल नियम' है, जिसके अनुसार, एक औजार का उस लक्ष्य के साथ ही मेल बैठाना चाहिए जिस पर उसका अधिकतम सापेक्ष प्रभाव पड़ता है। इसे वह प्रभावी बाजार वर्गीकरण का नियम (Principle of Effective Market Classification) कहता है।

28.1 आंतरिक और बाह्य संतुलन के लिए राजकोषीय-मौद्रिक नीति : मण्डल का मॉडल (Fiscal-Monetary Policy for Internal and External Balance : The Mundellian Model)

मण्डल ने दो औजारों और दो उद्देश्यों के बीच संबंध की स्थिति की चर्चा की है। दो उपकरण हैं, ब्याज की दर द्वारा व्यक्त मौद्रिक नीति और सरकारी व्यय द्वारा व्यक्त राजकोषीय नीति। दो उद्देश्य हैं, पूर्ण रोजगार (आंतरिक संतुलन) और भुगतान-शेष संतुलन(बाह्य संतुलन)। आवंटन नियम मौद्रिक नीति को बाह्य संतुलन के उद्देश्य के लिए

और आंतरिक संतुलन के लिए राजकोषीय नीति का करना है। इन उपकरणों के उद्देश्यों में आवंटन को चित्र 28.1 में दिखाया गया है।

> *नोट्स* मंडल ने दो औजारों और दो उद्देश्यों के बीच संबंध की स्थिति की चर्चा की है।

चित्र में, क्षैतिज अक्ष ब्याज की दर (मौद्रिक नीति) और अनुलंब अक्ष बचत बजट (राजकोषीय नीति) को मापता है। *FF* आंतरिक संतुलन रेखा है और *XX* बाह्य-संतुलन रेखा है। *FF* रेखा पूर्ण रोजगार को व्यक्त करती है। इसकी ढलान ऋणात्मक है, क्योंकि पूर्ण रोजगार बनाए रखने के लिए बजत बजट में कटौती[2] को ब्याज दर में वृद्धि[3] द्वारा अवश्य संतुलित करना होगा। इस *FF* रेखा के नीचे (क्षेत्र *III* तथा *IV* में) स्फीति है और इसके ऊपर (क्षेत्र I और II) में सुस्ती है। दूसरी ओर, *XX* रेखा भुगतान-शेष में संतुलन के सभी बिंदु देती है। इसका ढलान भी ऋणात्मक है क्योंकि बचत बजट में कटौती करने से आयात बढ़ जाते हैं जिन्हें रोकने के लिए ब्याज दर बढ़ाकर पूँजी लेखा में सुधार करना आवश्यक है। इस रेखा के नीचे (क्षेत्र *I* तथा *IV* में) भुगतान शेष में घाटा है और इस रेखा के ऊपर (क्षेत्र *II* तथा *III* में) आधिक्य (surplus) है। *FF* रेखा की अपेक्षा *XX* रेखा की अधिक सीधी ढलान है क्योंकि जब विस्तारशील राजकोषीय नीति (बजट घाटे में वृद्धि या बचत बजट में कटौती) को संतुलित बनाने के लिए ब्याज की दर बढ़ती है, तो वह बाह्य संतुलन के लिए अल्पावधि पूँजी अंतर्प्रवाह को प्रेरित करती है। ब्याज दर परिवर्तनों के प्रति पूँजी गतियाँ जितनी अधिक सापेक्ष होंगी, *FF* रेखा की अपेक्षा *XX* रेखा उतनी ही अधिक सीधी ढलान वाली होगी। इससे बाह्य संतुलन बनाए रखने में मौद्रिक नीति अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी बन जाती है।

चित्र 28.1 बाह्य तथा आंतरिक संतुलन को दर्शाता है और बताता है कि इन दोनों में संतुलन बनाए रखने में मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियाँ क्या कार्य करती हैं। मान लीजिए कि अर्थव्यवस्था क्षेत्र *I* में *A* बिंदु पर है जहाँ अर्थव्यवस्था के भीतर पूर्ण रोजगार है और भुगतान शेष में घाटा है। भुगतान शेष का घाटा समाप्त करने के लिए मौद्रिक अधिकारी पहले तो ब्याज की दर में *AB* की वृद्धि करता है ताकि मुद्रा की पूर्ति घटाई जा सके। मुद्रा पूर्ति घटने से वस्तुओं की माँग घट जाएगी और इससे, आगे आयात घटेंगे और बिंदु *B* पर भुगतान शेष में संतुलन स्थापित हो जाएगा। पर इस बिंदु पर अर्थव्यवस्था में सुस्ती और बेरोजगारी है। इन्हें ठीक करने और आंतरिक संतुलन लाने के लिए, बचत बजट में *BC* मात्रा की कटौती करनी पड़ेगी। परंतु *C* बिंदु पर, पुनः भुगतान-शेष में घाटा है, इसलिए जरूरी है कि मुद्रा पूर्ति घटाने के लिए ब्याज की दर में *CD* की और वृद्धि हो जाए। बिंदु *D* पर आंतरिक संतुलन फिर गड़बड़ा जाता है जिससे बचत बजट में और कटौती होती है। मुद्रा पूर्ति घटने के बाद बचत घटने की इस प्रक्रिया से अंत में अर्थव्यवस्था संतुलन बिंदु *E* पर पहुँच जाती है जहाँ एक साथ आंतरिक तथा बाह्य संतुलन है।

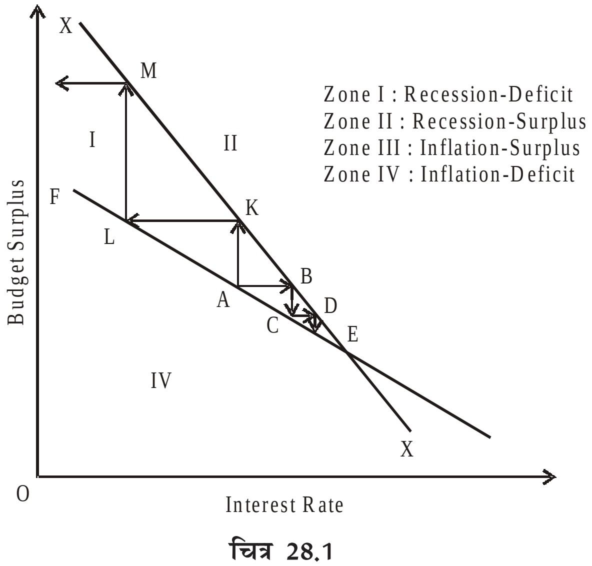

चित्र 28.1

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ निश्चित व्यावहारिक अवरोधों के अंतर्गत .... करती हैं।
2. नियत नीति मिश्रण चालू लेखा घाटे को ठीक करने में .... नहीं हो सकता।

दूसरी ओर, यदि भुगतान-शेष में घाटा दूर करने के लिए बचत बजट काम में लाया जाएगा और सुस्ती तथा बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए मौद्रिक नीति अपनाई जाएगी, तो न तो आंतरिक संतुलन रहेगा और न ही बाह्य संतुलन रहेगा। यदि *A* बिंदु से चलें, तो बचत बजट में वृद्धि होने से अर्थव्यवस्था *K* पर चली जाएगी जहाँ बाह्य संतुलन तो उपलब्ध हो जाता है, पर अर्थव्यवस्था में सुस्ती तथा बेरोजगारी होती है। इसे दूर करने के लिए मुद्रा पूर्ति बढ़ाने के लिए ब्याज की दर में *KL* कमी की जाती है। परंतु *L* बिंदु पर, भुगतान शेष में, घाटा अपने पिछले स्तर से बढ़ जाता है। इसके लिए अभी भी *LM* और अधिक बचत बजट आवश्यक होगा। इससे, जरूरी हो जाएगा कि ब्याज दर में और अधिक कटौती की जाए ताकि सुस्ती और बेरोजगारी दूर हों। इस तरह से, अर्थव्यवस्था *E* बिंदु से और दूर हटती चली जाएगी और आंतरिक तथा बाह्य संतुलन एक साथ कभी नहीं आएँगे। इस स्थिति में, आवंटन नियम विस्फोटक अस्थिरता लाता है क्योंकि दोनों नीतियाँ बुरी तरह से समन्वित हुई हैं।

क्या आप जानते हैं आवंटन नियम मौद्रिक नीति को बाह्य संतुलन के उद्देश्य के लिए और आंतरिक संतुलन के लिए राजकोषीय नीति का करना है।

इस प्रकार, बाह्य संतुलन के उद्देश्य में मौद्रिक नीति का और आंतरिक संतुलन के उद्देश्य में राजकोषीय नीति का आवंटन करना चाहिए। किंतु आवंटन नियम केवल तब कार्य कर सकता है यदि मौद्रिक और राजकोषीय नीति बिना दीर्घ पश्चता के निरंतर और अच्छी तरह से समायोजित की जा सके, इसके पहले कि उसका प्रभाव दृष्टिगोचर हो! आंतरिक और बाह्य स्थिरता के लिए मौद्रिक तथा राजकोषीय नीति के सफल प्रयोग का यह 'मण्डल नियम' है, जिसके अनुसार, एक औजार का उस लक्ष्य के साथ ही मेल बैठाना चाहिए जिस पर उसका अधिकतम सापेक्ष प्रभाव पड़ता है। इसे वह प्रभावी बाजार वर्गीकरण का नियम (Principle of Effective Market Classification) कहता है।

वास्तव में, मण्डल एक विवेकपूर्ण मौद्रिक और वित्तीय नीति मिश्रण के लिए तर्क देता है। क्षेत्र II और IV में, मौद्रिक और राजकोषीय दोनों नीतियों के संयुक्त उपयोग में असंगति नहीं है। क्षेत्र II में दोनों नीतियाँ प्रतिबंधात्मक होनी चाहिए, और क्षेत्र IV में, दोनों नीतियाँ विस्तारक होनी चाहिए। बाकी दोनों क्षेत्रों में मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ दोनों उद्देश्यों को साथ-साथ प्राप्त करने के लिए अवश्य मिश्रित करनी चाहिए। मण्डल के अनुसार, जब मौद्रिक नीति बाह्य संतुलन के उद्देश्यों के साथ और राजकोषीय नीति आंतरिक संतुलन के उद्देश्य के साथ जोड़ी जाती है, तो दोनों उद्देश्य प्राप्त हो जाएँगे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. बाह्य संतुलन के उद्देश्य में मौद्रिक नीति का और आंतरिक संतुलन के उद्देश्य में आवंटन करना चाहिए–

   (अ) राजकोषीय नीति का (ब) धन का

   (स) सिद्धांतों का (द) इनमें से कोई नहीं

4. वास्तव में मंडल एक विवेकपूर्ण मौद्रिक और वित्तीय नीति मिश्रण के लिए देता है–

   (अ) कुतर्क (ब) तर्क
   (स) अर्थ (द) इनमें से कोई नहीं।

5. मौद्रिक राजकोषीय मिश्रण यथार्थ समायोजन नहीं है–

   (अ) तंत्र (ब) भुगतान
   (स) नीति (द) पूँजी।

6. जब मौद्रिक नीति के माध्यम से ब्याज दर बढ़ाई जाती है तो यह घरेलू निवेश में लाएगी–

   (अ) कमी (ब) अधिकता।
   (स) तटस्थता (द) इनमें से कोई नहीं।

मण्डल के मॉडल की आलोचनाएँ (Criticism of Mundel's Model)

परंतु इस विश्लेषण की कई कमियाँ हैं–

1. **अवास्तविक मान्यताएँ (Unrealistic Assumptions)**–यह मॉडल मानता है कि अधिकारी उस सीमा को जानते हैं जिस पर अर्थव्यवस्था आंतरिक और बाह्य दोनों संतुलनों से दूर होती है ताकि उचित मौद्रिक और राजकोषीय नीति प्रयोग की जा सके। यह भी पहले से ही मान लिया जाता है कि कि वे मात्रात्मक परिणाम जानते हैं जो प्रत्येक नीति के प्रयोग से संभावित होते हैं। ये दोनों मान्यताएँ वास्तविकता से दूर हैं, क्योंकि असंतुलन की श्रेणी का ठीक-ठीक अनुमान लगाना संभव नहीं है। अत: नीति परिवर्तन इस प्रकार के असंतुलन के लिए उचित नहीं हो सकते हैं।

2. **बेरोजगारी और स्फीति की अनदेखी (Overlook of Unemployment and Inflation)**–यह विश्लेषण बेरोजगारी और स्फीति की स्थिति की अनदेखी करता है। यह अवास्तविक है क्योंकि यह धारणा जो स्टैगफ्लेशन के नाम से जानी जाती है, प्राय: सभी विकसित देशों में पायी जाती है।

3. **अन्य घटकों की उपेक्षा (Neglect of other Factros)**–यह विश्लेषण पूँजी गतियों के कारण के रूप में केवल ब्याज दरों में अंतर पर विचार करता है और अन्य घटकों जैसे विनिमय दर परिवर्तनों की उपेक्षा करता है। इसके अतिरिक्त यह संभव नहीं है कि निरंतर घाटे को पूँजी गतियों के द्वारा वित्त उपलब्ध कराया जा सके।

4. **मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों का व्यावहारिक अवरोध (Practical Constraints of Monetary and Fiscal Policies)**–मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ निश्चित व्यावहारिक अवरोधों के अंतर्गत कार्य करती हैं। राजनीतिक कारणों से कुछ सरकारें प्रतिबंधात्मक राजकोषीय नीति और उच्च ब्याज दरों वाली मौद्रिक नीति का पालन नहीं कर पातीं। यद्यपि ऐसी नीतियाँ प्रारंभ की जा सकती हैं, वे सफल नहीं हो सकती हैं, क्योंकि पूँजी-प्रवाह ब्याज संवेदनशील नहीं हो सकते हैं।

5. **असफल नियत नीति मिश्रण (Unsuccessful Prescribed Policy Mix)**–नियत नीति मिश्रण चालू लेखा घाटे को ठीक करने में सफल नहीं हो सकता क्योंकि नीति मिश्रण पूँजी प्रवाहों और आयातों–दोनों को प्रभावित करता है, इसलिए यह सिर्फ इतना सुनिश्चित करता है कि ऋणात्मक व्यापार संतुलन धनात्मक पूँजी प्रवाह द्वारा क्षतिपूर्तित होता है और विलोमश: भी।

टास्क मंडल मॉडल के विषय में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

नोट

6. यथार्थ समायोजन तंत्र नहीं (Not True Adjustment Mechanism)—मौद्रिक-राजकोषीय मिश्रण यथार्थ समायोजन तंत्र नहीं है। यह भुगतान संतुलन का समायोजन नहीं करता बल्कि सिर्फ इसे स्थिर करता है। पूँजी प्रवाह कीमतों और आय को अपरिवर्तित छोड़कर केवल विदेशी विनिमय की स्वायत्त माँग और पूर्ति के बीच अंतराल को पूरा करता है।

7. ऋण-सेवा आवश्यकताओं पर विचार नहीं (No Consideration on the Debt-Servicing Requirements)—यह विश्लेषण ऋण-सेवा आवश्यकताओं पर विचार नहीं करता क्योंकि जब घरेलू ब्याज दर बढ़ायी जाती है तो निरंतर पूँजी प्रवाह भुगतान सुंतलन के चालू लेखा पर होगा।

8. घरेलू निवेश में कमी (Decrease in Investment at Home)—जब मौद्रिक नीति के माध्यम से ब्याज दर बढ़ायी जाती है तो यह घरेलू निवेश में कमी लायेगी। यह या तो सरकारी व्यय में वृद्धि ह्रास द्वारा या कर-कटौतियों द्वारा या दोनों के किसी संयोग द्वारा अवश्य साथ होनी चाहिए। ऐसा मौद्रिक-राजकोषीय नीति मिश्रण अर्थव्यवस्था की बचतों को ऋण-वित्त प्रबंधित सरकारी व्यय की ओर मोड़कर दुरुपयोग करती है, जो पूँजी निर्माण को रोकता है। जॉनसन के अनुसार, "यह घरेलू बचत संभावना के उपयोग में 'अकुशलता बनाम कुशलता' की समस्या को उत्पन्न करता है।''

9. नियत नीति मिश्रणों के बीच अंतर्विरोध (Conflicts Between the Prescribed Policy Mixes)—विभिन्न देशों की सरकारों में नियत नीति मिश्रणों के बीच अंतर्विरोधों की संभावना होती है। जॉनसन ने बताया, "सभी देशों में साथ-साथ राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों के सही संयोग पर पहुँचकर, विशेषकर यदि नीतियों के समायोजन क्रम-संबंधी जाँच और दोष द्वारा होते हैं, तो यह जटिल प्रक्रिया होगी और कुछ परिस्थितियों में संतुलन की ओर लाने की अपेक्षा उससे दूर ले जा सकती है।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. बाह्य संतुलन के उद्देश्य में मौद्रिक नीति का और आंतरिक संतुलन के उद्देश्य में राजकोषीय नीति का आबंटन करना चाहिए।
8. निरंतर घाटे को पूँजी गतियों के द्वारा वित्त उपलब्ध कराया जाना संभव है।
9. नियत नीति मिश्रण चालू लेखा घाटे को ठीक करने में सफल नहीं हो सकता।
10. विभिन्न देशों की सरकारों में नियत नीति मिश्रणों के बीच अंतर्विरोधों की संभावना होती है।

28.2 सारांश (Summary)

- वास्तव में, मण्डल एक विवेकपूर्ण मौद्रिक और वित्तीय नीति मिश्रण के लिए तर्क देता है। क्षेत्र II और IV में, मौद्रिक और राजकोषीय दोनों नीतियों के संयुक्त उपयोग में असंगति नहीं है। क्षेत्र II में दोनों नीतियाँ प्रतिबंधात्मक होनी चाहिए, और क्षेत्र IV में, दोनों नीतियाँ विस्तारक होनी चाहिए। बाकी दोनों क्षेत्रों में मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ दोनों उद्देश्यों को साथ-साथ प्राप्त करने के लिए अवश्य मिश्रित करनी चाहिए। मण्डल के अनुसार, जब मौद्रिक नीति बाह्य संतुलन के उद्देश्यों के साथ और राजकोषीय नीति आंतरिक संतुलन के उद्देश्य के साथ जोड़ी जाती है, तो दोनों उद्देश्य प्राप्त हो जाएँगे।

नोट

28.3 शब्दकोश (Keywords)

- आधिक्य (Surplus) – अधिकता।
- अंतर्विरोध (Conflicts) – अंदर का विरोध।

28.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. 'मंडल का मॉडल' से आप क्या समझते हैं?
2. आंतरिक और बाह्य संतुलन के लिए राजकोषीय मौद्रिक नीति का वर्णन कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. कार्य	2. सफल	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (अ)	7. सही	8. गलत
9. सही	10. सही।		

28.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010
2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010
3. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी :** एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

नोट

इकाई–29: स्वान मॉडल
(Swan Model)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 आंतरिक और बाह्य संतुलन के लिए नीतियां: व्यय-परिवर्तन और व्यय-घटाना (Policies for Internal and External Balance : Expenditure Switching and Expenditure-Reducing)

29.2 सारांश (Summary)

29.3 शब्दकोश (Keywords)

29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- आंतरिक और बाह्य संतुलन के लिए नीतियाँ जानने हेतु।
- व्यय-परिवर्तन और व्यय-घटाना जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

मौद्रिक-राजकोषीय नीतियों के निश्चित उद्देश्य होते हैं जो नीति उपकरणों के उपयोग द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं। ये हैं—पूर्ण रोजगार, आर्थिक वृद्धि, कीमत स्थिरता और भुगतान शेष का संतुलन। ये उद्देश्य प्राय: परस्पर-विरोधी होते हैं। मौद्रिक और राजकोषीय नीतियाँ इन विरोधों की प्रकृति एवं इसके समाधान के उपयुक्त साधनों या उनके बीच सह-संबंध स्थापित करने का अध्ययन करती हैं। इन समस्याओं का विश्लेषण मुख्यत: आंतरिक और बाह्य दो उद्देश्यों के इर्द-गिर्द केंद्रित हुआ है। आंतरिक संतुलन आय और पूर्ण रोजगार से संबंधित है और बाह्य संतुलन का संबंध भुगतान शेष के संतुलन से होता है।

आर्थिक (मौद्रिक एवं राजकोषीय) नीति का सिद्धांत दो अलग-अलग समस्याओं के इर्द-गिर्द केंद्रित हो गया है। *प्रथम*, नीति उद्देश्यों की संख्या और नीति उपकरणों की संख्या के बीच संबंध; और *द्वितीय*, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नीति उपकरणों का आवंटन।

जॉन-टिनबर्गन पहला अर्थशास्त्री था जिसने यह कहा कि नीति-उपकरणों की संख्या उद्देश्यों की संख्या के बराबर होनी चाहिए। यदि नीति-उपकरणों की अपेक्षा उद्देश्यों की संख्या अधिक है, तो इसका मतलब है कि नीति उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पर्याप्त औजार नहीं है। दूसरी ओर, यदि उद्देश्यों की संख्या की अपेक्षा नीति उपकरणों की संख्या

अधिक है तो इसका मतलब यह है कि उद्देश्यों और औजारों का एक ही संयोग नहीं है जिससे समस्या हल होगी, बल्कि न जाने कितने संयोग हैं। इस प्रकार, आर्थिक नीति की सफलता के लिए आवश्यक है कि नीति औजारों की संख्या नीति लक्ष्यों की संख्या के बराबर हो। यह टिनबर्गन नियम या निश्चित लक्ष्य धारणा (fixed target approach) के नाम से जाना जाने लगा है।

दूसरी समस्या यह पैदा होती है कि जब नीति उद्देश्यों और नीति उपकरणों की संख्या समान हो, तो दिये हुए उद्देश्य पूरा करने के लिए उपकरणों का लक्ष्यों में आवंटन कैसे किया जाय। उनके बीच समन्वय के अभाव के बावजूद, आवंटन समस्या के प्रतिपादन से अंतत: उद्देश्यों के संतुलन मूल्य प्राप्त होंगे।

> *नोट्स* मौद्रिक–राजकोषीय नीतियों के निश्चित उद्देश्य होते हैं जो नीति उपकरणों के उपयोग द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं।

29.1 आंतरिक और बाह्य संतुलन के लिए नीतियाँ : व्यय-परिवर्तन और व्यय घटाना

(Policies for Internal and External Balance : Expenditure Switching and Expenditure Reducing)

आंतरिक और बाह्य दोनों संतुलन लाने के लिए *जॉनसन* ने ही नीति उपकरणों के रेंज की ओर इशारा किया। उन्होंने इसको व्यय घटाने वाली (expenditure reducing) या आंतरिक नीतियाँ, और व्यय–परिवर्तन (expenditure switching) या बाह्य नीतियाँ, का नाम दिया।

भुगतान संतुलन में घाटे का अर्थ आय के ऊपर व्यय का आधिक्य होता है। इसे ठीक करने के लिए, व्यय और आय में समानता लानी चाहिए। व्यय घटाने वाली नीतियों का उद्देश्य अधिक करों और ब्याज दरों के माध्यम से समस्त माँग को घटाना होता है जिससे व्यय और उत्पादन घटते हैं। आगे, व्यय और उत्पादन में गिरावट घरेलू कीमत-स्तर को घटाती है। इससे विदेशी वस्तुओं से घरेलू वस्तुओं पर व्यय में परिवर्तन होता है। परिणामस्वरूप, देश के आयात घटते हैं। व्यय-परिवर्तन नीतियों का उद्देश्य घरेलू वस्तुओं की माँग बढ़ाना और आयातित वस्तुओं से घरेलू वस्तुओं पर व्यय में परिवर्तन करना होता है। ऐसा व्यय-परिवर्तन घरेलू उत्पादन बढ़ाता है। जब तक व्यय करने की सीमांत प्रवृत्ति इकाई से कम होती है तो यह देश का भुगतान-संतुलन सुधारेगा।

आंतरिक और बाह्य संतुलन के दोनों उद्देश्यों को साथ-साथ प्राप्त करने के लिए, व्यय घटाने वाले और व्यय-परिवर्तन करने वाले उपकरणों का विवेकपूर्ण संयोग आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, यदि अर्थव्यवस्था पहले से ही पूर्ण रोजगार स्तर पर होती है तो अवमूल्यन की नीति के कारण अर्थव्यवस्था में स्फीति हो सकती है। इसलिए, अवमूल्यन की व्यय-परिवर्तन करने वाली नीति के साथ-साथ भुगतान-शेष संतुलन और पूर्ण रोजगार कायम रखने के लिए अधिक कठोर वित्तीय और मौद्रिक नियंत्रण की व्यय-घटाने वाली नीतियाँ होनी चाहिए।

आंतरिक और बाह्य संतुलन के दोनों लक्ष्यों के साथ-साथ प्राप्त करने के लिए नीति उपकरणों के बीच संबंध को चित्र 29.1 में वर्णित ट्रेवर-स्थान (Trevor-Swan) के मॉडल के रूप में विश्लेषण किया गया है।

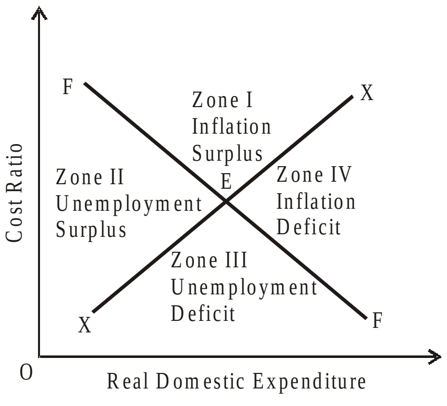

चित्र 29.1

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. व्यय और उत्पादन में गिरावट .... कीमत स्तर को घटाती है।
2. भुगतान संतुलन में घाटे का अर्थ आय के ऊपर .... का आधिक्य होता है।

स्वान मॉडल (The Swan Model)

स्वान आंतरिक और बाह्य संतुलन प्राप्त करने के लिए व्यय-परिवर्तन करने वाली और व्यय-घटाने वाली नीतियों के उचित संयोगों की विवेचना करता है।

> *क्या आप जानते हैं* भुगतान संतुलन में घाटे का अर्थ आय के ऊपर व्यय का आधिक्य होता है।

मान्यताएँ (Assumptions)

यह मॉडल इन मान्यताओं पर आधारित है कि (1) व्यापार प्रतिबंध नहीं होते हैं; (2) पूँजीपतियाँ नहीं होती हैं; और (3) उत्पादकता, व्यापार की शर्तें और अन्य वित्तीय स्थानांतरण दिए हुए हैं।

चित्र 29.1 में क्षैतिज अक्ष वास्तविक घरेलू व्यय को मापता है, और अनुलंब अक्ष लागत अनुपात को व्यक्त करता है जो सापेक्ष लागतों का सूचक होता है तथा अर्थव्यवस्था की प्रतियोगितात्मकता को दर्शाता है।

क्षैतिज-अक्ष पर बाईं ओर की किसी गति (O की ओर) का अर्थ व्यय-घटाने वाली नीति का उपयोग होता है और अनुलंब अक्ष पर ऊपर की ओर किसी गति का अर्थ होता है, व्यय-परिवर्तन करनेवाली नीति का उपयोग FF आंतरिक संतुलन वक्र है जो पूर्ण रोजगार की स्थिति को व्यक्त करता है। यह लागत अनुपात और वास्तविक घरेलू व्यय के विभिन्न संयोगों को दर्शाता है। रोजगार का एक दिया हुआ स्तर या तो अति अनुकूल लागत अनुपात और घरेलू व्यय के सापेक्षिक रूप से निम्न-स्तर द्वारा या कम अनुकूल लागत अनुपात और व्यय का सापेक्षिक रूप से उच्च स्तर द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार FF वक्र से दाईं ओर झुकता है। स्पष्ट रूप से, FF वक्र से दाईं ओर (ऊपर) का भाग स्फीति या पूर्ण रोजगार से अधिक की स्थिति से संबंधित है, और वक्र के बाईं ओर (नीचे) का भाग सुस्ती या बेरोजगारी को व्यक्त करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. व्यय घटाने वाली नीतियों का उद्देश्य अधिक करों और ब्याज दरों के माध्यम से समस्त माँग को .... होता है।

   (अ) घटाना (ब) जोड़ना
   (स) बढ़ाना (द) इनमें से कोई नहीं।

4. आर्थिक नीति की सफलता के लिए आवश्यक है नीति औजारों की संख्या बराबर हो–

   (अ) नीति लक्ष्यों की संख्या के (ब) लक्ष्यों के
   (स) नीति के (द) औजारों के।

नोट

5. यदि अर्थव्यवस्था पहले से ही पूर्ण रोजगार स्तर पर होती है तो अवमूल्यन की नीति के कारण अर्थव्यवस्था में हो सकती है–

   (अ) अवस्फीति (ब) स्फीति

   (स) हानि (द) कमी।

6. आर्थिक (मौद्रिक एवं राजकोषीय) नीति का सिद्धांत दो अलग-अलग समस्याओं के इर्द-गिर्द हो गया है–

   (अ) एकत्रित (ब) केंद्रित

   (स) पृथक (द) इनमें से कोई नहीं।

XX वक्र बाह्य संतुलन को दर्शाता है जहाँ पूँजी गतियों के अभाव में, निर्यात, आयात के बराबर होता है। इसलिए, बाह्य संतुलन तब होता है जब शुद्ध (net) निर्यात शून्य होते हैं। यह वक्र बाईं से ऊपर दाईं ओर बढ़ता है जो यह दर्शाता है कि अर्थव्यवस्था को बाह्य संतुलन में रहने के लिए अवमूल्यन को घरेलू व्यय में वृद्धि द्वारा अवश्य संतुलित होना चाहिए। (अवमूल्यन निर्यात को प्रोत्साहित कर और आयात को हतोत्साहित कर, देश के व्यापार संतुलन को सुधारेगा, और वास्तविक घरेलू व्यय में वृद्धि पर्याप्त मात्रा में देश के आयात को बढ़ायेगी।) स्पष्टत:, *XX* वक्र के ऊपर का भाग बचत से संबंधित है और वक्र के नीचे का भाग भुगतान संतुलन में घाटे को दर्शाता है।

वह बिंदु जहाँ *FF* वक्र *XX* वक्र को काटता है, आनंद (bliss) बिंदु को व्यक्त करता है, जहाँ अर्थव्यवस्था आंतरिक और बाह्य संतुलन में साथ-साथ होती है। चित्र 29.1 में *E* ऐसा ही बिंदु है, जहाँ विनिमय दर और वास्तविक घरेलू व्यय संतुलन में होते हैं। यदि अर्थव्यवस्था *E* बिंदु पर नहीं होती है तो वह असंतुलन में होती है। स्वान के अनुसार, "आंतरिक संतुलन और बाह्य संतुलन के दोनों वक्र स्थिति को आर्थिक दुर्भाग्य के चार क्षेत्रों में विभाजित करते हैं।" असंतुलन के चार क्षेत्र हैं–

क्षेत्र I : स्फीति और भुगतान संतुलन आधिक्य

क्षेत्र II : बेरोजगारी और भुगतान संतुलन आधिक्य

क्षेत्र III : बेरोजगारी और भुगतान संतुलन घाटा

क्षेत्र IV : स्फीति और भुगतान संतुलन घाटा

टास्क आंतरिक और बाह्य संतुलन की नीतियों के बारे में विचार व्यक्त कीजिए।

नीति उपाय (Policy Measures)

नीति उपायों के प्रकार की व्याख्या के लिए, जो आंतरिक और बाह्य संतुलन साथ-साथ प्राप्त करने के लिए जो आवश्यक हैं, उसे हम चित्र 29.2 में असंतुलन की आठ संभावित स्थितियों को लेते हैं। इन स्थितियों के लिए नीति उपायों के विभिन्न संयोग आवश्यक होते हैं।

कोई देश भुगतान संतुलन और बेरोजगारी (या सुस्ती) में वक्र *XX* के बिंदु *A* पर संतुलन में होता है। ऐसी स्थिति के लिए घरेलू व्यय में वृद्धि द्वारा घरेलू अर्थव्यवस्था के विस्तार की आवश्यकता होती है। यह शुद्ध निर्यातों को घटायेगा। इस प्रवृत्ति को प्रभावहीन करने के लिए अवमूल्यन को घरेलू व्यय में वृद्धि के साथ जोड़ा जाना चाहिए।

यदि बेरोजगारी और भुगतान संतुलन में घाटा साथ-साथ चलता है, जैसा कि क्षेत्र III में *K* बिंदु पर होता है, तो घरेलू व्यय में वृद्धि होनी चाहिए। विस्तारक उपायों के माध्यम से आंतरिक माँग बढ़ाने वाली नीति, घरेलू रोजगार भी बढ़ाती

नोट

है। परंतु यह नीति भुगतान शेष में घाटे को बढ़ाती है। इसे "दुविधा क्षेत्र" (dilemma zone) के रूप में वर्णित किया गया है क्योंकि विस्तारक नीति की बजाय अवमूल्यन अधिमान्य नीति होता है।

यदि अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार को भुगतान संतुलन में घाटे के साथ जोड़ती है, जैसा कि *FF* वक्र के *D* बिंदु पर होता है, तो अवमूल्यन ही इसका समाधान है। यह विशाल नियत आधिक्य पैदा करेगा और अतिरिक्त विदेशी माँग घरेलू अर्थव्यवस्था में स्फीति लायेगी। इन प्रवृत्तियों को रोकने के लिए, थोड़े से अवमूल्यन को घरेलू व्यय में कटौती के साथ जोड़ना होगा।

क्षेत्र IV में *H* बिंदु लीजिए जहाँ घरेलू स्फीति भुगतान संतुलन में घाटे से जुड़ी हुई है। स्फीति को घरेलू व्यय में कटौती द्वारा रोकना चाहिए जो भुगतान संतुलन में घाटे को भी कम करेगा और अन्ततः अर्थव्यवस्था को संतुलन स्थिति *E* की ओर ले जायेगा।

यदि अर्थव्यवस्था में भुगतान शेष संतुलन और स्फीति होती है जैसा कि *B* बिंदु पर, तो इसे अपनी विनिमय दर को बढ़ाना और घरेलू व्यय को घटाना चाहिए।

क्षेत्र I में *G* बिंदु को लें जहाँ भुगतान संतुलन में आधिक्य को स्फीति से जोड़ा हुआ है। इस स्थिति में, भुगतान शेष के आधिक्य को ठीक करने के लिए विनिमय दर को बढ़ाना चाहिए और स्फीति को रोकने के लिए व्यय घटाना चाहिए। परंतु व्यय में कटौती आधिक्य बढ़ायेगा। यह पुनः 'दुविधा क्षेत्र' को व्यक्त करता है।

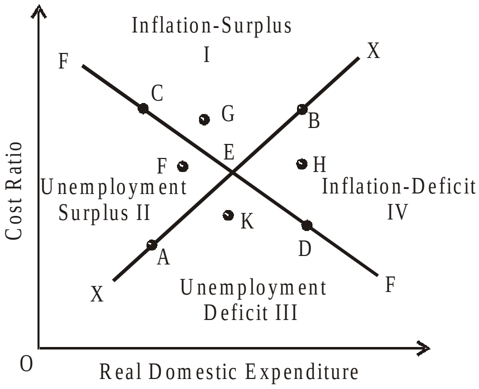

चित्र 29.2

यदि देश *FF* वक्र के *C* बिंदु पर पूर्ण रोजगार और भुगतान संतुलन में आधिक्य की स्थिति में होता है तो इसे अपनी विनिमय दर को बढ़ाना चाहिए। परंतु विनिमय दर में वृद्धि बेरोजगारी उत्पन्न करेगी। इससे बचने के लिए घरेलू व्यय बढ़ाना चाहिए।

अंत में, क्षेत्र II में *F* बिंदु पर चलें जहाँ भुगतान संतुलन में आधिक्य बेरोजगारी से जुड़ा हुआ है। यहाँ घरेलू व्यय में वृद्धि आंतरिक और बाह्य दोनों संतुलनों के लिए उचित होगी। ऐसी नीति रोजगार बढ़ायेगी और आधिक्य के आकार को घटाने के लिए आयात में वृद्धि को भी प्रेरित करेगी।

उपर्युक्त विश्लेषण यह प्रकट करता है कि यदि अर्थव्यवस्था न तो *FF* (आंतरिक संतुलन) वक्र और न ही *XX* (बाह्य संतुलन) वक्र पर होती है तो यह चार क्षेत्रों में से किसी एक में होती है।

जब अर्थव्यवस्था एक लक्ष्य (कहें, आंतरिक संतुलन) को प्राप्त करने के लिए केवल एक नीति या दोनों व्यय-परिवर्त्तन करने वाली और घरेलू व्यय-घटाने वाली नीतियों का साथ-साथ पालन करती है तो यह दूसरे लक्ष्य (कहें, बाह्य संतुलन) से हट जाती है। यह समस्या केवल "दुविधा क्षेत्रों" I और III में ही नहीं बल्कि 'सरल क्षेत्रों' II और IV में भी खड़ी होती है। उदाहरण के लिए, यदि हम क्षेत्र II में *F* बिंदु को लेते हैं जहाँ भुगतान संतुलन में आधिक्य को बेरोजगारी से जोड़ा गया है, तो विस्तारक नीति बेरोजगारी घटायेगी और आधिक्य भी घटायेगा। परंतु अर्थव्यवस्था को पूर्ण संतुलन बिंदु *E* तक ले जाने के लिए विनिमय दर की मूल्य-वृद्धि या मूल्य-ह्रास को अपनाना होगा जो अर्थव्यवस्था को एक लक्ष्य या दूसरे लक्ष्य से हटायेगी।

स्व-मूल्यांकन (Self-Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. विस्तारक उपायों के माध्यम से आंतरिक माँग बढ़ाने वाली नीति, घरेलू रोजगार भी बढ़ाती है।
8. बाह्य संतुलन तब होता है, जब शुद्ध निर्यात शून्य होते हैं।
9. आंतरिक संतुलन और बाह्य संतुलन के दोनों वक्र स्थिति को आर्थिक दुर्भाग्य के चार क्षेत्रों में विभाजित करते हैं।
10. भुगतान संतुलन में घाटे का अर्थ आय के ऊपर व्यय की कमी होता है।

29.2 सारांश (Summary)

- आर्थिक (मौद्रिक एवं राजकोषीय) नीति का सिद्धांत दो अलग-अलग समस्याओं के इर्द-गिर्द केंद्रित हो गया है। *प्रथम*, नीति उद्देश्यों की संख्या और नीति उपकरणों की संख्या के बीच संबंध; और *द्वितीय*, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नीति उपकरणों का आवंटन।

29.3 शब्दकोश (Keywords)

- बाह्य संतुलन (External Balance) – बाहरी संतुलन।
- आंतरिक संतुलन (Internal Balance) – अदंर का संतुलन।

29.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. आंतरिक और बाह्य दोनों संतुलन लाने के लिए जानसन ने क्या किया?
2. स्वान मॉडल क्या है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. घरेलू	2. व्यय	3. (अ)	4. (अ)
5. (ब)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. सही	10. गलत।		

29.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : थ्योरी एंड पोलिसी** : एच.एल. आहूजा, एस.चाँद पब्लिशर, 2010

2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स की आवश्यकताएँ** : एच.एस.नाथ, साइबर टैक पब्लिकेशन, 2012

नोट

इकाई–30: विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की परिकल्पना
(The Rational Expectations Hypothesis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 अनुकूली प्रत्याशाएँ (Adaptive Expectations)

30.2 विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ (Rational Expectations)

30.3 विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की परिकल्पना की मूल प्रस्थापनाएँ (Basic Propositions of Rational Expectations Hypothesis)

30.4 स्थिरीकरण नीति तथा रेटेक्स परिकल्पना (Stabilisation Policy and Ratex Hypothesis)

30.5 सारांश (Summary)

30.6 शब्दकोश (Keywords)

30.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

30.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- अनुकूली प्रत्याशाएँ जानने हेतु।
- विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ जानने हेतु।
- स्थिरीकरण नीति तथा रेटेक्स परिकल्पना जानने हेतु।

प्रस्तावना (Introduction)

1930 के दशक में जब केन्ज़ ने अपना 'सामान्य सिद्धांत' लिखा तब विश्व की मुख्य समस्या बेरोजगारी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्फीति मुख्य आर्थिक समस्या के रूप में उभरकर सामने आई। विश्वयुद्ध के उपरांत 1960 के दशक तक बेरोजगारी एक बार फिर आर्थिक समस्या बन गई। अगली एक शताब्दी तक बेरोजगारी तथा स्फीति दोनों ने मिलकर एक नया रूप धारण कर लिया, जिसे गतिहीन स्फीति (stagflation) कहा गया। गतिहीन स्फीति की यह नई समस्या नीति-निर्धारकों तथा अर्थशास्त्रियों के लिए एक गंभीर चुनौती बन गई, क्योंकि केन्ज़ का सिद्धांत इस विषय में मौन था। अत: इस संकटपूर्ण स्थिति से एक नये समष्टि आर्थिक सिद्धांत का जन्म हुआ, जिसे विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की परिकल्पना अर्थात रेटेक्स का नाम दिया गया।

30.1 अनुकूली प्रत्याशाएँ (Adaptive Expectations)

रेटेक्स परिकल्पना की चर्चा करने से पहले समष्टि अर्थशास्त्र में प्रयोग की गई अनुकूली प्रत्याशाओं के अर्थ को समझना आवश्यक है जिसका विकास रेटेक्स सिद्धांत से पहले हुआ था।

प्रत्याशाएँ उन अनिश्चित आर्थिक चरों के संदर्भ में किसी आर्थिक एजेंट द्वारा किए गए पूर्वानुमान या भविष्यवाणियाँ होती हैं जो उसके निर्णय से संबद्ध होती हैं। पूर्वानुमान भूत (past) की प्रवृत्तियों के साथ-साथ वर्तमान सूचना एवं अनुभव पर आधारित होते हैं। आर्थिक सिद्धांत का मुख्य भाग आर्थिक एजेंटों (अर्थात् उपभोक्ता, उत्पादक आदि) द्वारा प्रत्याशाओं के निर्माण में उनके विवेकशील व्यवहार की मान्यता पर आधारित है। परंतु अभी तक अर्थशास्त्री मानवीय व्यवहार के माप में प्रत्याशाओं की भूमिका को शामिल नहीं कर पाए हैं। केन्ज़ ने प्रत्याशाओं के महत्त्व की चर्चा की परंतु वे इस बात पर चुप थे कि उनका निर्माण किस प्रकार होता है।

नोट्स विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं का विचार सर्वप्रथम जॉन मूथ द्वारा 1961 में प्रस्तुत किया गया, जिसने यह विचार इंजीनियरी साहित्य से लिया था।

हाल के वर्षों में अर्थशास्त्रियों ने मॉडल निर्माण मे अनुकूली प्रत्याशाओं की परिकल्पना का व्यापक प्रयोग किया है। इस सदर्भ में 1956 में **कैगन** (Cagen) और 1957 में नेरलोव (Nerlove) द्वारा किया गया कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। अनुकूली प्रत्याशा परिकल्पना के अनुसार, आर्थिक एजेंटों की प्रत्याशा होती है कि भविष्य भी निश्चय ही भूत की प्रवृत्तियों के अनुसार होगा। वे कीमत आय जैसे आर्थिक चरों के भविष्य मूल्यों को उनके भूत मूल्यों के **औसत** के रूप में होने तथा बहुत ही धीमी गति से उनके परिवर्तित होने की प्रत्याशा करते हैं। आर्थिक ऐजेंट इन चरों के प्रत्याशित मूल्य को उनके वर्तमान एवं भूत मूल्यों के **भारित** (weighted) औसत के समान कर देते हैं। वे अपनी प्रत्याशाओं को पिछली पूर्वानुमान त्रुटि के अनुसार संशोधित करते हैं। पिछले व्यवहारों के परिणामस्वरूप हुई त्रुटियाँ प्रत्याशाओं के निर्माण के लिए सूचना के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत का संकेत करती हैं। परंतु ऐसी प्रत्याशाएँ इस मान्यता पर आधारित होती हैं कि आर्थिक एजेंट उन भूलों में बहुत कम परिवर्तन होने की प्रत्याशा करते हैं। अत: जब आर्थिक नीति में परिवर्तन होता है तो इससे प्राय: निरर्थक पूर्वानुमान होते हैं।

उदाहरण के लिए, अनुकूली प्रत्याशा परिकल्पना के अनुसार आर्थिक एजेंट, भविष्य की स्फीति दरों की प्रत्याशाओं का निर्माण, पहले अनुभव हुई औसत स्फीति दरों के भारित औसत से करते हैं और यदि वास्तविक स्फीति प्रत्याशित स्फीति से भिन्न होने वाली होती है तो वे समय-समय पर उन प्रत्याशाओं को संशोधित करते हैं। यह आर्थिक एजेंटों के अविवेकी (irrational) व्यवहार को प्रकट करता है। दीर्घकालीन फिलिप्स वक्र का फ्रीडमैन का विश्लेषण अनुकूली प्रत्याशा परिकल्पना पर आधारित है। फ्रीडमैन की त्वरण (acceleration) परिकल्पना में निहित मान्यता कि कीमत प्रत्याशाएँ मुख्य रूप से पहले की स्फीति के अनुभव पर आधारित होती हैं, अवास्तविक है। जब आर्थिक एजेंटों की कीमत प्रत्याशाएँ इस मान्यता पर आधारित होती हैं तो वे अविवेकी होते हैं। यदि वे बढ़ती कीमतों की स्थिति में ऐसा सोचते हैं तो अपने को गलत पाएँगे। इसका कारण है कि प्रत्याशाओं का निर्माण केवल पहले के प्रक्षेपणों (projections) से ही नहीं, बल्कि भविष्य के प्रत्यक्ष पूर्वानुमानों से भी होता है। लोगों की प्रत्याशाओं का आधार पिछले कीमत परिवर्तनों के साथ-साथ कई घटकों के संबंध में वर्तमान सूचनाएँ भी होती हैं। इस प्रकार, विवेकशील लोग भविष्य की स्फीति का अधिक यथार्थता से पूर्वानुमान करने के लिए सभी उपलब्ध सूचनाओं का प्रयोग करते हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks) :

1. जब आर्थिक नीति में परिवर्तन होता है तो इससे प्राय: निरर्थक .... होते हैं।
2. रेटेक्स परिकल्पना .... पर लागू होती है।

30.2 विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ (Rational Expectations)

विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं का विचार सर्वप्रथम जॉन मूथ द्वारा 1961 में प्रस्तुत किया गया, जिसने यह विचार इंजीनियरी साहित्य से लिया था। उसका मॉडल मुख्य बाजार की मॉडलिंग कीमत गतिविधियों के बारे में है। यदि हम यह मानकर चलें कि आर्थिक एजेंट प्रत्याशाओं का निर्माण करते समय सूचनाओं (informations) का कुशल व इष्टतम उपयोग करते हैं तो वे प्रत्याशाओं के एक ऐसे सिद्धांत की रचना करते हैं जिससे उपभोक्ता तथा उत्पादक के प्रत्याशित कीमत परिवर्तनों पर आधारित प्रतिक्रिया उनके वास्तविक कीमत परिवर्तनों पर आधारित प्रतिक्रिया पर निर्भर करती है। मूथ का कहना है कि कुछ प्रत्याशाएँ इन अर्थों में विवेकपूर्ण हैं कि प्रत्याशाएँ तथा घटनाएँ एक अविचारित (random) त्रुटि के कारण ही भिन्न होती हैं।

मूथ की विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की कल्पना व्यष्टि अर्थशास्त्र से संबंधित है। इससे बहुत से अर्थशास्त्री संतुष्ट नहीं थे। अत: यह दस वर्षों तक निष्क्रिय रही। 1970 के दशक के आरंभ में रॉबर्ट लूकस, थॉमस सारजेंट (Thomas Sargent) तथा नील वैलस (Neil Wallace) ने इस विचार का उपयोग समष्टि अर्थशास्त्र नीति की समस्याओं के लिए किया।

क्या आप जानते हैं मूथ की विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की कल्पना व्यष्टि अर्थशास्त्र से संबंधित है।

30.3 विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की परिकल्पना की मूल प्रस्थापनाएँ (Basic Propositions of Rational Expectations Hypothesis)

रेटेक्स परिकल्पना मानती है कि आर्थिक एजेंट अपने पास उपलब्ध समस्त आर्थिक सूचना का उपयोग करके कीमतों, आय आदि जैसे आर्थिक चरों (variables) के भावी मूल्यों की प्रत्याशाओं का निर्माण करते हैं। यह सूचना विशेषकर सरकार की मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों जैसे आर्थिक चरों से जुड़े हुए संबंधों को अपने में सम्मिलित करती है। इस तरह प्रत्याशाएँ बनाने वाले यह मानते हैं कि आर्थिक एजेंटों को भविष्य की घटनाओं के बारे में पूरी और सही सूचना होती है। मूथ के अनुसार, सूचना को किसी अन्य दुर्लभ संसाधन की तरह समझना चाहिए। इसके अलावा विवेकपूर्ण आर्थिक एजेंटों को अपनी प्रत्याशाएँ बनाते समय आर्थिक प्रणाली के संबंध में अपने ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए। अत: रेटेक्स की परिकल्पना यह मानती है कि व्यक्तिगत आर्थिक एजेंट प्रत्याशाओं का निर्माण करने में संपूर्ण उपलब्ध और सुसंगत सूचना का उपयोग करते हैं और वे इस सूचना को अपने विवेक से तैयार करते हैं। यह मानना महत्त्वपूर्ण है कि रेटेक्स, उपभोक्ता अथवा फर्मों के पूर्णत: दूरदर्शी होने या उनकी प्रत्याशाएँ हमेशा ही होने को प्रकट नहीं करता है। यह संकेत करता है कि एजेंट पिछली त्रुटियों पर विचार करते हैं और यदि आवश्यक हो तो ऐसी त्रुटियों की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए अपने प्रत्याशित व्यवहार का पुनरीक्षण करते हैं। वस्तुत: ऐसे अनुमान यह संकेत देते हैं कि एजेंट नियमित प्रत्याशित त्रुटियों को दूर करने में सफल होते हैं ताकि उपलब्ध सूचना से ऐसी त्रुटियाँ औसतन असंबद्ध हों।

रेटेक्स परिकल्पना आर्थिक (मौद्रिक, राजकोषीय और आय) नीतियों पर लागू की जाती है। विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ लगाने वालों ने स्थिरीकरण नीतियों की *अल्पकालिक अप्रभावशीलता* (Ineffectiveness) को दर्शाया है। उनके अनुसार, आर्थिक (मौद्रिक, राजकोषीय और आय) नीतियों में परिवर्तन होने से अर्थव्यवस्था पर इसके पड़ने वाले प्रभावों की अधिक सूचना किसी को भी नहीं होती। विशेष रूप से, इसका अर्थ मंदी को नियंत्रित करने हेतु समष्टि आर्थिक नीतियों जैसे कर कटौती करना, सरकारी खर्च बढ़ाना, मुद्रा आपूर्ति बढ़ाना या घाटे का बजट बनाना आदि पर रोक लगाना है। उनका तर्क है कि जनता ने पिछले अनुभव से यह सीखा है कि सरकार ऐसी नीतियों का अनुसरण करेगी। इसलिए सरकार इनके प्रभावों को अपनाकर जनता को बेवकूफ नहीं बना सकती और ऐसी नीति का संकेत मात्र भी जनता की ओर से व्यापक प्रतिचक्रीय (countercyclical) प्रतिक्रिया की प्रत्याशाएँ उत्पन्न करता है। इस तरह रेटेक्स परिकल्पना के अनुसार, सरकार की मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों के बारे में लोग अनुमान लगाते हैं और आर्थिक फैसले करते समय उनकी ओर ध्यान देते हैं। इसके परिणामस्वरूप, जब तक सरकारी नीतियों के संकेत मिलते हैं, जनता उन पर पहले से ही कार्य कर चुकी होती है और उनके प्रभाव समाप्त हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, रेटेक्स परिकल्पना यह बताती है कि लोगों के आर्थिक व्यवहार में ही नीति-चालें परिवर्तन लाती हैं जिनकी उम्मीद नहीं की जाती है और वे सरकार द्वारा अप्रत्याशित चालें होती हैं। जब एक बार लोगों को नीति के बारे में सूचना प्राप्त हो जाती है और उसके चालू होने की प्रत्याशा होती है तो यह लोगों के आर्थिक व्यवहार में परिवर्तन ला सकती है'।

विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ और फिलिप्स वक्र (Rational Expectations and the Phillips Curve)

फ्रीडमैन द्वारा प्रतिपादित फिलिप्स वक्र की त्वरित परिकल्पना (accelerationist hypothesis) में बेरोजगारी और स्फीति के बीच अल्पकालीन विनिमय (trade-off) तो है परंतु दीर्घकालीन विनिमय नहीं है। इसका कारण यह है कि स्फीतिकारी प्रत्याशाएँ स्फीति की पिछली प्रवृत्ति पर आधारित होती हैं जिनकी भविष्यवाणी एकदम सही नहीं की जा सकती है। क्योंकि स्फीति की संभावित दर उसकी वास्तविक दर से हमेशा पीछे रहती है, इसलिए हमेशा एक अवलोकित (observed) त्रुटि पाई जाती है। स्फीति की संभावित दर को वास्तविक दर से समायोजित करने के लिए प्रथम अवधि में अवलोकित त्रुटि के कुछ अनुपात को जोड़कर पहली अवधि में होने वाली स्फीति के अनुभव अनुसार इसकी संभावित दर का पुनरीक्षण किया जाता है।

विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं से संबद्ध अर्थशास्त्रियों ने दीर्घावधि के दौरान भी स्फीति और बेरोजगारी के बीच विनिमय रहने की संभावना से इंकार किया है। उनके अनुसार, फ्रीडमैन के इस कथन में अंतर्निहित यह धारणा अवास्तविक है कि कीमत प्रत्याशाएँ मुख्यरूप से पिछली स्फीति के अनुभव के आधार पर ही बनाई जाती हैं। जब लोग अपनी कीमत प्रत्याशाओं को इस मान्यता के आधार पर रखते हैं तो वे अविवेकी होते हैं। यदि वे बढ़ती हुई कीमतों के दौरान ऐसा सोचते हैं तो यह पाएँगे कि वे गलत थे। परंतु विवेकपूर्ण लोग ऐसी गलती नहीं करेंगे, बल्कि वे भावी स्फीति की अपेक्षाकृत अधिक सही भविष्यवाणी करने में समस्त उपलब्ध सूचना का प्रयोग करेंगे।

फिलिप्स वक्र के संबंध में विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं का विचार चित्र 30.1 में प्रस्तुत किया गया है। मान लीजिए कि बेरोजगारी की दर 3 प्रतिशत और स्फीति की दर 2 प्रतिशत है। हम SPC_1 वक्र पर बिंदु A से प्रारंभ करते हैं। बेरोजगारी कम करने के लिए सरकार मुद्रा पूर्ति की दर बढ़ा देती है, जिससे कीमतें बढ़नी शुरू हो जाती हैं। रेटेक्स परिकल्पना के अनुसार, फर्मों की कीमतों के सामान्य स्तर की बजाय अपने उद्योग की कीमतों के बारे में अपेक्षाकृत अधिक सूचना उपलब्ध है। उनका यह सोचना मात्र एक भूल है कि कीमतों में वृद्धि उनकी वस्तुओं की माँग में वृद्धि के कारण हुई है। इसके परिणामस्वरूप, उत्पादन बढ़ाने के लिए वह अधिक वर्करों को रोजगार पर लगाते हैं, जिससे बेरोजगारी कम हो जाती है। वर्कर भी कीमतों में वृद्धि को अपने उद्योग से संबंधित मानने की भूल करते हैं। परंतु जब श्रमिकों की माँग बढ़ती है तो मजदूरी बढ़ती है और वर्कर मौद्रिक मजदूरी की वृद्धि को वास्तविक मजदूरी की वृद्धि मान लेते हैं। इस तरह अर्थव्यवस्था अल्पकालीन फिलिप्स वक्र SPC_1 पर A बिंदु से B बिंदु पर ऊपर की ओर चलती है। परंतु जल्दी ही वर्कर और फर्में यह पाते हैं कि सभी उद्योगों में कीमतों और मजदूरियों की वृद्धि हो गई

नोट

है। फर्में यह भी पाती हैं कि उनकी लागतें बढ़ गई हैं। स्फीति दर में 4 प्रतिशत वृद्धि के साथ ही वर्कर यह महसूस करते हैं कि उनकी वास्तविक मजदूरियाँ कम हो गई हैं और वे मजदूरी बढ़ाने के लिए दबाव डालते हैं। इस प्रकार, सरकार की मुद्रा नीति के कारण अर्थव्यवस्था में स्फीति की दर बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप, SPC_2 वक्र पर यह बिंदु B से C की ओर चला जाता है जहाँ बेरोजगारी दर 3 प्रतिशत है जो सरकार द्वारा विस्तारक मौद्रिक नीति अपनाने से पहले के बराबर है।

जब सरकार दोबारा मुद्रा-स्फीति बढ़ाकर रोजगार कम करने का फिर प्रयास करती है तो वह उन कर्मचारियों तथ फर्मों को मूर्ख नहीं बना सकती जो अब अर्थव्यवस्था में लागतों व कीमतों की गतिविधियों पर नजर रखेंगे। यदि फर्में अपनी वस्तुओं की लागतों के साथ-साथ कीमतों में वृद्धि की आशा करती हैं तो वे अपना उत्पादन बढ़ाने की चेष्टा नहीं करेंगी जैसाकि SPC_1 वक्र के मामले में हुआ। जहाँ तक वर्करों का प्रश्न है, श्रम संगठन अर्थव्यवस्था में बढ़ती हुई कीमतों के अनुसार मजदूरी बढ़ाने की माँग करेंगे। जब सरकार मौद्रिक प्रसारण (अथवा राजकोषीय) नीति को चालू रखती है तो वर्करों और फर्मों को इसकी आदत हो जाती है। उनका अनुभव ही उनकी प्रत्याशाएँ बन जाता है। अत: सरकार जब दोबारा इस तरह की नीति अपनाती है तो फर्में अपनी वस्तुओं की कीमतें, प्रत्याशित स्फीति को बे-असर करने के लिए बढ़ा देती हैं ताकि उत्पादन तथा रोजगार पर इसका प्रभाव न पड़े। इसी प्रकार, स्फीति की प्रत्याशा में वर्कर अधिक वेतन की माँग करते हैं और फर्में अधिक नौकरियाँ नहीं देती हैं। दूसरे शब्दों में, फर्में तथा वर्कर मजदूरी समझौतों तथा कीमत-नीतियों में अपनी प्रत्याशाएँ बना लेते हैं ताकि बेरोजगारी की वास्तविक दर तथा प्राकृतिक दर में, यहाँ तक कि अल्पकाल में भी, कोई अंतर न रह जाए।

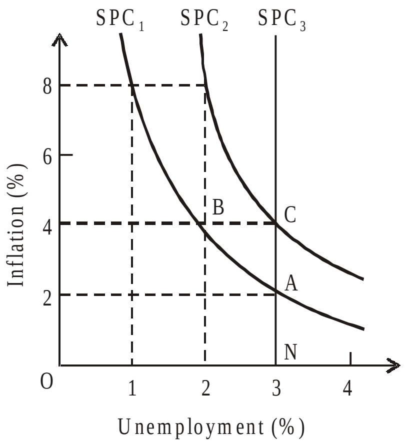

चित्र 30.1

टास्क विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions) :

3. रेटेक्स परिकल्पना की चर्चा करने से पहले समष्टि अर्थशास्त्र में प्रयोग की गई अनुकूली प्रत्याशाओं के अर्थ को समझना है–

   (अ) आवश्यक　　(ब) अनावश्यक

   (स) पर्याप्त　　(द) इनमें से कोई नहीं।

4. 1930 के दशक में जब केन्ज़ ने अपना 'सामान्य सिद्धांत' लिखा तब विश्व की मुख्य समस्या थी–

   (अ) रोजगार　　(ब) बेरोजगारी

   (स) श्रम　　(द) पूँजी।

5. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान स्फीति उभरकर सामने आई–

   (अ) मुख्य आर्थिक समस्याओं के रूप में　　(ब) युद्ध के रूप में

   (स) शांति के रूप में　　(द) इनमें से कोई नहीं

नोट

6. पूर्वानुमान, भूत की प्रवृत्तियों के साथ–साथ वर्तमान सूचना एवं ················ पर आधारित होते हैं।

   (अ) समाचार (ब) अनुभव

   (स) सिद्धांत (द) नियम

30.4 स्थिरीकरण नीति तथा रेटेक्स परिकल्पना (Stabilisation Policy and Ratex Hypothesis)

रेटेक्स परिकल्पना के अनुसार, *मौद्रिक और राजकोषीय (स्थिरीकरण) नीतियाँ अल्पकाल में अप्रभावी* (ineffective) हैं, क्योंकि अल्पकाल के दौरान प्रत्याशाओं का सही अनुमान लगाना संभव नहीं है। इसे *नीति नपुंसकता* (असमर्थता) (policy impotence) कहा जाता है। रेटेक्स परिकल्पना इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता तथा फर्में आगामी आर्थिक गतिविधियों के बारे में सही जानकारी रखती हैं। इसीलिए उनकी प्रत्याशाएँ विवेकपूर्ण होती हैं क्योंकि वे सभी उपलब्ध सूचनाओं, विशेषकर संभावित सरकारी कार्रवाईयों पर आधारित होती हैं। यदि सरकार किसी अनुकूल मौद्रिक अथवा राजकोषीय नीति का अनुसरण करती है तो लोग इसके बारे में जान जाते हैं और उसी के अनुसार अपनी योजनाओं का समायोजन (adjustment) कर लेते हैं। अत: जब भी सरकार कोई संभावित नीति अपनाती है तो वह प्रभावी नहीं होती, क्योंकि लोग इसका पूर्वानुमान लगाकर अपनी योजनाओं को इसी के अनुसार पहले ही समायोजित कर चुके होते हैं। इसका अर्थ है कि सरकारी नीति *अप्रभावी* है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण मान्यता यह है कि सभी बाजार पूरी तरह प्रतियोगी हैं तथा कीमतें तथा मजदूरियाँ पूरी तरह लोचपूर्ण हैं।

आइए पहले *राजकोषीय नीति* को ही लें। केन्ज़ के सिद्धांत को मानने वाले बेरोजगारी को कम करने के लिए एक सक्रिय (activist) राजकोषीय नीति की वकालत करते हैं। परंतु रेटेक्स परिकल्पना के अनुसार कर में कटौती तथा/या सरकारी खर्च में वृद्धि बेरोजगारी को केवल तभी कम करेगी जब इसके अर्थव्यवस्था पर अल्पकालिक प्रभाव लोगों के लिए अप्रत्याशित (या अपूर्वानुमानित) हों दूसरे शब्दों में, एक राजकोषीय नीति का बेरोजगारी को कम करने का अल्पकालिक प्रभाव हो सकता है, यदि लोगों को यह पूर्वानुमान न हो कि भविष्य में कीमतें बढ़ेंगी। परंतु जब कभी सरकार किसी ऐसी नीति पर डटी रहती है तो लोगों को स्फीति दर बढ़ने की आशा हो जाती है। अत: स्फीति में वर्कर भावी वृद्धि की संभावना को देखते हुए अधिक मजदूरी की माँग करेंगे तथा फर्में भविष्य में होने वाली लागतों में वृद्धि का पूर्वानुमान लगाते हुए अपनी वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि करेंगी। इसके परिणामस्वरूप राजकोषीय नीति अल्पकाल में *अप्रभावी* हो जाएगी। इससे दीर्घकाल में बेरोजगारी और स्फीति बढ़ सकती है, जब सरकार स्फीति को नियंत्रित करने का प्रयास करती है।

इसी प्रकार, यदि सरकार बेरोजगारी कम करने के लिए विस्तारक *मौद्रिक नीति* द्वारा मुद्रा पूर्ति बढ़ाती है तो यह भी अल्पकाल में अप्रभावी रहती है। ऐसी नीति तभी अल्पकाल में बेरोजगारी कम कर सकती है जब अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव पूर्वानुमानित न हों। परंतु जब सरकार इस तरह की विस्तारक मौद्रिक नीति पर डटी रहती है तो लोगों को स्फीति दर में वृद्धि की प्रत्याशा हो जाती है। फर्में अपनी वस्तुओं की कीमतें बढ़ा देती हैं जिससे संभावित स्फीति को निष्क्रिय बनाया जा सके ताकि उत्पादन पर उसका कोई प्रभाव न हो। इसी प्रकार, स्फीति में वृद्धि का पूर्वानुमान लगाते हुए वर्कर अधिक वेतन की माँग करते हैं तथा फर्में और अधिक वर्करों को रोजगार नहीं देती हैं। अत: इससे बेरोजगारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस प्रकार देखा जाए तो रेटेक्स परिकल्पना यह सुझाती है कि विस्तारक राजकोषीय और मौद्रिक नीतियाँ बेरोजगारी पर अस्थायी प्रभाव डालेंगी और यदि चलती रहें तो स्फीति तथा बेरोजगारी में और वृद्धि कर सकती हैं। ऐसी नीतियों की सफलता तभी है जब लोग इनका पूर्वानुमान न लगा सकें। एक बार जब लोग इनका पूर्वानुमान लगा लेते हैं और स्वयं को उसके अनुसार ढाल लेते हैं तो अर्थव्यवस्था अपनी पुरानी बेरोजगारी की प्राकृतिक दर पर लौट आती है। अत: विस्तारक राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतियों के बेरोजगारी पर अल्पकालिक प्रभाव के लिए सरकार को लोगों

नोट

को मूर्ख बनाना होगा। परंतु हमेशा ऐसा नहीं होता। यदि सरकार इन नीतियों को लागू रखती हैं तो वे अप्रभावी हो जाती हैं क्योंकि लोगों को अधिक समय तक मूर्ख बनाना कठिन है और वे उत्पादन तथा बेरोजगारी पर इसके प्रभाव का पूर्वानुमान लगा लेते हैं। इस प्रकार, राजकोषीय-मौद्रिक नीतियाँ अल्पकाल में अप्रभावी हो जाती हैं। रेटेक्स परिकल्पना का समर्थन करने वालों के अनुसार व्यापक बेरोजगारी किए बिना स्फीति को नियंत्रित किया जा सकता है, यदि सरकार राजकोषीय तथा मौद्रिक उपायों की घोषणा करे तथा लोगों को आश्चर्यचकित करने की बजाय उन्हें इसके बारे में समझाए।

आलोचनाएँ (Criticisms)

रेटेक्स परिकल्पना की अर्थशास्त्रियों ने निम्न आधार पर आलोचना की है–

1. **अवास्तविक मान्यता (Unrealistic Assumption)**–विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की मान्यता अवास्तविक है। आलोचकों का तर्क है कि बड़ी फर्में तो सही-सही अनुमान लगा पाएँगी परंतु छोटी फर्में अथवा एक सामान्य कर्मचारी ऐसा नहीं कर पाएगा।

2. **महँगी सूचना (Costly Information)**–सूचना एकत्र करना, उसका विश्लेषण तथा प्रसार बहुत महँगा है। अत: सूचना के लिए उचित बाजार नहीं है। इसलिए अधिकांश आर्थिक एजेंट विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं के आधार पर काम नहीं कर सकते।

3. **भिन्न सूचना (Different Information)**–आलोचकों का यह भी मानना है कि सरकार को उपलब्ध सूचना, फर्मों तथा वर्करों को मिली सूचना से भिन्न होती है। तदनुसार फर्मों तथा वर्करों की स्फीति की संभावित दर के बारे में प्रत्याशाएँ जरूरी नहीं कि केवल अविचारित (random) त्रुटि के कारण ही वास्तविक दर से भिन्न हों। परंतु सरकार उपलब्ध सूचना के आधार पर स्फीति को संभावित तथा वास्तविक दर से बीच के अंतर के बारे में सही-सही पूर्वानुमान लगा सकती है।

4. **कीमतें और मजदूरियाँ लचीली नहीं (Prices and Wages not Flexible)**–यद्यपि सरकार तथा व्यक्तियों दोनों की सूचनाओं तक पहुँच बराबर है तथापि इस बात की गारंटी नहीं है कि उनकी प्रत्याशाएँ विवेकपूर्ण होंगी। आलोचकों का कहना है कि कीमतें तथा मजदूरियाँ लचीली नहीं हैं। फिलिप्स, टेलर तथा फिशर जैसे अर्थशास्त्रियों ने यह दर्शाया है कि यदि मजदूरियाँ तथा कीमतें स्थिर हैं तो मौद्रिक अथवा राजकोषीय नीतियाँ अल्पकाल में भी प्रभावी हो जाती हैं। मजदूरी दरों की स्थिरता का अर्थ है कि वे बाजारी शक्तियों के साथ अपेक्षाकृत धीमे रूप से समायोजन करती हैं क्योंकि मजदूरी अनुबंध एक बार में दो-तीन वर्षों के लिए लागू होते हैं। इसी प्रकार, अवधि के आरंभ से संभावित कीमत स्तर का अवधि के अंत तक बने रहने की अपेक्षा की जाती है। अत: यदि प्रत्याशाएँ विवेकपूर्ण भी हों तो मौद्रिक अथवा राजकोषीय नीतियाँ उत्पादन तथा बेरोजगारी को अल्पकाल में प्रभावित कर सकती हैं।

5. **प्रत्याशाएँ अनुकूली (Expectations Adaptive)**–गोर्डन (Gordon) ने रेटेक्स परिकल्पना के तर्क को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया है। उसने दो कारण बताए हैं–पहला, कोई व्यक्ति विशेष बाजार समाशोधन कीमतों के स्तर का अनुमान लगाने के लिए अर्थव्यवस्था के ढाँचे के बारे में पर्याप्त जानकारी नहीं रखता तथा अनुकूली प्रत्याशाओं से चिपका रहता है। *दूसरी,* यदि वह किसी तरह अर्थव्यवस्था के ढाँचे के बारे में धीरे-धीरे सीख भी जाता है तो भी विवेकपूर्ण प्रत्याशाएँ अनुकूली प्रत्याशाओं के बहुत समीप होंगी।

6. **सरकार असमर्थ नहीं (Government not Impotent)**–प्राय: यह कहा जाता है कि रेटेक्स परिकल्पना के अनुसार सरकार आर्थिक क्षेत्र में असमर्थ है। परंतु रेटेक्स अर्थशास्त्री ऐसा नहीं मानते, बल्कि उनका विश्वास है कि सरकार आर्थिक नीतियों पर गहरा प्रभाव डालती है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें

(State whether the following statements are True or False) :

7. केन्ज़ के सिद्धांत को मानने वाले बेरोजगारी को कम करने के लिए एक सक्रिय राजकोषीय नीति की वकालत करते हैं।
8. यदि सरकार बेरोजगारी कम करने के लिए विस्तारक मौद्रिक नीति द्वारा मुद्रा पूर्ति बढ़ाती है तो यह भी अल्पकाल में अप्रभावी रहती है।
9. रेटेक्स अर्थशास्त्रियों का विश्वास है कि सरकार आर्थिक नीतियों पर गहरा प्रभाव नहीं डालती है।
10. गोर्डन ने रेटेक्स परिकल्पना के तर्क को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया है।

30.5 सारांश (Summary)

- मूथ की विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं की कल्पना व्यष्टि अर्थशास्त्र से संबंधित है। इससे बहुत से अर्थशास्त्री संतुष्ट नहीं थे। अत: यह दस वर्षों तक निष्क्रिय रही। 1970 के दशक के आरंभ में रॉबर्ट लूकस, थॉमस सारजेंट (Thomas Sargent) तथा नील वैलस (Neil Wallace) ने इस विचार का उपयोग समष्टि अर्थशास्त्र नीति की समस्याओं के लिए किया।

30.6 शब्दकोश (Keywords)

- गतिहीन स्फीति (Stagflation) – गतिरहित स्फीति।
- पूर्वानुमान भूत (Past) – पिछला।

30.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अनुकूली प्रत्याशाएँ क्या हैं? वर्णन कीजिए।
2. विवेकपूर्ण प्रत्याशाओं का वर्णन कीजिए।
3. 'स्थिरीकरण नीति तथा रेटेक्स परिकल्पना' पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. पूर्वानुमान	2. आर्थिक नीतियों	3. (अ)	4. (ब)
5. (अ)	6. (ब)	7. सही	8. सही
9. गलत	10. सही।		

30.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. **मैक्रोइकॉनोमिक्स :** एस.के. चक्रबर्ती, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, 2010

2. **मैक्रोइकॉनोमिक्स : इकॉनोमिकग्रोथ, फ्लक्चुएशंस एंड पॉलिसी :** रॉबर्ट ई. हाल एंड डेविड एच.पैपल, वाइना बुक्स, 2010

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in